अकबरी दरबार के हिन्दी-कवि

प्रकाशक

लखनऊ विश्वविद्यालय

सम्वत् २००७ वि०

स्वर्गीय सेठ भोलाराम सेकसरिया

कृतज्ञता-प्रकाश

श्रीमान् सेठ शुभकरन जी सेकसरिया ने लखनऊ विश्वविद्यालय की रजत्—जयन्ती के अवसर पर सिसवाँ-शुगर-फैक्ट्री की ओर से तीस सहस्र रुपये का दान देकर हिन्दी विभाग की सहायता की है। सेठ जी का यह दान उनके विशेष हिन्दी-अनुराग का द्योतक है। इस धन का उपयोग हिन्दी में उच्चकोटि के मौलिक एवं गवेषणात्मक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए किया जा रहा है जो श्री सेठ शुभकरन सेकसरिया जी के पिता के नाम पर 'सेठ भोलाराम सेकसरिया स्मारक ग्रन्थमाला' में संग्रथित होंगे. हमें आशा है कि यह ग्रन्थमाला हिन्दी-साहित्य के भण्डार को समृद्ध करके ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी। श्री सेठ शुभकरन जी की इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

दीनदयालु गुप्त
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

नरहरि सुपसंगी (सोइ) परे जो दुख में चीन्हि
सोनो सज्जन कसन को विपत्ति कसौटी कीन्हि ॥

—नरहरि

नाद उदधि के पार को केतिक करीं उपाय
मंजन के भय सरस्वती तूँबी उर गहि लाय ॥

—तानसेन

पावक कूँ जल बिंदु निवारक सूरज ताप कूँ छत्र कियो है
व्याधि कूँ वैद तुरग कूँ चाबुक चोपग कूँ वृख दंड कियो है
हस्ति महामद कूँ किय अंकुस भूत पिशाचन कूँ मंत्र कियो है
औखद है सब को सुखकारि स्वभाव को औखद नाहिं कियो है ॥

—गंग

धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पिअत अघाय
उदधि बड़ाई कोन है जगत पिआसो जाय ॥
मन से कहां रहीम प्रभु दृग सों कहां दीवान
देखि दृगन जो आदरैं मन तेहि हाथ बिकान ॥

—रहीम

वक्तव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने बड़ा परिश्रम किया है। इसी प्रबन्ध के लिए उनको विश्वविद्यालय ने पी-एच० डी० की उपाधि दी है। उन्होंने अनेक दुष्प्राप्य ग्रन्थों का अध्ययन कर अकबर के दरबार से सम्बन्ध रखने वाले कतिपय कवियो का सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत किया है। डा० अग्रवाल के इस ग्रन्थ द्वारा हिन्दी इतिहास की बहुत सी अज्ञात सामग्री प्रकाश मे आ रही है।

यह हर्ष का विषय है कि हमारे विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यापक साहित्य-सेवा के कार्य में योग देते हैं और उनके अनुसंधान एव गवेषणाएं ग्रन्थ के रूप में विश्वविद्यालय की ओर से अथवा अन्य प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित हो रही हैं।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक का हिन्दी-संसार स्वागत करेगा और डा० अग्रवाल का श्रम सफल होगा।

श्री आचार्य नरेन्द्र देव
एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्० — नरेन्द्रदेव
कुलपति, लखनऊ विश्वविद्यालय

उपोद्‌घात

ईसा की चौदहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के मध्य-भाग तक हिन्दी साहित्य में धार्मिक भावों की धारा विशेष प्रबलता के साथ प्रवाहित होती मिलती है, जिसका प्रसार मुख्यतः चार रूपों में हुआ। (१) ज्ञान और योग की आध्यात्मिक अनुभूति का सन्तकाव्य, (२) सूफ़ी फकीरों का प्रेम-काव्य, (३) रामभक्ति-काव्य, (४) कृष्णभक्ति-काव्य। इन चार उपधाराओं के प्रमुख प्रतिनिधि कवि क्रमशः संत कबीर, सूफ़ी जायसी, लोक हितकारी महात्मा तुलसीदास और भक्त-शिरोमणि सूरदास थे। ज्ञान और प्रेम-भक्ति का हिन्दी साहित्य में जो निवृत्ति-परक धार्मिक प्रवाह प्रबल हुआ था वह देश की तत्कालीन परिस्थितियों से उद्दीप्त हुआ था। हिन्दी के चारण-काल की राजाश्रय प्रवृत्ति उक्त युग में विदेशी शासन की कठोरता में ईश्वरोन्मुख हो गई थी। यह आन्दोलन राजाश्रय से मुक्त एक स्वतंत्र आन्दोलन था। अकबर के राजत्वकाल में (१५५६ से १६०५ ई०) देश ने बहुत समय के बाद सुख-शान्ति का समय देखा। अकबर ने हिन्दुओं का सहयोग प्राप्त करने के लिए उनकी संस्कृति, उनकी भाषा, उनके साहित्य और उनकी कला को अपनाया। अकबरी दरबार के संरक्षण ने भारतीय विद्या और कला को भारी प्रोत्साहन दिया। उस दरबार में जहाँ फ़ारसी और अरबी का मान होता था, वहाँ संस्कृत और हिन्दी का भी आदर हुआ। अकबर ने प्रख्यात गवैये, बड़े-बड़े विद्वान् और कवियों का अपने दरबार में स्वागत किया। उसका हिन्दी से इतना प्रेम बढ़ा कि वह स्वयं हिन्दी में काव्य-रचना करने लगा। केन्द्रित राजशक्ति के कला और साहित्य-प्रेम ने देशी राजाओं के साहित्य-प्रेम को भी फिर से जागृत कर दिया और वे पूर्ववत् अपने आश्रय में कविता और कलाविदों को सम्मान देने लगे।

जिस समय भक्ति के स्वतंत्र क्षेत्र में तुलसी, परमानन्द और मीरा जैसी महान् विभूतियाँ उत्पन्न हुईं उसी समय अकबर की संरक्षा में नरहरि, गंग, रहीम आदि प्रतिभाशाली कवि-पुंगव हुए जिन्होंने लौकिक काव्य की रसधारा को पुनर्जीवित किया। इनमें रहीम, ब्रह्म, तानसेन शाही दरबार के नवरत्नों में थे। ये कवि संत अथवा भक्त नहीं थे। उन्होंने अपनी कविता के विषय लोक की अनुभूतियों से चुने थे। श्रृंगार-भाव के अन्तर्गत नायक-नायिकाओं की विविध प्रेम-अवस्थाएँ, व्यावहारिक जीवन के अनुभवों से पूर्ण नीति तथा वीर-प्रशस्ति आदि लोक-भावनाएँ उनके काव्य में चित्रित हुईं। भाषा की दृष्टि से इन सभी कवियों ने बहुधा ब्रजभाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और मुक्तक शैली में रचनाएँ की। दोहा, सवैया, कवित्त और छप्पय छन्दों का इन्होंने विशेष प्रयोग किया। नरहरि की रचनाओं की भाषा पुरानी अवधी है। अब्दुर्रहीम खानखाना ने ब्रजभाषा के साथ-साथ अवधी का भी प्रयोग अपने बरवा छन्दों में किया है। मुक्त शैली में सवैया, कवित्त और बरवा छन्दों के

प्रयोगकर्ताओं में अकबरी दरबार के कवि अग्रगामी कहे जा सकते हैं। हिन्दी के धार्मिक युग में अध्यात्म की परमानन्दमयी मन्दाकिनी के साथ लौकिक अनुभूति की रसधारा बहाने वाले ये कवि साहित्य-जगत में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन कवियों में रहीम का तो कुछ विद्वानों ने अध्ययन किया था परन्तु अन्य कवियों के सम्बन्ध के केवल प्रकीर्णक विचार ही प्रकट हुए। अकबरी दरबार के इस कवि-वर्ग के सर्वांगीण अध्ययन की मुझे आवश्यकता प्रतीत हुई और डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल को मैंने पी-एच० डी० प्रबन्ध प्रस्तुत करने के लिए यह विषय दिया। डॉ० अग्रवाल ने बड़े परिश्रम और खोज के साथ इस विषय पर प्रबन्ध लिखा जिसको स्वीकृत करके लखनऊ विश्वविद्यालय ने डॉ० अग्रवाल को पी-एच० डी० की उपाधि दी।

यह ग्रन्थ पाँच अध्यायों मे लिखा गया है। प्रथम में हिन्दी-साहित्य के मध्य-युग की विशिष्ट प्रवृत्तियों का विवेचन है तथा अकबर की कला और साहित्य-प्रियता का विवरण देने के बाद अकबरी दरबार में रहने वाले तथा उस दरबार से सम्बंधित कवियों का परिचय है। दरबार में रहने वाले कवि नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग, रहीम, सूरदास मदनमोहन, राजा टोडरमल, राजा पृथ्वीराज, राजा आसकरण, चतुर्भुज ब्राह्मण और मनोहर कवि थे और उस दरबार के सम्पर्क में आने वाले तथा वहाँ से सम्मान पाने वाले कवि होलराय, कुंभनदास, सूरदास, चन्द्रभान, केशवदास, करनेस तथा दुरसा आदि थे। प्रस्तुत ग्रन्थ में उक्त कवियों में से लेखक ने दरबार में रहनेवाले नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम का आलोचनात्मक अध्ययन किया है। इन कवियों की रचनाओं की तथा उनके जीवन-चरित सम्बन्धी तथ्यों की खोज डॉ० अग्रवाल ने बहुत परिश्रम से की है और हिन्दी-जगत के समक्ष नवीन और बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत की है। द्वितीय अध्याय में जीवन-चरित और तीसरे में रचनाओं का विवेचन है। इस विवेचन में डॉ० अग्रवाल ने वैज्ञानिक तर्क-प्रणाली से अपने निष्कर्ष निकाले हैं। चतुर्थ अध्याय काव्य-विवेचन का है। इसमें भाव-व्यंजना, प्रकृति-प्रयोग, उक्ति-वैचित्र्य, अलंकार, छन्द, भाषा, आदि शीर्षकों के अन्तर्गत विषय-तत्व की रुचिकारी आलोचना की गई है। इस अध्याय में भाषा-विवेचन वाला प्रसंग विशेष महत्व का है। पांचवें अध्याय में उक्त, कवियों की रचनाओं के आधार से उत्तर भारत के सामाजिक जीवन, लोक-विश्वास और ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। यह प्रसंग भी बहुत रोचक और महत्त्वशाली है। परिशिष्ट भाग में उक्त कवियों की प्रकाशित तथा अप्रकाशित रचनाओं के उदाहरण प्रस्तुत किए गये है। उससे ग्रन्थ की उपादेयता और भी बढ़ गई है। पाठकों के सामने इस ग्रन्थ को रखते हुए मुझे भी हर्ष है। डॉ० अग्रवाल के अध्यापन का विशिष्ठ विषय भाषा-विज्ञान है परन्तु काव्य-समीक्षा क्षेत्र में भी उनका प्रवेश है यह बात इस ग्रन्थ से विदित हो जाती है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे अपने भाषा-विज्ञान और साहित्यानुशीलन के कार्य को इसी प्रकार आगे बढ़ाते रहेंगे। उनके लिए मेरी मंगल कामनाएँ हैं।

डॉ० दीनदयालु गुप्त
एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट्
प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

दीनदयालु गुप्त

प्राक्कथन

भारतीय इतिहास के मध्य-युग में मुग़ल-सम्राट् अकबर का राज्यकाल विशेष महत्व का है। इस युग में न केवल राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से ही देश की उन्नति हुई वरन् हिन्दी-काव्य का भी विलक्षण उत्कर्ष हुआ। अकबरी-दरबार के भीतर और बाहर महान् कलाकार और कवि उस युग को गौरवशाली बना रहे थे। महात्मा सूरदास और गोस्वामी तुलसीदास उस युग के महान् भक्त-कवि थे तथा स्वामी हरिदास उच्च कोटि के भक्त-गायक। उस युग की महत्ता में अकबर का बड़ा ही प्रमुख योग था। उसने श्रेष्ठ कलाकारों और कवियों को अपने दरबार में आश्रय दिया था। दरबार के 'नवरत्न' गुणी और प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति थे तथा इनमें से अधिकांश हिन्दी-काव्य के प्रेमी ही नहीं वरन् प्रतिभा-संपन्न कवि और लेखक भी थे। विविध सूत्रों से पता चलता है कि नवरत्नों में राजा बीरबल, तानसेन, अब्दुर्रहीम खानखाना, राजा टोडरमल आदि की हिन्दी में सुन्दर काव्य-रचनाएँ उपलब्ध हैं। नवरत्नों के अतिरिक्त दरबार के कई प्रतिष्ठित व्यक्ति तथा राज-कर्मचारी भी हिंदी में कविता करते थे, इस संबंध में राजा आसकरण, राजा पृथ्वीराज और सूरदास मदनमोहन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। साथ ही दरबार में आश्रय पाने वाले नरहरि और गंग सरीखे हिन्दी के कुछ अन्य उच्चकोटि के कवि भी विद्यमान थे। अकबरी-दरबार के उपर्युक्त कवियों में नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम हिन्दी-जगत में विशेष प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में इन्हीं हिन्दी-कवियों के जीवन-चरित, रचनाओं, काव्यालोचना तथा उनके काव्य में उपलब्ध सामग्री का सामाजिक एवं ऐति-हासिक दृष्टि से अध्ययन किया गया है।

अभी तक इन समस्त कवियों में से प्रत्येक का पूर्ण रूप से अध्ययन नहीं किया गया। कुछ लेखों, भूमिकाओं अथवा कुछ छोटे-छोटे ग्रंथों में जो सामग्री मिलती है उसका परिचय संक्षेप में इस प्रकार है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में नरहरि का जीवन और काव्य संबंधी परिचय बहुत कम मात्रा में मिलता है। असनी के कवि और नरहरि के वंशज लालजी द्वारा प्रकाशित 'अश्वनी-चरित्र' नामक पुस्तिका में नरहरि के घराने और वंश के व्यक्तियों का नामोल्लेख-मात्र मिलता है। जीवन सम्बन्धी घटनाओं का कोई वर्णन नहीं मिलता। श्री रामकृष्ण शर्मा द्वारा प्रकाशित 'नरहरि महापात्र और उनका घराना' तथा श्री मानसिंह गौड़ के 'महाकवि नरहरि का निवास' नामक लेखों में कवि का जीवनी का संक्षेप में वृत्तान्त तो मिलता है परन्तु अधिकांश घटनाओं का इनसे भी कोई परिचय नहीं मिलता। केवल कुछ अंशों पर ही प्रकाश डालने का प्रयत्न किया

गया है। श्री विपिन बिहारी त्रिवेदी ने भी नरहरि की जीवनी पर कुछ लेख लिखे हैं, जिनमें उल्लिखित कुछ घटनाएँ महत्वपूर्ण हैं। परन्तु उनके द्वारा कवि की रचनाओं पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। इस प्रकार ऊपर लिखे किसी भी लेख में न तो उनकी सम्पूर्ण जीवनी और न उनकी साहित्यिक वृत्तियों का ही परिचय और विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए नरहरि के सम्यक् अध्ययन की आवश्यकता लेखक को प्रतीत हुई।

लेखक ने नरहरि संबंधी एक प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ का पता लगाया जिसका विवरण हिन्दी के इतिहास या खोज-रिपोर्टों में नहीं है। नरहरि कृत 'रुक्मिणी-मंगल' नामक ग्रंथ को भी जिसका उल्लेख मात्र खोज-रिपोर्टों में है, लेखक ने काशी के राज-पुस्तकालय में जा कर प्राप्त किया। प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों तथा उपर्युक्त हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर कवि के जीवन तथा काव्य-रचना पर एक मौलिक दृष्टिकोण के साथ नवीन सामग्री प्रस्तुत की गई है।

राजा वीरबल (ब्रह्म) ऐतिहासिक व्यक्ति होते हुए भी हिन्दी-काव्य-जगत के लिए नये ही हैं। इन्होंने 'ब्रह्म' उपनाम से अपनी अधिकांश रचनाएँ की हैं। तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों में वीरबल के राजकीय जीवन का परिचय तो मिलता है किन्तु उनमें कवि के बाल्य-काल, शिक्षादि विषय पर कोई सामग्री नहीं मिलती। मुंशी देवीप्रसाद तथा पं० वल्लभ भट्ट ने 'राजा बीरवल' नामक पुस्तकों में कवि की जीवन-चरित सम्बन्धी घटनाएँ ही अधिकतर दी हैं। उनमें कवि के काव्य पर विवेचनात्मक विचार नहीं मिलते। इतिहास-विशेषज्ञ डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी का जनवरी, सन् १९३१ की हिंदुस्तानी पत्रिका में 'राजा वीरवर' नामक लेख दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें कवि के जीवन की अनेक घटनाएँ स्पष्ट कर दी गई हैं और कवि के कुछ उत्तम छंदों के भावसहित उदाहरण भी दिये गये हैं। लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों तथा संग्रहालयों से प्राप्त प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर उसकी जीवनी और रचनाओं का पूरा विवरण एवं विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

तानसेन एक उत्कृष्ट गायक के रूप में सुविख्यात हैं, किन्तु वे हिन्दी के कवि भी हैं इस तथ्य की जानकारी हिंदी-संसार को नहीं है। इसीलिए हिंदी-साहित्य के ग्रंथों में प्राप्त तानसेन सम्बंधी सामग्री अत्यल्प है। भाषा-तत्व-विशेषज्ञ डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने 'तानसेन' नामक एक अंगरेजी-लेख में कवि के जीवन की कुछ घटनाओं का विवरण तथा पदों का भावसहित परिचय दिया है। किन्तु फिर भी तानसेन के जीवन की कई महत्वपूर्ण घटनाएँ अछूती ही रह गयी हैं। उनके पदों का भी विवेचनात्मक अध्ययन नहीं हुआ है। तानसेन की राग और ताल विषयक रचना 'संगीत-सार' रीवां के राज-पुस्तकालय में सुरक्षित है जिसका अध्ययन लेखक ने वहाँ जाकर किया। बंगीय साहित्य-परिषद द्वारा प्रकाशित रागसागरोद्भव संगीत-राग-कल्पद्रुम के भाग १, २ में तानसेन के पद बिखरे हुए मिलते हैं। लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों, वार्ता-

साहित्य तथा कवि की उपर्युक्त रचनाओं के आधार पर उसकी जीवनी का अध्ययन करने का प्रयास किया है परन्तु फिर भी अनिवार्य घटनाओं के लिए किवदन्तियों को छोड़ कर कोई दूसरा सहारा नहीं मिल सका। संगीत-राग-कल्पद्रुम के बिखरे पदों के आधार पर ही उनकी काव्य-प्रतिभा का समझने का प्रयत्न किया गया है।

गंग अकबरी-दरबार के कवियों में अधिक लब्ध-प्रतिष्ठ हैं किन्तु जितने ही अधिक वे ज्ञात हैं उतनी ही उनकी जीवनी विवादग्रस्त और अज्ञात है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में कवि की जाति और मृत्यु संबंधी घटनाओं के ही संकेत मिलते हैं। इनमें तथा कुछ अन्य प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में कवि के कुछ छंद भी प्राप्त होते हैं। लेखक ने विविध संग्रहालयों की हस्तलिखित प्रतियों में उपलब्ध छंदों में प्राप्त अंतर्साक्ष्य के आधार पर कवि की जीवनी का अध्ययन किया है। समकालीन तथा परवर्ती कवियों की कुछ रचनाओं तथा प्रकाशित इतिहास-ग्रंथों से भी कहीं-कहीं कवि के जीवन-चरित पर प्रकाश डाला गया है। कवि की रचनाओं का विवेचन और उनके आधार पर काव्य-प्रतिभा का भी अध्ययन प्रस्तुत ग्रंथ में किया गया है।

रहीम के जीवन की घटनाओं का विवरण मुंशी देवीप्रसाद ने 'खानखानानामा' में दिया है। लेखक ने तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों—अकबरनामा, तुजुक—जहाँगीरी, अब्दुलबाक़ी कृत मआसिरे-रहीमी आदि के अध्ययन से रहीम के जीवन की कुछ अन्य बातों पर नया प्रकाश डाला है। रहीम की हिन्दी-रचनाओं का संग्रह स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने 'रहीम-रत्नावली' के नाम से किया है। पाठ की दृष्टि से रहीम के और भी कई प्रकाशित संग्रह-ग्रंथ मिलते हैं परन्तु लेखक ने याज्ञिक जी के उक्त संग्रह-ग्रंथ को ही रहीम की रचनाओं के अध्ययन का मुख्य आधार माना है क्योंकि समस्त प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में याज्ञिक जी का ही संग्रह अधिक पूर्ण है। रहीम हिंदी-जगत के ख्यातिप्राप्त कवि हैं किन्तु अभी तक उनकी काव्यगत विचारधारा का मूल्यांकन नहीं हो पाया था। विविध शैलियों, भाव-धाराओं एवं काव्य तथा जीवन के आदर्शों पर विचार करना आवश्यक था, यही प्रयत्न इस ग्रंथ में किया गया है। इस प्रकार इस ग्रंथ में अकबर के दरबार के नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग, रहीम हिन्दी-कवियों का विशेष रूप से सविस्तार अध्ययन है तथा करनेश, दुरसा, होलराय ब्रह्मभट्ट, कुंभनदास, सूरदास, व्यास, चन्द्रभान, चतुर्भुजदास ब्राह्मण, राजा आसकरण, राजा पृथ्वीराज, सूरदास मदनमोहन, राय मनोहर तथा राजा टोडरमल हिन्दी-कवियों का जो अकबरी दरबार से किसी न किसी रूप में सम्बंधित थे, संक्षेप में परिचयात्मक उल्लेख है।

प्रस्तुत ग्रंथ पांच अध्यायों में विभाजित है। पहले अध्याय की सामग्री पाँच प्रसंगों में दी गई है। पहले प्रसंग में मध्य-युग की कुछ सामान्य विशेषताओं, दूसरे में तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों, तीसरे में अकबर के व्यक्तित्व और दरबार में कला के संरक्षण, चौथे में भारतवर्ष के मुसलमान राजाओं द्वारा राज्याश्रय की परपरा एवं

अकबर के पूर्व-काल में हिन्दी का मान तथा पाँचवें में अकबरी-दरबार के हिन्दी-कवियों के संक्षिप्त परिचय को दिया गया है। अकबरी दरबार के उक्त कवियों को दो श्रेणियों में रखा गया है एक तो दरबार में स्थायी रूप से रहने वाले कवि और दूसरे केवल अकबर के संपर्क में आये हुए कवि। इस ग्रंथ की प्रारंभिक सामग्री इतिहास-ग्रंथों के आधार पर है। इसी अध्याय के अंतिम प्रसंग में चन्द्रभान, व्यास, राय मनोहर, सूरदास मनमोहन, राजा पृथ्वीराज, राजा आसकरण आदि कवियों से सम्बन्धित निष्कर्ष लेखक के अपने है।

दूसरे अध्याय में अकबरी-दरबार के प्रमुख और प्रसिद्धि-प्राप्त पांच कवियों—नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम का जीवन-चरित दिया गया है। नरहरि इन समस्त कवियों में वयोवृद्ध थे, इसलिए सर्वप्रथम उन्हीं की जीवनी दी गई है और बाद में अवस्था के क्रमानुसार दूसरे कवियों की। नरहरि, ब्रह्म, तानसेन और रहीम की जीवन-सम्बन्धी घटनाओं की उनके तत्कालीन इतिहास-ग्रंथों के आधार पर गवेषणात्मक, निष्पक्ष, मौलिक समीक्षा है। गंग की जीवनी का अधिकांश भाग कवि की उपलब्ध रचनाओं के आधार पर दिया गया है क्योंकि तत्कालीन ऐतिहासिक ग्रंथों में कहीं भी कवि का उल्लेख नही मिलता। समकालीन और परवर्त्ती कवियों की रचनाओं द्वारा भी इन कवियों की जीवनी पर थोड़ा प्रकाश डालने का यत्न किया गया है। फिर भी विश्वस्त प्रामाणिक सूत्रों के अभाव में लेखक को कुछ घटनाओं के सम्बन्ध में प्रचलित किंवदन्तियों का आधार लेना पड़ा है। इन सब कवियों की धार्मिक विचारधारा पर भी थोड़ा प्रकाश डाला गया है क्योंकि सभी कवि भक्त-हृदय न होते हुए भी उस युग में प्रवाहित भक्तिधारा से अछूते नही थे।

तीसरे अध्याय में उपर्युक्त कवियों की रचनाओं तथा उनके वर्ण्य-विषय का परिचय दिया गया है। नरहरि, ब्रह्म और गंग की फुटकर रचनाएँ विविध संग्रहालयों से प्राप्त हुई है जिन्हें प्रस्तुत ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में दे दिया गया है। नरहरि कृत 'रुक्मिणी-मंगल' खण्ड-प्रबन्ध तथा तानसेन कृत 'संगीत-सार' लक्षण-ग्रंथ है। इनको भी परिशिष्ट भाग में दे दिया गया है। तानसेन के पद संगीत-राग-कल्पद्रुम के प्रथम एवं द्वितीय भागों में तथा उनकी रचना 'संगीत-सार' का कुछ अंश 'संगीत-राग-कल्पद्रुम' के सूरसागर-संस्करण में मिलते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है कि रहीम के ग्रंथों के कई प्रकाशित संग्रह मिलते हैं परन्तु स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक द्वारा प्रकाशित 'रहीम-रत्नावली' संग्रह ही पूर्ण है। लेखक ने रहीम की रचनाओं के लिए उसी ग्रंथ का आधार लिया है। इन कवियों के रचनाकाल का भी उल्लेख साथ में कर दिया गया है।

चौथे अध्याय में उक्त कवियों के काव्य का विवेचन किया गया है। उनकी रचनाओं के अंतरंग और बाह्य दोनों पक्षों की समीक्षा की गई है। अंतरंग पक्ष के अन्तर्गत शृंगार, भक्ति, वीर आदि भावों तथा रूप-सौंदर्य, प्रकृति-वर्णन, नीति-उपदेशादि का विश्लेषण है। बाह्य-पक्ष के अंतर्गत उक्ति-वैचित्र्य, भाषा, छंद, अलंकार का विवेचन है। कवियों की भाषा में विदेशी

शब्दों के प्रयोग के कारण, उनके रूप-परिवर्तन आदि पर भी लेखक ने स्वतन्त्र रूप से अपने विचार प्रकट किये हैं।

पाँचवें अध्याय में उक्त कवियों की रचनाओं के आधार पर अकबरकालीन सामाजिक जीवन, विश्वास तथा कुछ ऐतिहासिक घटनाओं के परिचय दिये गये है। नरहरि, तानसेन, गंग का काव्य इस दृष्टि से विशेष महत्व का है। इसी अध्याय के आरंभ में राज-दरबार में कवियो की उपयोगिता पर भी स्वतंत्र विचार प्रकट किए गए हैं। जीवन के अन्तर्गत मनुष्यों के तत्कालीन धार्मिक विश्वास, जनोत्सव, वेशभूषा, रहन-सहन आदि पर विचार किया गया है। कवियों द्वारा दी गई कई ऐतिहासिक घटनाओं की प्रामाणिकता पर भी पूर्ण रीति से प्रकाश डाला गया है। कुछ नई घटनाओं के भी विवरण है जो इतिहास-ग्रंथों में नही मिलते।

ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में कवियों की उन्हीं रचनाओं को दिया गया है जो अधिकांश रूप में अप्रकाशित है और प्रकाशित रचनाओं में से केवल उन्हीं को दिया गया है जो सामान्य रूप में दुष्प्राप्य हैं और लेखक को प्रयत्न के उपरान्त ही उपलब्ध हो सकी हैं।

इस सम्बन्ध मे यह निवेदन कर देना आवश्यक है कि प्रस्तुत ग्रंथ के अन्तर्गत उदाहरण रूप मे दी गई रचनाएँ प्रायः अपने मूल हस्तलेख मे प्राप्त अपरिष्कृत रूप में ही है जिनमें गति, यति-भंग आदि दोष कहीं-कहीं पर स्पष्ट रूप मे प्रकट हैं। हाँ, किन्तु परिशिष्ट भाग में अवश्य कुछ साधारण संशोधन कर के रचनाएँ उद्धृत की गई हैं। इनके संशोधन में रायबहादुर डॉ० शुकदेव बिहारी मिश्र के सुझावों से बड़ी सहायता मिली है।

प्रस्तुत ग्रंथ का प्रणयन हिन्दी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर तथा अध्यक्ष डॉ० दीनदयालु गुप्त की देखरेख तथा निरीक्षण में हुआ है जिनके सौहार्द्र और पथ-प्रदर्शन के अभाव में इसका इस रूप में होना संभव नहीं था। डॉ० भवानी शंकर याज्ञिक ने अपने संग्रहालय के हस्तलिखित तथा प्रकाशित ग्रंथों एवं स्वयं अपने सुझावो द्वारा लेखक को अनुगृहीत किया है। उनके उदार सौजन्य के अभाव में ग्रंथ का भली प्रकार से संपन्न हो सकना कठिन ही था। सागर-विश्वविद्यालय के कुलपति तथा इतिहास-विशेषज्ञ डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी एवं रा० ब० डॉ० शुकदेवबिहारी मिश्र के अमूल्य सुझाव प्रस्तुत ग्रंथ के परिष्कार मे बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं। लेखक उनका हृदय से आभारी है। फारसी-ग्रंथो के अर्थ समझने मे फारसी-विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के अध्यक्ष श्री सय्यद मसूद हसन रिज़वी से विशेष सहायता प्राप्त हुई है। लेखक इसके लिये उनका कृतज्ञ है। श्री डॉ० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच्० डी० और श्री कलिन्द शास्त्री एम० ए० से समय-समय पर लेखक को जो सुझाव मिले है उनके लिये लेखक उनका आभार मानता है। इसके साथ ही लेखक विश्वविद्यालय के कुलपति श्री आचार्य नरेन्द्र देव जी के वक्तव्य के लिये उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है। इनके अतिरिक्त लेखक उन सभी सज्जनों का आभारी है जिन्होंने उसे इस कार्य-संपादन में यथाशक्ति सहायता प्रदान की है।

लेखक

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

विषय पृष्ठ

परिशिष्ट

पहला अध्याय

भूमिका

ईसा की सोलहवीं शताब्दी में प्रत्येक सभ्य देश जीवन की एक नवीन धड़कन का अनुभव कर रहा था। भौतिक जगत में नई-नई व्यवस्थायें बन रही थीं। इसके परिणामस्वरूप शक्तिशाली राष्ट्रों और वंशों का प्रादुर्भाव हुआ। इङ्गलैंड में ट्यूडर, फ्रांस में बूरबों, स्पेन और आस्ट्रिया में हैप्सवर्ग, प्रशा में हाहेनजोलर्न, तुर्किस्तान में ओरमानलीस्, मिस्र में ममल्क्स्, फारस में सफ़ाविड्स, चीन में मिंग्स्, भारत में मुगलों के उत्थान एक ही काल में हुए।[1] इस युग में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नये-नये परिवर्तन हुए। धर्म, कलाकौशल, साहित्य आदि के क्षेत्रों में विशेष उन्नति हुई। धार्मिक कट्टरता के विरुद्ध धर्म-सम्बन्धी उदार और व्यापक भावना को जन्म दिया गया। इङ्गलैंड में 'रोमन-कैथोलिक' धर्म के स्थान पर नये धर्म 'प्रोटेस्टेंट' का प्रचार हुआ। भारतवर्ष में सन्तमत, सूफ़ीमत तत्पश्चात् वैष्णव-धर्म का विशेष प्रचार और प्रसार किया गया। इन नये धर्मों के प्रचार से सैकड़ों वर्षों की चली आती हुई अन्ध-परम्परा का विरोध हुआ और लोगों में जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण देखने को मिला। अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के प्रति लोग उदार हुए और उनकी मानसिक संकीर्णता कुछ दूर हो चली। दलितों को समाज से अलग प्राणी समझने की भावना में परिवर्तन हुआ और सर्वसाधारण लोगों की भाँति उनको भी मानवता की दृष्टि से देखने का प्रयास किया गया।

यह शिल्प, वास्तु, चित्र, काव्य आदि अन्य कलाओ के पुनरुद्धार तथा अभ्युदय का युग था। यूरोप, भारतवर्ष तथा अन्य पूर्वी देशों में इन कलाओं को प्रश्रय मिला। इन देशों के शासकों के दरबारों में उच्चकोटि के कवि, लेखक और विद्वानों को सम्मान तथा प्रतिष्ठा का स्थान मिला। इङ्गलैंड में शेक्सपियर, भारत में सूरदास और

१ दीने-इलाही, 'प्रीफ़ेस', पृ० २०

तुलसीदास, ईरान में मुह्तशाम आदि महाकवि हुए। इन कवियों ने उस सुख और समृद्धि के समय में अपनी काव्य-प्रतिभा का विशेष परिचय दिया जो आज भी कवि-वर्ग के लिये अनुकरणीय है। मानसिक शक्तियों एवं भव्य-भावों की अभिव्यक्ति का विशद रूप उन महाकवियों की रचनाओं में प्राप्त हुआ। यूनान और रोम की संस्कृति की नीव पर मध्ययुगीन यूरोप की कला, साहित्य, दर्शन, न्याय-शास्त्र की भीति खड़ी की गई। भारतवर्ष की संस्कृति सहस्रों वर्ष पुरानी होते हुए भी विदेशियों के प्रवेश पर उनकी संस्कृति, सभ्यता और विचार-प्रणाली का यहाँ की जनता पर प्रभाव पड़ा और इस प्रकार इन दो संस्कृतियों के मेल से एक नवीन संस्कृति तथा विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ। इस्लाम के प्रवेश ने भारतवर्ष की ललित-कलाओं तथा वाङ्मय के क्षेत्रों पर अपना विशेष प्रभाव डाला। साथ ही मुसलमान शासक और साधारण मुसलमान भी भारतीय विचार-पद्धति से प्रभावित हुए बिना न रह सके जिसका विवरण विस्तार से इस अध्याय में आगे दिया जायगा।

भारतवर्ष की समुन्नत राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का अकबरकालीन साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा है। अतः उनका संक्षिप्त विवरण देना यहाँ आवश्यक है।

राजनीतिक परिस्थिति

भारतवर्ष में बाबर और हुमायूँ के संक्षिप्त शासन-काल में राजकीय संगठन तथा व्यवस्था का अभाव था। इस दशा में कोई राजनीतिक तथा आर्थिक विकास और उन्नति संभव नहीं थी। अकबर को भी अपने राज्य के आरम्भ में ही विषम परिस्थिति का सामना करना पड़ा।[1] जिस समय अकबर सिंहासनारूढ़ हुआ तब केवल पञ्जाब उसके हाथ में था। उसके सरदार सरहिंद, दिल्ली और आगरा की रक्षा कर रहे थे। राज्य-विद्रोह को उसे दबाना था। सूरवंश के उत्तराधिकारियों का विरोध एक ओर था, हिन्दू-सामन्त हेमू भी जिसने राजा विक्रमाजीत की उपाधि ले ली थी, दिल्ली की ओर बढ़ रहा था। बङ्गाल अफ़गान-शासकों के आधिपत्य में लगभग दो शताब्दी से स्वतन्त्र था। राजस्थान के राजपूत अपने प्रदेश के विधाता स्वयं थे। मेवाड़ और गुजरात ने बहुत काल पहले ही दिल्ली से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था। गोंडवाना और मध्यप्रान्त स्थानीय सरदारों के आधिपत्य में थे। उड़ीसा की स्वतन्त्र

---

१ दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इण्डिया, भाग ४, पृष्ठ ७०

सत्ता थी। दक्षिण में खानदेश, बरार, बीदर, अहमदनगर, गलकुंडा सुलतानों-द्वारा शासित थे जिनका प्रायः दिल्ली-दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था। उत्तर में काश्मीर, सिन्ध और बिलोचिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र थे और किसी सर्वोपरि सत्ता को जानते ही न थे। किन्तु अकबर के बुद्धि-चातुर्य, कुशलता और तीव्र प्रतिभा के बल पर ही एक-एक कर सभी प्रदेश उसके अधीन होते गये। 'उसकी दूरदर्शिता ने स्थानीय राजाओं और सामंतों को शत्रु के बदले मित्र बना लिया था। चित्तौड़गढ़ के विजय के पश्चात् सभी राजपूत सामंतों ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी, केवल राणा प्रतापसिंह सरीखे वीर ही जीवनपर्यंत अकबर का विरोध करते रहे। सुल्तान बादशाहों, कुछ पठान-शासकों तथा बाबर और हुमायूँ के अव्यवस्थित शासन के फलस्वरूप किसी प्रकार का सामाजिक अथवा आर्थिक उत्थान नहीं हो पाया था और ललित कलाओं, काव्यादि को भी कोई प्रोत्साहन नहीं मिला था। अकबर के समय में राजनीतिक व्यवस्था स्थापित हो जाने के अनन्तर न केवल आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों में ही सुधार दिखाई दिया वरन् साहित्य की मधुर, गंभीर एवं व्यापक धाराएँ भी उमड़ती हुई दृष्टिगत होने लगीं।

धार्मिक परिस्थिति

मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व भारतवर्ष की धार्मिक स्थिति अस्त-व्यस्त थी। बौद्ध-धर्म ह्रास पर था। उसकी दो मुख्य शाखाएँ हीनयान और महायान हो गई थीं और उसकी उपासना की विधि में भी अन्तर हो गया था। बिहारों में विलासिता, मतभेद, अन्धविश्वास आदि दुर्गुण प्रधान हो रहे थे। इस कारण बौद्ध-धर्म जनता का धर्म न रह कर केवल एक समुदाय का ही सीमित धर्म हो गया था। शङ्कराचार्य ने अपने तर्कों तथा उपदेशों द्वारा बौद्ध-धर्म की शेष शक्ति को भी देश-निकाला कर दिया। शङ्कर की धार्मिक विचारधारा ईश्वर की अद्वैत-भावना से उद्भूत थी और उसमें सगुण-भक्ति को स्थान न था। इस प्रकार उनका सिद्धांत व्यावहारिक न होने के कारण जनता में प्रचलित नहीं हो पाया। पश्चात् रामानुजाचार्य ने ब्रह्म-सूत्रों पर अपना भाष्य लिखा और सगुण-भक्ति का एक नवीन मार्ग लोगों को सुझाया। इस भक्ति के परिणामस्वरूप लोगों में मूर्ति-पूजा तथा उपासना के अनेक रूपों का प्रचलन हुआ। अवतारवाद में आस्था जाग्रत हुई। किन्तु, अकबर के पूर्व मुसलमानों के जो आक्रमण हुए थे उनमें मूर्तियों के खंडन, अनेक अनाचार तथा अत्याचार, धर्म-विपर्यय आदि के दृश्यों ने जनता में अवतारवाद के विरुद्ध भावना भर दी थी। निर्गुण ईश्वर में उनकी अधिक

आस्था हो चली थी। इधर यवन भी 'एकेश्वरवाद' के समर्थक और मूर्ति-पूजा के विरोधी थे। अतएव ऐसे ही समय में कबीर, नानक, नामदेव, दादू आदि महात्मा इस नवीन ईश्वरोपासना-पथ के प्रदर्शक हुए। हिंदू और मुसलमान दोनों की सद्-भावनाओं का इन संतों द्वारा पूर्ण विश्लेषण किया गया। हिंदू-धर्म में प्रचलित अन्ध-विश्वास, छुआ-छूत के भेद, मन्दिर-मस्जिद के झगड़े, जातिगत संकीर्णता का विरोध कर सन्त-मत के अनुयायिओं ने जनता के सम्मुख ज्ञान और प्रेम से उद्भूत निर्गुणोपासना का एक नया दृष्टिकोण सामने रखा। यह निर्गुण-धारा अपने क्षेत्र में प्रवाहित होती रही और आगे वह भी समय आया जब सगुण और निर्गुण का संघर्ष प्रारंभ हुआ और जिसके परिणाम में दोनों का समन्वय बहुत कुछ अंशों में दिखाई पड़ता है। अकबर के समय में निर्गुण-धारा का प्रवाह काफी प्रबल था और इस धारा के प्रसिद्ध प्रचारक और सन्त दादू ने अकबर से चालीस दिन तक बातें कर उस पर काफी प्रभाव डाला था।[1]

इसके कुछ काल बाद ही सूफ़ी-महात्माओं का आविर्भाव हुआ। हिन्दू तथा मुस-लमानों में स्नेह-भाव का जागरण इन सूफ़ियों द्वारा किया गया। हिन्दू-घरों की कहानियाँ लेकर सूफ़ी-संतों ने अपने भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की। किन्तु इन महात्माओं और संतों के उपदेशों का प्रभाव अधिकारी तथा उच्च वर्ग के लोगों पर नहीं पड़ा। यह अपने सीमित क्षेत्र में बहुत से साधकों को प्रभावित करती रही। इसने निर्गुण और सगुण दो धाराओं को भी बहुत कुछ प्रभावित किया। निर्गुण उपासकों में आत्मा को स्त्री रूप में और परमात्मा को पति रूप में मान कर उसके प्रेम और विरह में तल्लीन रहना सूफ़ी साधना-पद्धति का प्रभाव था और सगुण-भक्ति के अन्तर्गत प्रेमाभक्ति का बहुत अधिक महत्व भी सूफ़ी-

---

१ दीने-इलाही, पृष्ठ १४१

His (Dadu's) fame as a man of deep spirituality reached the ears of the Emperor Akabar, who was his contemporary, and Birbal, it is said prevailed upon the saint to have an interview with the Emperor in response to an invitation from him.

Rajjabdas refers to the event in one of his couplets-

अकबरसाहि बुलाइआ, गुरु दादू को आप।
साच झूठ व्योरो हुओ, तब रह्यो नाम परताप॥

Nirguna School of Hindi Poetry, Page 259.

साधना-पद्धति के कारण ही जान पड़ता है। दीने-इलाही के सिद्धांतों के अन्तर्गत आत्मा का ईश्वर-प्रेम में अभिभूत होना और उससे एकता स्थापित करने का सिद्धांत भी इसी से प्रभावित जान पड़ता है।

सगुण-भक्ति की धारा भी क्षीण नहीं हुई थी। चौदहवीं शताब्दी के आरंभ में स्वामी रामानंद ने रामानुजाचार्य के 'श्री सम्प्रदाय' को व्यापक और लोकप्रिय बना दिया और उत्तर भारत में इसका प्रचार कर सगुण-भक्ति का द्वार सब के लिए खोल दिया। इस भक्ति में राम को ईश्वर के सगुण रूप में प्रतिष्ठित करने वाले गोस्वामी तुलसीदास के प्रभाव से आगे चल कर राम-भक्ति का विशेष प्रचार हुआ। उसको लेकर चलने वालों में अग्रदास, नाभादास, हृदयराम आदि प्रसिद्ध कवि हुए। जिस प्रकार स्वामी रामानंद द्वारा राम-भक्ति का प्रचार हुआ उसी प्रकार निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी तथा उनके अनुयायी चैतन्य महाप्रभु एवं वल्लभाचार्य द्वारा कृष्ण-भक्ति को प्रश्रय मिला। वल्लभाचार्य ने 'पुष्टि-मार्ग' द्वारा कृष्ण की अनुग्रह-प्राप्ति का उपदेश दिया।[1] सोलहवीं शताब्दी के आरंभ में ही इस संप्रदाय की व्यापकता सारे उत्तर-भारत में हो गई। वल्लभाचार्य के द्वितीय पुत्र विठ्ठलनाथ ने 'वल्लभ-मत' के आठ प्रधान भक्त-कवियों को लेकर 'अष्टछाप' की स्थापना की। वल्लभाचार्य ने अपने प्रचार का केन्द्र-स्थल कृष्ण की जन्म-भूमि व्रज-प्रदेश ही रखा। व्रज-प्रदेश की व्रज भाषा में ही कृष्ण-भक्ति का प्रचार हुआ और कृष्ण-भक्ति द्वारा व्रज-भाषा का भी यथेष्ट प्रचार और प्रसार हो गया। इस प्रकार कृष्ण-भक्ति और व्रज-भाषा ने पारस्परिक रूप से एक दूसरे को महत्त्वपूर्ण बनाया।

अकबर ने तत्कालीन सभी प्रकार की धार्मिक भावनाओं का एकीकरण करना चाहा। उसकी धार्मिक उदारता का परिणाम था कि उसने जब बौद्धिक आधार पर अपनी प्रजा में धार्मिक एकता का प्रचार किया और दीने-इलाही की स्थापना की तो कुछ कट्टर मुसलमानों द्वारा उसका घोर विरोध किया गया।[2] धर्म की तत्सम्बन्धी भावनाओं का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। अकबरी-दरबार के हिन्दी कवियों में गंग, ब्रह्म, रहीम आदि कृष्ण और राम-भक्ति की धाराओं से प्रभावित हुए थे जैसा कि उनकी रचनाओं से प्रकट होता है। इस युग का साहित्य इन धार्मिक भावनाओं के द्वारा ही वेगवान हुआ।

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, पृष्ठ ७०

२ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ १८२

सामाजिक परिस्थिति

अकबर के पूर्व सुल्तान बादशाहों के शासन-काल में हिंदुओं पर कई प्रतिबन्ध थे। उनको मुसलमानों की अपेक्षा कम सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। उन्हें अपने सामाजिक रीति-नीति आदि के व्यवहार की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं थी। उनकी स्थिति अनिश्चित और अस्थायी थी। अपने इन-संकुचित अधिकारों के रहते हुए भी हिन्दुओं में आत्माभिमान का लोप नहीं हो गया था। साथ ही उनमें विलासिता का भी अभाव न था। उच्च घराने की स्त्रियों में आभूषण और बनाव-शृंङ्गार का खूब प्रचलन था। मुखों पर केशर-मिश्रित अङ्गराग और शरीर पर ठंडक के लिए केशर मिले हुए उबटन का प्रयोग होता था। हाथों में कङ्गन, गले में बड़े-बड़े मोतियों के हार और कानों में जवाहिरात पिरोई हुई वालियाँ, बालों और कानों की शोभा के लिए चम्पा की सुनहरी सुगंधित कलियाँ पहनी जाती थीं।[1] वर्ण-व्यवस्था विशृंङ्खल रूप में थी। ब्राह्मण-समाज मानसिक योग्यता, नैतिक तथा धार्मिक गुणों से भली प्रकार विभूषित नहीं था। उनमें स्वार्थपरता, लोभ आदि दुर्गुण प्रवेश कर गये थे। राजपूतों में भी वंश-विभाजन हो गया था और वे केवल अपने वंश की प्रतिष्ठा और मान की रक्षा में संकुचित विचार-धारा के अनुगामी हो गये थे। समाज में अछूतों की संख्या अधिक थी, जो चारों प्रामाणिक वर्णों से भी नीचे थे। वे आठ भागों में विभक्त थे—धोबी, मोची, जुलाहे, बाजीगर, टोकरे और ढाल बनाने वाले, धीवर, मछेरे और व्याध। इन आठों जातियों को नगर और गाँव के भीतर रहने की आज्ञा न थी। गाँव, नगर के पास झोपड़े बना कर ये रह सकते थे। इन पेशेवाली जातियों से भी नीचे हाड़ी, डोम, चाण्डाल और विधातू थे। इन्हें अत्यंत घृणित जाति का अछूत समझा जाता था।[2] इस काल के हिन्दुओं में सावन-तीज पर झूले, रक्षाबन्धन, दशहरा दिवाली, होली आदि के त्यौहार प्रचलित थे, यद्यपि शासक की रुझान इस ओर न रहने के कारण उनका यह आनन्द निरापद नहीं था।

अमीर खुसरो ने तत्कालीन सामाजिक जीवन का सुन्दर चित्र खींचा है। जहाँ वह एक ओर उदारतापूर्ण अतिथि-सेवा, सजावट और सौंदर्य, ललितकलाओं की ओर अभिरुचि, विद्वानों और कलाविदों के आदर-मान का वर्णन करता है वहीं दूसरी ओर उसने पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, अत्यंत कठोर दंड-विधान, सिंहासन के उत्तराधिकार के

---

१ मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, पृष्ठ ४३

२ पृष्ठ ४७, ४८

वेश्वास का अभाव, विषय-विलासिता, मद्य-पान, भोग-विलास आदि के भी हैं। किन्तु अकबर के शासन-काल में हिन्दू-मुसलमानों के अधिकारों की को दूर करने का प्रयत्न हुआ। उसने हिन्दू और मुसलमान सभी के लिए का पालन किया और हिन्दुओं पर लगे हुए सभी अनुचित करों को हटा क फलस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो गई थी। हिन्दू और दोनों प्रायः समान स्तर पर हो गये थे। उन्हें अपने सामाजिक उत्सवों, रीति-जों आदि के मनाने की पूरी स्वच्छन्दता थी, किन्तु हिन्दू सामाजिक जीवन में जो आ गई थी वह एक दम दूर न हो सकी। परस्पर-कलह, भेद-भाव भोग-दिरा - सेवन आदि दुर्गुण हिन्दू-समाज के उच्च स्तर के लोगों में ज्यों रहे। साधारण जनता में संयम अवश्य था। अकबर के काल में सौन्दर्य-प्रेम प्रधान थी। सुरापान और अफीम का सेवन बराबर होता था। स्वयं अकबर दी था। अकबर के दो बड़े बेटे मदिरा-सेवन की अति के कारण को प्राप्त हुए थे। विदेशों से विलासिता तथा भोगविलास की अनेक ाती थीं जिसके कारण उन वस्तुओं का व्यवहार लोगों के जीवन में में विद्यमान था। अतएव इस प्रकार की सामाजिक दशा का प्रभाव पड़े बिना न रहा। जहाँ एक ओर अकबर के राज्य में सुखमय स्थिति होने लोगों का ध्यान काव्य तथा अन्य ललित कलाओं के समुत्थान की ओर गया के विलासी जीवन के अनुरूप शृङ्गारिक रचनाएँ भी प्रस्तुत की गईं और इस यों की रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक जीवन का थोड़ा संकेत मिलता है।

: परिस्थिति

बर-काल के पूर्व हिन्दी-साहित्य के मध्य-काल के संत-कवि कबीर, नानक जाबी, राजस्थानी आदि मिश्रित देशी-भाषाओं में, प्रेममार्गी सूफ़ी-कवि कुतुबन, सी आदि अवधी बोली में तथा सगुण-भक्ति के रसखान, आलम, मीराबाई भाषा में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत कर चुके थे। इन कवियों ने अपने परवर्ती न कवियों के लिए काव्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। तत्कालीन परिस्थिति-ारण साहित्य में काव्य के अतिरिक्त किसी अन्य अंग की ओर लोगों का ध्यान दी-साहित्य के नाटक, उपन्यास, कहानी आदि अंगों पर किसी रचना--विशेष नहीं मिलता। इसका संभवतः एक कारण यह भी था कि उस प्रकार की उपयुक्त हिन्दी-गद्य का विकास पूर्णतया नहीं हुआ था। दूसरे शासक और

जनता की अभिरुचि जितनी अधिक काव्य की ओर थी उतनी साहित्य के किसी अन्य अंग की ओर नहीं। व्रज-भाषा-गद्य में वैष्णव-भक्तों की संक्षिप्त जीवनी के दो संग्रह 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता,' और 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' के नाम से किये गये।

विदेशी आक्रमणकारियों से मुठभेड़ करने वाले वीरों की प्रशंसा का गान जैसा वीरकालीन कवियों के लिये सम्भव और स्वाभाविक था वैसा हिन्दी-साहित्य के भक्ति-कालीन कवियों के लिये न रह सका। विदेशियों की राजसत्ता देश में दृढ़ हो चुकी थी और विदेशीयता भी उनमें से कुछ दूर हो चली थी। वे भी भारत-भूमि प्रसूत नायकों की भाँति यत्र-तत्र काव्य के नायक बनने लगे थे। सुखमय स्थिति के होने पर जनता पुनः अवतारवाद तथा ईश्वर की साकारोपासना की ओर झुकी। ईश्वर में शील, शक्ति और सौंदर्य का उचित सामंजस्य स्थापित किया गया। भक्ति-भावना के निरूपण में कवि-गण अधिक लीन हुए। सगुणोपासना के दो रूप प्रधान थे। एक कृष्ण-भक्ति का और दूसरा राम-भक्ति का। पहले में जिस प्रकार कृष्ण की भाव-पूर्ण रस-मूर्ति सामने आई उसी प्रकार दूसरे में मर्यादा-पुरुषोत्तम राम की ऐश्वर्य सुषमा विराजमान थी। साहित्य की इन प्रबल लोक-अनुरंजन और लोक-उपकार करने वाली दो भावनाओं को बाद में चलकर दो अप्रतिम आश्रय प्राप्त हुए—सूर और तुलसी। कृष्ण-विषयक रचना सूर के पहले जयदेव की प्रसिद्ध संस्कृत-कृति 'गीत-गोविन्द' के आधार पर विद्यापति प्रस्तुत कर चुके थे। विद्यापति के कृष्ण-सम्बन्धी पदों में भक्ति के साथ श्रृङ्गारिक भावों की भी अभिव्यक्ति हुई थी। सूर के पदों में नखशिख, रासक्रीड़ा-वर्णन में श्रृङ्गारिक भावनाएँ आई हैं किन्तु वे भक्तों के हृदय के लिये सर्वस्व हैं।

भावों के समान ही काव्य की शैली में भी विशेषता दृष्टिगत हुई। निर्गुण कवियों की गीत-पद्धति का प्रभाव जनता के हृदय पर अधिक पड़ा था और जब सूर तथा अन्य मुक्तककारों ने इस पद्धति को भाव के सुनहले रत्नों द्वारा मंडित किया तो उसका चमत्कार कई गुना बढ़ गया। सूरदास के अतिरिक्त वल्लभ-संप्रदाय के अन्य 'अष्टछापी' भक्त-कवियों ने भी गीत-पद्धति को ही अपनाया। मुक्तक रचनाओं में कवित्त, सवैया, छप्पय, सोरठा, बरवै आदि छन्द विशेष रूप से प्रयुक्त हुए। संस्कृत छन्दों का भी यत्र-तत्र प्रयोग किया गया। शान्त रस के साथ रौद्र, वीर तथा वीभत्स रसों की भी अभिव्यक्ति कुछ स्थलों पर हुई। नीति-सम्बन्धी रचनाओं के लिए दोहे, सवैये और छप्पय तथा इति-वृत्तात्मक प्रकार की कविता के लिये चौपाई, सोरठा और श्रृङ्गार आदि की रचना के लिये कवित्त-सवैया का आश्रय विशेष रूप से लिया गया।

भाषा-क्षेत्र में भी क्रांति हुई। वीर-गाथाएँ अधिकतर राजस्थानी में ही लिखी गई थीं किन्तु भक्ति-सम्बंधी रचनाओं में व्रज और अवधी का स्रोत प्रवाहित हुआ। इन भाषाओं को उस काल के कवियों-द्वारा जिनके नाम पहले दिये जा चुके हैं, उचित सम्मान मिला और बाद को व्रज उत्तर-भारत में सैकड़ों वर्षों तक काव्य की प्रधान भाषा बनी रही। काव्य की भाषा उस काल में मान्य रूप से व्रज ही थी, अवधी का उतना विस्तार नहीं था।

हिन्दी-साहित्य की उपर्युक्त धाराओं का प्रभाव अकबरी-दरबार के हिंदी-कवियों पर भी पड़ा। दरबार के कवियों ने तत्कालीन प्रचलित काव्य-पद्धति, भाव तथा भाषा का अनुसरण किया जिससे हिन्दी-साहित्य को और भी प्रोत्साहन मिला।

अकबरी-दरबार और उसका वैभव

१. अकबर का व्यक्तित्व

विश्व में कभी-कभी ऐसी महान् विभूतियाँ अवतरित होती हैं जो अपने युग को पूर्ण रूप से प्रभावित कर उसकी विभिन्न दिशाओं को बदल देती हैं। वे उस युग--विशेष की धारा में स्वयं प्रवाहित नहीं होतीं वरन् अपने प्रवाह में युग को बहा देती हैं। इन महान् विभूतियों की कार्य-प्रणाली आलोक-स्तम्भ की भाँति आगामी युगों का मार्ग प्रकाशित करती रहती है और जनता उसे आदर्शस्वरूप मान कर उस पर चलने का प्रयास करती है। मध्य-युग के महान् व्यक्तियों में अकबर का नाम भी है। उसका व्यक्तित्व सफल कार्यों से गौरवान्वित है। धार्मिक अन्धविश्वास, कलह, विद्रोह, जातिगत संकीर्णता से ऊपर विश्व ने उसका दर्शन युग-निर्माता के रूप में किया था। जब कि समकालीन अन्य राष्ट्रों में विद्रोह और वैमनस्य की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, भारत में अकबर धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक और राष्ट्रीय क्षेत्रों में एकता की सफल योजनाएँ कार्य-रूप में परिणत कर रहा था। पिछले मुसलमान शासकों द्वारा किये गये अनुचित कार्यों को मेटने का उसने बीड़ा उठाया था।

अकबर को दिल्ली का राजसिंहासन डाँवाडोल स्थिति में प्राप्त हुआ था, यह पहले बताया जा चुका है। छोटी अवस्था में ऐसे संकटमय कार्यभार को सँभालना उसके बुद्धि-चातुर्य, नीति-निपुणता और कार्य-कौशल का परिचायक है। अकबर विद्या-प्रेमी था और विद्वानों का बड़ा आदर करता था। उसके पूर्व के अनेक शासक अपनी विद्वत्ता,

विद्या-व्यसन, साहित्य-सेवा के लिये प्रसिद्ध रहे हैं। यहाँ तक कि क्रूर और निर्दयी शासक महमूद गज़नवी भी साहित्यिक उदारता के लिये प्रसिद्ध है। उसके दरबार में उच्चकोटि के विद्वान थे। फ़िरिश्ता ने तो यहाँ तक लिखा है कि किसी भी बादशाह के दरबार में इतने विद्वान न थे जितने महमूद के दरबार में। सुलतान नसीरुद्दीन बादशाह होते हुए भी विद्यार्थी और साधु-जीवन व्यतीत करता था और अपनी लेखन-कला से ही जीविका चलाता था। शाहज़ादा मुहम्मद अपने महल में अमीर खुसरो की प्रधानता में साहित्यिक गोष्ठी करता था। सुल्तान जलालुद्दीन खिल्ज़ी के दरबार का वातावरण भी पूर्ण साहित्यिक था। मुहम्मद तुग़लक अपने पूर्व के शासकों से बढ़कर विद्वान था। कुशल लेखक होने के अतिरिक्त वह एक सफल कवि भी था। बहमनी-वंश का शासक फ़ीरोज़ भी अपनी विद्वत्ता के लिये अधिक प्रसिद्ध है। बाबर अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं का उद्भट विद्वान था। अनेक विद्वानों से उसका संपर्क था और अपने 'बाबरनामा' के संस्मरणात्मक लेखों में उसने अपनी साहित्यिक गोष्ठी का भी परिचय दिया है, जो नाव पर बैठ कर आनन्द-निमग्न होकर उसके साथ कविताएँ रचती थी।

अकबर इन सभी विद्वान शासकों से साहित्यिक अभिरुचि और विद्या-व्यसन में बढ़ कर था। उसमें महमूद गज़नवी का जोश, दानशीलता और उदारता, सुलतान नसीरुद्दीन का त्याग, मुहम्मद तुग़लक की साहित्यिकता, सुलतान फ़ीरोज़ की विद्वत्ता, हुसेन शाह की राजाश्रयता का एकीकरण ही नहीं वरन् धर्म की नई व्याख्या और हिन्दी-भाषा के अनेक कवियों को आश्रय देने की विशेषता भी दृष्टिगत होती है जो सम्राट् अकबर को दिल्ली के सर्वश्रेष्ठ विद्वान शासकों के आसन पर ला बिठाती है। सम और विषम दोन प्रकार की राजनीतिक परिस्थितियों में उसकी छत्र-छाया के नीचे साहित्य फलता-फूलता रहा फ़ारस में अकबर ने स्वयं सर्वश्रेष्ठ चित्रकार अब्दुस्समद से चित्र-विद्या सीखने का प्रयत्न किया था। अपने शासक-जीवन में अकबर विविध ज्ञान-विषयक ग्रन्थों का पाठ स्वयं न कर अनेक विद्वानों से पढ़वा कर सुनता था। अन्तिम पठित पृष्ठ पर वह स्वयं पेन्सिल का निशान लगाता। इस आधार पर कुछ इतिहासकारों ने उसे निरक्षर सिद्ध करने का यत्न किया है। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है कि अकबर की निरक्षरता उसके लिये बाधक न थी। भारतीय शासक सदैव अपने अधिकारी वर्ग द्वारा राज्य-कार्य कराते रहें हैं, जिसने अकबर को विद्वानों से बहस और वार्तालाप करते सुना होगा वह उसकी निरक्षरता का पता भी नहीं लगा सका होगा। इतिहासकार स्मिथ लिखता है कि अकबर अपनी निरक्षरता से लज्जित नहीं

था क्योंकि उसके पूर्व और उत्तरकालीन अनेक भारतीय शासक निरक्षर थे।[1] इतिहासकार वेवरिज ने निरक्षरता में अकबर के समकक्ष हैदरअली, रणजीत सिंह तथा फ़िलिप द्वितीय को भी रखा है। लिखने-पढ़ने का काम राजकर्मचारियों के लिए ही उपयुक्त समझा जाता था और वही पढ़-लिख कर वस्तुओं का बोध शासक को कराते थे। फ़ारस में शासकों की इस प्रकार की निरक्षरता का ही विशेष महत्व था। वह हीनता की द्योतक नहीं थी। अकबर की निरक्षरता को भी इसी दृष्टिकोण से देखना चाहिये। 'तुज़ुक-जहाँगीरी' में जहाँगीर ने लिखा है—'मेरे पिता सदैव प्रत्येक धर्म और विश्वास के विद्वानों विशेषकर भारत के प्रसिद्ध पण्डितों का साथ करते थे। वह निरक्षर थे किन्तु विद्वानों के संपर्क में आने पर उनकी उस निरक्षरता का बोध नहीं हो पाता था और वे कविता के प्रधान गुणों से इतने परिचित हो गये थे कि कोई व्यक्ति उनकी निरक्षरता का अनुमान भी नहीं कर सकता था।'[2]

अकबर को निरक्षर इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि वह स्वयं लिखता-पढ़ता नहीं था किन्तु वह बहुश्रुत था और उसका ज्ञान-भंडार विस्तृत था। पुस्तकों का ज्ञानार्जन स्वयं पढ़कर प्राप्त न करने से किसी को निरक्षर नहीं कहा जा सकता। जीवन के बहुमुखी प्रयास में लगे रहने के कारण समयाभाव से वह ऐसा करता हो तो असम्भव नहीं। अकबर को इस अर्थ में बिल्कुल निरक्षर समझना ठीक नहीं। अकबर अनेक वर्ष अध्यापकों से पढ़ा था और उसने हिन्दी और फ़ारसी भाषाओं में अपने हृदयोद्गारों का प्रकाशन भी किया था फिर उसे अक्षर ज्ञान न हो यह नहीं कहा जा सकता। 'अकबरनामा' में अबुलफ़ज़्ल ने अकबर की कवित्व-शक्ति का निर्देश किया है। अकबर भावुक-हृदय था और काव्य-ग्रंथों में विशेषतया मसनवी और फ़ारसी-दीवानों का पाठ कराता था।[3] एन्० एन्० लॉ ने भी अकबर की निरक्षरता का विरोध करते हुए उसको साक्षर सिद्ध किया है।[4] अकबर ने कई कलाओं में दक्षता प्राप्त की थी। चित्र-कला, संगीत-कला, काव्य-कला, घोड़े की सवारी, शिकार, युद्ध, तैरने आदि की विद्याओं में भी वह कुशल था। अपने बचपन में उसने लिखने-पढ़ने की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया था फिर भी विद्वानों की सत्संगति, अपनी प्रतिभा और जिज्ञासा-द्वारा अनेक विद्याओं में कुशल

---

१ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ ३३०, ३३१

२ तुज़ुक-जहांगीरी, भाग १, पृष्ठ ३३

३ अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ ४८४, ४८५

४ प्रोमोशन आव् लर्निंग एट् मुग़ल कोर्ट, पृष्ठ १३९, १४२

हो गया था। उसकी स्मरण-शक्ति विलक्षण थी। वह जिस पुस्तक को अपने सम्मुख पढ़वाता था वह उसको सम्पूर्ण कंठाग्र हो जाती थी। अतएव केवल अक्षरों के लिखने-पढ़ने की अज्ञानता उसके लिये किसी प्रकार बाधक नहीं थी। वह एक विद्वान् व्यक्ति था इसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। उसकी इस प्रतिभा का प्रभाव दरबार के विभिन्न पक्षों पर भी पड़ा था।

अकबर ने तत्कालीन परिस्थितियों का भली प्रकार से पर्यावलोकन कर लिया था। राजकीय बागडोर ग्रहण करने के समय से ही उसने हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान दृष्टि से देखा और अपनी सदाशयता का परिचय दिया। जजिया-कर हिंदुओं की पराधीनता और हीनता का द्योतक था। अन्य कर भी थे जिन्हें हिंदुओं को ही देना पड़ता था। तीर्थ-कर हिंदुओं की धार्मिक परतन्त्रता का बोधक था। सरकारी उच्च-पदों से हिंदू वंचित थे। उनके सामाजिक कार्यों पर पाबन्दियां थीं। इस प्रकार हिंदुओं पर अनेक प्रतिबंध लगे हुए थे। बाबर के शासन-काल में इनमें किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। हुमायूँ ने मध्यम-मार्ग का अनुसरण किया। फ़ारस से लौटने पर वह हिंदुओं के प्रति कुछ दयार्द्र अवश्य हो गया था। यह उसने नीतिवश ही किया था। अकबर के पूर्व शेरशाह एक महान् शासक हो गया था। यद्यपि हिंदुओं को दबा रखने की भूल उसने नहीं की किन्तु उसके शासन में भी हिंदुओं को पूरी धार्मिक स्वतन्त्रता नहीं थी। अकबर को ऐसे ही अविश्वास और संदेहपूर्ण वातावरण में अपनी अनेक नीतियों का पालन करना पड़ा। हिन्दू-वातावरण में लालित-पालित होने तथा हिन्दू-राजकुमारियों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध होने के कारण उसके दृष्टिकोण में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। स्वाभाविक जिज्ञासा-शक्ति ने भी यहाँ उसकी सहायता की। अकबर ने जजिया-कर और धार्मिक प्रतिबंधों को हटाकर हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान नागरिकता का अधिकार प्रदान किया। राजकीय पदों पर नियुक्ति के लिये उसने प्रत्येक जाति और वर्ग के व्यक्तियों को चुना। व्यक्ति-विशेष को उसके गुणानुसार पूरा अधिकार दिया गया। मानवता की रक्षा और राज्य-प्रबन्ध की सुचारुता के लिये वह हर तरह का काम करने को प्रस्तुत था। उसने बाल-विवाह, सती-प्रथा का विरोध और विधवा-विवाह का समर्थन किया। एक बार तो वह स्वयं कई मील दूर एक राजपूत-विधवा की रक्षा के लिये गया था। उसने ममेरे, चचेरे और निकट के वैवाहिक सम्बंधों की मनाही कर दी थी। मदिरा-सेवन तथा अन्य दुर्व्यसनों के लिये उसने राज-दंड निर्धारित किया था। अकबर के ये कार्य एक उत्तम शासन-प्रणाली के परिचायक हैं।

भिखारियों के लिये उसने अलग बस्तियाँ बनवा दी थीं। उनकी देख-भाल राजदरबार की तरफ से होती थी। मुसलमानों के लिये खैरपुरा, हिन्दुओं के लिये धर्मपुरा और हिन्दू-योगियों के लिये योगीपुरा बसाये थे।[1] अकबर की धार्मिक वृत्ति भी बढ़ी-चढ़ी थी। सर्व-धर्म-समन्वय के लिये उसने अनेक साधन जुटाये थे। वह स्वभाव से ही चिन्तनशील था। उसने सब को धार्मिक विश्वास की स्वतन्त्रता दे रखी थी। प्रत्येक व्यक्ति को स्वेच्छानुसार मत को स्वीकार करने की स्वतन्त्रता थी। जो हिन्दू पहले बरबस मुसलमान बना लिये गये थे उन्हें पुनः अपने धर्म में लौट जाने की आज्ञा उसने दे दी थी। वह साम्प्रदायिक न था। राजनीतिक उदारता ने सम्राट् के हृदय को विशाल बनाने के साथ ही धार्मिक उदारता के लिये भी प्रेरित किया था। हिन्दू-वातावरण में जन्म लेने, हरम में हिन्दू-गीतों की मधुरता तथा हिन्दू-अफसरों की स्वामिभक्ति और बांसल की राजपूत रानी का हुमायूँ को राखी-भाई बनाने के दृश्य ने अकबर के मस्तिष्क पर एक अमिट प्रभाव डाल दिया था।[2] उसे विश्वास हो गया था कि जिन्हें काफिर समझा जाता है उनके अन्दर भी मानवता की उच्च भावनाएँ हैं।[3]

अकबर हिन्दुओं के समस्त त्यौहारों को आदर की दृष्टि से देखता था। राखी (रक्षाबन्धन), दशहरा, दीपावली, शिवरात्रि में वह स्वयं भाग लेता था। दरबार में ये उत्सव मनाये जाते थे। इनके सामाजिक और धार्मिक दोनों पक्षों की ओर उसकी दृष्टि रहती थी। अकबर धर्मजिज्ञासु था यह पहले कहा जा चुका है। कभी-कभी तो वह घंटों विचार-सागर में निमग्न हो भौतिकता से ऊपर उठने का प्रयास करता था। सूफ़ी-सिद्धान्त, तर्क-संगत-वादविवाद, विविध दर्शन और सिद्धान्तों का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर पड़ा था। उसने अपनी धार्मिक जिज्ञासा-तृप्ति के लिये इबादतखाने का संस्थापन

---

१ रेलीजस पॉलिसी आव् मुग़ल इम्परर्स, पृष्ठ ३०, ३२

अकबरी-दरबार, पहला भाग, पृष्ठ २१४, २१५

अकबरी-दरबार, पहला भाग, पृष्ठ २१४, २१५

२ गुजरात के बहादुरशाह ने जब चित्तौर को घेर लिया था तब रानी कर्णवती ने हुमायूं को अपना राखीबन्द भाई बना कर सहायता मांगी थी। हुमायू उस समय बंगाल का कार्य सँभाल रहा था। वहां का काम अधूरा छोड़कर हुमायु चित्तौर पहुँचा और बहादुर को भगा दिया।

अकबर की धार्मिक नीति, पृष्ठ ३४३

३ दीने-इलाही, पृष्ठ ५२

कराया था। यह धर्म और ईश्वर में उसकी श्रद्धा और विश्वास का द्योतक था। अकबर यद्यपि उल्मा और शेखों के साथ धार्मिक बातचीत में संलग्न रहता, पंडितों और साधुओं के प्रवचन सुनता परन्तु उसकी धार्मिक तुष्टि न हुई। उसने फिर एक नवीन मार्ग का अवलंबन लिया। शेख और उल्मा की असहिष्णुता और कट्टरता का अकबर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस तथ्य ने प्रार्थना-गृह का द्वार सभी मत-मतान्तरों के विद्वानों के लिये खोल दिया था। हिन्दू, सिक्ख, जैन, पारसी, बौद्ध, यहूदी, ईसाई सब उसमें प्रवेश पा सकते थे।[१]

भारत-इतिहास-संशोधक-मंडल, पूना ने इबादतखाने के तीन चित्र प्रकाशित किये हैं। ये चित्र मराठों-द्वारा मुग़ल-दरबार से प्राप्त लूट की सामग्रियों में से हैं और पूना में पेशवा-शासकों के प्राचीन लेखों के संरक्षण स्थान से उपलब्ध हुए हैं। चित्र बहुत ही सजीव हैं और तात्कालिक जीवन का यथार्थ भाव-प्रदर्शन करते हैं। इन सभी चित्रों पर सन् १५७८ ई० के बाद की तिथि पड़ी हुई है।[२] ये उन बहसों के चित्र हैं जिनका अकबर के जीवन और राजनीति पर विशद प्रभाव पड़ा था। चित्रों की तिथि से स्पष्ट होता है कि उस समय तक इबादतखाने को सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया जा चुका था। एक चित्र में अकबर और सलीम हिन्दू-ढंग पर दाढ़ी रखे हुए हैं और दूसरे दोनों सज्जन जो उनके समीप बैठे हैं संभवतः अबुलफज़ल और फ़ैज़ी हैं। सफेद दाढ़ी का एक वृद्ध व्यक्ति और बिना दाढ़ी तथा दक्षिणी पहनावे का एक युवक भी चित्र में दिखाये गये हैं। दूसरे चित्र में अकबर के सम्मुख कुछ विशिष्ट व्यक्ति बैठे हैं। एक तो बिखरे लम्बे बालों वाला कोई हिन्दू-सन्यासी है। इनमें एक भी मुसलमान ज्ञात नहीं होता। चित्र का अंतिम व्यक्ति सारे शरीर को ढके हुए कोई हिन्दू-योगी जान पड़ता है। तीसरे चित्र में एक छोटी सी झोपड़ी है जो संभवतः किसी हिन्दू-योगी के रहने के लिये बनवाई

---

१ दीने-इलाही, पृष्ठ ७४, ८२

2 The Paintings were published in the Bharat Itihas Sanshodhak Mandal of Poona. They were amongst the loots of the Maratha hordes, from the Mughal court of Agra and have been found in the archives and very faithful in portraiture. They look like real photographs of the personages whom they represent as do the paintings of the Mughal Period generally. The colour, touch, lines and scenery breathe an atomosphere of life into the pictures. The pictures are all dated after 1578 A. D.

Din-Ilahi, Appendix B, Page 118

गई होगी। इससे प्रकट होता है कि अकबर हिन्दू-धर्म की ओर अग्रसर हो रहा था और धर्म की व्यापक भावना ग्रहण किये हुए था।

वह धर्म-जिज्ञासु था और जैसा पहले कहा जा चुका है उसने चालीस दिन तक निर्गुण-पंथ के संत दादूदयाल से वार्तालाप और बहसें की थीं तथा उनकी भक्ति एवं ज्ञान से प्रभावित हुआ था। वार्ता-साहित्य से भी सिद्ध होता है कि अकबर महात्मा सूरदास से फ़तेहपूर सीकरी में मिला था और ईश्वर के प्रति उनकी अटल भक्ति तथा वैराग्य का उस पर समुचित प्रभाव पड़ा था। इसके अतिरिक्त अकबर ने अनेक हिन्दू योगियों और सन्यासियों से जिनका परिचय ऊपर इबादतखाने के चित्रों के प्रसंग में किया गया है, मिलकर हिन्दू-धर्म के प्रमुख सिद्धांतों, आत्मा-ईश्वर की व्यापकता आदि से सम्बन्धित बातों को जानने का पूर्ण प्रयास किया था।[1] इससे भी हिन्दू-धर्म के प्रति उसके विशेष आकर्षण का परिचय मिलता है।

प्रार्थना-गृह में शियाओं के प्रवेश पर तो सुन्नी बिगड़े ही थे, हिन्दुओं के प्रवेश पर तो वह अकबर के विरुद्ध ही हो गये किन्तु अकबर को उनके इस विरोध ने किंचित्मात्र भी अपने लक्ष्य से विचलित नहीं किया। अकबर को विश्वास हो गया था कि बुद्धिसम्मत बातें केवल इस्लाम-धर्म में ही सीमित नहीं हैं। गुण जहाँ कहीं भी दिखाई पड़े उसे परखना चाहिये। प्रत्येक धर्म के व्यक्ति को गुणों के अनुसार यथायोग्य स्थान मिल सकता है, यह उसका विश्वास था। बीरबल, तानसेन, अबुलफज़्ल, फ़ैज़ी आदि विद्वान् साधारण स्थिति से ही ऊपर उठकर दरबार में प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य को प्राप्त कर सके थे।

बीरबल ने ही अकबर को सूर्य तथा अन्य ग्रहों की उपासना के लिये प्रेरित किया था। अकबर की हिन्दू-रानी जोधाबाई के लिये फ़तेहपुर-सीकरी में दीवाने-खास के पास अब भी एक विशाल महल मन्दिर के साथ द्रष्टव्य है। जोधाबाई के महल के समीप ही किसी हिन्दू-योगी के लिये बना हुआ पूजा-गृह है। पास ही मन्दिर के ढंग पर बना हुआ राजा बीरबल का महल भी अपनी भव्यता दिखा रहा है। इससे प्रकट होता है कि अकबर हिन्दू-संस्कृति के प्रति विशेष उदार था।

पारसी-मत का प्रभाव भी अकबर पर पड़ा था। जैन-धर्म में भी उसने रुचि प्रकट की। उसने हीराविजय, भानुचन्द्र उपाध्याय, विजयसेन सूरि आदि जैन-धर्म के आचार्यों से उनके धार्मिक सिद्धांतों, विशेषकर अहिंसा, पर वार्तालाप किया था। इसी के प्रभाव-स्वरूप उसने सन् १५८२ ई० में कारागार से कैदियों और पिंजड़ों से पक्षियों की मुक्ति

---

[1] दीने-इलाही, पृष्ठ १४१

तथा कुछ निश्चित दिवसों पर पशु-हत्या के निषेध की घोषणा कर दी थी। हीराविजय को उसने 'जगतगुरु' की उपाधि से विभूषित किया था। भानुचन्द्र उपाध्याय से अकबर ने 'सूर्य-सहस्रनाम' पढ़ा था।[१] सम्भव है कि इस के फलस्वरूप सूर्योपासना में उसका वश्वास और भी दृढ़ हो गया हो।

बदाउनी ने लिखा है कि अकबर पर बौद्ध-धर्म का भी प्रभाव पड़ा क्योंकि उस धर्म के अनुसार वह विशेष अवसरों पर अपना सिर मुँड़वाता था। इबादतखाने के तीसरे चित्र से भी जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, स्पष्ट होता है कि बौद्धों के सम्पर्क में अकबर आया था। इन सब का समुचित रूप से अकबर पर प्रभाव पड़ा और धर्म सम्बन्ध बातों में उसका दृष्टिकोण विशाल और व्यापक हो गया था। अकबर ने पुर्तगाली पुरोहितों तथा ईसाई-धर्म को आदर की दृष्टि से देखा और अपने एक शाहजादे सुल्तान मुराद को तो ईसाई-वातावरण में शिक्षित और दीक्षित होने की आज्ञा भी दे दी थी।[२]

अकबर ने अपने उपर्युक्त दृष्टिकोण से अभिभूत होकर ही राजनीतिक एकता के आधार पर धार्मिक एकता स्थापित करने के लिये एक नये प्रयोग का प्रयास किया। इसी आशय का एक लम्बा फ़रमान उसकी ओर से निकाला गया था। इस नवीन धर्म का नाम उसने 'दीने-इलाही' रखा। इसका संस्थापन सन् १५८२ ई० के आरंभ में हुआ। किन्तु उसके सिद्धान्तों की पूर्ण व्याख्या सन् १५८७ ई० के अंत तक संभव हो सकी। वह सब प्राचीन धर्मों के एकीकरण का स्वरूप था। इतिहासकार बदाउनी ने इस नवीन धर्म के सिद्धान्तों की पूर्ण व्याखया को हृदयंगम किये बिना, केवल उसकी विधियों को ही इस धर्म का सच्चा स्वरूप मान कर उसकी निन्दा की है। 'मोहसिन फ़ानी' ने अपने 'दबिस्ताने-मज़हब' में इस धर्म के सिद्धान्तों का सुन्दर विवेचन किया है। उसने इस धर्म के मुख्य दस अंग दिये हैं—उदारता और धार्मिक वृत्ति, क्षमा और क्रोध-शान्ति, सांसारिक वासनाओं से निवृत्ति, इस लोक की स्थिति से ऊपर उठने और परलोक प्राप्त करने की

---

१ इति श्री पादशाह श्री अकब्बर जलालदीन सूर्य सहस्रनामाध्यापक श्रीशत्रुंजयतीर्थकर मोचनाद्यनेकसुकृत विधापक महोपाध्याय श्री भानुचंद्र गणितच्छिष्याष्टोत्तरशतावधान साधन प्रमुदित पादशाह श्री अकबर प्रदत्तषुस्यहमापराभिधान महोपाध्याय श्री सिद्धिचन्द्र गणि विरचितायां कादम्बरी टीकायामुत्तरखंडेटीका समाप्ता।

दीने-इलाही, पृष्ठ १६०, १६१

२ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ १७५

आकांक्षा, बुद्धिसम्मत और भक्ति-पूर्वक चिन्तन-शक्ति का परिवर्धन तथा विकास, शुभ कार्यों के करने की दृढ़ शक्ति, विनम्र भावाभिव्यक्ति, सम और सुन्दर व्यवहार, संसार के मायामोह से विलगाव और ईश्वर से लगाव, आत्मा का ईश्वर-प्रेम में अभिभूत होना और उससे एकता स्थापित करना ये मुख्य बातें थीं जिनपर उस धर्म के अनुयायियों को चलना पड़ता था।

'दीने-इलाही' धर्म के सिद्धान्त व्यापक होने पर भी बहुत कम लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर सके। लोक-धर्म की झूठी मर्यादा तथा धार्मिक संकीर्णता ने लोगों को यह धर्म स्वीकार करने के लिये प्रोत्साहित और प्रेरित नहीं किया। केवल कुछ ही व्यक्तियों ने इसमें प्रवेश लिया था। अबुलफ़ज़्ल, फ़ैज़ी, बीरबल तथा फ़ारसी के कुछ कवि इसके विशिष्ट सदस्य थे।[1] इस धर्म के साधारण सदस्यों की संख्या कई हज़ार थी किन्तु उनकी सदस्यता का कोई विशेष महत्व नहीं था।[2] अतएव अकबर की मृत्यु के साथ ही इस नवीन धर्म की भी इतिश्री हो गई। किन्तु, अपनी इस विचारधारा के साथ अकबर ने राज्य के सभी विभागों को समदृष्टि से देखा और उन्नति के साधन जुटाये। उसका राज-दरबार उस युग के भारत का प्रतिनिधिस्वरूप था। उसने अपने पूर्व के शासकों से किसी न किसी प्रकार प्रत्येक बात में विशिष्टता प्रदर्शित की थी जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। यही कारण है कि उसे भारत का एक महान् शासक कहा जाता है।

हिन्दू सामन्तों और राजाओं का समुचित सहयोग अकबर के शासन की विशेषता है। उसकी युद्ध-प्रणाली भी अपनी विशेषता रखती है। अकबर की आज्ञा थी कि जो राज्य की अधीनता स्वीकार कर ले उसे किसी प्रकार की भी हानि नहीं पहुंचनी चाहिये। साथ ही फौज़ के व्यक्तियों द्वारा किसानों और उनकी खेती-बारी को कोई हानि न हो। उसी के सौहार्द्र का प्रभाव था कि राज्य कन्धार से बंगाल की खाड़ी और नर्मदा तक फैल गया था। केन्द्रीय सरकार ने कर मिलते रहने पर कभी भी प्रान्तों के स्वायत्त शासन में हस्तक्षेप नहीं किया।[3]

अकबर को सरकारी प्रबन्ध की पूरी सूझ-बूझ थी। इसका पता उसके फौज़ी और दीवानी-संगठन से लग जाता है। उसकी ये व्यवस्थाएँ आज पौने-चार सौ वर्ष बीत जाने पर भी अपना महत्व रखती हैं। अकबर के सम्बंध में डा० ताराचन्द के ये

---

१ मेडिवियल इन्डिया, पृष्ठ २८२

२ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ २२१

३ मेडिवियल इन्डिया, पृष्ठ २५९

शब्द सारगर्भित हैं—"अंगरेजों को इस बात का घमंड है कि उनकी क़ौम ने रियासती इन्तज़ाम में दुनिया को राह दिखाई है पर उन्होंने भी हिन्दुस्तान में अकबरी बुनियादों पर ही अपनी हुकूमत की इमारत खड़ी की......एक बात में अकबर की हुकूमत को आज कल की हुकूमत पर तरजीह थी। अकबर और उसके वज़ीर हिन्दुस्तानी थे। अकबर ने कई बार हिन्दुओं को सब से ऊँचे ओहदे पर नियत किया। आजकल अंग्रेजी राज के १५० वर्ष बीतने पर भी बागडोर अंग्रेजों के हाथ में है, अंग्रेज न खुद हिन्दुस्तानी बने, न उन्होंने हिन्दुस्तानियों को अपनाया और अपने बराबर माना।"[1] भारतवर्ष अंगरेजों के हाथ में नहीं वरन् अब एक स्वतंत्र देश है किन्तु अंग्रेजों की सत्ता के सम्बन्ध में डा० ताराचन्द का उपर्युक्त कथन पूर्णतया ठीक है।

अकबर महान् और गौरवशाली व्यक्ति था। एक यथार्थ नीतिज्ञ के समान उसमें समन्वय की स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। उसने निश्चय किया था कि उसका साम्राज्य किसी एक जाति अथवा सम्प्रदाय का न होकर एक सच्चा भारतीय साम्राज्य होगा। एक इतिहासकार ने तो यहाँ तक कह दिया है कि अकबर एक सेनापति के रूप में महान् था, राजनीतिज्ञ के रूप में वह एक नये समाज का निर्माणकर्ता था और सच्चे मानवधर्म के एक क्रियात्मक व्याख्याता के रूप में आज तक कोई उससे बढ़कर नहीं हुआ।[2]

अकबर के सम्बन्ध में ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह इतिहासकारों की खोज के आधार पर वास्तविक तथ्य के रूप में है। कवि की कल्पना और भावुकता के भीतर भी अकबर को पूर्ण सम्मान और आदर मिला है और वह एक महान् व्यक्ति के रूप में स्वीकृत हुआ है।

अकबर की राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में हिंदी के सुप्रसिद्ध राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त के निम्नलिखित हृदयोद्गार उल्लेखनीय हैं:—

प्रकट त्रिवेणी तट के मन में एक और संगम की चाह
हिन्दू मुसलमान का मानस मिलन तीर्थ वह महाप्रवाह
राम रहीम धाम होगा तब वहीं दुर्ग संहत सन्नाह
उस मन्दिर का आदि पुजारी स्वयं सिद्ध तू अकबरशाह॥[3]

---

१ अकबरी राज के उसूल, पृष्ठ ३७१
२ दि इम्परर अकबर, पृष्ठ २९६
३ 'अकबर'—कविता, पृष्ठ ३१६

अतएव भारत की धार्मिक, राजनीतिक और राष्ट्रीय एकता के इतिहास में अकबर का महत्वपूर्ण स्थान रहेगा।

७—अकबरी दरबार में कला का आश्रय

अकबर की उदारनीति का ही प्रभाव था कि अनेक व्यक्ति राज्य-श्री को सुन्दरतम् बनाने में संलग्न थे। उसकी राजनीतिक उदारता, धार्मिक सार्वभौमिकता एवं सदाशयता और सहिष्णुता द्वारा कला के सभी अंगों को एक नवीन प्रोत्साहन और स्फूर्ति मिली और बहुत ही शीघ्र उसका प्रभाव देश के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त हो गया। अकबर ही नहीं वरन् उसके दरबार के 'नवरत्न' तथा प्रायः सभी धनी-मानी एवं गुणी व्यक्तियों में साहित्यिक अभिरुचि जाग्रत थी। यदि अब्दुर्रहीम प्रेम और करुण भावों की प्रतिमूर्ति थे और उत्साह के संपूर्ण अंग उनमें प्रस्फुटित थे, तो मानसिंह की कुशाग्र बुद्धि राजनीतिक कौशल से ओत-प्रोत थी और बीरबल की हास्योद्दीपक उक्तियां नीरस हृदय को भी प्रफुल्लित कर देने में समर्थ थीं। जिस प्रकार टोडरमल शांत, शीलसंपन्न और अत्यन्त उदाराशय थे, फ़ैज़ी उतना ही गंभीर और बुद्धिमान था। कुछ विद्वानों के अनुसार उसने हिंदी-भाषा में भी कविता लिखी थी।[1] अकबरी-दरबार के अधिकांश कवियों में जो काव्यगत संगीतात्मकता मिलती है वह संगीत-प्रवर तानसेन का ही प्रभाव हो सकता है। दरबार के नवरत्नों में मानसिंह, बीरबल, खानखाना की अपनी-अपनी सभाओं में अलग-अलग कवि थे। इन्हीं के द्वारा कुछ प्रमुख और प्रतिभाशाली कवि राजदरबार में भी स्थान पा जाते थे। अकबरी दरबार के बाहर इसी काल में भक्तप्रवर सूरदास, महामना तुलसीदास आदि महाकवि अपनी रचनाओं द्वारा हिंदी-कविता का मार्ग-प्रदर्शन कर रहे थे। भारतीय तथा ईरानी ललित-कलाओं के सम्मिश्रण का यही काल था, साथ ही साथ इस काल में विद्या, संगीत, काव्य, चित्र, वास्तु आदि कलाओं का एक निखरा रूप भी देखने में आया।

अकबरी-दरबार फ़ारसी के अनेक विद्वानों, कवियों तथा लेखकों से सुशोभित था। हुमायूँ अपने साथ फ़ारस से कई कलाकारों को भारतवर्ष में लाया था। 'आइने-अकबरी से पता चलता है कि दरबार में अनेक चित्रकार थे। इनमें 'दसवन्त' को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। 'दसवन्त' जैसे कई और कलाकार भी साधारण स्थिति से अपनी ज्ञान-साधना द्वारा उच्चतर और उच्चतम स्थिति तक पहुंच गये थे। साथ ही संगीतज्ञों ने विविध राग-

---

१ हिन्दी लिट्रेचर, पृष्ठ ३६

रागिनियों-द्वारा अपनी कला को चरमसीमा पर पहुँचा दिया था। वास्तु-कला उन्नति के शिखर पर थी। आज भी फ़तेहपुर-सीकरी के अनेक महल और विशाल भवन अपनी कला-कुशलता के परिचायक हैं। उच्चकोटि के इतिहासज्ञ, दार्शनिक तथा हिंदी भाषा के अनेक कवि भी अकबर के दरबार को सुशोभित करते थे। यह बातें अकबरकालीन इतिहास-ग्रंथों द्वारा प्रमाणित हैं।

अकबरी-दरबार की संरक्षा में अनेक ग्रंथों का फ़ारसी से संस्कृत और संस्कृत से फ़ारसी में अनुवाद हुआ। भारतीय महाकाव्यों में सर्वप्रथम महाभारत और रामायण का अनुवाद फ़ारसी में कराया गया। फ़ारसी में महाभारत का अनुवाद करने का भार नक़ीबखाँ पर था। स्वयं अकबर ने उसके गूढ़ अर्थ को कई रात जगकर नक़ीबखाँ को स्पष्ट किया था। अकबर ने विभिन्न भाषाओं के ग्रंथों के भाषान्तर कराने में प्रचुर धनराशि व्यय की थी जिससे उसका विद्यानुराग स्पष्ट होता है। वह केवल गुणग्राहक और कला-प्रेमी ही नहीं था वरन् विद्या के प्रचार के लिये भी उसने अपनी विशेष नीति का पालन किया था। उन दिनों फ़ारस के बादशाहों का मत था कि केवल क़ुरान, हदीस अथवा अन्य इस्लामी धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करना ही विहित है। पर अकबर का मत इसके विरुद्ध था। वह सब प्रकार की विद्याओं और साहित्य के प्रचार का पक्षपाती था। सदाचार, गणित, कृषि, माप-विद्या, रेखागणित, ज्योतिष, वैद्यक, दर्शन, तर्क-शास्त्र, इतिहास, शरीर-विज्ञानादि की शिक्षा देना वह आवश्यक समझता था। अल्पकाल में ही विद्यार्थी इनका ज्ञान कैसे प्राप्त करें, इसके लिये नवीन उपाय भी निकाले गये थे।

अकबर के इसी सराहनीय प्रयत्न को देखकर कहा जाता है कि एक फ़ारसी-शायर ने लिखा था कि फ़ारस के अनुदार मार्गानुगामी बादशाहों की नीति के कारण एक व्यक्ति विभिन्न विद्याओं को नहीं सीख पाता था। परन्तु जब वह हिन्दुस्तान में आता था तब वह विभिन्न विषयों में योग्यता प्राप्त करता था।[1] रामायण, नलदमन, चंगेज़नामा, ज़फ़रनामा, रज़्मनामा, तैमूरनामा आदि ग्रंथों के सुन्दर चित्र, जो आज उपलब्ध हैं मन और मस्तिष्क दोनों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। चित्रकार मानों उनमें मूर्तिमान हो उठा है। एक चित्रकार खाका तैयार करता, दूसरा उसमें अपनी तूलिका द्वारा रंग भर देता तो तीसरा अपनी कला द्वारा भावमय चित्र प्रस्तुत करता और फिर अन्तिम उसे अपनी कला से संभालता था। इतनी स्थितियों को पार करने के उपरान्त कहीं कोई चित्र

१ अकबर की धार्मिक नीति, पृष्ठ ३५१

समुज्जवल रूप में सामने आ पाता था। कभी-कभी तो सब चित्रकार एक कक्ष में एकत्र होते और फिर प्रमुख चित्रकार की देख-रेख में चित्र विशेष के विविध अंग उनके विशेषज्ञों को दिये जाते थे जिसको चित्रित करने में वह अपनी सानी नहीं रखता था और फिर अन्तिम तूलिका उस प्रमुख चित्रकार की चलती थी।[1]

पीछे कहा जा चुका है कि अकबरकालीन वास्तुकला भी बढ़ी-चढ़ी थी। दिल्ली, आगरा, सीकरी की ऊँची-ऊँची मीनारें, गुम्बद और मस्जिदें उस काल की गौरव-गरिमा और सुन्दर कला के ज्वलंत उदाहरण हैं। ये उस काल की आदर्श भावनाओं और कल्पनाओं के प्रतीक हैं। इस कला के विशेषज्ञ दूर-दूर से बुलवाये गये थे। प्रसिद्ध वास्तु-कला विशेषज्ञ हैवेल का कथन है कि सरकोनिक वास्तुकला का विकास इस काल में जैसा भारतवर्ष में हुआ उसके सामने तुर्किस्तान, अरब, मिस्र आदि की कला पीछे रह गई। केरो और कुस्तुनतुनिया की मस्जिदें बीजापुर, दिल्ली, सीकरी और अहमदाबाद के सम्मुख भावों के प्रकाशन और निर्माण-कल में घट कर हैं।[2] इन कलाकारों को राजकीय सुविधाएँ प्राप्त थीं। कलाकार अपनी पूर्वकालीन कृतियों का भलीभाँति अवलोकन कर सकता था क्योंकि अरब, बगदाद आदि प्रदेशों से ये चित्र पहले से ही मँगवा कर रख लिये थे। उनकी सुविधा के लिये राजकीय पुस्तकालय (Imperial Library) भी था।[3] इन कलाओं का बीजा-रोपण हुमायूं द्वारा हुआ था किन्तु सम्राट् अकबर के समय में ये विशेष रूप से अंकुरित और पल्लवित हुईं। अकबर ने अपने पूर्व और समकालीन कलाकारों की ऐतिहासिक कृतियों को एकत्र करने में अपनी सावधानी और कला-अभिरुचि का परिचय दिया था।

इन कलाकारों का दरबारी कवियों तथा बाहर के अन्य कवियों पर क्या प्रभाव पड़ा और श्रेष्ठ कवियों की वाग्धारा कहाँ तक इन कलाकारों को प्रभावित कर सकी यह एक मनोरंजक विषय है जिसके लिये साधारण मनुष्य भी कौतूहल से अभिभूत हो जाता है। काव्य, चित्र और संगीत-कला का एक दूसरे पर परस्पर प्रभाव पड़ा। चित्र कला का विकास भावपूर्ण ढंग से हुआ। चित्रों द्वारा वाह्य-दृश्यों की छटा, नायक-नायिकाओं के रूप सौंदर्य तथा उत्कृष्ट भावों को भली प्रकार से प्रदर्शित किया गया। कविता में संगीतात्मकता का पुट सुन्दर रूप में मिलता है। पदों को विविध रागों तथा सुर और लय के साथ कवियो ने व्यक्त किया।

---

१ आइने-अकबरी, प्रथम भाग, पृष्ठ १०५

इन्डियन पेन्टिंग अंडर मुग़ल्स्, पृष्ठ ११०

२ इस्लामिक आर्किटेक्चर

३ इन्डियन पेंटिग अन्डर मुग़लस, पृष्ठ ६७

साथ ही काव्य में चित्रमय वर्णन की प्रधानता भी दृष्टिगत होती है। इन सब कलाओं के परस्पर सम्मिश्रण से इस समय जो साहित्य-सृजन हुआ वह इतना समृद्ध, प्रभावशाली, गंभीर, मधुर और व्यापक है कि आज भी उसके समकक्ष साहित्य दुर्लभ ही देख पड़ता है।

३—भारतवर्ष में यवन-राजाश्रय

भारतवर्ष में ईसा की बारहवीं शताब्दी में यवनों के आक्रमण से सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में ही महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुए किन्तु विद्या के क्षेत्र में भी परिवर्तन दृष्टिगत हुआ। विदेशी जाति के संपर्क में आने पर स्थानीय संस्कृति और आदर्शों में काफ़ी परिवर्तन हुआ। यवन् अपनी धार्मिक कट्टरता को लेकर यहाँ आये थे किन्तु परिस्थिति को अपने अनुकूल पाकर वे यहाँ के शासक बन बैठे। कुछ मुसल्मान शासक ऐसे भी हुए जिन्होंने भारतीय वाङ्मय की महत्ता स्वीकार करते हुए उसके विविध अंगों के विकास का भी प्रयत्न किया। यह प्रवृत्ति बहुत कुछ शासक की मनोवृत्ति पर निर्भर थी। यदि वह गुणग्राही होता तो उसके दरबार में साहित्यिकों, कवियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकों का जमाव हो जाता और कला की उन्नति में उसका बहुमुखी प्रयास रहता और यदि शासक इसके विपरीत होता तो उसकी उन्नति रुक जाती थी। भारतवर्ष में मुसल्मान बादशाहों ने राजाश्रय देने की प्रथा को अपनाया जिसका कारण भारतीय शासन में राजाश्रय देने की परंपरा तो बहुत अंशों में है ही, यवन-राजाश्रय भी इसके मूल में माना जा सकता है क्योंकि गज़नी के शासक महमूद के राज्य में कवियों और कलाकारों को राजाश्रय प्राप्त था।

भारतवर्ष में गुलाम-वंश का अल्तमश बादशाह विद्वानों का आदर करता था। सुल्ताना रज़िया बेगम स्वयं शिक्षित थी और विद्वानों की संरक्षिका थी। सुल्तान नसीरुद्दीन बादशाह होते हुए भी विद्यार्थी और साधु-जीवन व्यतीत करता था और अपनी लेखन-कला के अर्जित-धन से जीविका चलाता था। उसने बहुत से फ़ारसी विद्वानों का समादर किया। वलबन और उसका शाहज़ादा मुहम्मद भी साहित्यिक व्यक्ति थे। छोटे शहज़ादे कुर्राखां की साहित्यिक गोष्ठी के सदस्य नृत्य, संगीत कलाविद्, अभिनेता और कहानीकार होते थे। अमीरों पर भी इसका प्रभाव पड़ा और दिल्ली के प्रत्येक केन्द्रस्थल में साहित्यिक गोष्ठियों की स्थापना हो गई थी। मुहम्मद दूर-दूर से कवियों और विद्वानों को बुलाने के लिये राजदूत भेजता था। इस प्रकार मुहम्मद के समय में कवियों को विशेष प्रोत्साहन मिला।

---

१ प्रोमोशन आव लर्निंग इन् इंडिया ड्यूरिंग मुहम्डेन रूल, पृष्ठ २५

सुल्तान जलालुद्दीन खिल्ज़ी के दरबार का वातावरण साहित्यिक था। उसके साथी अपनी हास्योद्दीपक उक्तियों और प्रत्युत्पन्न-मति के लिये प्रसिद्ध थे। मुहम्मद तुग़लक ने जो स्वयं सफल लेखक और कवि था, एक विद्वन्मंडली का आयोजन किया था। सुल्तान फ़ीरोज़ ने तीन प्रसिद्ध महल बनवाये थे—अंगूर-महल, लकड़ी का महल और साधारण जनता के लिये अलग-अलग महल थे। पहले में वह विद्वान और गुणी व्यक्तियों का समादर करता था। हिन्दू-स्मारकों के लिये उसके हृदय में श्रद्धा थी। सम्राट अशोक के दो स्तम्भों को वह बहुत धन व्यय करके अपनी राजधानी में खिज्राबाद से जो फिरोज़ाबाद से १८० मील दूरी पर है, लाया था और अनेक ब्राह्मणों को उस स्मारक की लिपि को स्पष्ट करने के लिये बुलवाया था। इसके स्पष्ट होता है कि प्राचीन साहित्य, धार्मिक विषयों तथा प्रसिद्ध वस्तुओं के प्रति उसके हृदय में श्रद्धा थी। सुल्तान सिकंदर स्वयं कवि था और विद्या-प्रचारार्थ उसने कई विद्यालय खोले थे।

दिल्ली-दरबार के अतिरिक्त अनेक स्वतन्त्र राज्यों द्वारा भी कला का विकास समुचित रीति से किया गया था। बहमनी-वंश के कुछ शासक विद्वानों के संरक्षक थे। महमूद शाह बहमनी स्वयं कवि था और फ़ारसी-अरबी का अच्छा वक्ता था। फ़ीरोज़ बहुभाषी था। फ़िरिश्ता ने लिखा है कि उसके हरम में अनेक जातियों की महिलाएँ थीं—अरबी, काकेशी, जार्जियन, तुर्की, यूरोपीय, चीनी, अफ़गानी, बंगाली, राजपूतानी, गुजराती, मराठी आदि जिनसे वह उन्हीं की भाषाओं में वार्तालाप करता था। वह अपनी इस कला का प्रयोग विदेशियों के साथ बातचीत करने में भी करता था। फ़ीरोज़ प्रतिवर्ष देश-विदेश के विद्वानों को बुलाने के लिये अपने जहाज भेजता था।[२] आदिलशाह का उत्तराधिकारी इस्माइल आदिलशाह ने विद्वानों, कवियों तथा लेखकों को अपने दरबार में आश्रय दे रखा था। उसने राजकीय हिसाब को फ़ारसी में रखने की अपेक्षा हिन्दी में रखने की आज्ञा दी थी। इस कार्य के लिये ब्राह्मण नियुक्त किये गये थे जिन्होंने शासन में अपना प्रभुत्व जमा लिया था। यूसुफ़ आदिलशाह के शासन-काल में भी माल-विभाग में अनेक हिन्दू अधिकारी रखे गये थे।

बंगाल के शासकों का ध्यान सर्वप्रथम रामायण और महाभारत महाकाव्यों पर गया, उनका अनुवाद उन्होंने बंगला में ही करवाया। महाभारत का बंगला में अनुवाद सर्वप्रथम नसीरशाह ने जो प्रांतीय भाषा का संरक्षक था, करवाया। मैथिल-कोकिल विद्या-

---

१ प्रोमोशन आव् लर्निंग इन् इंडिया ड्यूरिंग मुहम्मडेन रूल, पृष्ठ २५

२ पृष्ठ ४८, ८४

पति ने अपने एक पद में उसका कीर्तिगान भी किया है। गियासुद्दीन का भी उल्लेख उनके पद में हुआ है। संभवतः ये बंगाल के शासक गियासुद्दीन द्वितीय हैं। हुसेनशाह भी बंगला का संरक्षक था। उसने मालाधर वसु को 'भागवत-पुराण' का अनुवाद करने के लिये नियुक्त किया था। परागलखाँ अपने दरबारियों को, महल में प्रत्येक सन्ध्या को बँगला की कविताओं को सुनने के लिये बुलाता था। हिन्दू-राजाओं ने भी बँगला के लेखकों और कवियों को राजाश्रय दिया।[२]

बाबर अरबी, फ़ारसी और तुर्की का विद्वान और समालोचक था। बचपन से ही उसे कविता करने का अभ्यास था और फ़ारसी तथा तुर्की भाषाओं में उसने कुछ कविताएँ भी लिखी थीं। उसका अनेक साथियों और साहित्यिकों के साथ नाव पर बैठकर काव्य-रचना के आनन्द का उल्लेख पहले किया जा चुका है। हुमायूं विद्वन्मंडली, कवियों और दार्शनिकों की संगति में रहता था। वह स्वयं कवि था और कविता की ओर उसकी रुचि थी। उसने प्रत्येक स्थिति के व्यक्तियों के सत्कार के लिये अपने महल में कई कक्ष बनवाये थे। ग्रहों के प्रभावानुसार निश्चित दिवसों पर उनमें वह लोगों से मिलता था फ़िरिश्ता ने लिखा है कि हुमायूँ ने श्रोताओं के लिये सात कक्ष-अलग बनवाये थे और ग्रहों के अनुसार इनके नाम रखे थे। निश्चित दिन पर एक निश्चित कक्ष में वह राज्य के सारे कार्य करता था। उसके दरबार में विद्वानों, कवियों के अतिरिक्त ज्योतिषियों को भी राजाश्रय प्राप्त था। अफ़गान-शासक शेरशाह विद्वानों की संगति करता था। उसके दरबार में कई विद्वानों को आश्रय मिला हुआ था और वह स्वयं विद्यालय और मठों में जाकर अपनी आत्मिक उन्नति के लिए विद्वानों और शेखों से विचार-विनिमय करता था। उसके वंशजों में विद्या के प्रति अभिरुचि थी। इससे अफ़गान-शासकों की साहित्यिक अभिरुचि का पता चलता है।

अकबर की संरक्षा में फ़ारसी तथा हिन्दी के अनेक कवि तथा विद्वानों को राजाश्रय प्राप्त हुआ था। अबुलफ़ज़ल के 'आइने-अकबरी' में विस्तार से इनकी सूची मिलती है। इनमें से मुख्य-मुख्य नाम ये हैं :—मधुसरस्वती, मधुसूदन, नारायण मिश्र, हरिजी सूर, यदरूर नारायण, मधु भट्ट, श्री भट्ट, विष्णु नाथ, रामकृष्ण, बलभद्र मिश्र, बासुदेव मिश्र, रमण भट्ट, गोपी नाथ, भगीरथ भट्टाचार्य आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है।[३] अकबरी

१ प्रोमोशन आव् लर्निंग इन् इंडिया ड्यूरिंग मुहम्डेन रूल, पृष्ठ १०७, १०८

२ " " " " पृष्ठ ११०, १११

३ आइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ५३७, ५४७

दरबार के नवरत्न टोडरमल, हकीम हमाम, मानसिंह, तानसेन, बीरबल, रहीम, फ़ैज़ी, अबुदुलफ़ज़ल, मुल्लादुप्याज़ा गुणी व्यक्ति थे। इन गुणियों और विद्वानों-द्वारा हिन्दी को भी विशेष प्रोत्साहन और सम्मान प्राप्त हुआ था।

४ अकबरी-दरबार में हिन्दी का सम्मान

मुसल्मानों के धार्मिक आक्रमणों के कारण उत्तरी भारत में धार्मिक भावना तीव्र रूप से फैली। राजकीय सत्ता के चले जाने पर अशिक्षित और त्रस्त जनता ने धर्म के जीर्ण-शीर्ण दुर्ग को बचाने का प्रयास किया। यातायात की असुविधाओं के कारण स्थान-स्थान पर वर्गों ने अपने धार्मिक विश्वासों को साम्प्रदायिक टोली-रूप में बचाया। इन धार्मिक आन्दोलनों की लहर मध्यकालीन सम्पूर्ण भारतीय साहित्य को आप्लावित करती दिखाई देती है। जनता की ईश्वरोन्मुख प्रवृत्ति और वैष्णव-आचार्यों के भक्ति-प्रचार व्यापकता के कारण हिन्दी को विशेष उत्थान मिला। उस काल के अनेक श्रेष्ठ भक्त-कवियों ने हिन्दी-भाषा में ही अपने भाव व्यक्त किये। अकबर की उदार नीति-द्वारा हिन्दुओं को पुनः अपनी विशेषताओं के पर्यावलोकन का अवसर मिला। भक्ति-तरंगिनी की अजस्र धारा ने हिन्दी- उद्यान को सींच कर उसे अंकुरित और पल्लवित किया।

अकबर के पूर्व भी कई मुसल्मान बादशाहों ने हिन्दी के विकास में सहयोग दिया था। बीजापुर-शासक आदिलशाह का पुत्र इब्राहीम आदिलशाह जब सिंहासनारूढ हुआ तो उसने राज्य के सारे हिसाब-किताब को फ़ारसी के स्थान पर हिन्दी में रखने के लिये आज्ञा निकाली। हिन्दी-जानकारों का उसके दरबार में विशेष आदर-सत्कार हुआ। बीजापुर-शासक ने हिन्दी को केवल प्रोत्साहन ही नहीं दिया, वरन् उसने स्वयं हिन्दी के ग्रथों का अध्ययन किया था। मिश्र-बन्धुओं ने इनके एक ग्रंथ 'नौरस' का उल्लेख किया है।[१] इससे इब्राहीम आदिलशाह का हिन्दी-प्रेम स्पष्ट होता है।

मुग़ल-शासकों के राज्यकाल के पूर्व कई ऐसे मुसलमान कवि हो चुके थे जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचनाओं-द्वारा हिन्दी-साहित्य के भंडार को भरा था। इनमें मुल्लादाऊद, अमीर खुसरो के नाम उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के सूफ़ी-कवि जायसी, कुतबन, मंझन आदि मुसल्मान थे। इनमें से तो अनेक मुसल्मान शासकों के आश्रय में हिन्दी का

---

१ इन शाह बीजापुर नरेश ने रस और रागों पर 'नौरस' नामक ग्रन्थ लिखा जिसकी तारीफ जहूरी ने की है। इनका रचनाकाल १६०८ संवत् माना जा सकता है।

मिश्रबंधु-विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ ३००, कवि-सख्या ८००

प्रमुख बोली 'अवधी' में ही अपनी रचनाएँ की थीं। खुसरो वस्तुतः फ़ारसी का कवि था किन्तु हिन्दी में उसकी विशेष रुचि थी।[1] खुसरो ने फ़ारसी, अरबी, तुर्की भाषाओं के वर्णन के साथ भारत की सर्वप्रचलित भाषा हिन्दी (हिन्दुइ) का भी उल्लेख किया है, जिससे उसका आशय दिल्ली के आस-पास प्रचलित खड़ी बोली से है। उसने हिन्दी को अरबी से घट कर और फारसी के समकक्ष माना है।[2] खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ हिन्दी की निधि है खड़ी बोली हिन्दी के विकास की झलक भी उसकी रचनाओं में मिलती है। परन्तु खुसरो की खड़ी-बोली रचना पर कुछ विद्वान पूरा विश्वास नहीं करते क्योंकि उस काल तक हिन्दी की खड़ी-बोली के विकास का कोई विश्वसनीय प्रमाण नहीं मिलता। संभव है, इन रचनाओं में कुछ अंश प्रक्षिप्त हो और उनकी मूल भाषा समय के प्रभाव से कुछ बदल भी गई हो। किन्तु वे खुसरो रचित हैं ही नहीं, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। खड़ी बोली अपने मिश्रित रूप में उस समय प्रचलित थी और यदि खुसरो के जैसे विद्या-व्यसनी व्यक्ति ने जिसने हिन्दी का मान-वर्णन किया हो और कई भाषाएँ जानता हो, हिन्दी में रचनाएँ लिखे तो आश्चर्य नहीं करना चाहिये। खुसरो ने उनकी सुरक्षा का प्रबंध स्वयं ही नहीं किया इसीलिये यह भ्रम उत्पन्न हो गया है।[3] उपर्युक्त कथनों से इतना तो स्पष्ट होता ही है कि मुग़लों के सिंहासनारूढ़ होने के पूर्व हिन्दी एक व्यापक भाषा थी और देशी यवन-रियासतों तथा जन-साधारण के कवियों द्वारा यह व्यवहृत होती थी। हिन्दू-रियासतों की तो यह भाषा थी ही। अनेक उत्कृष्ट कवि उनकी संरक्षा में हुए जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

जैसा पीछे कहा जा चुका है कि मुग़ल-शासन की उदारता और कला-प्रेम ने दरबार में कवियों, विद्वानों तथा कलाकारों को आकर्षित किया। बाबर मुग़ल-शासन का संस्थापक था। भारत की कोई भी वस्तु उसे आकृष्ट न कर सकी किन्तु वह सहृदय साहित्यिक व्यक्ति था इसे सभी इतिहासज्ञ मानते हैं। वह कवि था और तुर्की-भाषा में कविता लिखता था। उसके दरबार में हिन्दी-कवियों की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है। उसके द्वारा इब्राहिम लोदी के मारे जाने पर किसी अज्ञात हिन्दी-कवि ने

---

१ दि लाइफ एंड वर्क्स आव् अमीर खुसरो, पृष्ठ २२९

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ १४७, १४८,

२ दि लाइफ एंड वर्क्स आव् अमीर खुसरो, पृष्ठ १८४,१८५

३ ,, ,, ,, पृष्ठ २८७,२८८

अपनी वाणी प्रस्फुटित की थी ।[1] बाबर ने अपने थोड़े वर्षों के राज्य-काल में आवश्यकता से प्रेरित हो कर हिंदी सीखने का प्रयत्न किया था परन्तु उसमें उसे पूरी सफलता नहीं मिली थी ।[2] उसके दरबार में हिन्दी के एक अज्ञात कवि का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। संभव है हिन्दी के एक दो कवियों को उसका राजाश्रय प्राप्त हो।

हुमायूँ के दरबारी कवियों में कुछ ऐसे फ़ारसी के मुसल्मान कवि भी थे जो हिन्दी में रचना करते थे और हिन्दी-गीतों को बड़े प्रेम से अपने स्वामी के सामने गाते थे। इनमे शेख़ अब्दुल बिलग्रामी और शेख़ गदाई देहलवी मुख्य थे। किन्तु खेद है कि उनकी हिन्दी-रचनाएँ अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी हैं ।[3] उसके दरबार में हिन्दू-कवियों को भी राजाश्रय मिला हुआ था। इनमें नरहरि मुख्य थे। उनकी रचनाओं को देखने से जान पड़ता है कि हुमायूं के दरबार में उन का सत्कार था और बादशाह की दृष्टि उनकी ओर थी। किंवदन्तियों और नरहरि के वंशजों में प्रचलित विश्वास से ज्ञात होता है कि वे हुमायूं के दरबार में रहे ।[4] नरहरि की रचनाओं में हुमायूं की वीरता तथा उसकी विषम परिस्थिति सम्बंधी कई छन्द उपलब्ध होते हैं जिनसे कवि का हुमायूं की राजकालीन परिस्थतियों का आँखों देखी घटनाओं का भान होता है। निम्नांकित छन्द में नरहरि ने हुमायू की वीरता तथा विपम परिस्थति का वर्णन किया है :—

> मैं अपुबल गंजि विगाहि मुइत सांगादल दिध अगाऊं
> बहुरि गंजि गुजरात बहादुर इति काबिल उत गोर लोयाऊं
> नरहरि जुरत पठान दल जहाँ लगु जो निज सोर सुनो ए कहाऊं
> इमि धाऊं जिमि सिंघन गनि पर अस जंपत मन मांझ हुमाऊं ॥[5]

---

१ नौ से ऊपर था बत्तीसा, पानीपत में भारत दीसा।
अठई रज्जब सुक्करबारा, बाबर जीता बराहीम हारा॥
हिस्ट्री आव् पर्शियन लैंग्युएज एंड लिटरेचर एट दी मुग़ल कोर्ट, पृष्ठ १६

२ मुग़ल बादशाहों की हिंदी, पृष्ठ २, ३

३ " " " पृष्ठ ६, ७

४ कवि लिखि वंशी सुकवि भये नरहरि सुभाग्य धर।
शाह हिमाऊँ निकट रहें सुदरसु सुनीति धर ॥
अश्वनी-चरित्र, लाल जी, पृष्ठ २, ३।

५ देखिए, नरहरि के विविध विषयक फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५

संभव है कि हुमायूँ की स्थिति के सुदृढ़ होने पर उसके साहित्यिक प्रेम से रीझ कर और भी हिन्दी के कवि दरबार में एकत्र हुए हों। हुमायूँ के दरबार के एक हिन्दी कवि छेम का उल्लेख मिलता है जिसने अपने एक छप्पय में अली की वीरता का वर्णन किया है [१]:—

धरनि थरनि थरथरत डरनि रथ तरनि पलट्टेहु
धूम धाम ध्रुव लोक सोक सुरपति अति पट्टेहु
हिमगिरि सुमेरु कैलास डिग तब हहरि हहरि संकर हस्यो
छेम कोपि हजरत अली तब जुल्फकार करम कस्यो ॥ [२]

शेरशाह ने भी हिन्दी-कवियों का उचित मान किया था। वह एक साहित्य मर्मज्ञ और सहृदय शासक था। नरहरि उसके दरबार में भी उपस्थित थे। शेरशाह की वीरता तथा ऐश्वर्य का दृश्य नरहरि के निम्नलिखित छन्द में अंकित है :—

सेर साहि भुज जोरि षग्ग वर में गलघटा मारि मुह मोरी
नरहरि सुकवि जोगिनि गुन गावत नाचत भूत सार मन होरी
फूल्यो फल्यो अकास नषत तहं इंदु किसान करे मति चोरी
एक आंत छे गीध उड़े ले भापत मनहु पर..........॥ [३]

शेरशाह की सहृदयता के फलस्वरूप ही कवि को उनसे अलग होने पर अत्यंत दुःख हुआ था :—

नरहरि जप तप नेम ब्रत सब सबही ते होइ।
प्रीति निबाहन एक रस नहि समरथ कलि कोइ ॥
त्राहि करत नहि प्रान गेइ हअ चितु जबउ आहि।
तब सो.सत्त अब अठ्ठ भे बिछुरत सेरन साहि ॥ [४]

---

१ मिश्रबंधु विनोद, भाग १, पृष्ठ २९७, कवि संख्या १८५
मुग़ल बादशाहों की हिन्दी, पृष्ठ ७।

२ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ १०२

३ देखिए, नरहरि के विविध विषयक फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८५

४ देखिए, नरहरि के विविध विषयक फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९२, ९३

शेरशाह का पुत्र सलेमशाह भी अपने पिता की भाँति केवल साहित्य-मर्मज्ञ ही नहीं वरन् एक कवि भी था। उसकी कविता का एक उदाहरण निम्नांकित है :—

ए जेते दिन मन मिल गए तिय पिय बिन मोको तेते दिन मेरे आन लेखे
और जो तपत वाके तन के तिनके सुख को अंक भुज भर चाहत नैन कहै कब देखे
न पीय पाती पठाई न आवन कीनो मेरी एक न भई होहिहै रखे मेखे
असलेमशाह पिय जी की ना समझत जोवन जात परेखे ॥[1]

उक्त छद के 'असलेमशाह' शेरशाह के पुत्र सलीमशाह ही हैं।

कवि नरहरि को सलीमशाह की राजाश्रयता प्राप्त थी। यह एक दोहे से प्रमाणित होता है जिसमें कवि ने सलीम के लिये मंगलकामना प्रकट की है :—

प्रथम जंपि जगदीश कंह करउं कवित रच नेमु
जस निर्मल थिर चिर जिवे छत्रपति साहि सलेमु॥[2]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि अकबर के पूर्व दिल्ली-दरबार के कुछ शासकों ने भी हिंदी कवियों को अपना कर अपनी साहित्यिक उदारता का परिचय दिया था। साथ ही उस काल के अनेक कवि, उपदेशक और भक्त हिंदी की व्रज, अवधी तया मिश्रित प्रांतीय बोलियों में अपने भाव प्रकट कर रहे थे।

अकबर की एक तो जन्मभूमि ही भारतवर्ष थी दूसरे उसके प्रारंभिक जीवन का वातावरण भी हिन्दुत्व से प्रभावित था जैसा कि पहले कहा जा चुका है। इसी कारण उस पर भारतीयता का पूर्ण प्रभाव पड़ा था। वह अपने पूर्वजों की साहित्यिक अभिरुचि से परिचित था। उस काल की जन-भाषा हिन्दी का अकबर पर भी बहुत प्रभाव पड़ा। फ़ारसी दरबार की राजभाषा अवश्य थी किन्तु नित्य के कार्य-व्यवहार और विचारों के आदान-प्रदान के लिये दरबारी तथा अन्य लोगों को जन-भाषा हिन्दी का ही आश्रय लेना पड़ता था।[3] अकबर हिंदी-भाषा में केवल रुचि ही नहीं रखता था

---

१ संगीत राग-कल्पद्रुम, भाग १, पृष्ठ ३०३

२ देखिए, नरहरि के छंद, वादु, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १, ४

३. Akbar composed distichs in Brijbhakha and if any Indo Aryan language could be labled as a Badshahi Boli in North India, it was certainly Brijbhakha. Urdu was not yet in existence-except perhaps orally, and even then it was quite Indian in character.

Indo-Aryan and Hindi,-Dr. Suniti Kumar Chatterji, p 180–181

वरन् उसने अपने भावों का प्रकाशन भी छन्दोबद्ध रूप में किया था। अबुलफ़ज़ल ने 'अकबरनामा' में इसका उल्लेख किया है। वह लिखता है—बादशाह अकबर का समुन्नत हृदय हिंदी और फ़ारसी काव्य-रचना की ओर आकृष्ट हुआ था और वह कविता की विशेषताओं को समझने में एक आलोचक की दृष्टि रखता था........उसने हिंदी कविता में उच्च भावनाएँ व्यक्त की हैं जो अपने ढंग की अनूठी हैं।[1]

अकबर द्वारा रचित कविताएँ 'अकबरसाह' और 'साह अकबर' के नाम से हस्तलिखित तथा प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में उपलब्ध होती हैं। उसकी यह कविताएँ साधारण कोटि की ही हैं जिनमें नायिका के रूप-सौन्दर्य-वर्णन की प्रधानता है। यहाँ पर एक दो छंद उदाहरण के लिये दिये जाते हैं।

मनुष्य-जीवन की सफलता तभी है जब उसका यश जगत में फैला हो और संसार भर के लोग उसकी प्रशंसा करें :—

जाको जस है जगत में जगत सराहै जाहि
ताको जीवन सफल है कहत अकब्बर साहि ॥[2]

नये उपमानों के प्रयोग अकबर के उपलब्ध छंदों की विशेषता है। एक उदाहरण देखिए :—

साहि अकब्बर एक समे चले कान्ह विनोद विलोकन बालहिं
आहट तें अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहिं
त्यों बलि वेनी सुधारि धरी सुभई छवि यों ललना अरु लालहिं
चंपक चारु कमान चढ़ावत काम ज्यों हाथ लिये अहि बालहिं ॥[3]

नायिका ने आहट से ही कृष्ण को पहिचान लिया और चौंक कर आतुरता के साथ चलने लगी किन्तु कृष्ण ने उसकी बेणी पकड़ ही ली। उस समय की छवि ऐसी ज्ञात हुई मानो कामदेव चंपक के कमान पर सर्प रूपी बाणों को चढ़ा रहा हो। नायिका के सुन्दर

---

1 The inspired nature of H. M. is strongiy drawn to the composing of Hindi and Persian poetry and is critical and hair-splitting in the niceties of poetic diction......He has also strong glorious thoughts in the Hindi language which may be regarded as masterpieces in the kind.

Akbarnama. Vol. 1, page 520

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २३८

३ " " " "

चंपकवर्ण शरीर की उपमा धनुष और बेणी की उपमा सर्प से दिखा कर कवि ने उपर्युक्त छंद में अपनी अनूठी सूझ का परिचय दिया है।

एक दूसरे छंद में अकबर ने अलंकार प्रयोग द्वारा नायिका के रूप-सौंदर्य का बोध कराया है :—

साह अकब्बर बाल की बाँह अचिंत गही चलि भीतर भौने
सुन्दरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिबे कों भ्रम पावत गौने
चौंकत सी सब ओर विलोकत संक सकोच रही मुख मौने
यों छबि नैन छबीली की छाजत मानो बिछोह परे मृग छौने ॥[1]

नायक द्वारा अपनी बांह के पकड़ लिये जाने पर नायिका भागने का उपाय न देख कर मौन-ग्रहण किये हुए इस प्रकार चकित नेत्रों से देखती है मानों हरिण के दो शिशु बिछोह में पड़ गये हों। चकित नेत्रों को हरिण के शिशुओं से उपमा देकर कवि ने अलंकार-प्रयोग सम्बंधी गुण का प्रदर्शन किया है। उपर्युक्त छंदों से अकबर के भाव और भाषा का सुन्दर समन्वय भी स्पष्ट है। इनसे अकबर की हिन्दी काव्य-प्रतिभा का थोड़ा सा परिचय मिल जाता है। अकबर की हिन्दी-कविता के कुछ उदाहरण हस्तलिखित प्रतियों और संग्रह-ग्रंथों में भी मिलते हैं।[2] अतः जब शासक ही स्वयं हिंदी-कविता में इतनी रुचि रखता हो तो फिर दरबार के सामंतों तथा साधारण व्यक्तियों की रुझान का उस ओर होना स्वाभाविक ही था।

---

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ १
मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २३६

२ सूंदर रूप अनूप तीय भंजन अंग सबै सुचिताई
कंचन षंभ नगन षरी सब जोवन संग लिये रुसनाई
सीस को अंभ करै मोतीयन जुलटी कुच से लपटाई
देषि रह्यो बिंब साह अकबर सिंभु कुं पूजण नागणि आई ॥

हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संख्या ६२, छंद संख्या १

बदन ढांप पोढी लीला पट पहेरे सीस रहो है प्यारी।
जब ही घुंघट पर न्यारो करत पिय मानो जीत लजारी ॥
आ रस प्यारी पहरे पीतम परम विचित्र महारी।
साह अकबर निहोर करत तिय है उठ चल हंस बोल हों बारी ॥

संगीत-राग-कल्पद्रुम, भाग १, पृष्ठ ३७५

अकबरी-दरबार के वैभव की प्रशंसा सुनकर देश के प्रत्येक कोने से कलाविद् अपनी-अपनी कला के समुचित सम्मानार्थ दरबार में उपस्थित हुए थे। कवि, चित्रकार, संगीतज्ञ, वास्तुकार सभी को उचित सम्मान मिला था। हिन्दी के कवियों को भी दरबार में स्थान दिया गया था जिसका उल्लेख संग्रह-ग्रंथों, वार्ता-साहित्य, समकालीन कवियो की रचनाओं, ऐतिहासिक ग्रंथों तथा हस्तलिखित प्रतियों में मिलता है। नित्य दरवार-वृत्ति पाने वाले हिन्दी-कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य कवि भी अकबरी दरबार-द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत हुए थे। इन सब हिंदी-कवियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो दरबार में स्थायी रूप से रहने वाले कवि थे, इनमें राजकीय वृत्ति में लगे हुए स्वांतः सुखाय रूप में कविता करने वाले कई साधारण और उच्च पदाधिकारी भी थे। इनमें से चतुर्भुजदास ब्राह्मण, राजा आसकरण, राजा पृथ्वीराज, सूरदास मदनमोहन, मनोहर कवि, राजा टोडरमल, नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कवियों में कुछ तो अधिक प्रसिद्धि-प्राप्त-कवि थे और कुछ कम प्रसिद्धि-प्राप्त। दूसरी श्रेणी के कवियों का दरबार में आना-जाना तो था किन्तु उससे सीधा सम्बन्ध नहीं था। इनमें चन्द्रभान, व्यास, करनेश, कुंभनदास, सूरदास, दुरसा जी, होलराय मुख्य हैं। यहाँ पर सर्वप्रथम इन का संक्षिप्त विवरण दे देना अवांछनीय न होगा।

करनेश

करनेश बंदीजन अकबरी-दरबार के संपर्क में आये थे। इनके लिखे हुए तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—करणाभरण, श्रुति-भूषण और भूप-भूषण। इनका जन्म-काल संवत् १६११ और रचना-काल संवत् १६३७ माना गया है। विनोदकार का कथन है कि ये अकबर के दरबार में नरहरि के साथ जाते थे और इन्होंने खड़ी-बोली में भी कविता की थी। इनका काव्य साधारण श्रेणी का है।[1] परन्तु इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। यह कहा जाता है कि एक बार बादशाह अकबर ने इनकी कविता पर प्रसन्न होकर अपने कोषाध्यक्ष से इन्हें उचित पुरस्कार देने को कहा। खजांची बहुत दिनों तक कवि के साथ टाल-मटोल करते रहे पर कुछ भी हाथ से नहीं दिया। कवि को एक दिन क्रोध आ गया और खजांची को निम्नांकित छन्द द्वारा फटकारा :—

खात हैं हराम दाम करत हराम काम घट घट तिनहीं के अपयश छावेंगे।
दोजखहूँ जैहैं तब काटि काटि खैहैं खोपरी को गूदो काग टोंटनि उड़ावेंगे ॥

---

१ मिश्रबंधु-विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ ३२३, ३२४

कहैं करनेस अब घूस खात लाज नहीं रोजा औ निमाज अंत काम नहिं आवेंगे।
कविन के मामले में करै जौन खामी तौन निमकहरामी मरे कफन न पावेंगे ॥ [१]

कवियों को ऐसे अवसरों पर क्रोध आ जाना स्वाभाविक ही है।

दुरसा जी—

अकबरी-दरबार में राजस्थान के चारण-कवियों का भी प्रवेश हुआ था। इनमें से दुरसा नेवि उल्लेखनीय हैं।[२] अकबर एक बार सोजत के मार्ग से हो कर आगरे से अहमदाबाद जा रहा था। सोजत से गूंदोच तक का मार्ग-प्रबंध दुरसा जी के संरक्षक नगरी के ठाकुर पर था किन्तु प्रबंध का भार दुरसा जी के सिर पर ही पड़ा। उन्होंने उसका इतना उचित और सुन्दर प्रबन्ध किया कि अकबर ने प्रसन्न होकर इन्हें लाख पसाव और उनकी सेवा की प्रशंसा का प्रमाणपत्र देकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इस प्रथम परिचय के बाद दुरसा जी का प्रवेश अकबरी दरबार में हो गया।

दुरसा जी की एक कविता से स्पष्ट है कि जब अकबर को राणा प्रताप की मृत्यु की सूचना मिली तो वह वहीं उपस्थित थे। कवि ने अकबर की तात्कालिक वेदना का सजीव वर्णन किया, जिसका आशय है—'हे गुहिलोत राणा प्रतापसिंह तेरी मृत्यु पर बादशाह ने दाँतों के बीच जीभ दबाई और निःश्वास के साथ आँसू टपकाये क्योंकि तूने अपने घोड़े को दाग नहीं लगने दिया, अपनी पगड़ी को किसी दूसरे के सामने नहीं झुकाया तू अपने यश के गीत गवा गया, तू अपने राज्य के धुरे को बांये कंधे से चलाता रहा, नौरोज में नहीं गया, न शाही डेरों में गया, कभी शाही झरोखे के नीचे खड़ा न रहा और तेरा रोब दुनिया पर गालिब था। अतएव तू सब तरह से विजयी रहा।[3]

दुरसा जी का मान केवल अकबर द्वारा ही नहीं हुआ वरन् बीकानेर के महाराजा रायसिंह, जयपुर के महाराजा मानसिंह और सिरोही के राव सुरताण तथा

---

१ मिश्रबंधु-विनोद, प्रथम भाग, पृष्ठ ३२४

२ " " पृष्ठ ३५२

३ अस लेगो अणदाग पाघ लेगो अणनामी गौ आड़ा गवड़ाय जिको वहतो धुर वामी।
नवरोजै नह गयो न गो आतसां नवल्ली न गो झरोखों हेठ जेठ दुनियाण दहल्ली।
गहलोत राण जीती गयो दसण मूंद रसणा डसी नीसास मकमरिया नयण तो मृतशाह प्रताप सी।

डिंगल में वीर रस, पृष्ठ ५७

कुछ अन्य राजाओं ने भी धन और गाँव आदि देकर इनका उचित सत्कार किया था। अकबरी-दरबार में इनको बैठक मिली हुई थी जिसके लिये उस समय के बड़े-बड़े राजा-महाराजा लालायित रहते थे।[1] दुरसा जी यद्यपि अकबर के कृपापात्रों में थे किन्तु उन्होंने हिन्दू-धर्म, हिन्दू-जाति और हिन्दू-संस्कृति के अनन्य उपासक होने के कारण तत्कालीन हिन्दू-समाज की वास्तविक स्थिति और अकबर की कूट-नीति का सजीव वर्णन किया है। दुरसा जी ने 'विरुद-छहत्तरी' में महाराजा प्रतापसिंह की प्रशंसा की आड़ में अकबर की मीठी चुटकियाँ ली थीं। उदाहरण के लिये—अकबर अथाह समुद्र के समान है जिसमें हिन्दू और मुसल्मान सब डूब गये। परन्तु मेवाड़ का महाराणा प्रताप सिंह कमल के फूल के समान उसके ऊपर ही तैर रहा है। अकबर घोर अन्धकार के समान हैं जिसमें अन्य सब हिन्दू ऊंघने लग गये हैं लेकिन जगत का दाता प्रतापसिंह पहरे पर जग रहा है आदि।[2] इस प्रकार दुरसा जी डिंगल-साहित्य के प्रतिभावान प्रसिद्ध कवियों में थे।

होलराय ब्रह्मभट्ट

होलराय ब्रह्मभट्ट को हरिवंशराय का राजाश्रय प्राप्त था किन्तु वे अकबरी-दरबार में आते-जाते थे। अकबर से इनको कुछ जमीन मिली थी जिसमें उन्होंने होलपुर नामक गांव बसाया था। एक किंवदन्ती है कि गोस्वामी तुलसीदास से भी इनका संपर्क हुआ था जिसकी पुष्टि में निम्नांकित उक्ति प्रचलित है। गोस्वामी जी ने एक बार होलराय को अपना लोटा दिया जिस पर ये बोल उठे—'लोटा तुलसीदास को, लाख टका को मोल'। गोस्वामी जी ने तुरंत उत्तर दिया, 'मोल तोल कछु है नहीं, लेहु राय कवि होल॥[3]

कवि होल की पुस्तक-रूप में कोई रचना उपलब्ध नहीं होती। उनके केवल एक, दो छंद राजाओं की प्रशंसा के इतिहास-ग्रंथों में मिलते हैं। अकबरी-दरबार के सामंतों तथा सम्राट् अकबर की प्रशंसा का निम्नलिखित कवित्त होलराय कवि का ही माना जाता है :—

---

१ डिंगल मे वीर रस, पृष्ठ ५८

२ अकबर समंद अथाह तिहं डूबा हींदू तुरक, मेवाड़ो तिण मांह पोयण फूल प्रताप सी।
अकबर घोर अंधार ऊँगाणा हींदू अवर, जागै जगदातार पौहरे राण प्रताप सी।
डिंगल में वीर रस, पृष्ठ ६१, ६२

३ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ५०८, ५०९

दिल्ली तें न तख्त ह्वैहै बख्त ना मुगल कैसो, ह्वैहै ना नगर बढ़ि आगरा नगर ते
गग ते न गुनी तानसेन ते न तानबाज, गान ते राजा औ न दाता बीरबर ते
खानखाना ते न नर नरहरि ते न, ह्वैहै न दीवान कोउ वेडर टुडर ते
नवौ खंड सात दीप सातहू समुद्र पार, ह्वैहै न जलालुद्दीन साह अकबर ते ॥[1]

कुम्भनदास

अकबर की भेंट 'अष्टछाप' के भक्त-कवि कुंभनदास से भी हुई थी। ये बादशाह अकबर से फ़तेहपुर सीकरी में मिले थे किन्तु उन्होंने इसे अपने समय का अपव्यय ही समझा जिसका उल्लेख निम्नांकित पद में हुआ है :—

भक्तन को कहा सीकरी सों काम
आवत जात पन्हैया टूटी। बिसरि गयो हरि नाम
जाको मुख देखे दुख लागै ताको करन परी परनाम
कुम्भनदास लाल गिरधर बिन यह सब झूठौ धाम ॥[2]

सूरदास

महात्मा सूरदास भी अकबर के संपर्क में आये थे और उन्होंने अपनी भक्ति के आवेश में लौकिक पुरुष का यशगान अनुचित ही समझा थी जिसका पुष्टि एक पद में होती है :—

नाहिन रह्यो मन में ठौर
नंद नंदन अछत कैसे आनिये उर और
चलत चितवत द्यौस जागत सुपन सोवत राति
हृदय ते वह मदनमूरति छिन न इत उत जाति
कहत कथा अनेक ऊधौ लोक लोभ दिखाइ
कहा करूं चित प्रेम पूरति घट न सिंधु समाइ
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास
सूर ऐसे दरस की ए मरत लोचन प्यास ॥

कहा जाता है कि सूर के उपर्युक्त पद के अन्तिम चरण पर अकबर ने उनसे प्रश्न किया—सूरदास तुम तो अन्धे हो, तुम्हारे नेत्र दरस को प्यासे कैसे मरते हैं। सूर ने

---

१ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ३६०.
२ चौरासी वैष्णवन की वार्ता, कुंभनदास की वार्ता, पृष्ठ ३०३
अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, पृष्ठ २१६

कहा—ये नेत्र भगवान को देखते हैं और उस स्वरूपानन्द का रसपान प्रत्येक क्षण करने पर भी अतृप्त बने रहते हैं। अकबर ने सूर को धन-द्रव्य और जो वस्तु वे चाहें, लेने को कहा। निर्भीक और त्यागी सूर ने उत्तर दिया—'आज पाछे हमको कबहूँ फेरि मत बुलाइयो और मोको कबहूँ मिलियो मती।' इस प्रसंग से ज्ञात होता है कि जो कथा सूरदास के अकबरी दरबार से सम्बन्ध रखने की और उनके अकबर से सम्मानपूर्ण पद पाने की कही जाती है वह सूर के इस त्यागपूर्ण व्यवहार पर विचार करने से बिल्कुल बेमेल और असंगत प्रतीत होती है।[1]

व्यास

दरबार में अनेक कवि नित्य आ-आकर सम्राट् को आशीर्वाद देते थे किन्तु वे जनता में प्रसिद्ध न थे। इनमें से एक कवि व्यास भी थे जिनका इस सम्बंध में निम्नांकित पद अवलोकनीय है —

गाऊं राग सभा साहन साह की जाको अकबर नाऊं
जो नर नरेन्द्र इन्द्र समान चक्री वक्री सी होत,
कबहु नहि निरखत अष्टसिद्ध नवनिद्धि पाऊं
एक एक संगीत प्रति लच्छ लच्छन करे औ
एक निरत काली खंजरी समान गाऊं बजाऊं
विनवत व्यास कोउ जानत नाहीं'
जलाल्दीन-महम्मद को देन आशीर्वाद नित आऊं ॥[2]

चन्द्रभान

ये साधारण कोटि के कवि ज्ञात होते हैं और अपने किसी गुरू के साथ अकबर के दरबार में जाते थे। उन्होंने अकबरी-दरबार में अपने प्रवेश का आधार बताकर उससे अपना संपर्क निम्नलिखित छंद द्वारा स्पष्ट किया है :—

शाह अकबर को यश कीरत गाऊं रिझाऊं सकल सृष्टि के मन श्रवनन
चंद्रभान कहे गुरु के प्रसाद ते सभा में नित जाऊं आनन्द मनन ॥[3]

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ २०७, २०८

२ संगीत-राग-कल्पद्रुम, भाग २, पृष्ठ १०८, १०९

३ " " " " पृष्ठ २७७

अकबर के संपर्क में आने वाले कुछ कवियों का उल्लेख 'शिवसिंह-सरोज' में उपलब्ध निम्नलिखित सवैये में मिलता है :--

पाई प्रसिद्ध पुरंदर ब्रह्म सुधारस अमृत अमृत नानी
गोकुल गोप गोपाल गनेस गुनी गुनसागर गंग सुज्ञानी
जोध जगन जगे जगदीश जगमग जैत जगत है जानी
अकबर सैन कथी इतने मिल के कविता जु बखानी ॥[1]

उपर्युक्त सवैये में आये अमृत, जैत, जगदीश, जोध, जगमग कवियों का परिचय मिश्रबन्धुओ ने अपने इतिहास में भी दिया है। अमृतराय[2] कवि का रचनाकाल संवत् १६४१ और उनके द्वारा रचित-ग्रंथ 'महाभारत-भाषा' है। जैतराम[3] का जन्म संवत् १६०१, रचनाकाल संवत् १६३० है और इन्होंने 'गीता की टीका' नामक ग्रंथ लिखा था। जगदीश[4] का जन्म संवत् १५८८, रचनाकाल संवत् १६२० है और जगमग[5] कवि का रचनाकाल संवत् १६३२ माना गया है। जोध[6] कवि का जन्म संवत् १५६०, रचनाकाल संवत् १६१५ दिया गया है। मिश्रबंधुओं ने अकबरी-दरबार से सम्बंधित एक और कवि मानराय बंदीजन[7] का उल्लेख किया है। इनका जन्म संवत् १५८० और रचनाकाल १६१० है। ये सभी कवि संभवतः साधारण कोटि के थे और इनकी रचनाएँ बहुत थोड़ी थीं जिस कारण अब तक वे उपलब्ध नहीं हो सकी हैं और इनमें से अधिकांश कवियों के विषय में केवल नाम-उल्लेख मात्र से संतोष करना पड़ता है।

ऊपर उन कवियों का संक्षिप्त परिचय दिया गया जो अवसर-अनवसर अकबर के संपर्क में आये थे। इनमें अष्टछापी भक्त-कवियों तथा एक दो अन्य कवियों को छोड़ कर शेष बहुत ही साधारण कोटि के कवि थे जैसा ऊपर कहा जा चुका है। आगे के पृष्ठों में उन कवियों का परिचय दिया जायगा जो अकबरी दरबार में स्थायी रूप से रहते थे, और

---

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ३७७
२ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ ३४२, कवि-संख्या २७३
३ " " पृष्ठ ३०६ " २३४
४ " " पृष्ठ ३०३ " २१८
५ " " पृष्ठ ३४० " २५८
६ " " पृष्ठ ३०२ " २१०
७ " " पृष्ठ ३०१ " २०४

ये या तो दरबार से कविरूप में वृत्ति पाते थे अथवा दरबार के साधारण तथा उच्च पदों पर नियुक्त-व्यक्ति थे। इन कवियों के नाम पहले दिये जा चुके हैं और अब उनमें से कुछ प्रसिद्धि-प्राप्त कवियों का संक्षिप्त विवरण दिया जायगा।

चतुर्भुजदास ब्राह्मण[1]—

चतुर्भुजदास ब्राह्मण अकबरी दरबार से राजकीय वृत्ति पाते थे। इनका वेतन एक हजार रुपये महीने तक हो गया था। ये विद्वान, पंडित तथा विद्यानुरागी थे। बीरबल की सभा में रहने पर अपने गुणों के कारण इनका प्रवेश अकबरी दरबार में भी हो गया था। दरबार में आने-जाने वाले पंडितों के साथ इनका वादविवाद होता था और अपनी विद्वत्ता से ये उनको बहुधा परास्त भी कर देते थे। बाद में ये 'वल्लभ-संप्रदाय' में श्री गुसाईं विट्ठलनाथ के सेवक हुए और जीवनपर्यंत श्री गोवर्धन जी की सेवा में रहे।[2] अकबर-द्वारा पुनः निमंत्रित किये जाने पर उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिख कर भेज दी थी :—

जाको मन नंद नन्दन सु ं लाग्यो नीको।
सुख संपत को कहाँ लग बरनो सब जग लागत फीको॥

इन्होंने कृष्ण-भक्ति के बहुत से पद रचे थे जिनसे उनकी उच्च भक्ति-भावना और भाषा पर समुचित अधिकार का परिचय मिलता है। 'मिश्रबंधु-विनोद' में अष्टछापी चतुर्भुजदास कृत 'द्वादशयश' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया गया है जिसका रचनाकाल

---

१ चतुर्भुजदास ब्राह्मण, अष्टछापी चतुर्भुजदास जी से भिन्न व्यक्ति थे।

अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ ३८०

२ सो वे चतुर्भुजदास पंडित बहुत हते। और विद्या को अभ्यास विशेष हतो। अकबर बादशाह जो कुछ पूछते सो जवाब तुरन्त देते। एक दिन बादशाह ने चतुर्भुजदास के सराहना करी। तब बीरबल ने कही ये तो मेरी चाकरी करतो हतो जब बादशाह ने पूछा तब चतुर्भुजदास ने कही जो आपके मिलने के लिए कोंन कोंन की चाकरी न करी चहीये। ये सुन के पादशाह बहुत प्रसन्न भयो और चतुर्भुजदास कुं महीने के हजार रुपैया कर दिये और जो कोई पंडित आवतो तिनके संग चतुर्भुजदास वाद करते और सब पंडितन को जीत लेते....... तब चतुर्भुजदास जी श्री गुसाई जी के सेवक भये और श्री गोवर्धन जी के दर्शन किये और श्री गोवर्धन जी के कवित्त बनाये और आखों जन्मपर्यंत श्री जी द्वार छोड़ के कहुं गये नहीं......

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, चतुर्भुजदास ब्राह्मण—वार्ता, पृष्ठ ३३२

संवत् १५६० है।[1] इस समय तक अष्टछापी चतुर्भुजदास का जन्म भी नहीं हुआ था। अतएव उक्त ग्रंथ को चतुर्भुजदास ब्राह्मण का ही लिखा हुआ मानना ठीक है।[2]

राजा आसकरण

राजा आसकरण का उल्लेख 'आइने-अकबरी' में अबुलफ़ज़ल द्वारा दी हुई प्रभावशाली सामंतों तथा राजाओं की सूची में आया है।[3] 'शिवसिंह-सरोज' में भी राजा आसकरण दास कछवाहे का वर्णन हुआ है जिसमें कहा गया है कि ये नरवरगढ़ के राजा भीमसिंह के पुत्र थे और संवत् १६१५ में उनका जन्म हुआ था तथा उन्होंने हिन्दी के के बहुत से पद रचे थे।[4] 'भक्तमाल' में भी इनका वर्णन मिलता है और ये स्वामी कील्हदेव जी के शिष्य बताये गये हैं। ग्रंथ में उनकी प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति का भी पूर्ण उल्लेख हुआ है।[5] राजा आसकरण को राग सुनने का व्यसन था और इस कारण उनके यहाँ दूर-दूर के कलावंत आते थे। तानसेन से भी इनका इसी सम्बन्ध में परिचय हुआ था और तानसेन के विष्णुपद को सुनकर उन्हें भी वैसा ही पद सीखने की इच्छा हुई थी। इन्होंने वल्लभ-संप्रदायी गोविंद स्वामी को तानसेन का गुरू जानकर उनके पास चलने की इच्छा प्रकट की और तानसेन के साथ वे गोविंद स्वामी से मिले। फिर उन्होंने श्री गुसांई विट्ठल-नाथ से सेवा की विधि सीखी, कृष्णलीला का भेद मालूम किया और कृष्ण-भक्ति में लीन रहने लगे।[6] इस भक्ति के आवेश में उन्होंने बहुत से पद गाये जिनका उल्लेख 'दो

---

१ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २२६, कवि संख्या १३०

२ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ ३८०

३ आइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ५३१

४ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ३८२

५ भक्तमाल, पृष्ठ ८८४

६ सो वे आसकरण जी नरवरगढ़ में रहते तिनकुं राग सुनवे को व्यसन बहुत हतो सो गान सुनायवे के लीयें देश देश के कलावंत गवैया उहां आवते हते. . . .ये बात तानसेन ने सुनी तव तानसेन जी आसकरन जी के पास आए सो आसकरन जी के पास विष्णु पद गायो. . . .सो तुमने ऐसे पद कहां ते सीखे है हमकुं सिखाओ जब तानसेन जी बोले श्री गोकुल में श्री विट्ठलनाथ. . . .सेवक गोविन्दस्वामी है. . . .तानसेन जी उहां रहे और थोड़े दिन पीछे राजा आसकरन जी कुं संग लै के श्री गोकुल गये. . . .राजा आसकरन ने वीनती करी जो मैं भगवत्सेवा

सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा 'कीर्तन-संग्रह' ग्रंथों में हुआ है। उदाहरण के लिये उनके कुछ पद यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

निम्नलिखित पदों में कृष्ण की बाल-लीलाओं का स्वाभाविक वर्णन हुआ है:—

उठो मेरे लाल लाडिले रजनी बीती तिमिर गयो भयो भोर।
घर घर दधि मथिनिया घूमे अरु द्विज करत वेद की घोर॥
करि कलेउ दधि ओदन मिश्री बांटि परोसी ओर।
आसकरण प्रभु मोहन नागर वारौं तुम पर प्राण अंकोर॥[१]

तथा,

नन्द किशोर यह बोहनी करन न पाई।
गोरस के मिष रहहिं ढंढोरत मोहन मीठी तानन गाई॥
गोरस मेरे घरहि बिकेहै क्यों बृन्दावन जाय।
आसकरण प्रभु मोहन नागर यशोमति जाय सुनाय॥[२]

कृष्ण का रूप-छटा भी निम्नांकित पद में अवलोकनीय है:—

गोप मंडली मध्य मनोहर अति राजत नन्द को नन्दा।
शोभित अधिक शरद की रजनी उड़गण मानो पूरण चन्दा॥
ब्रजयुवती निरख मुख ठाडी मानत सुन्दर आनन्द कन्दा।
आसकरण प्रभु मोहन नागर गिरधर नव रस रसिक गोविंदा॥[३]

कृष्ण के प्रति माता का वात्सल्य उमड़ने का भाव एक पद में दिखाई देता है। यशोदा कृष्ण को दूध पिलाने के लिये वेणी के बढ़ने की लालच देती हैं:—

कीजै पान लला रे ओट्यो दूध लाई जशोदा मैया।
कनक कटोरा भर पीजै ब्रज बाल लाड़ले तेरी वेनी बढैगी मैया॥

की विधि समझत नहीं हूँ आप कृपा कर के मोकुं समझाओ जब श्री गुसाई जी ने सेवा की रीति कही......

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, आसकरण वार्ता, पृष्ठ १६१, १६४

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, आसकरण-वार्ता, पृष्ठ २०८

२ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, राजा आसकरण वार्ता, पृष्ठ २०८

३ " " " पृष्ठ २११

औट्यो नीको मधुरो अछूतो रुचि सो करी लीजे कन्हैया ।
आसकरन प्रभु मोहन नागर पय पीजै सुख दीजै प्रात करोगी बैया ॥[1]

गोपियां कृष्ण के प्रेम में अभिभूत हो यशोदा के पास उनका उलाहना लेकर पहुँचती है :—

कब को भयो रे ढोटा दधिदानी ।
मटुकी फोरत बांह मरोरत यह बात कित ठानी ॥
नन्दराय की कानि करत हों सुनि हो यशोदा रानी ।
आसकरन प्रभु मोहन नागर गुणसागर अभिमानी ॥[2]

कृष्ण की रूप-माधुरी के अवलोकन से भक्त को जो सुख प्राप्त होता है उसके सम्मुख तीनों लोकों का सुख नगण्य है । इस भाव को कवि ने दशहरे के उत्सव पर गाये हुए एक पद में दिखाया है :—

आज दशहरा शुभ दिन नीको ।
गिरिधर लाल जवारे बाँधत बन्यो है माल कुंकुम को टीको ।
आरती करन देत नोछावर चिर जियो लाल मामतो जी को ।
आसिकरन प्रभु मोहन नागर सुख त्रिभुवन को लागत फीको ॥ [3]

राजा आसकरण के जितने, भी पद 'वार्ता' तथा 'कीर्तन-संग्रह' ग्रंथों[4] में उपलब्ध होते है उनमें बाल-लीला के अंतर्गत वात्सल्य-भाव की ही प्रधानता दृष्टिगत होती है । इन सभी पदों में भावों के अनुकूल सरस और सरल भाषा का प्रयोग हुआ है ।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज महाराजा जयसिंह के छोटे भाई और कल्यान सिंह के पुत्र थे । अकबर के प्रीतिपात्र होने के कारण ये अकबरी-दरबार में ही रहते थे ।[5] परन्तु वे एक स्वदेशाभिमानी

---

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, राजा आसकरण वार्ता, पृष्ठ २११
२ कीर्तन-संग्रह, भाग १, पृष्ठ २४४
३ " " पृष्ठ २९३
४ अवलोकनार्थ ये पद प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट भाग में दे दिये गये हैं।
५ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२, कवि संख्या १६८
भक्तमाल, नाभादास, प्रियादास की टीका, पृष्ठ ८०७

और स्पष्ट वक्ता थे। भाषा के कवि होने के साथ ही वे संस्कृत-साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, पिंगल और संगीत-शास्त्रों में भी पारंगत थे। इनके लिखे हुए कई ग्रंथ कहे जाते हैं जिनमें 'बेलि क्रिसन रुक्मिणी री', 'श्यामलता', 'दशरथ-रावउत', 'वसुदेव-रावउत', 'गंगा-लहरी' नामक ग्रंथ तथा कुछ फुटकर गीत, दोहे, छप्पय आदि उपलब्ध हुए हैं।[1] इनके रचे हुए दो और ग्रंथों का उल्लेख किया जाता है—'प्रेम-दीपिका' और 'श्रीकृष्ण-रुक्मिणी-चरित्र'। उपर्युक्त रचनाओं में 'बेलि क्रिसन रुक्मिणी री' ही सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है और जिसका प्रकाशन हिन्दुस्तानी-एकेडेमी, प्रयाग से हो चुका है।

कहा जाता है कि अकबर ने जब राणा प्रतापसिंह की वश्यता स्वीकार करने पर प्रसन्नता प्रकट की तो पृथ्वीराज ने इस बात का खंडन करते हुए कहा—'जहाँपनाह, सागर मर्यादा, हिमालय गौरव और सूर्य अपने तेज को भले ही छोड़ दें परन्तु शरीर में बल, नसों में रक्त और हाथ में तलवार रहते तक प्रताप अपने प्रण को कभी भी न छोड़ेंगें। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मेवाड़ और भारत ही क्या समस्त संसार का राज्य भी यदि प्रताप के पावों तले रख दिया जाय तो वह उसे ठुकरा देंगे। स्वतंत्रता के सामने प्रताप की दृष्टि में राज्यसम्मान, राज्य-वैभव और राज्याधिकार का कोई मूल्य एवं महत्व नहीं है।'[2]

पृथ्वीराज की मृत्यु सम्बंधी घटना भी रोचक है। उनकी वल्लभ-संप्रदाय की भक्ति में विशेष आस्था थी और उनका प्रण था कि वह अपने शरीर को ब्रज-प्रदेश में ही छोड़ेंगें। कहा जाता है कि इस पर उनके शत्रुओं ने अकबर को सिखाया कि वे उन्हें कहीं बहुत दूर भेज दें। बादशाह ने उन्हे काबुल की मुहीम पर भेज दिया। अनेक विजय के बाद अपना काल निकट आया देखकर वे सांडनी पर बैठकर दो दिन में ही मथुरा पहुँच गये और बीच में नदी, पर्वत आदि की कुछ भी परवाह नहीं की। इस प्रकार उन्होंने मथुरा पहुँचकर यमुना जल का पान किया और फिर अपना शरीर छोड़ दिया।[3]

---

१ डिंगल में वीररस, पृष्ठ ४६

२ ” पृष्ठ ४४

३ फेर पृथ्वीसिंघजी ने ऐंसो नेम लियों जो ब्रज में वास करनो. ब्रज में देह छोड़नी या बात की खबर पृथ्वीसिंघजी के शत्रुनकुं पड़ी सो विनमें दिल्ली पतीकुं सिखायो याकुं कहुं दूर

पृथ्वीराज की मृत्यु के सम्बंध में एक घटना का और उल्लेख किया गया है। किंवदंती है कि एक दिन अकबर ने इनसे पूछा कि तुम्हारी मृत्यु कब और कहाँ होगी। पृथ्वीराज ने उत्तर दिया—मथुरा के विश्रान्त घाट पर[1] और उस समय एक सफेद कौवा प्रकट होगा। इस भविष्यवाणी को निर्मूल सिद्ध करने के लिये अकबर ने पृथ्वीराज को राजकार्य के बहाने अटक के पार भेज दिया। साढ़े पाँच महीने बाद एक भील चकवा-चकवी के एक जोड़े को लेकर बेचने के लिये दिल्ली आया। पक्षियों की मनुष्य-रूप में बोली सुनकर अकबर के पास पिंजरा पहुँचाया गया। उसी समय खानखाना ने एक पंक्ति पढ़ी—

सज्जन वारुं कोड़धां या दुर्जन की भेंट।

खानखाना दूसरी पंक्ति पूरी न कर सके। इस पर पृथ्वीराज को बुलवाया गया। वे पन्द्रहवें दिन मथुरा पहुँचे। बादशाह के दोहे की पूर्ति कर विश्रांत घाट पर दान-पुन्य के बाद उन्होंने प्राण छोड़ दिये। सफेद कौवा भी उसी समय प्रकट हुआ और उन्होंने दोहे की पूर्ति इस प्रकार की थी[2] :—

सज्जन वारुं कोड़धां या दुर्जन की भेंट।
रज्जनी का मेला किया वेह के अच्छर मेट॥

अर्थात् इस दुर्जन के ऊपर करोड़ों सज्जन भी न्योछावर हैं जिसने विधाता के लेख को मिटाकर रात में इनका मिलाप करा दिया।

उक्त कथाओं से इतना स्पष्ट है कि पृथ्वीराज की मृत्यु संभवतः विश्रांत घाट पर मथुरा में ही हुई थी।

पृथ्वीराज की रचनाएँ अधिकार डिंगल-भाषा में हैं। उनकी स्फुट कविताओं के कुछ उदाहरण यहां पर उद्धृत किये जाते हैं।

पठावें तो ठीक। तब दिल्लीपतीनें पृथ्वीसिंघजीकुं काबुलकी मुहिम पर पठाये तो उहां बहुत मुलक जीते। तब उहां पृथ्वीसिंघजी को काल आयो तब पृथ्वीसिंघजी ने कालतें कही में ब्रजमें देह छोड़ुंगो, तब काल हट गयो। तब पृथ्वीसिंघजी सांडनी में बैठकर उहांसे सो दिनमें मथुरा आये और बीचमें नदी और पर्वत बहुत हते परन्तु कोई ठिकाने पृथ्वीसिंघकुं प्रतिबंध न भयो.. ब्रजमें आयके श्रीनाथजी के दर्शन कर के यमुना पान करके देह छोड़ दीनी—

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृथ्वीसिंघ की वार्ता, पृष्ठ ४८३, ४८४

१ भक्तमाल, पृष्ठ ८०८

२ डिंगल में वीर रस, पृष्ठ ४४, ४५

महाराज प्रतापसिंह का यश-वर्णन करते हुये इन्होंने वीरभाव के सुन्दर दोहे लिखे हैं। अकबर अथाह समुद्र है जिसमें वीरता रूपी जल भरा हुआ है। परन्तु मेवाड़ का राणा प्रताप उसमें कमल के फूल के समान है। जिस प्रकार कमल पर जल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता उसी प्रकार प्रताप पर भी अकबर की वीरता का कोई प्रभाव नहीं पड़ा :—

अकबर समद अथाह सूरापण सजलि।
मेवाड़ों तिण मांह पोयण फूल प्रताप सी ॥[१]

महाराणा प्रताप ने लचकती हुई बरछी चलाई। वह शत्रुओं को भेद कर इस तरह बाहर आई मानो कोई सर्पिणी अपने बच्चों को मुंह में लेकर निकली हो :—

वाही राण प्रताप सी बरछी लचपच्चांह।
जाणक नागण नीसरी मुंह भरियो बच्चांह ॥[२]

निम्नलिखित दोहे में कवि ने प्रताप के पराक्रम की उपमा चंपे के वृक्ष से दी है :—

चम्पो चीतोड़ाह पोरस तणी प्रतापसी।
सोरभ अकबर साह अलियल आभड़ियों नहीं ॥[३]

प्रताप की वीरता के कारण अकबर उसी प्रकार उनके सामने नहीं आया जिस प्रकार भ्रमर चंपे के वृक्ष के पास नहीं फटकता।

उपर्युक्त दोहों में पृथ्वीराज की वीर-भावना उचित शब्दों में व्यक्त हुई है। जिस प्रकार इनके फुटकर दोहों और गीतों में वीर-भाव की अभिव्यक्ति मिलती है उसी प्रकार 'बेलि क्रिसन रुक्मणी री' खंड-काव्य में श्रृंगार-रस का परिपाक सरस और सरल शब्दों में हुआ है। इस प्रकार इनकी डिंगल-भाषा में वीर, श्रृंगार आदि भावों का चित्रण सफलतापूर्वक हुआ है।

एक खंडित हस्तलिखित ग्रन्थ में प्राप्त पृथ्वीराज का निम्नलिखित सवैया उनकी संगीत-विषयक जानकारी का द्योतक है :—

---

१ डिंगल में वीर रस, पृष्ठ ४७
२ " " पृष्ठ ४९
३ " " पृष्ठ ५१

धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट धुधुकट ।
गरें जाल झांझि परझन कत्त तत्त त्तत्तत्तत्त थैया धामक थैया ।
घुंघुरु कि घूंटिक पुगरू कि पुटुंक घुघुरुक करु पुनि वैन वजैया ।
सकल प्राण प्रथीराज सुकवि कहि वजत मृदंग ध्वननि नचति कन्हैया ॥[1]

उपर्युक्त छंद में कवि ने ताल-वाद्यों के विविध बोलों के अनुसार ही शब्द-योजना प्रस्तुत की है । 'भरत नाटय-शास्त्र' में इसका विधान दिया गया है ।[2]

कवि पृथ्वीराज की उक्त विशेषताओं को देकर नाभादास जी ने 'भक्तमाल' में उनकी सराहना निम्नलिखित छंद में की हैं :—

सवैया गीत श्लोक बेलि दोहा गुण नव रस ।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विध गायो हरि जस ॥
परि दुख विदुष सश्लाध्य वचन रसना जु उचारै ।
अर्थ विचित्रन मोल सवै सागर उद्धारै ॥

१ हस्तलिखित प्रति, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, ग्रंथ संख्या ६०

२ सत्रिलयवाधयुक्ता दुष्करकरणा भवेज्जातिः
दुणुदुणुदुणाकिंकधिमधेंग्घोटेंग्मदीत्थदुघकिटिघेंग् ॥१३८॥
केन्ताकेन्नांगदिताभेमिजात्यिक्षरैः समायुक्ता
राज्ञां स्वभावगमने जातिः कार्याविततस्तिकृता ॥१४३॥
नाटच-शास्त्र, भरत, अध्याय ३३, पृष्ठ ४४३, ४४४

नाटय-शास्त्र में गोपुक्ष गति, पिपीलिका गति आदि का वर्णन है जिसके आधार पर आज भी कलाकार तालवाद्यों के बोल, परण, टुकड़े, खंड, ठेका आदि बांधते है। नृत्य के बोल भी नृत्याचार्य लोग तालवाद्यों के बोलों के साथ ही तैयार कराते हैं। उदाहरण के लिए काली नाग नाथन की कथा में नृत्य का एक छंद त्रिताल में दिया जाता है:—

थिर थिर थिर थिर नचत फनन पर
झांग धुनि झांग धुनि बाजै मृदंग गति
धधकिट धगकिट फुंकारत विष झारत
विषधर अंग लपट झटकार कान्ह तन

रुक्मिणी लता वर्णन अनूप वागीश बदन कल्याण सुव ।
नरदेव उभय भाषा निपुण प्रथीराज कविराज हुव ॥[1]

सूरदास मदनमोहन

सूरदास मदनमोहन अकबरी दरबार की ओर से संडीले के अमीन-पद पर नियुक्त थे। इनका परिचय अबुलफ़ज़्ल द्वारा उनको लिखे गये एक पत्र से मिलता है जिसका अनुवाद मुंशी देवी प्रसाद ने दिया है। यह पत्र अबुलफ़ज़्ल ने बादशाह की ओर से उन्हें उस समय लिखा था जब उनको अपने राजकीय कार्य-संचालन में बाधा पड़ रही थी। उस पत्र द्वारा अबुलफ़ज़्ल ने उनको सूचित किया था कि बादशाह अकबर स्वयं उस ओर जायगें और इस बात का आश्वासन दिलाया था कि बादशाह के पहुँचते ही सब बाधाएँ दूर हो जायगीं। इनके वृतान्त को कुछ लोगों ने भ्रमवश महात्मा सूरदास के साथ मिला दिया है।

भक्तमाल में इनका नाम 'सूरध्वज' लिखा मिलता है परन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि काव्य में 'सूरदास मदनमोहन' की छाप रखने के कारण ये इसी नाम से विख्यात हो गये।[2] ये जाति के कायस्थ और संडीले के रहने वाले माने गये हैं। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि जो कुछ इनके पास होता वह साधुओं की सेवा में लगा दिया करते थे। कहा जाता है कि एक बार संडीले तहसील की कई लाख मालगुज़ारी सरकारी खजाने में जमा होने के लिये आई। उन्होंने सब साधुओं को खिला दिया और शाही खज़ाने में निम्नलिखित दोहा लिख कर भेज दिया :—

तत्थेइ तत्थेइ कर पग मारत छनन छनन
धुन नुपुर बजत सुनि देखि नचत
बनमाली धक्कधान धिटधा कट्धा कहत
बालव्रज ग्वालिन सुन सुन मैया मुरली बजैया
काली फन पर नचत कन्हैया कन्हैया कन्हैया
कन्हैया कन्हैया कन्हैया

अभिनय-नृत्यार्णव (अप्रकाशित)

१ भक्तमाल, पृष्ठ ८०६

२ " पृष्ठ ७५२, ७५३

तेरह लाख संडीले उपजे सब साधुन मिलि गटके।
सूरदास मदनमोहन मिलि बृन्दावन को सटके ॥[१]

जब ये भागकर वृन्दावन पहुँचे तो अकबर ने इनको बुला लाने के लिये आदमी भेजा और कहलाया कि उन्होंने संतों को सब खिला दिया है इससे वह अप्रसन्न नहीं वरन् प्रसन्न हैं। परन्तु सूरदास मदनमोहन ने उत्तर में लिख भेजा कि उन्होंने अब अपना शरीर वृंदावन में डाल दिया है और वहाँ से उन्हें न बुलाया जाय। बादशाह तो मान गये परन्तु टोडरमल ने धन को नष्ट करने के अपराध में उन्हें पकड़वा मंगवाया और अकबर की बुद्धि भी फेर दी। फिर वे 'दसतम' नामक कारागराध्यक्ष को सौंप दिये गये जिसने इनको बहुत कष्ट दिया। अन्त में इन्होंने निम्नलिखित दोहा अकबर को लिख भेजा :—

यक तम अंधियारो करै शून्य दई पुनि ताहि।
दसतम ते रक्षा करौ दिन मनि अकबर शाहि॥

अकबर ने इसे पढ़कर उसके द्वारा व्यय हुए तेरह लाख रुपयों की माफ़ी देकर उन्हें क्षमा कर दिया और वृन्दावन लौट जाने की आज्ञा भी प्रदान की।[२]

इसके पश्चात् वे विरक्त हो गये और वृन्दावन में ही रहने लगे। इनकी कोई प्रसिद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती। कुछ फुटकर पद वैष्णव कीर्तन-संग्रहों तथा हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। इनकी कविता का रचनाकाल संवत् १५६५ के लगभग अनुमान किया जाता है।[३]

इनके स्फुट पदों के कुछ उदाहरण यहां दिये जाते हैं। राधाकृष्ण की प्रेम-क्रीड़ा का वर्णन कवि ने निम्नलिखित पद में किया है :—

नवल किसोर नवल नागरिया।
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर स्याम भुजा अपने उर धरिया॥
करत विनोद तरनि तनया तट स्यामा स्याम उमगि रस भरिया।
यौं लपटाइ रहै उर अंतर मरकत मनि कंचन ज्यों जरिया॥

---

१ भक्तमाल, पृष्ठ ७५३, ७५४
अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ ११०, १११
२ भक्तमाल, पृष्ठ ७५५
३ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २९८, कवि-संख्या १८८

उपमा को घन दामिनि नाहीं कंदरप कोटि बारने करिया ।
सूरदास मदनमोहन बलि जोरी नंद नंदन वृषभानु दुलरिया ॥[1]

कृष्ण की रूप माधुरी का चित्र भी कवि ने सुन्दर और मधुर शब्दावली चित्रित किया है :—

मधु के मतवारे स्याम खोलौ प्यारे पलकैं ।
सीस मुकुट लटा छुटी और छुटी अलकैं ॥
सुर नर मुनि द्वारा ठाढ़े दरस हेतु कलकैं ।
नासिका के मोती सोहैं बीच लाल ललकैं ॥
कटि पीतांबर मुरली कर श्रवन कुंडल झलकैं ।
सूरदास मदनमोहन दरस देहो भलकैं ॥[2]

सूरदास मदनमोहन के रूप-सौंदर्य, झूलना आदि के कुछ बड़े आकार के पद भी मिलते हैं जिन्हें परिशिष्ट में दिया गया है ।[3] कवि का निम्नलिखित वात्सल्य-भाव का पद उसके संगीत विषयक ज्ञान का द्योतक है :—

जसोदा मैया लाल को झुलावे ।
आछे बार कान्ह कों हुलरावे ॥
कनिया कनिया अईया अईया यों कही लाड लडावे ।
हुलुलुलु हुलुलुलु हाँ हाँ हाँ हाँ कहि के गोद लीये खेलावे ॥
दोउ कर पकर जसोदा रानी ठुमकी पाय धरावे ।
घननन घननन घुंघरु वाजे झाँझरीयां झमकावें ॥
सूरदास मदनमोहन को ये ही भाँत रीझावे ।
मंमंमंमं पप् पप्पप् पप् चच्चच् चच् चंच् तत् ताथेई ॥
यह विधि लाड़ लड़ावे ।।[4]

---

१ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २२७
२ „ „ पृष्ठ २२७
३ देखिये, सूरदास मदनमोहनके पद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ३,१२
४ „ „ पद संख्या २
देखिये, प्रस्तुत ग्रंथ का फुटनोट, संख्या २, पृष्ठ ४५, ४६

कवि के उपर्युक्त पदों से स्पष्ट है कि भावों के अनुरूप ही उसने भाषा का प्रयोग किया है। सरस, सरल और मधुर शब्दों तथा कोमलकांत पदावली एवं अलंकार-गुण के कारण ही इनके पद महाकवि सूरदास के पदों से मिल गये हैं।

'भक्तमाल' में कवि के उक्त गुणों का इस प्रकार वर्णन मिलता है :—

'आप गान विद्या और काव्य में अति प्रवीण और शुभ गुणों की राशि ही थे। सब के साथ सुहृदयता रखते, सखी के अवतार ही थे। श्री राधाकृष्ण आप के उपास्य थे आप रहस्य-सुख के अधिकारी थे। नव रसों में जो मुख्य शृंगार रस है, उसको बहुत प्रकार से गान किया। आपकी कविता ऐसी फैलती थी कि जहाँ मुख से निकली कि मानों सहस्र चरणों को धारण कर चारों दिशाओं में दौड़ गई।[1]

मनोहर कवि :—

'शिवसिंह-सरोज' में इनके विषय में लिखा मिलता है कि यह महाराज संवत् १५६२ में उत्पन्न हुए थे और अकबर शाह के मुसाहब, फ़ारसी और संस्कृत-भाषा के महाकवि थे। फ़ारसी में अपना नाम 'तोसनी' लिखते थे।[2] 'मिश्रबन्धु-विनोद' में भी इसी कथन का समर्थन है।[3] 'तुजुक-जहाँगीरी' में जहाँगीर ने राय मनोहर का परिचय देते हुए लिखा है कि ये कछवाहे सरदार थे और इनके युवाकाल में अकबर की इन पर काफी कृपा-दृष्टि रहती थी। इन्होंने फ़ारसी-भाषा का अच्छा अध्ययन किया था। इनकी जाति में यद्यपि एक व्यक्ति भी साक्षर नहीं हुआ किन्तु मनोहर बुद्धि-वैभव युक्त एक भावुक व्यक्ति थे। इनकी फ़ारसी की कविताएँ प्रसिद्ध हैं।[4]

मनोहर कवि के विषय में इतना स्पष्ट है कि इनकी युवावस्था अकबर के राजदरबार में और वृद्धावस्था जहाँगीर के दरबार में व्यतीत हुई। 'राय' की उपाधि इन्हें संभवतः अकबर ने दी थी। जहाँगीर ने अपने शासन-काल के प्रथम वर्ष में ही इन्हें 'राय मनोहर' के नाम से संबोधित किया है जिससे ज्ञात होता है कि उनको यह उपाधि जहाँगीर के सिंहासनारूढ होने के पूर्व ही मिल चुकी थी। जहाँगीर ने अपने राज्यारोहण के आठवें वर्ष में इनको एक हजारी का पद और आठ सौ घोड़े प्रदान किये थे। इसके कुछ वर्ष

---

१ भक्तमाल, पृष्ठ ७५२

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४७२, ४७३

३ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८४, कवि संख्या १६९

४ तुजुक-जहाँगीरी, प्रथम भाग, पृष्ठ १७

बाद जहाँगीर ने इनके पुत्र पृथ्वीचंद को 'राय' की उपाधि और पाँच सौ का मनसब चार सौ घोड़ों सहित प्रदान किया। साथ ही इनको उनके निवास-स्थान में एक जागीर भी दी।[1] राय मनोहर के इसी पुत्र पृथ्वीचंद की मृत्यु का उल्लेख जहाँगीर ने अपने राज्य के पन्द्रहवें वर्ष में काँगरा के मोर्चे के प्रसंग में किया है।[2] इससे पता चलता है कि राय मनोहर के जीवन-काल में ही उनके पुत्र की मृत्यु हो गई थी।

इनका रचा हुआ एक ग्रंथ 'शत-प्रश्नोत्तरी' बताया जाता है परन्तु नीति तथा श्रृंगार के कुछ दोहे ही अभी तक उपलब्ध हुए हैं। मिश्रबंधुओं ने इनका रचना-काल संवत् १६२० माना है।[3] किन्तु जैसा पहले कहा जा चुका है कि जहाँगीर ने इनके पुत्र को 'राय' की उपाधि तथा मनसब आदि संवत् १६७० में दिया था और उस समय तक राय मनोहर वृद्धावस्था में प्रवेश कर चुके थे। अतएव संवत् १६२० इनका उद्भव-काल स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह संवत् उनके जीवन के आरंभिक काल का हो सकता है और संवत् १६४५ के आस-पास इनके जीवन तथा रचना का उत्कर्ष-काल माना जा सकता है। अपने पच्चीस-तीस वर्ष के साहित्यिक जीवन-काल में ही उन्हों-ने अपनी फ़ारसी और हिन्दी की रचनाएँ लिखी होंगी। काव्य-रचना उनका गौण विषय था। प्रधान रूप में तो वह राज-कर्मचारी थे और स्वांतः सुखाय रूप में ही कविता लिखते थे। अतः उनसे बहुत सी रचनाओं की आशा नहीं की जा सकती थी और वे उपलब्ध भी नहीं होतीं।

जहाँगीर ने एक उदाहरण द्वारा उनकी कल्पना-शक्ति और काव्य-शैली का परिचय दिया है। इनकी उस कविता का आशय है कि सृष्टि में छाया का जन्म इसलिये हुआ कि सूर्य रूप मुग़ल-सम्राट् के ज्योति-प्रकाश पर कोई अपना पैर न रख सके, रखे भी तो छाया पर ही रखे। छाया को ही यह अनादर सहना होगा और प्रकाश इससे बचा रहेगा।[4]

---

१ तुज़ुक-जहांगीरी, प्रथम भाग, पृष्ठ २३१, ३२८

२ " " द्वितीय भाग, पृष्ठ १५५

३ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८४, कवि संख्या १६९

४ He had learned the Persian language and although from him upto Adam the power of the understanding can not be attributed of his tribe, he is not without intelligence. He makes persian verses and the following is one of its couplets—The object of shade in creation is this; that no one can place his foot on the light of my Lord, the Sun.

Tuzuk-Jahangiri, part 1, page 17

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने मनोहर कवि के पांडित्य और काव्यगुण की प्रशंसा की है।[1] ऊपर शिवसिंह सेंगर तथा मिश्रबंधुओं के कथन इनके काव्य-गुण के संबंध में दिये जा चुके हैं। उनके शृंगार के दोहों में उच्च-कल्पना और भाव-व्यंजना समान रूप में दृष्टिगत होती है। फ़ारसी के कवि होने के कारण उस भाषा का पुट इनकी हिन्दी-रचनाओं में भी मिलता है। उसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

मुख, नेत्र, बाल, हृदय और वचन के लिये सुन्दर उपमानों के प्रयोग कवि की अनूठी सूझ के द्योतक हैं :—

इंदु बदन नरगिस नयन संबुलवारे बार
उर कुंकुम कोकिल बयन जेहि लखि लाजत मार ॥[2]

नायिका के बालों के लिये भी कवि के भाव द्रष्टव्य हैं :—

बिथुरे सुथुरे चीकने घने घने घुघुवार
रसिकन को जंजीर से बाला तेरे बार ॥[3]

कवि के उपर्युक्त दोहों से उसकी शृंगारिक रचनाओं पर फ़ारसी-भाषा के शब्दों के प्रभाव का परिचय मिल जाता है। तत्कालीन धार्मिक वादविवाद और समन्वय की वृत्ति का भी परिचय कवि के दोहों से मिलता है। एक उदाहरण देखिये :—

अचरज मोहि हिन्दू तुरुक बादि करत संग्राम
इक दीपति सी दीपियत काबा काशी धाम ॥[4]

सम्भव है अकबर के धार्मिक समन्वय की प्रवृत्ति का प्रभाव कवि पर पड़ा हो और उसने इस प्रकार की और भी रचनाएँ लिखी हों जो अभी तक अप्राप्य हैं।

राजा टोडरमल :—

राजा टोडरमल अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध मन्त्री थे। इनका परिचय 'शिवसिंह-सरोज' में मिलता है जिसमें कहा गया है कि पहले ये शेरशाह के दरबार में उच्च पद पर नियुक्त थे किन्तु सूरवंश के छिन्न-भिन्न होने पर ये अकबर के राजाश्रय में आ गये थे। इनका जन्म संवत् १५८० और मृत्यु-काल सम्वत् १६४६ था।[5] अकबर के यहाँ ये भूमिकर-विभाग

---

१ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४८
मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७१, कवि संख्या १६२

२, ३, ४ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४८

५ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२५

के मन्त्री थे। अपनी कार्यकुशलता के कारण दरबार की आय इन्होंने काफी बढ़ा दी। जिसके कारण अकबर की दृष्टि में इनका मान बहुत हो गया था। ये पहले व्यक्ति थे जिन्होंने लोगों का ध्यान फ़ारसी-भाषा की ओर आकृष्ट किया था और सभी कार्यालयों में फ़ारसी प्रचलित करा दी थी अन्यथा देशी-भाषा हिन्दी का ही प्रचलन सब स्थानों पर हो रहा था। इन्हें अकबर द्वारा 'राजा' की उपाधि भी प्राप्त हुई।

महाजनी में बही-खाते का हिसाब, हुंडी, चिट्ठी आदि के लिखने का ढंग जैसा आज कल प्रचलित है उसका श्रेय राजा टोडरमल को ही दिया जाता है। कहा जाता है कि इन्होंने हिसाब-किताब के संबन्ध में एक छोटी पुस्तक लिखी थी उसी के गुर याद करके व्यापारी और महाजन दूकानों पर तथा देशी हिसाब जानने वाले घरों और दफ़्तरों के कामों में बड़े-बड़े अद्भुत कार्य करते हैं और आज कल के स्कूलों के पढ़े-लिखे हिसाबी लोग मुँह ताकते रह जाते हैं।[1] इस सम्बन्ध में इनकी कोई स्वतंत्र पुस्तक तो उपलब्ध नहीं होती केवल कुछ छंद ही प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में प्राप्त होते हैं। यह छंद फ़ारसी-भाषा मिश्रित हिन्दी में हैं और इनमें किसी प्रकार के कवित्व के दर्शन नहीं होते। इन छंदों को उदाहरणार्थ प्रस्तुत ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में दे दिया गया है।[2] भूमि-कर-विभाग के मामले को जितना ये समझते थे उतना कोई और नहीं समझता था। साथ ही उनकी वीरता भी प्रसिद्ध थी। बंगाल में पठानों के विरुद्ध युद्ध-प्रणाली में इन्होंने अपनी वीरता तथा बुद्धि-कुशलता का परिचय दिया था।

टोडरमल कवि भी थे। उनके कुछ छंद हिन्दी-साहित्य-इतिहास तथा प्राचीन हस्त-लिखित संग्रह-ग्रन्थों में मिलते हैं। इन छंदों को देखने से ज्ञात होता है कि इन्होंने नीति और उपदेश-सम्बन्धी रचनाएँ ही अधिक लिखी थीं। यहाँ उनके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। कवि का निम्नलिखित कवित्त प्रसिद्ध है :—

जार को विचार कहा गनिका को लाज कहा गदहा को पान कहा आँधरे को आरसी
निगुँखी को गुण कहा दान कहा दालिद्री को सेवा कहा सूम की अरंड की सी डारसी
मद्यपी को सुचि कहाँ सांचु कहा लंपटी को नीच को बचन कहा स्यार की पुकार सी
टोडर सुकवि ऐसे हठी तें न टार्‌यो टरै भावै कहौ सूधी बात भावै कहौ फारसी ॥[3]

---

१ अकबरी-दरबार, भाग ३, पृष्ठ १४२

२ देखिए राजा टोडरमल के छंद, पृष्ठ संख्या ४०३, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग

३ हस्तलिखित प्रति ना० प्र० सभा, काशी, ग्रंथ संख्या ६२, छंद संख्या ३

कवि ने अपने अनुभव की बातों को निम्नलिखित कवित्त में दिया है :—

राजा वही जाको राज सराहिये काज उही सो उछाह सों कीजै
धारा वही सो सदा रहै चंचल जोरा उही सो सुगंधि सों भीजै
बात वही सो सदानि बहै कवि टोडर मानि इही सिष लीजै
फौज वही सो रहै तैयार औ मौज उही सो मगाय कै दीजै ॥[1]

निम्नांकित कवित्त भी कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के परिचायक हैं :—

गुन बिन कमान जैसे गुरु बिन गान जैसे मान बिन दान जैसे जल बिन सर है
कंठ बिन गीत जैसे हेत बिन प्रीति जैसे बैन बिन रस रीति जैसे फल बिन तरु है
तार बिन जंत्र जैसे स्याने बिन मंत्र जैसे पुरुष बिन नारि जैसे पुत्र बिन घरु है
टोडर सुकवि जैसे मन में विचारि देखो धर्म बिन धनु जैसे पंछी बिनु पर है ॥[2]

तथा,

चंद बिन रेनि जैसे पुत्र बिन परिवार दारा बिन ग्रह जैसे गऊ बिन गोषरा
छत्री बिन अस्त्र जैसे वेद बिन द्विज राजमंत्री बिन फौज जैसे नाक बिन मोषरा
घृत बिन भोजन ज्यों चून बिन तांमूल जटा बिन जोगी जैसे पूछ बिन लोषरा
टोडर सुकवि जैसें मन में विचारि देखो धर्म बिनु धन जैसे पानी बिन पोषरा ॥[3]

उपर्युक्त कवित्तों में कवि की भाषा सरल तथा सर्व-जन-सुलभ है। वस्तुविशेष का यथातथ्य निरूपण कवि ने सुन्दर शब्दावली में कर दिया है। इनकी रचना में कोई विशेप काव्य का आभास नहीं मिलता। इनमें उनके जीवन-सम्बन्धी अनुभव का परिचय ही अधिक मिलता है।

अकबरी दरबार में कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे जो देश के इतिहास में तथा हिन्दी-साहित्य में काफी प्रसिद्धि पा चुके हैं और कवि के रूप में भी उनका स्थान महत्वपूर्ण है। इन कवियों के नाम 'अकबरी दरबार के कवियों की सूची में पहले दिये जा चुके हैं। ये कवि हैं-नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गंग और रहीम। इन्हीं कवियों की जीवनी तथा रचनाओं का अध्ययन इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है। आगे के पृष्ठों में इन कवियों का विस्तारपूर्वक परिचय दिया जायगा।

---

१ हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ, ना० प्र० सभा, काशी, ग्रंथ संख्या ६२, छंद संख्या ४
२ ” ” ” ” छंद संख्या १
३ ” ” ” ” छंद संख्या २

दूसरा अध्याय

जीवन-चरित

अकबरी दरबार के हिन्दी-कवियों में केवल रहीम ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके जीवन की घटनाओं के आकलन के लिये हमें भटकना नहीं पड़ता। शेष कवि नरहरि, ब्रह्म, तानसेन और गंग के जीवन-वृत्तान्त जिस अंश में मिल सके हैं वे छानबीन और प्रयत्न के बाद मिले हैं। इस अध्याय में रहीम की जीवन-घटनाओं के पर्यावलोकन के साथ शेष चार कवियों की जीवनी के लिये जहाँ कहीं अन्तर्साक्ष्य का अभाव है वहाँ वहिर्साक्ष्य और किंवदन्तियों का सहारा लिया गया है। इन कवियों के उपलब्ध अधिकांश छंद वाह्यविषयात्मक ही हैं आत्माभिव्यंजक नहीं। अतएव इनकी रचनाओं में आत्मचारित्रिक उल्लेख बहुत अल्प हैं किन्तु अपनी विशेष एवं विकट परिस्थितियों के कुछ उल्लेख इनकी वाणी द्वारा अवश्य हुए हैं। इसके अतिरिक्त इन कवियों के समकालीन और परवर्ती कवियों की रचनाओं तथा ऐतिहासिक ग्रंथों में भी कहीं-कहीं इनका थोड़ा सा परिचय मिलता है।

उपर्युक्त कवियों में नरहरि ही वयोवृद्ध थे। अतः उन्हीं का जीवन-चरित सबसे पहले यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

नरहरि

मुग़ल-शासक हुमायूं की गुण-ग्राहकता, कला-प्रेम तथा उदार-राजाश्रय के वशीभूत होकर हिन्दी-भाषा के अन्य कवियों के साथ हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'नरहरि' उसके दरबार में उपस्थित थे, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। कवि की रचनाओं से उसके जन्मस्थान, शिक्षा, विद्या-वैभव आदि विषयों पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। फिर भी अन्य सूत्रों द्वारा इन अंगों पर विचार किया गया है।

जन्मभूमि—

नरहरि के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विद्वानों का प्रायः एक मत है कि ये रायबरेली जिले की डलमऊ तहसील के पखरौली नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। ठाकुर

मानसिंह गौड़ ने एक लेख 'महाकवि नरहरि का निवास'[1] तथा श्री रामकृष्ण शर्मा ने 'नरहरि महापात्र और उनका एक घराना'[2] में नरहरि की जन्म-भूमि पखरौली गांव दी है। कुछ अन्य लेखकों ने भी उन्हें इसी स्थान का निवासी लिखा है। पखरौली ग्राम में नरहरि की स्थापित की हुई 'सिंहवाहिनी-देवी' का मन्दिर है। नरहरि के रायबरेली जिले के वंशज विवाह आदि के अवसरों पर उक्त देवी के दर्शनार्थ अब भी जाते हैं। पखरौली में 'बरहद' नाम का लम्बा-चौड़ा एक कच्चा तालाब है। वर्षा ऋतु में इसका पानी फैलकर गंगा से मिल जाता है जिसके सम्बन्ध में यह चौबोला आज भी सुना जाता है :—

बरहद नदी पखरपुर गांव, तेहिके ठकुरै नरहरि नाँव।

पखरौली के पूर्व में एक दूसरा तालाब है, कहा जाता है, इसमें नरहरि के हाथी नहलाये जाते थे। कवि दयाल ने नरहरि के पखरौली गाँव, सिंहवाहिनी देवी, बरहद नदी, हर ताल आदि का वर्णन एक कवित्त में इस प्रकार किया है :—

कोस भर गंगा ते प्रगट पखरौली गांव देव नरहरि की प्रसिद्ध सिंहवाहिनी।
हद्द ते बेहद्द नदी हरताल हाथिन के हलके हिलत के अथाहिनी॥
भनत दयाल भुइयाँ धाह भीतर में वेतीं व कल्यानपुर सीतला सराहिनी।
चक्कवे चकत्ते अकबर बली बादशाह तेरी बादशाही में इतेक देवी बाहिनी॥[3]

शिवसिंह सेंगर ने नरहरि के निम्नलिखित कवित्त के आधार पर उनका जन्म-स्थान असनी गाँव लिखा है :—

नाम नरहरि है प्रशंसा सब लोग करैं हंसहू से उज्ज्वल सकल जग व्यापे हैं,
गंगा के तीर ग्राम असनी गोपालपुर मंदिर गोपाल जी को कर मंत्रत जापे हैं।
कवि बादशाही मौज पावैं बादशाही वो जगावै बादशाही जाते अरिगण काँपे हैं,
जब्बर गनीमन के तारिबे के गब्बर हुमायूं के बब्बर अकब्बर के थापे हैं॥[4]

---

१ महाकवि नरहरि का निवास, सरस्वती, मार्च, १९३१, पृष्ट ८

२ नरहरि महापात्र और उनका एक घराना, सम्मेलन-पत्रिका, पौष, संवत् १९९६, भाग २७, संख्या ५, पृष्ठ २

३ महाकवि नरहरि महापात्र, पृष्ठ १३९, विशाल भारत, फरवरी, १९४६

४ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ १५३

इतिहासकार 'के' ने 'हिन्दी लिटरेचर' पृष्ठ ३६ पर इनका नाम 'नरहरि सहाय' दिया है किन्तु इसका समर्थन किसी अन्य सत्र से नहीं होता। अतः इन्हें 'नरहरि' ही कहना उपयुक्त होगा।

हिन्दी-साहित्य के अन्य इतिहासकारों ने भी नरहरि को असनी ग्राम का लिखा है।[1] किन्तु सरोजकार से भी पहले श्री काष्ठ जिह्वास्वामी उपनाम 'देव' ने संवत् १८३८ (१६०६) में प्रकाशित 'अश्विनी-कुमार-विंदु' में नरहरि और उनके पुत्र हरिनाथ की प्रशंसा के संबंध में उन्हें असनी का लिखा था :—

जग जानि आदि कवि वेद पुरुष
तेहि वंदीजन रामचरित में मुनिन कही यह बाज सुरुष
श्रीयुत् नरहरि नाथ महाकवि जिनके डर के बजत सुरुष
जिन बिन काटि बसाई असनी ब्राह्मण भक्ति न तन में है रुष
तिनसे श्री हरिनाथ प्रगट में मधुर बचन कबहुँ न कुरुष
जिनकी धुजा पताका फहरत जिनके कुल में कोउ न मुरुष
मन थिरात बिनु साधन देखत श्री ।गंगा की झाँक झुरुष
सो असनी भूदेव बाग सी देखत उपजत हरष हुरुष ॥

उपर्युक्त पद का उल्लेख करते हुए श्री विपिन बिहारी त्रिवेदी ने लिखा है कि उक्त छंद में जिस असनी को नरहरि द्वारा कहकर बसाया जाना लिखा है वह पुरानी असनी नहीं वरन् नई असनी है। श्री मानसिंह गौड़ ने एक लेख में दिया है कि आधुनिक असनी जो इस रूप में लगभग पाँच सौ वर्ष की पुरानी जान पड़ती है, एक बहुत प्राचीन पौराणिक स्थान है। इस असनी के पूर्व एक नाला है जो पुराणों में दक्ष-प्रजापति का नाला वर्णित है और वह 'दशरथानारु' के नाम से विख्यात है। उसके इस पार नई असनी है, जिसे नरहरि ने जंगल कटवाकर बसाया था। नई असनी के पूर्व बाहर निकलकर गंगा जी के किनारे-किनारे एक बड़ी भारी ईंटों, पत्थरों और मिट्टी की डीह है तथा यही ध्वंसावशेष आज भी वहाँ 'नरहरि की गढ़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस गढ़ी के आगे जंगल से घिरा हुआ 'श्री बल-खंडेश्वर' महादेव का एक प्राचीन मन्दिर है जिसके निर्माता नरहरि महापात्र कहे जाते हैं और वह अब भी नरहरि के असनी वाले वंशजों के अधिकार में है।[2] त्रिवेदी जी ने अपने लेख में काशीराज ईश्वरीदेव नारायण सिंह के दरबारी कवि गणेश महापात्र के एक

---

१ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २५१, कवि संख्या १५० हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४१

२ महाकवि नरहरि का निवास, सरस्वती, मार्च १९३७, पृष्ठ

कवित्त[1] और असनी के प्रसिद्ध कवि सेवकराम के एक सवैये[2] का उल्लेख किया है जिनमें इन कवियों ने नरहरि को असनी निवासी कहा है। उक्त कवि सेवकराम के वंशज श्रीकृष्ण शर्मा ने उनके ग्रन्थ वाग्विलास की भूमिका में लिखा है :—

'इस समय में श्रीमान् ब्रह्मभट्ट नरहरि कवि जी राजेश्वर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर शाह गाजी सुलतान हिन्द की सर्कार में उनके पिता के समय से महत् सम्मानपात्र थे। उनको अपनी पुत्री का विवाह करना था। योग्य वर, कुल तथा विद्वान ढूढते थे। चरों द्वारा उक्त श्री देवकीनन्दन जी की प्रशंसा सुन वहाँ पहुँच बड़ी आदर सत्कार से अपनी पुत्री का विवाह उनसे किया और उनको इसी अश्विनी नगर में सन् १५६० में बसाया। इस नगर में सबसे विशेष प्रतिष्ठा और उत्तम व्यौहार हीरा के वाजपेयी और त्रिवेदी लोगों के थे। वे अब तक चले आते हैं। अन्य नगर निवासियों के अतिरिक्त इन घरों से भाई बन्दी के समान उक्त कवि नरहरि से चला आता था......।'[3] इसी ग्रंथ में आगे चलकर श्री अम्बिकादत्त व्यास द्वारा लिखित भूमिका में लिखा है-'...देवकीनन्दन ...जिला फतेहपुर के असनी नगर में आये वहाँ इन्हें गुणी और राज्यमान देख नरहरि नामक ब्रह्मभट्ट ने अपनी कन्या विवाह दी और जगह भूमि आदि दे असनी में ही

---

१ अश्विनीपुरी है थिर अश्विनीकुमार जहाँ घोड़े श्यामकर्ण कढ़े सुजनहु जाते हैं।
प्रगट्यो कवीन्द्र अशधारी नरहरि वहाँ दिल्लीपति मान्यो तिन्हें गुण की प्रभाते हैं।
भनत गणेश महापात्र को खिताब दै के पालकी चढ़ाय लै अकबर कंधाते हैं।
ताके हरिनाथ ताकी राजाराम दीन्हों कोटि सोउ दान दीन्हों हरखाते हरिनाते हैं।।

विशाल भारत, मार्च, १९४६, पृष्ठ २३०

२ शाह अकब्बर आदिक भूप मिलैं असनी के कवीश्वर पाए।
देवकी नंदन सिंह के वंश में आदर याते लहैं मन भाए।
बैठ उठे मंह छोट बड़ो सब के संग सेवक देत बताए।
श्रीधर साह बड़ाई सुनी सो बड़ाई तिहारी लखै हम आए।।

महाकवि नरहरि महापात्र, विशाल भारत, फरवरी, १९४६, पृष्ठ १४०।

३ वाग्विलास, सेवकराम, भूमिका लेखक, श्रीकृष्ण शर्मा, पृष्ठ ३

बसाया ।'[1] अतएव इन कथनों से स्पष्ट है कि नरहरि असनी में बहुत काल तक रहे और अपनी कन्या का विवाह असनी से ही किया था और अपने जामातृ देवकीनन्दन को वहीं बसा दिया था । नरहरि के जन्म संवत् का क्रम बैठाने से प्रकट होता है कि सन् १५६० में लड़की का विवाह करते समय इनकी अवस्था ५५ वर्ष की थी। उससे यह संभव है कि पखरौली आदि वे देखने भले ही जाते रहे हों परन्तु स्थायी रूप से असनी में ही उनका निवास-स्थान हो गया था । 'भाटों की हवेली' के नाम से असनी में उजड़े हुए खंडहर हैं, वे देवकीनन्दन और उनके वंशजों के निवास-स्थान के प्रतीक हैं ।

इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यही ठीक जान पड़ता है कि नरहरि का जन्म-स्थान तो पखरौली था जहाँ उनका बाल्यकाल बीता किन्तु युवाकाल में तथा पश्चात् वे असनी में ही रहने लगे थे । बेंती, पखरौली, नरहरिपुर, धर्मापुर आदि ग्राम जो नरहरि को मिले हुए बताये जाते हैं वे अधिकांश रायबरेली जिले में ही हैं और इनका प्रबन्ध, संभव है नरहरि पखरौली से ही कराते रहे हों इसी से वहाँ हाथियों के नहाने आदि की बातें सुनी-सुनाई जाती हैं ।

जन्म-तिथि

नरहरि की जन्म-तिथि संवत् १५६२ उनके वंशजों में प्रचलित है । इसी तिथि का उल्लेख हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने भी किया है । हुमायूँ के हाथ में राज्य की बागडोर संवत् १५८७ में आई और एक बार राज्य खोने के अनन्तर पुनः प्राप्त करने पर उसने संवत् १६१३ तक शासन किया । संवत् १५६७ के वैशाख में शेरशाह के हाथों उसे पराजित होना पड़ा था और किसी प्रकार भाग कर उसने अपने प्राण बचाये थे। नरहरि ने हुमायूँ की इस स्थिति का वर्णन प्रभावोत्पादक ढंग से किया है । उस प्रकार के वर्णन से यही ज्ञात होता है कि इस घटना का अवलोकन नरहरि ने अपनी आँखों किया था । यदि इस दृष्टि से देखें तो नरहरि का प्रवेश हुमायूँ के दरबार में इस घटना के कुछ वर्ष पूर्व ही हुआ होगा और तदर्थ पाँच-सात वर्ष की मैत्री भी आवश्यक है । इस प्रकार दरबार में उनका प्रवेश यदि संवत् १५६० के लगभग मान लिया जाय तो असंगत न होगा ।

---

१ वाग्विलास, भूमिका, अम्बिका दत्त व्यास, पृष्ठ ३

नरहरि की रचनाओं में जैसा काव्य-परिचय मिलता है उसके योग्य अपने को बनाने में भी इनको कुछ वर्ष लगे होंगे। इस प्रकार हुमायूँ के दरबार में प्रवेश करने के समय संवत् १५६२ जन्म-तिथि मान लेने से, नरहरि की अवस्था २८ वर्ष की ठहरती है जो सर्वथा उचित जान पड़ती है।[1] कुछ अन्य विद्वानों ने भी नरहरि वंशी असनी-निवासी महापात्रों के पास उपलब्ध वंश-वृक्ष को प्रामाणिक मानकर उनकी जन्म-तिथि संवत् १५६२ ही निश्चित की है। रामकृष्ण शर्मा ने 'सम्मेलन-पत्रिका' वाले लेख में नरहरि का जन्म संवत् १५६५ माना है[2] किन्तु किसी प्रकार के प्रामाणिक सूत्र का उल्लेख नहीं किया है। अतएव उपर्युक्त आधार पर नरहरि की जन्मतिथि संवत् १५६२ ही ठीक प्रतीत होती है।

जाति

नरहरि ब्रह्म-भट्ट जाति के थे यह एक निर्विवाद सत्य है। उनके वंशज अपने को 'कश्यप' गोत्र का कहते हैं और इसका उल्लेख स्वयं नरहरि ने अपने सूर्य वन्दना छप्पय में किया है :—

तुअ दरसन तम दलित ललित पंकज सुहरव्व सर
अति प्रगास बहु चक्क चक्र चविकय अनन्द कर
विप्र करत षट धर्म कर्म वेद संचरहिं उदै दिन
सुर नर मुनि गन नाम जापु जस जपहिं यक्क छिन
मो प्रभुदयाल कस्यप तनय कहि नरहरि बन्दों चरन
जन आपद भय हर कलुष जहं तहं कर राखह सरन ॥[3]

अन्य लोगों ने भी नरहरि को ब्रह्म-भट्ट और 'कश्यप' गोत्र में उत्पन्न माना है। श्री विपिन बिहारी त्रिवेदी ने नरहरि के वंशजों के परिचय के संबंध में नरहरि के पुत्र

---

१ महापात्र नरहरि और उनके काव्य पर एक दृष्टि, हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च, १९४५, पृष्ठ २४, २५

२ नरहरि महापात्र और उनका घराना, रामकृष्ण शर्मा, सम्मेलन पत्रिका, पौष संवत् १९९६, भाग २७, संख्या ५, पृष्ठ २

३ देखिए, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११६

गोपाल दत्त की शाखावाले कवि शेखर महापात्र से सामग्री प्राप्त कर एक लेख में उद्धृत किया है।[1]
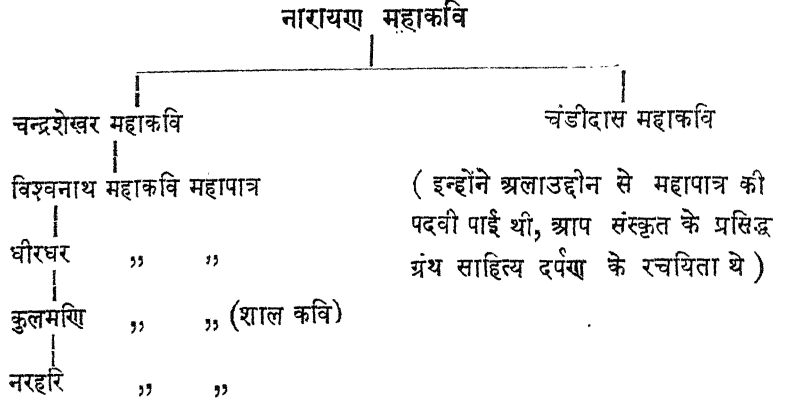
वंशज और परिवार

नरहरि के पूर्वजों का जन्मस्थान भी पखरौली ही था, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इनके पिता तो संभवतः पखरौली के निवासी थे क्योंकि नरहरि का जन्म वहीं हुआ था। असनी-निवासी नरहरि वंशी महापात्र मदनेशात्मज लाल जी ने 'अश्वनी-चरित्र' नामक एक छोटी सी पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें अपने पूर्वज नरहरि का इन शब्दों में परिचय दिया है :—

> कवि रिखिवंशी सुकवि भये नरहरि सुभाग्यधर
> शाह हिमाऊँ निकट रहे सुंदर सुनीति धर
> शाह अकबर दीन मान सनमान विविध रुचि
> महापात्र पद ग्राम कहक भूषन - अमोल सुचि
> तिन सुवन तीनि हरिनाथ बड़ आदिनाथ मझिल गनी
> गोपाल दत्त छोटे सुजन विद्यबान ऋषि मुनि मनी ॥[2]

उपर्युक्त छंद से स्पष्ट होता है कि नरहरि के तीन पुत्र थे जिनमें हरिनाथ ज्येष्ट, आदिनाथ मझले और गोपाल दत्त छोटे थे। इन तीनों ने एक-एक ग्राम भी बसाया

---

१ महाकवि नरहरि महापात्र, विशाल भारत, फरवरी, १९४६, पृष्ठ १४०

२ अश्वनी-चरित्र, पृष्ठ ३

था।[1] हरिनाथ ने कोई असनी नहीं बसाई वरन् उसी असनी को अपेक्षाकृत अधिक जनशाली बना दिया था।[2] आदिनाथ ने 'वेती' और गोपाल ने 'गोपालपुर' नामक गांव बसाये थे। असनी, वेती और गोपालपुर के रहने वाले ब्रह्मभट्ट इसी आधार पर अपने को नरहरि का वंशज बताते हैं। नरहरि-वंशी गोपाल दत्त की शाखावाले महापात्रों को भी उपर्युक्त वंश-वृक्ष मान्य है। असनी के नरहरि-वंशी महापात्रों का निम्नलिखित वंशवृक्ष, जो गोपाल दत्त की शाखा वालों को भी मान्य है,[3] इस प्रकार है:—

महाकवि नरहरि महापात्र (संवत् १५६२, १६६७)

हरिनाथ (संवत् १६०४.१७०३)	आदिनाथ	गोपालदत्त

पंडित रामकृष्ण शर्मा ने 'सम्मेलन-पत्रिका' वाले लेख में निम्नलिखित वंशवृक्ष दिया है[4]:—

महाकवि नरहरि महापात्र (जन्म संवत् १५६५)

आदिनाथ जन्म संवत् १६३५ बेती ग्राम बसाया।	हरिनाथ जन्म संवत् १६४४ ये पखरौली छोड़ असनी में आ बसे थे।	कल्याणनाथ इन्होंने कल्याणपुर बसाया	गोपालनाथ गोपालपुर बसाया

---

१ श्री हरिनाथ अश्वनी भाये पितु धन पाय सुग्राम वसाये।
आदिनाथ बेती सुखधामा गोपाल गोपाल पुरनामा॥

अश्वनी-चरित्र, पृष्ठ ३

२ इस सम्बन्ध में निम्नलिखित छंद अत्यधिक प्रचलित है—
बाज सम पांडे वाजपेयी पक्षिराज सम सोंहे हंसराज त्रिवेदी बढ़े गाथ के।
कुहू सम शुकुल मयूर से तिवारी भारी जुरी सम मिसिर नवैया जैन माथ के।
नीलकंठ दीक्षित अवस्थी हैं चकोरवत चक्रवाक दुबे गुरु शुक सम साथ के।
एते द्विज जाने रंग रंगन बखाने देश देशन ते आने चिड़ीखाने हरिनाथ के॥

एक भट्ट सज्जन से प्राप्त अप्रकाशित ग्रंथ से।

३ महाकवि नरहरि महापात्र, पृष्ठ १४१, विशाल भारत, फरवरी १९४६

४ नरहरि महापात्र और उनका एक घराना, सम्मेलन-पत्रिका, पौष संवत् १९९६, भाग २७, संख्या ५, पृष्ठ २

उक्त वंशवृक्ष के अनुसार नरहरि के ज्येष्ठ पुत्र आदिनाथ ठहरते हैं जो किसी अन्य सूत्र से प्रमाणित नहीं होता। अश्विनी-चरित में भी हरिनाथ ही ज्येष्ठ माने गये हैं। फिर यह एक जबर्दस्त किंवदंती है कि हरिनाथ ही नरहरि के ज्येष्ठ पुत्र थे और उन्होंने कई स्थानों से सम्मान पाया था।

श्री विपिनविहारी त्रिवेदी ने एक लेख 'महाकवि हरिनाथ महापात्र' के आधार पर यह सिद्ध किया है कि हरिनाथ का जन्म संवत् १६०४ था और शर्मा जी के अनुसार यदि आदिनाथ का जन्म संवत् १६३५ मान भी लिया जाय तो हरिनाथ ही नरहरि के ज्येष्ठ पुत्र ठहरते हैं। अतएव हरिनाथ ही नरहरि के ज्येष्ठ पुत्र थे और उन्हीं को जहाँगीर ने साढ़े पाँच सौ बीघा जमीन माफी में दी थी जिसका उल्लेख सन् १०१६ हिजरी के जहाँगीरपुरा नामक ग्राम की सनद में मिलता है।[1]

उपर्युक्त वंश-वृक्ष में शर्मा जी ने नरहरि के एक और पुत्र कल्याणनाथ का उल्लेख किया है जिसकी पुष्टि किसी अन्य सूत्र से नहीं होती। सभी प्रामाणिक सूत्रों से नरहरि के केवल तीन पुत्रों का ही परिचय मिलता है जिनका निर्देश पहले किया जा चुका है, शर्मा जी ने चौथे पुत्र को गोपालनाथ के नाम से दिया है।

प्रामाणिक वंश-वृक्षों से यही पता चलता है कि नरहरि के ये तीसरे पुत्र हैं और उनका नाम गोपालनाथ नहीं गोपालदत्त था। अनुमान है कि शर्मा जी ने गोपालदत्त को ही गोपालनाथ के नाम से लिख दिया है। यद्यपि गोपालदत्त के विषय में अभी तक कोई सनद या छंद प्रमाण रूप में उपलब्ध नहीं हुए हैं तथापि नरहरि के उक्त तीनों पुत्रों की तीनों शाखाओं वाले वंशज गोपालदत्त को नरहरि का तीसरा पुत्र मानते हैं जिसे प्रामाणिक सूत्रों के अभाव में स्वीकार नहीं किया जा सकता। हरिनाथ के वंशजों की एक सूची 'अश्वनी-चरित्र' के आधार पर इस प्रकार है[2]—

---

१ महाकवि नरहरि महापात्र, विशाल-भारत, फरवरी, १९४६, पृष्ठ १४१

२ महाकवि नरहरि और उनके काव्य पर एक दृष्टि लेख से उद्धृत, हिन्दुस्तानी, जनवरी-मार्च, १९४५, पृष्ठ २६

अश्वनी-चरित्र, पष्ठ ३
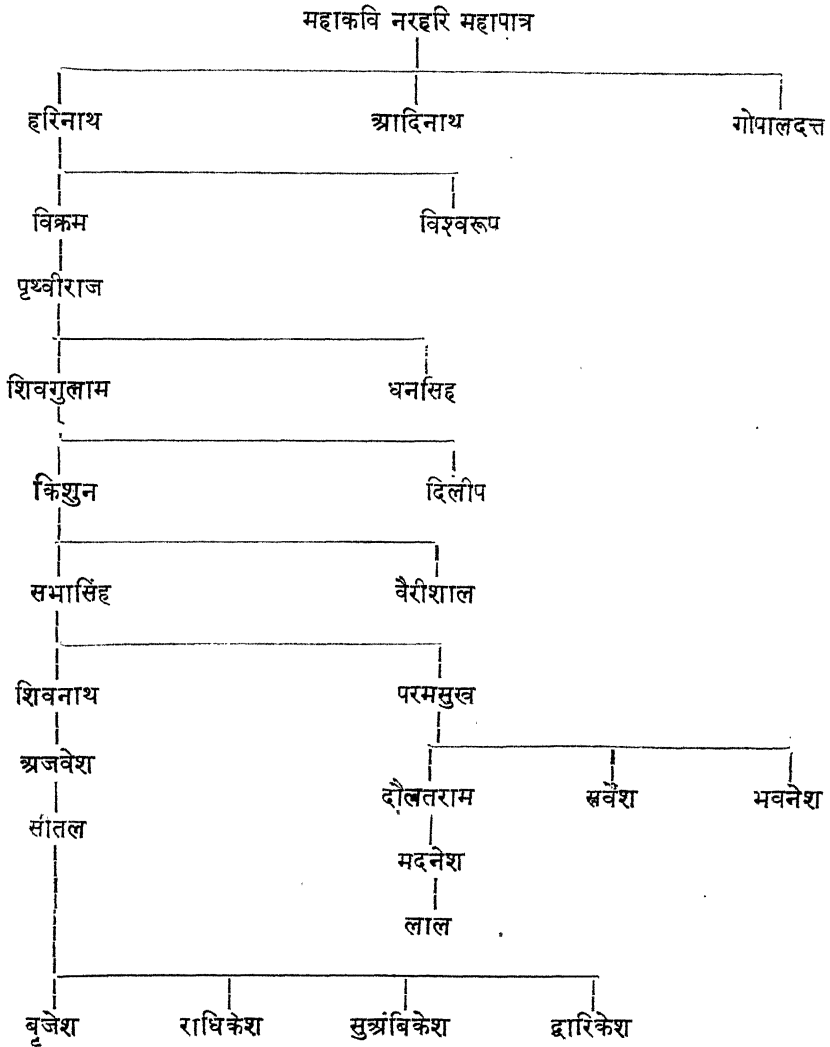
उक्त वंश के बृजेश जी तथा लाल जी प्रतिष्ठित कवि हैं और रींवा तथा अन्य रियासतों में इनका यथेष्ठ मान भी है।

नरहरि की एक कन्या का उल्लेख पहले किया जा चुका है। 'वाग्विलास' ग्रंथ में कवि सेवकराम की जीवनी के सम्बन्ध में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि एक समय कवि सेवकराम के स्वामी श्रीमान् महाराजाधिराज विसेन वंशावतन्स मक्होली की पुत्री का विवाह इसलिये टला जा रहा था कि कोई कवि उनका वंश वर्णन करने वाला नहीं था।

उस समय देवकीनन्दन ने उनकी उस मान-हानि को उनके वंश का वर्णन मुक्त-कंठ से कर बचा लिया। इस पर उक्त महाराजाधिराज ने देवकीनन्दन को 'महापात्र' की उपाधि से विभूषित किया और इस घटना के बाद ही जब नरहरि तक देवकीनन्दन की प्रशंसा पहुँची तो उन्होंने अपनी कन्या का विवाह उनसे कर दिया और उन्हें असनी नगर में बसाया।[1]

इसी 'वाग्विलास' ग्रंथ की अम्बिकादत्त व्यास द्वारा लिखित 'भूमिका' के पृष्ठ ३ पर लिखा है कि देवकीनन्दन जिला फतेहपूर के असनी नगर में आये। वहाँ इन्हें गुणी और प्रतिष्ठित देखकर नरहरि ब्रह्मभट्ट ने अपनी कन्या ब्याह दी और भूमि आदि देकर असनी ही में बसाया। अतएव उक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नरहरि की एक कन्या थी और उसका विवाह देवकी नंदन से हुआ था। इस कन्या की अवस्था के विषय में विचार करने पर ज्ञात होता है कि यदि हरिनाथ के जन्म संवत् से कम से कम डेढ़ वर्ष बाद इस कन्या का जन्म माना जाय तो विवाह के समय उसकी अवस्था लगभग १२ वर्ष की आती है और इसका जन्म हरिनाथ से कम से कम डेढ़ वर्ष पूर्व मानने पर विवाह के अवसर पर उसकी अवस्था १५ वर्ष की होती है। इस कन्या को हरिनाथ से छोटा मानना ही उचित जान पड़ता है क्योंकि वह इतिहास प्रसिद्ध मुसलमानी युग था जब हिन्दू अपनी

१............इनके लोगों ने अपने स्वामी की मान हानि जानि एक पुत्र देवकी नंदन नामक को आज्ञा दी कि महाराज का वंश वर्णन करो। वे आज्ञा पाते ही ऐसा वर्णन करने लगे मानों साक्षात सरस्वती ही कंठस्थ है तब विवाह हुआ। महाराज ने अत्यन्त प्रसन्न हो संनिकट बिठाय दान ग्रहण करने की प्रार्थना की हठात् इनको स्वीकार करना पड़ा......श्रीमान ने उक्त देवकी नन्दन जी का अन्य कुटुम्बियों से अधिक सम्मानित कर महापात्र की उपाधि दे तिलक कर स्थापित किया। उसी समय में श्रीमान ब्रह्मभट्ट नरहरि कवि जी की श्री राजराजेश्वर जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर शाह गाजी सुलतान हिन्द की सर्कार में उनके पिता के समय से महत् सन्मान पात्र थे। उनको अपनी पुत्री का विवाह करना था। योग्य वर, कुल तथा विद्वान ढूंढते थे। चरों के द्वारा उक्त श्री देवकी नंदन जी की प्रशंसा सुन वहाँ पहुँच बड़ी आदर सत्कार से अपनी पुत्री का विवाह उनसे किया और उनको इसी अश्विनी नगर में सन् १५६ में बसाया।

भूमिका, वाग्विलास, पृष्ठ २, ३।

कन्याओं का विवाह करने में अधिक विलंब नहीं करते थे। अतएव इस कन्या का जन्म संवत् १६०६ के लगभग माना जा सकता है।

शिक्षा-दीक्षा

नरहरि की शिक्षा-दीक्षा आदि के विषय में कुछ पता नहीं चलता किन्तु उनकी काव्यकुशलता और भाषा-वैचित्र्य देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्हें बाल्यकाल में अच्छी शिक्षा मिली थी। मुग़लकालीन दरबार में फ़ारसी का अत्यधिक प्रचार था। अतएव इनके पिता ने, ऐसा ज्ञात होता है कि प्रारम्भ से ही इन्हें फ़ारसी की उत्तम शिक्षा दिलाई थी। नरहरि के नीति-वचनों से भी स्पष्ट है कि संस्कृत-भाषा का भी उन्होंने सुचारु अध्ययन किया था और इसमें उन्होंने काफी ज्ञानार्जन कर लिया था। कवि के एक दो छप्पय उसके फ़ारसी भाषा विषयक ज्ञान के द्योतक हैं :—

इस छंद का पाठ कुछ लेखकों ने इस प्रकार दिया है :—

नेक बख्त दिल पाक सखी जवाँ मर्द शेर नर
अव्वल अली खुदाय दिया तिसि पार मुल्क जर
तुम खालिक बहु वेश सकुन सालिमा अमालिम।
दौलत वख्त बुलन्द जंग दुश्मन पर जालिम॥
इन्साफि तुराँ गोयद खलक कवि नरहरि गुफतन चुनी।
बाबर न बरोबर बादशाह मन दिगर न दीदम दर दुनी॥[१]

श्रीकृष्ण शर्मा ने एक लेख में इस छप्पय का निम्नलिखित पाठ दिया है[२] :

नेक बखत दिल पाक सखी जवाँ मर्द शेर नर
अव्वल अली खुदाई दिया बिसियार मुलक ज़र
खालिक बहु वेश हुकुम आलिया जो आलिब
दौलत बख्त बुलंद जंग दुश्मन पर गालिब
अबसाफ तुरी गोयद सकल कवि नरहरि गुफतम चुनी
अकबर न बरोबर बादशाह नजर न दीदम दर दुनी॥

---

१ महाकवि नरहरि महापात्र, पृष्ठ २२८, विशाल-भारत, मार्च १९४६

२ नरहरि महापात्र और उनका एक घराना, सम्मेलन पत्रिका, पौष संवत् १९९६, हिन्दुस्तानी, भाग २७, पृष्ठ संख्या ५

श्री विपिन विहारी त्रिवेदी ने शर्मा जी के पाठ वाले उक्त छंद में 'तुरी', 'गोयम', 'सकल', 'गुफतम' और 'न नजर', 'न दीदम', 'दर', 'दुनी' शब्दों का अशुद्ध प्रयोग बता कर बाबर पाठ वाला उपर्युक्त छन्द ही प्रामाणिक माना है। किन्तु उपर्युक्त दोनों छन्दों में प्रयुक्त फ़ारसी के कुछ शब्द अशुद्ध हैं। त्रिवेदी जी वाले पाठ में 'तिसिपार', 'अमालिम', 'जालिम', 'इन्साफि', 'गुफतन्' शब्दों के अशुद्ध प्रयोग हुए हैं। छंद के अंतिम चरण में 'न', 'मन' शब्द निरर्थक भी हैं। शर्मा जी वाले पाठ के तीसरे चरण में केवल 'आलिब', और पाँचवे में 'तुरी' शब्दों के ही अशुद्ध प्रयोग हैं वैसे पाठ ठीक है। अतएव त्रिवेदी जी की अपेक्षा शर्मा जी वाला छंद अधिक प्रामाणिक ज्ञात होता है। दोनों सज्जनों ने इस छंद की प्रामाणिकता नहीं दी है। अतएव पाठ की प्रामाणिकता के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेखक को 'बाबर' पाठ वाला उपर्युक्त छंद कई भट्ट सज्जनों से सुनने को मिला वे बड़े मधुर और उच्च स्वर में इसे गाकर गौरवान्वित होते हैं। उन्हीं में से एक भट्ट सज्जन से प्राप्त नरहरि के अप्रकाशित ग्रंथ में उक्त छंद देखने को मिलता है इसका पाठ अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध है।

नेकबख्त दिल पाक सखी जवाँ मर्द शेर नर।
अव्वल अली खुदाय दिया तिसि पार मुल्क जर॥
खालिक बहुनेश हुकुम आलिया जो आलिब।
दौलत वख्त बुलंद जंग दुश्मन पर गालिब॥
अवसाफ तुरा गोयद सकल कवि नरहरि गुफतम चुनी।
बाबर बरोबर बादशाह दिगर न दीदम दर दुनी॥

त्रिवेदी जी उक्त छंद के आधार पर नरहरि को बाबर के दरबार में उपस्थित रहना मानते तो हैं किन्तु उस तिथि का कोई विशेष विवेचन उनके लेख में नहीं मिलता। बाबर बादशाह के शासन में नरहरि की अवस्था २३, २४ वर्ष की ठहरती है और इतनी आयु में इस प्रकार की कविता लिख लेना कवि के लिये कुछ असंभव नहीं प्रतीत होता। नरहरि का बाबर के दरबार से सम्बन्ध केवल इसी छंद से नहीं प्रमाणित होता है इसकी पुष्टि एक अन्य छंद से भी होती है। नरहरि ने बाबर, हुमायूँ, अकबर और अब्दुर्रहीम खानखाना की प्रशंसा एक ही छंद में निम्नलिखित ढंग पर की है :—

बाबर हुमायूँ गाजी सिफत करत दोऊ मन वच करम अटल स्वामी तकबर।
एकन उथापि एकै थापत जगत हित अनख जख रिपु फिरे चहुँ चकबर।

गुनी निरगुनी हिन्दू तुरुक, सकल सेवै दलपति नरहरि अब एक टकबर।
परम प्रवीन खानखाना से वजीर जाके न्याय ही बसत विलसत शाह अकबर ॥[१]

इस प्रकार उपर्युक्त छंदों से ज्ञात होता है कि नरहरि संभवतः बाबर से संपर्क में आये थे। किन्तु बाबर के दरबार से इनका सम्बन्ध था अथवा ये केवल उसके सम्पर्क में ही आये थे यह निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। उनके असनी के वंशज महापात्र नरहरि को हुमायूँ-दरबार के पूर्व किसी अन्य मुगल-शासक के दरबार से सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते।

नरहरि और उनका सम्मान

नरहरि का सम्मान उन सभी विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा हुआ था जिनके सम्पर्क में ये आये थे; उनके व्यक्तित्व का प्रभाव कवि पर पड़ा और उसने मुक्त-कंठ से उन गुणी व्यक्तियों की प्रशंसा अपने छंदों में की जिसका परिचय यहाँ दिया जायगा। कवि का बाबर की प्रशंसा सम्बन्धी परिचय पहले दिया जा चुका है। नरहरि हुमायूँ के सन्निकट तो रहे ही। उसकी अतुलित वीरता एवं धैर्य का कवि ने यथायोग्य वर्णन किया है :—

पूरब हद्द पछिम पहार दोउ षन किए विधि जानि अगाउँ।
इत सुमेरु उत चढ़त लङ्क हय मारि तङ्ग नरपति सब नाउँ।
हिन्द ते षेदि पठान षग्ग वर दल दलमलि दरियाय बहाउँ।
गज्जिहि बहुरि जिति दिल्लीपति इमिहिं डोल रच्यो साहि हिमाउँ ॥[२]

एक स्थल पर कवि ने हुमायूं की विषम परिस्थिति दिखाकर उसके प्रति अपनी सद्यः सहानुभूति प्रकट की है :—

जित्ति जगतु सब कियो अप्पु बस हुतो समोसन मुष जब ताऊँ।
सोइ छत्रपति बब्बर सुव नन्दन इह अघ दम सुना अगाऊँ।
नरहरि बान धनुष सोह अस जुन गोप्पि निरष्षि सके इक ठाऊँ।
विधि विरुद्ध कछु सूझ परत नहिं कहा करे वरिबंड हुमाऊँ ॥[३]

---

१ देखिए, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२
२ " " " छंद संख्या ३२
३ " " " छंद संख्या ७

शेरशाह की उदार-नीति, उसकी सह्रदयता एवं सद्गुणों की विशिष्टता ने कवि को अपनी ओर आकर्षित किया था। कवि ने उसके गुणों का निम्नलिखित छंदों में वर्णन किया है :—

असपति नर गजपति हुतेउ मुअपति अनेक तब।
ते त्वै समर संघरेउ मरेउ जसु जगत जित्ति अब।
तोहि जांचहि गुनि सकल कोउ न उधरेउ भुम्मि मंह।
नषत प्रात सम तकत जियत जलु जलधि अंत कंह।
वोहिन कर्ष भुजिमि पिष्षअै मंगन गति नरहरि भनै।
अस समुझि साहि सेरन प्रकट अैसो अस दिहूनेहि बनै।[१]

शेरशाह के उत्तराधिकारी सलीमशाह (इस्लाम शाह) द्वारा भी नरहरि को उचित सम्मान मिला था। नरहरि ने निम्नलिखित दोहे में सलीम शाह की आयु की वृद्धि एवं राज्य-स्थिरता की कामना की है :—

प्रथम जंपि जगदीस कहं करउं कवित्त रचि नेमु।
जस निर्मल थिर चिर जिवे छत्रपति साहि सलेमु ॥[२]

कवि ने यदि एक बार पठान दल को जुटते देखा था तो दूसरी वार उसे बिखरते भी देखा। निम्नलिखित छप्पय में कवि ने सूर-वंश के बाद छिन्न-भिन्न स्थिति का दिग्दर्शन कराया है :—

उर गवनि जु सुख गएउ भएउ नाहिं पुहुमि अनंफल।
प्रजा दुखित दल भलित गएउ फटि फूटि पठान दल।
दत्त सत गरुवत्त रहेउ धन धर्म किति निति।
मंडन सोर चहुँ ओर बहुरि संबरेउ मुगलपति।
जगदीस देखावहिं दिष्षिअै कहि नर हरि निसु दिनु षुरुक।
सोर न बिन साहि सलेम बिन सो अकल बिकल हिंदू तुरुक ॥[३]

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ३२
२ ” ” ” ” ” छंद संख्या १
३ ” ” ” ” ” छंद संख्या २८

यह एक ऐतिहासिक घटना है कि संवत् १६१२ में हुमायूं ने सूरी-वंश पर विजय प्राप्त की और भारत का सम्राट बना। संभवतः तभी हुमायूं ने नरहरि की पिछली सेवाओं को स्मरण कर उनका आवाहन किया था जिसका उल्लेख कवि ने निम्नलिखित छप्पय में किया है :—

सेरन साहि सलेम पुहुमिं एक छत्र राजु किअ।
तिन मोंहि कहं करि कृपा भानु धनु षिति षिताबु दिअ।
तिहूनके मरत नहि मुएउ लाज गहि बनन सिधाएउं।
तिहकि सुतन परि विपत्ति तहाँ केहु काम न आएउं।
एहि लाज गहेउ जगदीस दरु नरहरि चल तन चित्त सुख।
फिरि फेरि बोलावहिं साहि मोहि सो आनि दिखावउं कोन मुख ॥[१]

उपर्युक्त छंद से ज्ञात होता है कि कवि को सूर-वंश के राजाओं से मान, धन जमीन, खिताब आदि मिले थे। साथ ही कवि की आत्मग्लानि का परिचय भी उक्त छप्पय से मिल जाता है। श्री विपिन विहारी त्रिवेदी ने उक्त छप्पय अकबर के लिये लिखा हुआ माना है और इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि इस छप्पय में ऐसे अवसर पर नरहरि ने हुमायूं बादशाह का नाम इसीलिये नहीं लिया कि उन्हें हुमायूं ने ठीक से पुरस्कृत नहीं किया था। उनकी यह धारणा भ्रमपूर्ण ज्ञात होती है। उक्त छप्पय में कवि अकबर का नाम लेता ही क्योंकर, उक्त छप्पय अकबर के लिये न लिखा जाकर हुमायूं के लिये लिखा गया था और तभी कवि को इतनी आत्मग्लानि का प्रदर्शन करना पड़ा और संभवतः वह फिर 'जगदीश दरु' से उस समय तक नहीं लौटा जब तक अकबर सिंहासनारूढ़ न हुआ। रीवां-नरेश वीरभानु ने हुमायूं की विपत्ति-दशा में समयोचित सहायता की थी। इसका उल्लेख गुलबदन बेगम द्वारा रचित 'हुमायूंनामा' में हुआ है।[२] नरहरि के छंदों में रीवा-नरेश बघेल-राजा रामचंद्र का, जो इन्हीं वीरभानु के पुत्र थे, उल्लेख हुआ है। यदि नरहरि ने जो हुमायूं के दरबार के कवि थे उपर्युक्त घटना से संबद्ध कारणों से, रीवां तक की यात्रा की हो तो क्या आश्चर्य और फिर वहाँ पहुंचने पर रीवां-नरेश की गुण-ग्राहकता ने उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लिया होगा। नरहरि के

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५०

२ हुमायूंनामा, पृष्ठ १३६

कई छंद राजा रामचंद्र की प्रशंसा के उपलब्ध होते हैं। यहाँ पर एक उदाहरण पर्याप्त होगा। रामचंद्र सरीखे आदर्श पथगामी के लिये उसकी यह प्रशंसा ही सापेक्ष थी—

> वरबघेल निरलोम्भ धम्म रत सेवत चरन चाहि भुवरत्ती
> यह सो लोम असरन्न सरन्न किय मारि भुआरि लेत भुई अत्ती
> नरहरि एक बात सकुचत हौं परसत पुरुषोत्तम पग सत्ती
> हौं अपने नृप रामचन्द्र पर वारों मैं कोटि कोटि गजपत्ती ॥[१]

अंतिम पंक्ति में 'अपने' शब्द से कवि की उनके प्रति आत्मीयता का भाव भी दृष्टिगत होता है।

नरहरि का निम्नलिखित छप्पय अकबर के जन्म-अवसर पर उच्चरित बताया जाता है :—

> धन्य धरनि धनि देश नगर कुल धनि सुजाति वर
> धन्य सर्व भूपाल जननि धनि धनि जु गर्भ धर
> धनि सुवर्ष ऋतुमास पाख सो शैल समै धनि
> धनि सुयुग्ग कलियुग्ग धन्य संवत् समत्थ मुनि
> धनि तिथि व नखत सो द्योस धनि कहि नरहरि विधि निर्मयो
> धनि पहर लगन सो महत्त धनि जेहि मुकुन्द गजपति भयो ॥[२]

उपर्युक्त छप्पय में कवि ने अकबर का कहीं उल्लेख नहीं किया है। अतएव केवल किंवदन्ती[3] के आधार पर ही 'मुकुन्द गजपति' को अकबर मान लेना भूल होगी

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १६

२ देखिए, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७

३ एक प्राचीन लेख द्वारा यह पता चलता है कि एक मुकुंद ब्रह्मचारी ने अपने शरीर के अंगों को काट कर हवनकुण्ड में डाला था और उसने यह भविष्यवाणी की थी कि वह दुबारा जन्म लेकर एक प्रतापी बादशाह होगा। गणना से अकबर की जन्मतिथि और मुकुंद ब्रह्मचारी की मृत्यु तिथि में कुछ महीनों का अंतर था। अतएव वे अकबर के रूप में ही उत्पन्न हुए यह किवंदती प्रचलित हो गई।

अकबरी-दरबार, भाग १, पृष्ठ १६३

क्योंकि तत्कालीन जगन्नाथपुरी के राजा का नाम इतिहासों में मुकुंद गजपति मिलता है जिनसे कि नरहरि का घनिष्ट संबंध था और जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। नरहरि के कुछ छंदों में यह स्पष्ट रूप से मिलता है कि वे काफी समय तक जगन्नाथपुरी में रहे थे और मुकुंद गजपति के जन्म-अवसर पर भी ये संभवत: उपस्थित थे। अतएव उक्त छप्पय अकबर के जन्म-अवसर का न होकर जगन्नाथपुरी के राजा मुकुंद गजपति का मानना अधिक ठीक होगा।

अकबर के सिंहासनारूढ़ होने पर राज्य की व्यवस्था बिगड़ी हुई थी और प्रजा के अन्दर वह सुख-शान्ति अवशिष्ट नहीं रह गई थी जो शेरशाह और हुमायूं के शासन के उत्तरकाल में थी। राज्यसिंहासन कुचक्रों का शिकार हो रहा था किन्तु अकबर ने अपने बुद्धिकौशल द्वारा पहले बैरमखां और फिर माहम-अंगा के चंगुल से अपने को स्वतन्त्र कर एक आदर्श राजसत्ता स्थापित करने के साधन जुटाने आरंभ किये थे। नरहरि द्वारा उल्लिखित अकबर संबंधी उपदेश के अनेक छंद उपलब्ध हैं। यदि ऐसे ही अवसर पर कवि ने अकबर को ये साधारण नीति और राजनीतिक उपदेश दिये हों तो असंभव नहीं कहा जा सकता। सर्वप्रथम कवि अकबर के बुद्धि-चातुर्य का परिचय देकर उत्साहवर्धक शब्दों में कह उठता है :—

> को सिखवत कुल बधून लाज गृह कज्ज रंग रति
> को हंसनि सिक्खवत करत पय पानि भिन्न गति
> कै सिंहन को सिक्खत हनत गज बाजि ततच्छन
> कै सज्जनसि सेक्खएउ दत्त गरु वत्त सुलच्छन
> विधि रचेउ जानि नरहरि निरखि कुल सुभाउ नहिं मिट्टवे
> गुन धर्म अकब्बर साहि कह कहहु सो को नरु सिक्खवे ॥[1]

अपने पिता हुमायूं के प्रिय कवि के प्रति अकबर की पूर्ण श्रद्धा थी और वह इनका अत्यधिक मान और पूरा विश्वास करता था। अकबर ने इसी कारण उड़ीसा के राजा के पास हसनखां खजांची के साथ और किसी को न भेजकर इन्हीं को भेजा था— 'महापात्र-जो भारतीय काव्य एवं संगीत कला में अद्वितीय थे, उसके साथ भेजे गये। दोनों साथ-साथ उड़ीसा गये। जगन्नाथपुरी के राजा ने बादशाह की कृपा जान कर

१ देखिए, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२६

आगंतुकों के समुचित सत्कार के लिये अपने आदमी तुरंत भेजे और शहर में सम्मान-पूर्वक उनको लाया गया......तीन महीने तक आदर-सत्कार करने के बाद उनको प्रसिद्ध हाथियों और बहुमूल्य पदार्थों की भेंट सहित दरबार वापिस भेजा।[1] यह घटना संवत् १६२२ की है। इससे यही अनुमान निकलता है कि कवि को 'महापात्र'[2] की उपाधि इसके पहले मिल चुकी थी। अकबरी-दरबार में नरहरि के अतिरिक्त और किसी कवि को 'महापात्र' की उपाधि नहीं मिली और नरहरि का जगन्नाथपुरी के राजा से पूर्व परिचय था जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। रीवाँ-नरेश राजा रामचन्द्र ने अकबर को सेनाओं द्वारा पराजित होने पर बांधवगढ़ की शरण ली थी किन्तु उसी समय प्रभाव-शाली व्यक्तियों के हस्तक्षेप करने पर जो रीवां-नरेश के आश्रय में पहले रह चुके थे अकबर ने आसफखां को राजा रामचन्द्र की राज्य-सीमा में बिना हाथ लगाये वापिस चले आने के लिये लिखा था। इसमें नरहरि का प्रधान हाथ अवश्य रहा होगा जिनका संबंध रीवां-नरेश से पहले दिखाया जा चुका है।

अकबर न्याय-प्रिय शासक था। आये दिन नवीनतम सुधारों का प्रचार कर अपने राज्य में शासन को सफलता की उच्चतम सीढ़ी पर पहुंचाना उसका लक्ष्य था। यह जनश्रुति अत्यधिक प्रचलित है कि नरहरि की प्रेरणा से ही अकबर ने राज्य में गोहत्या बंद करा दी थी जिसमें कहा गया है कि स्वयं नरहरि ने एक गाय मंगवा कर फरियाद-स्थान पर खड़ा करवा दिया था और उस गाय की मूक-भाषा का अर्थ उन्होंने स्वयं ही निम्नलिखित छप्पय द्वारा अकबर को समझाया थाः—

अरिहि दंत तिनु धरै ताहिं नहिं मारि सकत कोइ
हम संतत तिनु चरहिं वचन उच्चरहिं दीन होइ
अमरित पय नित स्रवहि बच्छ महि थंमन जावहिं
हिंदुहि मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं
कह कवि नरहरि अकबर सुनौ विनवति गउ जोरे करन
अपराध कौन मोहि मारियत मुएहु चाम सेवइ चरन ॥[3]

---

१ अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ २८२, २८३

२ नरहरिको 'महापात्र' की उपाधि अकबर ने दी थी जिसका अर्थ है श्रेष्ठ गुणी व्यक्ति
हिन्दी लिट्रेचर, पृष्ठ ३६, ३७

३ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११८

इतिहास से भी गोवध-निषेध की सम्पुष्टि होती है। अकबर के अनेक नियमों में जो उसने प्रजा के हितार्थ घोषित किये थे, गो-हत्यारे के लिये मृत्यु-दंड की व्यवस्था भी स्थिर की गई थी। अकबर पर नरहरि के तर्कों का क्या प्रभाव पड़ा था, यह एक अज्ञात कवि के निम्नलिखित छंद से स्पष्ट हो जाता है :—

नरहरि कवि सो गऊ की विनती सुनि सांची गुन खलन पै कै मति अकससी
अकबर जारी परवाने किये मारिबे को चारिहुँ महीपन लखानी बात इकसी
व्यापि गयो हुकुम दिल्लीपति को हिंद भरि वाजिबी विचारि मन अति कै करकसी
जीवन कसाइन कौ गाइन को देत भयो गाइन को मौत ले कसाइन को बकसी ॥[1]

संभवतः नरहरि ने अकबर के कुछ अन्यायपूर्ण नियम के संशोधनार्थ विनती भी की थी जिसका संकेत निम्नलिखित छंद में मिलता है। इसका भाव है—यदि माता ही पुत्र को विष दे दे, नाविक ही नाव को डुबो दे, पहरेदार ही चोरी करने लगे और यदि प्रेमी ही प्रेम को तोड़ने की चेष्टा करे, सज्जन ही यदि परधन-लोलुप हो जाय तो फिर कौन ऐसा समर्थ है जो घोर अन्याय को रोक सके अर्थात् सम्राट् ही यदि न्याय के प्रति उदासीनता ग्रहण कर ले तो प्रजा का संचालन कैसे हो :—

छत्रपति अकबर साहि सुनहु विनती करै नरहरि
जो जननि सुतहि विष देइ नाउ करिया गहि बोरै
स्वै पहरु स्वै चोर प्रीति प्रीतम हठि तोरै
वारि जो पेति हठि चरे साधु परधनु लेइ
कौन समरथ करै धरहरि ॥[2]

नरहरि ने अकबर की क्रोध-शान्ति के लिये भी अपनी मधुर वाणी द्वारा शांत-रस का संचार किया था। कवि अकबर से कहता है कि क्रोध में आकर अपने यश को नहीं गंवा देना चाहिये क्योंकि यश के लिये ही बलि ने बावन को तीनों लोक दे दिये, कर्ण ने स्वर्ण-दान किया, हरिश्चंद्र यश के लिये चांडाल के हाथ बिके, यश के लिये जयदेव ने अपना सिर तक दे दिया :—

---

१ देखिये, नरहरि सम्बंधी फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १
२ ,, ,, ,, ,, छंद संख्या १०

यश लगि बलि बावनहि लोक तीनिहुं समप्प दिय
जेहि यश कारन करन कनक कर कछु न लोम्भ किय
यश कारन हरिचंद नीच घर नीर समप्पेहु
यश कारन जयदेव शीश कंकालहि अरपेहु
यश अमर सदा नरहरि चलत यशहि परम पद पाइये
भुवनाह अकबर शाह कहुँ रिस करि यश न गंवाइये ॥[१]

उपर्युक्त कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि नरहरि अकबर के सुहृद और सन्मानी कृपापात्रों में से थे। साथ ही इससे उनकी सभाचातुरी, नीति-निपुणता और स्पष्टभाषिता का भी आभास मिलता है। अकबर की सेवा और कृपा के फलस्वरूप ही नरहरि ने उसकी सेना की व्यापकता और आतंक का चित्ताकर्षक वर्णन किया है :—

फनपति जय थरभरहिं जलधि उछ्छलहिं छंडिक्रमु
उडि रज परिहरि भुअन भए सुर सकल संभु समु
निसु दिन बिछुरहि चक्र कवल सकुचहिं रवि झंपहि
धूम समुझि अरि नृपति भभरि भज्जहिं तन कंपहि
नचहिं मऊर नरहरि निरषि सो द्वरंग अनक्ष बरन
दलु चलत अकबर साहि को सो गिरि बन घन अकरन सरन ॥[२]

नरहरि ने एक छप्पय में मुकुन्द गजपति के तुलादान का वर्णन किया है :—

कनक तुला मनि मोत्तिदान दिन कहि जो ग्रन्थगन
सत सहस गो लच्छि देत विधि सहित सुद्ध मन
असरथ गजरथ बसन ग्राम ज्ञनि कहउ कौन कवि
बहुरि प्रकट कलि करन सत हरिचंद प्रात रवि
जस हथ्थ भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित संभरिय
गजपति मुकुन्द दिव देव कह कहउ कवितु कोइ विधि करिय ॥[३]

उक्त छप्पय के अन्तिम पंक्ति का पाठ श्री विपिन बिहारी त्रिवेदी ने 'दुर्गावति मात समथ्थ को कहु केहि विधि पटतर करिय' देकर नरहरि और रानी दुर्गावती के परिचय

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११८
२ " " " " " छंद संख्या ३४
३ " " " " छंद संख्या ९५

का संकेत किया है। लेखक को प्राचीन हस्तलिखित प्रति में उक्त 'गजपति मुकुन्द' का पाठ देखने को मिला जो प्रति लगभग तीन सौ वर्ष प्राचीन है। अतएव छंद की प्रमाणिकता पर संदेह नहीं किया जा सकता। मुकुन्द गजपति जगन्नाथपुरी के राजा थे जिनके जन्म-अवसर का उल्लेख नरहरि ने किया था जो पहले दिया जा चुका है। अबुलफ़ज्ल ने 'आईने अकबरी' में अकबर के तुलादान का भी उल्लेख किया है जिसको अकबर प्रत्येक वर्ष किया करता था, किन्तु मुकुन्द गजपति के होने पर इसे अकबर के लिये कहा गया स्वीकार नहीं किया जा सकता उक्त छंद में जगन्नाथपुरी के राजा मुकुन्द गजपति के तुलादान का ही वर्णन हुआ है, जिनसे नरहरि का घनिष्ठ सम्बन्ध पहले दिखाया जा चुका है।

किसी अज्ञात कवि ने निम्नलिखित कवित्त में अकबर द्वारा प्राप्त नरहरि के मान का वर्णन किया है :—

> शाह अकबर महाकवि नरहरि जी को दीन्ह्यो महापात्र पद मरजाद जाती में
> तापै चारं चोपदार चामीकर पग दीन्ह्यों पाल्की में कंध केते पुर लिखि पाती में
> गंग कवि हेत घने तैसे गज ग्राम दीन्हे आज लगि दान मान मौज अधिकाती में
> संग दिल शाह जहांगीर सउमंग आज देत है मतंग पद सोई गंग छाती में ॥[1]

नरहरि के परवर्ती कवि गणेश महापात्र ने भी उनकी मान-मर्यादा का निम्नलिखित छंद में वर्णन किया है :—

> अश्विनीपुरी है थिर अश्विनी कुमार जहाँ घोड़े श्यामकर्ण कढ़े सुजनहु जाते हैं
> प्रगट्यो कवीन्द्र अंशधारी नरहरि तहाँ दिल्लीपति मान्यो तिन्हें गुण की प्रभाते हैं
> भनत गणेश महापात्र को खिताब दै कै पालकी चढ़ाय लै अकबर कंधाते हैं
> ।के हरिनाथ ताकी राजाराम दीन्हों कोटि सोउ दान दीन्हों हरखाते हरिनाते हैं ॥[2]

अकबर ने नरहरि को कई ग्राम देकर सम्मानित किया था जिसका उल्लेख वेती-निवासी दयाल कवि ने निम्नलिखित कवित्त में किया है :—

> डलमउ परगना प्रथम पखरौली ग्राम दूजे मिरजापुर कल्याणपुर वेती है
> और नरहरि पुर ग्राम धरमापुर है तारापुर बन्न जमुनीपुर सुनैती है
> भनत दयाल एक डला गौरी बड़ा ग्राम चांदपुर लूक सूरजपुर वरैती है
> आधी नानकार के इतेक नाव गांवन के जाहिर जहान जहांगिखां समेती है ॥[3]

१, २, ३ विशाल भारत, मार्च १९४६, पृष्ठ २२९, २३०

मृत्यु-घटना

नरहरि की मृत्युतिथि का पहले उल्लेख हो चुका है। असनी-निवासी हरिनाथ के वंशजों में इनकी मृत्युतिथि संवत् १६६७ दी गई है। इस तिथि के अनुसार इनकी मृत्यु १०५ वर्ष की अवस्था में ठहरती है और जब जहांगीर के राज्यकाल का आरम्भ हुए पाँच वर्ष बीत चुके थे। नरहरि की रचनाओं में जहांगीर विषयक कोई चर्चा नहीं मिलती किन्तु संभव है वे वृद्धावस्था के कारण दरबार में न आते-जाते रहे हों। अतएव इस मृत्यु-तिथि को बिलकुल प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता।

कहा जाता है कि अंत समय निकट आ जाने पर नरहरि असनी में गंगा जी के किनारे चले गये थे। उन्हें कुश का आसन दिया जा चुका था, परन्तु चेतना अभी लुप्त नहीं हुई थी। किसी ने पूछा—कवि जी कैसी तबियत है? मरणोन्मुख वयोवृद्ध कवि की सरस्वती स्फुटित हुई, बोले—

कुस की बनी संथरिया, धनियां परारि।
सुख सों सोवत नरहरि, पांव पसारि॥

उपर्युक्त दोहे में धनिया परारि (परकीया) संभवतः श्री गंगा जी के लिये प्रयुक्त हुआ था। उक्त वर्णन संदेहप्रद ही है क्योंकि जिस समय उनके मुख से कविता निकल रही थी अर्थात उनमें अपनी स्थिति को समझने की चेतना थी फिर वह गंगा के किनारे कुशासन पर कैसे लिटा दिये गये क्योंकि कुशासन केवल मरणप्राय अवस्था में ही दिया जाता है। यह तभी हो सकता है जब कि नरहरि ने स्वयं अपनी इच्छा और आग्रह से कुशासन ग्रहण किया हो।

ब्रह्म[1] (राजा बीरबल)

बीरबल अकबरी-दरबार के नवरत्नों में बड़े ही वाक्चतुर और प्रत्युत्पन्नमति पुरुष थे। उनको यह प्रसिद्धि उनके यथार्थ गुणों के कारण ही प्राप्त हुई थी। किन्तु इतने प्रसिद्ध

---

१ अकबर ने व्यक्ति विशेष को जिसका नाम महेशदास था 'बीरवर' की उपाधि से विभूषित किया था किन्तु उसकी इस उपाधि ने मुख्य रूप धारण कर उसके वास्तविक नाम में ही संदेह उत्पन्न कर दिया है। भाषा-विकास के विषमीकरण ध्वनि-नियम में दो समान ध्वनिएँ पास-पास नहीं आतीं। उनमें से एक का परिवर्तन हो जाता है। इसी प्रकार 'बीरवर' शब्द के दो 'र' से एक के स्थान पर 'ल' प्रचलित हो जाना

पुरुष के जीवन की बहुत सी घटनाओं के लिये हमें अनुमान से ही काम लेना पड़ता है। किसी भी ग्रंथ में इनके जीवन की प्रारंभिक अवस्था का उल्लेख नहीं मिलता। अबुल-फ़ज़्ल, बदाउनी आदि ने बीरबल की जाति का परिचय तो दिया है किन्तु बीरबल ने अपना बचपन कहाँ बिताया, इनकी शिक्षा-दीक्षा कहाँ हुई, अकबरी-दरबार में कब और किस प्रकार पहुँचे आदि महत्वपूर्ण प्रश्नों के विषय में वे भी मौन हैं।

नाम, जाति, तथा जन्म-अस्थान निर्धारण

मुंशी देवी प्रसाद ने बीरबल का वास्तविक नाम 'ब्रह्मदास' और ब्राह्मण-जाति का लिखा है।[1] बदाउनी[2] ने इनका वास्तविक नाम 'ब्रह्मदत्त' और 'ग्रियर्सन' ने ब्रह्म कवि दिया है।[3] वे किस कोटि के ब्राह्मण थे, यह उन्होने नहीं लिखा। सेंगर[4] और मिश्रबंधु[5] ने इन्हें कान्यकुब्ज ब्राह्मण लिखा है। इतिहासकार के[6] ने उन्हें कनौजी दुबे ब्राह्मण बताया है। किसी ने माथुर चतुर्वेदी ब्राह्मण माना है। चौबे इसलिये माने जाते हैं कि ये हाजिर-जवाबी में बढ़-चढ़ कर थे और उधर चौबे जाति के व्यक्ति भी बहुधा हंसोड़ और मजाक-पसंद कहे जाते हैं। इस संबंध में एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि बीरबल ने अपनी काव्य-रचना और ग्यान-विद्या से दुर्गा देवी को प्रसन्न किया और वरदान पाया कि जो व्यापार ये करेंगे उसी में इन्हें लाभ होगा। ये सांभर नमक भर कर ले गये। इस पर भवानी ने कहा-वाह-तूने मुझसे ही मसखरी की। अब तुझको जो मिलेगा मसखरी से मिलेगा।[7]

स्वाभाविक ही है। अतः 'वीरवर' अब 'बीरबल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह संस्कृत व्याकरण सम्मत भी है—रलयोः भेदाः।

१ राजा बीरबल, पृष्ठ १, २, भाग २

२ मुन्तखवुत्तवारीख, अनु० लो, भाग २, पृष्ठ १६४

३ जर्नल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल, ग्रियर्सन, संख्या ५७, भाग २, पृष्ठ ३५

४ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४५१

५ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७२, कवि संख्या १६३

६ हिन्दी-लिट्रेचर, पृष्ठ ३५

७ राजा बीरबल, भाग २, पृष्ठ २

इस प्रकार की जनश्रुतियाँ श्रेष्ठ पुरुषों के लिये प्रायः गढ़ ली जाती हैं, इनका कोई विशेष आधार नहीं होता। संभव है बीरबल के गुणों को लक्ष्य में रखकर किसी ने इसे बाद में प्रचलित करा दिया हो। मारवाड़ के लोग इन्हें मकराने का ब्राह्मण मानते हैं क्योंकि वहाँ बीरबल की बनवाई हुई संगमरमर की एक जलहरी मिलती है। बुंदेलखंड के लोग इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण कहते हैं।[1] विभिन्न वादों से इतना तो सिद्ध होता ही है कि वीरबल ब्राह्मण जाति के थे। अंतर्साक्ष्य द्वारा भी इस कथन की पुष्टि होती है। निम्न-लिखित छंद में कवि के नाम की छाप के साथ 'द्विज' शब्द आया है:—

नवनीत लिए निरख कर सों नवनीरज सी अंखिया जुग राती
नव पल्लव से फटके अधरा नवकुन्द कली मुख में मृदु दाती
नूतन श्याम तमाल सखी सुलखें छवि होंति हिए ते नहाती
मोहन मूरति नंद लाला की बलाइ लगो 'द्विज' ब्रह्म की छाती ॥[2]

वीरबल, कविता में अपना उपनाम 'ब्रह्म' रखते थे इसका उल्लेख कवि के निम्न-लिखित सवैये में हुआ है:—

मेरे हये ऋतु संत सो संगु सुआनहि भूलि हुमंगनि लाइल्यो
तुम हूं पुनि क्यों न करो मेरे नाम की एक यह अपराधी रलाल्यो
षोरो खरो जन चेरनि में जनु 'ब्रह्म' चले न तऊ तो चलाइल्यो
आपुनी ओर चलाय ले मोहि अरे 'वरवीर' हों तेरी बलाइल्यो ॥[3]

'मआसिरुलउमरा' ग्रंथ में भी इनका उपनाम 'ब्रह्म' मिलता है और इसी नाम से उन्होंने कविताएँ लिखी हैं।[4] अतः बीरबल ही ब्रह्म कवि थे और उनकी जाति ब्राह्मण थी किन्तु ये किस कोटि के ब्राह्मण थे और इनका वास्तविक नाम क्या था यह विषय विचारणीय है। ऐतिहासिक ग्रंथों में वीरबल भट्ट जाति के बताये गये हैं। आज़ाद कृत 'दरबारे-अकबरी' में इन्हें 'ब्रह्मदास भाट' लिखा गया है और इसी ग्रंथ में यह भी मिलता

---

१ राजा बीरबल, पृष्ठ २, भाग २
२ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ठ भाग, छंद संख्या ९८
३ " " " छंद संख्या ९२
४ मआसिरुल उमरा, पृष्ठ २४९

है कि बीरबल का वास्तविक नाम 'महेशदास' था।[1] अबुलफ़ज़्ल कृत 'आइने अकबरी' से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।[2] 'मआसिरुलउमरा' और 'मिफ़ताहुल तवारीख़' में भी जो फारसी-भाषा के ग्रंथ हैं, बीरबल का वास्तविक नाम महेशदास और जाति भट्ट ब्राह्मण लिखी हुई है।[3] पंडित वल्लभ भट्ट द्वारा प्रकाशित 'राजा बीरबल' ग्रंथ में जो मियाँ आज़ादकृत 'नसाबे-उदू' और मौलवी अली मोहम्मद कृत 'बीरबल की सवानह उमरी' के आधार पर लिखा गया है, बीरबल को भट्ट जाति का बताया गया है।[4] कुछ समाचार पत्रों 'ब्रह्मभट्ट-कुलदिवाकर', 'ब्रह्मभट्ट-विजय' के आधार पर बीरबल को ब्रह्मभट्ट, उनके पिता का नाम गंगादास और इनका वास्तविक नाम महेशदास सिद्ध किया गया है। भट्ट ब्राह्मण जाति के अंतर्गत ही आते हैं और वे ब्रह्मभट्ट नाम से विभूषित होते हैं इस कथन का विवेचन कवि गंग की जीवनी-प्रसंग में आगे किया गया है। संभव है इसीलिये इन्होंने ब्रह्मभट्ट का 'भट्ट' निकालकर अवशिष्ट 'ब्रह्म' ही अपना उपनाम बनाया हो। प्राचीनकाल से ही यह जाति वाक्-चतुर और 'बातफ़रोश' रही है। अतः बीरबल के व्यक्तित्व और तत्कालीन ऐतिहासिक लेखकों तथा अन्य उपर्युक्त प्रमाणिक आधारों पर बीरबल के ब्रह्मभट्ट होने में लेखक को संदेह नहीं है। वैसे तो गुणी और प्रसिद्धि-प्राप्त व्यक्ति को सभी अपनी जाति में मिला लेने के लिये तत्पर रहते हैं और इसलिये इनकी जाति के संबंध में इतनी भ्रमपूर्ण बातें फैल गई हैं।

प्रयाग के क़िले के भीतर 'अशोक-स्तंभ' पर निम्नलिखित लेख खुदा हुआ है—
'संवत् १६६२, शाके १४६३ मार्ग बदी ५, सोमार, गंगादास सुत महाराजा बीरबल श्री

---

१ दरबारे-अकबरी, पृष्ठ २९५

२ अइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ४०४

३ राजा बीरबल दरअसल बरहमन बूद वादख्वा दर हिन्द भाट गोयन्द नाम महेशदास बूदह अस्त चूं बर मुलाज़मात अकबर शाह रसीर व सखुन सासाई व लतीफा गोई व वज़लासंजी दरसिल्क मुसाहिबान इन्तिज़ाम याफ़्त व तदरीज।

मिफ़ताहुलतवारीख़, पृष्ठ ९१

मआसिरुल उमरा, पृष्ठ २४४

४ राजा बीरबल, पृष्ठ ४३

तीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखितं ।'[1] यह लेख राजा बीरबल का है। इसमें उल्लिखित बीरवल के पिता गंगादास का नाम महेशदास से बिल्कुल मिलता-जुलता है जैसा कि पिता-पुत्र के होते हैं। अतः इन्हीं आधार पर हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने भी बीरवल को ब्रह्मभट्ट और उनका वास्तविक नाम महेशदास लिखा है।

बीरवल का जन्म-स्थान भी विवादग्रस्त है। ढूंढार के लोग इनका जन्म-स्थान अजमेर के एक गाँव में वताते हैं, जो किसी पहाड़ी के नीचे था। मारवाड़ के लोग इन्हें मकराने का समझते हैं जहाँ संगमरमर की खान है और जिसका पता कहा जाता है, बीरबल ने ही सांभर के हाकिम को उस समय दिया था जब अकबर को अजमेर के क़िले में महल बनवाने के लिये उसकी आवश्यकता हुई थी।[2] अब्दुलक़ादिर बदाउनी ने इनकी जन्म-भूमि 'काल्पी' लिखी है। मुंशी देवी प्रसाद ने भी इनका सम्बन्ध 'काल्पी' से सिद्ध किया है।[3] इस सम्बन्ध में कविवर भूषण की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रसिद्ध हैं :—

> द्विज कन्नौज कुल कस्यपी रतनाकर सुतधीर
> बसत त्रिविक्रमपुर सदा तरनि तनूजा तीर
> वीर वीरबल से जहाँ उपजे कवि अरु भूप
> देव बिहारीश्वर जहाँ विश्वेश्वर तद्रूप ॥[4]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'कवि अरु भूप' शब्दों में अकबरी दरबार के राजा बीरबल का ही संकेत है। डॉ० राम प्रसाद त्रिपाठी ने इन दोहों के सम्बन्ध में लिखा है कि देव और बिहारीश्वर आदि शब्दों के प्रयोग से कुछ संदेह पैदा होता है। इसके अतिरिक्त भूषण ने वीरबल की मृत्यु के करीब ७०-८० वर्ष के बाद ये दोहे रचे होंगे। उस समय उनको ठीक पता मिला होगा या नहीं इसका कोई विशेष प्रमाण नहीं है। बीरबल का कानपूर ज़िले के 'अकबरपुर-बीरबल' में रहना अबुलफ़ज़्ल के कथन से सिद्ध होता है। संभवतः वहीं उनका घर भी था क्योंकि 'बुनगाह' शब्द के अतिरिक्त 'खाना' शब्द का भी उसी वाक्य

---

१ मआसिरुल उमरा, भाग १, पृष्ठ २४४
  हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४३

२ राजा वीरवल, भाग २, पृष्ठ २

३ राजा बीरबल, पृष्ठ ४३

४ शिवराज-भूषण पृष्ठ ८, छंद संख्या २६, २७

में प्रयोग किया गया है। यह स्थान काल्पी से एक दिन की यात्रा की दूरी पर था। पहले संभवतः यह काल्पी सरकार के अंतर्गत था।[1] कुछ लोग बीरबल का जन्म-स्थान 'हमीर-पुर-जालौन' कहते हैं। वस्तुतः काल्पी सरकार को काट-छाँट कर हमीरपुर- जालौन और कानपूर जिलों के अन्तर्गत कर लिया गया है। अतएव उपर्युक्त कथनों का इससे समाधान हो जाता है। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने कविवर भूषण की उपर्युक्त पंक्तियों के आधार पर बीरबल का जन्म-स्थान 'तिकवाँपुर' माना है। तिकवाँपुर कानपूर ज़िले के अंतर्गत ही है। काल्पी सरकार की पुरानी सीमा के घेरे में यह आ जाता है। इस प्रकार बदाउनी तथा अन्य ऐतिहासिक लेखकों के कथन का विरोध नहीं होता। अजमेर, बुंदेलखंड और मारवाड़ में इनका जन्म-स्थान बताने वालों की उक्तियाँ निराधार और अप्रमाणिक हैं। बीरबल की 'कन्नौजी' की छाप लगी हुई ब्रजभाषा पर दृष्टिपात करने से 'तिकवाँपुर' उनका जन्म-स्थान मान लेने से कोई विरोध नहीं होता। इस प्रकार इन तथ्यों को लक्ष्य कर बीरबल की जन्मभूमि काल्पी-सरकार के अंतर्गत तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) ही मानी जा सकती है। क्योंकि राजा बीरबल का बसाया हुआ अकबरपुर बीरबल नामक गाँव तिकवाँपुर से लगभग दो मील की दूरी पर है। कविवर भूषण के समय में वहाँ पर बीरबल के वंशज अवश्य विद्यमान रहे होंगे तभी भूषण ने तिकवाँपुर का गौरव उक्त स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है।

बीरबल के जन्म-संवत् के विषय में भी मत-भेद है। पं० राम नरेश त्रिपाठी ने इनका जन्म संवत् १५८५ लिखा है।[2] मिश्रबंधुओं के अनुसार भी बीरबल का जन्म संवत् १५८५ में हुआ।[3] कुछ लोग इनका जन्म संवत् १५८२ में मानते हैं।[4] ऐतिहासिक ग्रन्थों में इनकी मृत्यु की घटना और तिथि का निर्देश स्पष्ट रूप से हुआ है किन्तु उन ग्रंथों से इनकी अवस्था के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। इतना अवश्य मिलता है कि अकबरी

१ राजा बीरवर, हिन्दुस्तानी, पृष्ठ ३, जनवरी १९३१

२ कविता-कौमुदी, भाग १, पृष्ठ २३७

३ मिश्रबन्धु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७२

४ राजा बीरबल, पृष्ठ ६६

दरबार में आने के पूर्व ये रामचन्द्र भट्ट की सरकार, काल्पी, कालिंजर और रींवा के राजाओं के आश्रय में रह चुके थे। इससे पता चलता है कि इन लोगों के आश्रय में इनके जीवन के कुछ वर्ष अवश्य बीते थे। अकबरनामा से ज्ञात होता है कि संवत् १६२६ में बीरबल ने राजा कजली के वकील को अकबर से मिलाया था जिससे सिद्ध होता है कि इस काल तक उनकी प्रतिष्ठा दरबार में स्थापित हो गई थी। अपने अनुकूल वातावरण बनाने में भी इन्हें कुछ वर्ष अवश्य लगे होंगे। अतः दरबार में इनका प्रवेश संवत् १६२० के लगभग माना जा सकता है। संवत् १५८५ में इनका जन्म संवत् मान लेने से इस समय में इनकी अवस्था ३५ वर्ष की ठहरती है। अपनी प्रतिभा को विकसित तथा शिक्षा-दीक्षा में कुछ वर्ष व्यतीत करने के बाद एवं अनेक राजाओं के आश्रय में रहने के उपरांत उनकी यह अवस्था कोई अधिक नहीं है।

कहा जाता है कि बाल्यकाल में इन्होंने हिन्दी, संस्कृत तथा तत्कालीन राजभाषा फ़ारसी का अध्ययन किया था। इनके पिता ने अपनी वंश-परंपरा के अनुसार इन्हें काव्य-कला का ज्ञान तथा अभ्यास भी कराया था। किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि आर्थिक परिस्थिति शोचनीय होने पर ये स्थानीय राजा के आश्रय में रहने लगे थे। प्रतिभासंपन्न तो थे ही उनकी प्रसिद्धि भी शीघ्र ही हो गई और इनका जीवन सुखद और संतोषजनक हो गया।[1]

अकबरी-दरबार में बीरबल की प्रवेश सम्बन्धी कई जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। एक जनश्रुति[2] से पता चलता है कि बीरबल बालकाल के बाद तुरन्त ही अकबरी-दरबार में

---

१ राजा बीरबल, पृष्ठ ६६

२ कहा जाता है कि बालक बीरबल के माँ बाप बहुत गरीब थे और उनका घर एक पहाड़ी के नीचे था। बीरबल पहाड़ी के ऊपर चढ़ कर लकड़ियाँ एक रस्सी में बाँधकर घर ले आते थे। एक दिन वह रस्सी भूल गये। लकड़ियाँ इकट्ठी कर लेने पर रस्सी की याद आई। माँ को उन्होंने आवाज दी कि कुत्ते के गले में रस्सी बाँध कर भेज दो। कुत्ते को बीरबल ने पहाड़ी पर बुला लिया और लकड़ियाँ बाँध कर नीचे उतरने लगे। संयोग से अकबर के डेरे उस पहाड़ी के पास लगे थे। उन्होंने बीरबल की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए बालक को अपने पास बुलाया। रास्ते में नाला पड़ता था। वह लकड़ी को उसी प्रकार सिर

पहुँच गये थे किन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि बीरबल इसके पूर्व दूसरे राजाओं के आश्रय में रह चुके थे जो ऐतिहासिक ग्रंथों से प्रमाणित होता है।[१] एक यह जनश्रुति भी प्रचलित है कि काशी में विद्योपार्जन के पश्चात् बीरबल दिल्ली गये। वहाँ उन्होंने कुछ फ़ारसी और अरबी सीखी। इसी अवस्था में उनका एक हकीम से परिचय हुआ जिसने उन्हें निरोग कर राजा टोडरमल से मिला दिया। राजा ने उन्हें योग्य और चतुर देखकर अकबर से भेंट करा दी और अकबर ने प्रसन्न होकर उन्हें दरबार में रख लिया। किन्तु यह किंवदंती भी उपर्युक्त ऐतिहासिक घटना से मेल नहीं खाती, इसलिये असत्य है। संभव है, बीरबल की वाक्‌चतुरता और बुद्धिमत्ता को लक्ष्य में रख कर इन जनश्रुतियों को प्रचलित कर दिया गया हो। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ 'स्मिथ' तथा 'टॉड' के अनुसार बीरबल अकबरी-दरबार में आने के पहले राजा भगवानदास की संरक्षा में थे और राजा भगवानदास ने ही इनको अकबरी दरबार में पहुँचाया।[२] वीरबल रीवां-नरेश के आश्रय में भी रह चुके थे यह 'दरबारे-अकबरी' तथा 'मुन्तखबुत्तवारीख' से ज्ञात होता है।[३] अकबर गुणियों की खोज में रहता

पर रखे हुए उसे पार कर अकबर के पास पहुँच गये। अकबर ने उसकी पीठ ठोंकी और पारितोषिक दिया। किन्तु नाले को पार करने में जब उसे कुछ देर लगी तो अकबर ने उसे फिर बुलाकर उसका कारण पूछा तो उसने निवेदन किया—जहाँपनाह, जब तो मैं हल्का था किन्तु अब कि हुज़ूर ने मेरे ऊपर अपना हाथ रख दिया था जिससे भारी पड़ गया था। अकबर ने बालक की बुद्धिमत्ता और वाकचातुर्य से प्रभावित होकर उसे अपने पास रख लिया।

राजा वीरबल, भाग १, पृष्ठ ३

१ टॉड के कथनानुसार वीरबल आमेर नरेश राजा भगवानदास के आश्रय में थे। बाद में उन्होंने वीरबल को नजर रूप में अकबर के यहाँ भेज दिया।

राजस्थान, भाग २, पृष्ठ ३९०

२ अकबर, पृष्ठ २३७
हिन्दी-लिट्रेचर, पृष्ठ ३५

३ दरबारे-अकबरी, पृष्ठ २९५
मुन्तखवुत्तवारीख, भाग २, पृष्ठ ३४५
अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ २८३

ही था। संभव है केवल बीरबल की ख्याति ही अकबरी दरबार में उनके प्रवेश की कारण हो।

अकबरी-दरबार में प्रवेश करने के कुछ काल बाद ही बीरबल ने बहुत शीघ्र ही अपनी वाक्पटुता तथा प्रत्युत्पन्नमति द्वारा अकबर के हृदय पर अधिकार कर लिया। अपने दरबार के हिंदी-कवियों में सर्व-श्रेष्ठ जानकर ही अकबर ने इन्हें 'कविराय' की उपाधि दी थी, जो 'मलिकुश्शोअरा' (मुल्कुलशोरा) की उपाधि के बराबर थी।[1] ऐसा ज्ञात होता है कि अकबर ने किसी विशेष अवसर पर उनकी कविता से प्रभावित हो यह उपाधि दी थी यद्यपि दरबार के बाहर हिन्दी के महाकवि सूरदास और तुलसीदास वर्तमान थे। अकबर ने बीरबल की योग्यता से प्रभावित होकर पंजाब में नगरकोट के पास एक अच्छी जागीर देकर अमीरों में दाखिल कर लिया था और तत्पश्चात् उनको 'राजा' का खिताब भी दिया। लाहौर के मिर्ज़ा इब्राहिम के भाई मसऊद को पकड़ लाने के उपलक्ष में सम्राट् ने इन्हें 'मुसाहिब दानिशवर' (बुद्धिमान मन्त्री) की उपाधि दी थी।[2] अकबर के राज्यकाल के सत्तरहवें वर्ष में अन्य अफ़सरों के साथ बीरबल हकीम मिर्ज़ा के आक्रमण के विरोध के लिये पंजाब गये।[3] अट्ठारहवें[4] वर्ष में अकबर के साथ ये गुजरात के मोर्चे पर और उन्नीसवें[5] वर्ष बादशाह के साथ ही विहार तदर्थ गये।

मुंशी देवीप्रसाद ने मुल्ला अब्दुलक़ादिर की तवारीख के आधार पर लिखा है कि मुसल्मानों ने कांगड़े के इलाके में बड़ा अत्याचार किया। महामाया का मन्दिर लूट लिया। वहाँ के पुजारियों को मारकर जगह-जगह गोहिंसा की और गाय का खून चमड़े

१ मआसिरुल उमरा, पृष्ठ २४५
तबक़ाते-अकबरी, भाग २, पृष्ठ ३९९
हिन्दी लिट्रेचर, पृष्ठ ३५

२ तबक़ाते-अकबरी, पृष्ठ ३९९
राजा बीरबल, पृष्ठ ७०
मआसिरुल उमरा, पृष्ठ २४४, २४५

३ अकबरनामा भाग २, पृष्ठ ५११

४ " भाग ३, पृष्ठ ६९
" " पृष्ठ १२३

के मोजों में भरकर शहर में फेंका। इस कारण हिन्दुओं में राजा बीरबल की बड़ी बदनामी हुई क्योंकि वही वहाँ के जागीरदार थे। बीरबल को इससे बड़ी लज्जा हुई और फिर इस जागीर का उन्होंने दुबारा नाम तक नहीं लिया। पंजाब की अपनी पुरानी जागीर भी छोड़ दी तथा उसके बदले कड़े और कालिंजर के परगने ले लिये।

'मुन्ताखिबुल तवारीख' से ज्ञात होता है कि रीवां-नरेश अकबर के बुलाने पर भी अभी तक दरबार में उपस्थित नहीं हुए थे। वे उपहारादि अपने बेटों द्वारा दरबार में भेज देते थे बादशाह जब इलाहाबाद में थे तो उसने पास ही रीवां-राज्य पर फौज़ भेजने का विचार किया। रीवां-नरेश का पुत्र वहीं उपस्थित था। उसने प्रार्थना की कि फौज की क्या आवश्यकता है किसी मुसाहिब को भेज दीजिये उसके साथ वे उपस्थित हो जायंगे। बादशाह ने इसके लिये राजा वीरबल को उपयुक्त समझकर भेजा। वीरबल के बांधवगढ़ पहुँचने पर राजा रामचन्द्र ने स्वयं बाहर आकर उनका सत्कार किया और बहुत सम्मान सहित उन्हें अपने महलों में ले गये और तत्पश्चात् उनके साथ बादशाह के पास उपस्थित हुए।[२] वीरबल न्यायप्रिय व्यक्ति थे। उनके इस गुण को लक्ष्य में रख कर अकबर ने उन्हें संवत् १६४० में 'न्यायाधीश' के पद पर भी नियुक्त किया था।[३] इस प्रकार राजा वीरबल अपनी प्रतिभा द्वारा दिन प्रतिदिन उन्नति के शिखर पर चढ़ते गये। दो हज़ारी पद से वे पंचहज़ारी पद पर पहुँच गये थे जो पद साधारण श्रेणी के व्यक्तियों के लिये अनुपलब्ध था। दरबार में उनका यह मान उनके व्यक्तित्व के अनुरूप ही था। अकबर वीरबल को अपने पास से कभी भी अलग नहीं करता था। फ़तेहपुरसीकरी में जहाँ उसने अपना 'दिवानेखास' रखा वहाँ निकट ही राजा बीरबल का महल भी बनवाया था। किसी अन्य दरबारी का महल वहाँ नहीं था। आज भी वीरबल का वह भव्य भवन अकबर बीरबल की प्रगाढ़ मैत्री का स्मरण करा रहा है। केवल बीरबल ही एक ऐसे हिन्दू थे, जिन्होंने अकबर के नवीन धर्म 'दीने-इलाही' का सदस्य बनकर अकबर को इस

१ राजा वीरबल, भाग १, पृष्ठ १

राजा वीरवर, पृष्ठ ५, हिन्दुस्तानी पत्रिका, जनवरी, १९३१

२ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ६२४, ६२५

३ " " " " पृष्ठ ५८५

प्रकार के धार्मिक विश्वास में प्रोत्साहन दिया था।[1] उनका यह सहयोग अकबर की अटूट मैत्री से उद्भूत था। बीरबल की मृत्यु एक दुःखद घटना थी। बीरबल का अधिकांश समय दरबार में ही बीता था। युद्ध के षडयंत्र आदि से वे पूर्ण भिज्ञ नहीं थे। यूसुफज़ई के पठानों के विरुद्ध युद्ध में इन्हें जाना पड़ा। संभव है बीरबल की यह प्रतिष्ठा दूसरे दरबारियों को खटकती हो। अतएव किसी षडयंत्र द्वारा इनको उस मोर्चे पर जाना पड़ा अथवा नियमानुसार यह कहना कठिन है। 'तबक़ाते अकबरी', 'मुन्ताखिबुल तवारीख', अकबरनामा, मुंशियात-अबुल्फ़ज़ल आदि ग्रंथों में इस युद्ध का सविस्तार वर्णन हुआ है।

अकबरनामा से ज्ञात होता है कि राजा बीरबल ने 'स्वात' के मैदान में पहुँच कर पठानों को सख्त सज़ा दी। जो बन्दी बने उन्हें बाहर भेज दिया गया और जिन्होंने सामना किया वे मारे गये। अंत में पठानों के पास केवल कराकुर की घाटी बच रही थी।[2] इससे पता चलता है कि युद्ध का आरंभिक अंश बड़ी सफलतापूर्वक समाप्त हुआ था। किन्तु उसका अंत दुःखद रहा। अबुल्फ़ज़ल ने लिखा है कि कूच के मामले में प्रतिदिन राजा और हकीम में झड़प हो जाती थी। हकीम राजा से द्वेष रखता था। जब शत्रुओं से मुठभेड़ हुई तब भी यह द्वेष बना रहा। जैनखाँ ने उस अवसर पर एक सभा की किन्तु बीरवल उसमें न गये। जैनखाँ स्वयं उनके पास गया और राजा को लेकर सभा में पहुँचा। मंत्रणा तो दूर रही हकीम और राजा में झगड़ा हो गया। जैनखाँ ने दोनों को शान्त किया और एक मन होकर कार्य करने की सलाह दी। किन्तु दोनों ने सुनी-अनसुनी कर दी। इस भेदभाव का पता पठानों के कानों तक भी पहुँच गया।[3] 'मुन्तखिबुल तवारीख' से पता चलता है कि बादशाही फौज़ जब कराकुर घाटी के नीचे पहुँची तो एक व्यक्ति ने सूचना दी कि पठान रात में छापा मारेंगे और इसलिये इस तंग घाटी से दिन ही दिन निकल चलना चाहिये। उस समय दिन ढलने पर था और घाटी तीन-चार मील लम्बी थी। राजा ने जैनखाँ को सूचना भी नहीं दी और लश्कर के साथ कूच कर दिया। उन्हें क्या मालूम कि उनके साथ धोखा किया

१ दीने-इलाही, पृष्ठ २९३

२ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ७२७

३ " " पृष्ठ ७२८

गया है। घाटी में पहुँचे ही थे कि पठानों ने टिड्डी-दल की भाँति आ-आकर हथियार और पत्थर फेंकने आरंभ कर दिये। अंधकार अधिक था। फौज़ रास्ता भूल गई। जो अलग हुआ। वह फिर न मिला। शाही सेना की पराजय हुई। कहा जाता है कि बीरबल जान बचाना चाहते थे किन्तु पकड़कर मार डाले गये। यह घटना माघसुदी १२ शुक्रवार, संवत् १६४२ की है[१]। इस प्रकार राजा बीरबल की मृत्यु परस्पर द्वेष के कारण हुई। अकबर उनका मृत्यु-संवाद सुनते ही चेतनाशून्य हो गया। उसने दो दिन तक भोजन नहीं किया और राज्य के संपूर्ण कार्यों से अवकाश ले लिया तीसरे दिन मरियम मकानी तथा विश्वासपात्र सेवकों के बहुत समझाने-बुझाने पर बीरबल के हत्यारों से प्रतिशोध लेने के लिये जाना चाहा किन्तु अपने हितैषियों की प्रार्थना पर उसने यह विचार छोड़ दिया। बादशाह अकबर यही कहकर संतोष करता था कि बीरबल जीवन से संपूर्ण बंधनों से छूटकर जीवन-मुक्त हो गये थे। लाश न मिल सकने के कारण उनका संस्कार न हुआ किन्तु अकबर का कथन था कि उनके व्यक्तित्व को देखते हुए संस्कार की कोई आवश्यकता न थी, सूर्य देवता के प्रकाश की अग्नि उसके लिये काफी थी।

इस अवसर पर अकबर की मानसिक स्थिति का परिचय 'मुंशियात अबुल्फ़ज़्ल' के उस पत्र से लगता है जिसे उसने गुजरात के सूबेदार नवाब खानखाना को लिखा था जिसका अनुवाद मुंशी देवी प्रसाद ने दिया। इस पत्र का भावार्थ नीचे फुटनोट में दियागया है।[२] इस पत्र से स्पष्ट होता कि अकबर बीरबल के बहुत निकट था और उसको उनकी मृत्यु पर बहुत दुःख हुआ था। केवल अकबर ही नहीं सारे दरबार पर उनकी मृत्यु का विषाद छा गया था। खानखाना बीरबल की मृत्यु से बहुत दुःखी थे उन्हीं की सान्त्वना और प्रबोधपन के लिये अकबर ने संभवतः यह पत्र खान-

१ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ७३०, ७३१

२ वे बड़ी खुशी के दिन थे। प्रत्येक ओर से विजय की सूचना ही आती थी किन्तु जो लश्कर स्वात और बाजोड़ के विजय के लिए भेजा गया था दुःखद रहा। विजय हो ही चुकी थी और पठान पहाड़ियों में छिप गये थे इसी बीच में हमारे सभा के रत्न, हमारे दरबार के स्तंभ, हमारे चतुर मुसाहिब राजा बीरबल इस असार संसार से कूच कर गए। इस दुःसह दुख से हमारी सारी खुशी किरकिरी हो गई। आशा थी कि उनका यह अंत किसी महान् कार्य में होगा। दुनिया धोके की टट्टी है। खुशी के पीछे शोक है और संपत्ति के पीछे संताप। हमारे हृदय में इतना दुःख है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। किन्तु जो उत्पन्न होता है वह मृत्यु

खाना को लिखा था। 'अकबरनामा' की एक घटना पर दृष्टिपात करने से ज्ञात हो जाता है कि अकबर बीरबल को कितना चाहते थे। संवत् १६४० में एक दिन अकबर हाथी लड़वा रहे थे कि एक हाथी जो मनुष्यों के पकड़ने में चतुर था एक पैदल की ओर झपटा और फिर उसे छोड़ कर राजा बीरबल के पीछे पड़ गया। सूंड़ में पकड़कर वह उन्हें खींच ही लेता कि अकबर वेग से घोड़ दौड़ा कर बीच में आगये जिससे राजा के प्राण बच गये। हाथी कई क़दम बादशाह के पीछे भी दौड़ा फिर रुक गया।[1] इस घटना से पता चलता है कि बीरवल का जीवन अकबर के लिये कितना उपयोगी था। अकबर पठानों से बदला लेने के लिये स्वयं जाना चाहता था किन्तु लोगों के मना करने पर(उसने राजा टोडर-मल को शाहज़ादा सलीम के साथ भेजा जिन्होंने लगभग सभी पठानों को बुरी तरह पराजित किया।[2]

बादशाह के दुःख-निवारणार्थ कुछ लोगों ने यह आशा दिलाई थी कि बीरबल की मृत्यु नहीं हुई है। वे युद्ध-भूमि में घायल हो गये थे और उन्हें ढूंढ लाने का बीड़ा भी कई लोगों ने उठाया था। कई लोगों ने अपने को बीरबल के नाम से प्रसिद्ध किया। कहा जाता है कि दो वर्ष पीछे सीठे गाँव के एक ब्राह्मण ने अपने को राजा बीरबल के नाम से घोषित किया। राजधानी में उसे लिवा लाने का प्रबंध किया गया किन्तु वह बीच रास्ते में ही मर गया। बाद में यह खबर उठी कि वीरबल घायल होकर नगरकोट के पहाड़ों पर चले गये हैं और फ़क़ीर बन गये थे। बादशाह को कुछ विश्वास हो चला था कि सम्भवतः बीरबल हार की शर्मिन्दगी से यहाँ न आते हों किन्तु यह बात भी असत्य निकली। फिर यह प्रवाद उड़ा कि वह कालिंजर में छिपे रहते हैं। वहाँ के करोड़ी को

को भी प्राप्त होता है। इसलिए चिल्लाने की अपेक्षा चुप रहना और घबड़ाने से शांति बेहतर है। तुम भी शान्त चित्त हो कर अपने इरादे से ईश्वर के इरादे को मुख्य समझो। तुम ज्ञानी हो। तुम इस दुःखद घटना के पूर्व भी हमारे निज कृपापात्र और सुहृद थे और अब तो तुम स्वयं विचार कर सकते हो कि तुम्हारा होना किस हद तक अनिवार्य है।

राजा वीरबल, भाग १, पृष्ठ १६, १९

१ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ६५४

२ पृष्ठ ७३३, ७३७

३ राजा वीरबल, भाग १, पृष्ठ २२, २४

आज्ञा दी गयी कि वह उन्हें ढूँढ कर राजधानी में भेज दे। करोड़ी ने बीरबल के संदेह में एक आदमी को छिपा रखा था और उस बेचारे को उसने डर के कारण मरवा डाला और बादशाह को लिख दिया कि वह पोशाक आदि से तो अवश्य बीरबल ज्ञात होता था किन्तु अब वह मर गया। इस सूचना के मिलने पर बादशाह ने और शोक! प्रकट किया और करोड़ी को उस अपराध के लिए दंड दिया।

अकबर को अपने जीवन में कभी भी इतना दुःख और अफ़सोस नहीं हुआ था जितना बीरबल की मृत्यु से हुआ।[1] कहा जाता है, अकबर ने बीरबल की मृत्यु पर कुछ सोरठे लिखे थे। उनमें से निम्नलिखित दो अत्यधिक प्रचलित हैं:—

दीन जान सब दीन एक दुरायो दुसह दुख।
सो अब हमको दीन कछु नहिं राख्यो वीरवर॥
पीथल सू मजलिस गई तानसेन सू राग।
हंसबो रमबो बोलबो गयो वीरवर साथ॥

अकबर ने भी व्रजभाषा में भी कुछ छंद लिखे थे जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इस असह्य दुःख के अवसर पर अकबर ने अपने हृदय के उद्गार प्रकट किये हों तो उसे असंभव नहीं कहा जा सकता। किन्तु उपर्युक्त दूसरे छंद की घटनाएँ कुछ सन्दिग्ध हैं। यदि इसका यह अर्थ है कि पृथ्वीराज (पीथल) और तानसेन की सत्संगति से उसका विछोह हो गया था और अब बीरबल की मृत्यु पर उसकी (अकबर) सारी प्रसन्नता, आनंदादि लुप्त हो गये तो इसमें काल-दोष आ जाता है क्योंकि पृथ्वीराज संवत् १६५७ तक जीवित थे।[2] यदि यह अर्थ लिया जाय कि बीरबल की मृत्यु पर अकबर के जीवन में पीथल की सत्संगति और प्रेम की कोई उपयोगिता ही नहीं रह गई थी क्योंकि उसके समस्त सुखों का अंत हो गया था, तो ठीक नहीं जान पड़ता है। अतएव इसे अकबर कृत नहीं माना जा सकता। आचार्य केशवदास ने बीरबल की मृत्यु का वर्णन एक सवैये में किया है:—

पाप के पुंज पखावज केशव शोक के शंख सुनै सुखमा में
झूठे की झालर झांझ अलोक की आवाझ यूथन जानी जमा में

---

१ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ७३३ (फुट नोट)

२ डिंगल म वीररस, पृष्ठ ४५

भेद की भेरि बड़े डर के उफ़ कौतुक भो कलि के कुरमा में
जूझत ही बलवीर बजे बहु दारिद के दरबार दमामें ॥[1]

पारिवारिक जीवन

'अकबरनामा' में वीरबल के पुत्रों का उल्लेख हुआ है। उनके बड़े पुत्र का नाम 'लाला' था। बीरबल के मृत्यु के बाद 'लाला' ने अपना व्यय आय से बहुत अधिक बढ़ा लिया था और इतनी आय जब दरबार से न हुई तो उसने सन् १६०१ के अन्त में बादशाह कों मुक्ति का प्रार्थनापत्र देकर विदा चाही और बादशाह ने उसकी इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया।[2] किन्तु 'इक़बालनामा' से पता चलता है कि लाला बादशाह की नौकरी से त्यागपत्र देकर इलाहाबाद शाहज़ादा सलीम के पास चला गया था। राजा वीरबल के एक पुत्र का नाम हरमराय मिलता है।[3]

कहा जाता है कि वीरबल का विवाह काल्पी के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण-वंश में हुआ था। बीरबल काल्पी सरकार के निवासी थे। इसका उल्लेख पहले हो चुका है। उनके जीवन का आरंभिक काल वहीं बीता था। अतएव यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनका विवाह काल्पी के किसी घराने में ही हुआ होगा।

वीरबल की पुत्री के विषय में, जनश्रुति है, कि वह बहुत चतुर और बुद्धिशालिनी थी तथा अवसर-अनवसर बीरबल की सहायता करती थी। इसकी पुष्टि 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' से होती है। 'श्री गुसाईं जी की सेवक बीरबल की बेटी तिनकी वार्ता' में उसकी वैष्णव-भक्ति और बुद्धिमता का वर्णन हुआ है। वीरबल की बेटी श्री गुसाईं विट्ठलनाथ की सेविका थी और कथा सुनने के लिये प्रति दिन उनके पास जाती थी।[4]

१ कविप्रिया, छंद संख्या ७७, पृष्ठ ४७

२ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ १२००

३ अकबरी दरबार, भाग २, पृष्ठ २५६

४ "एक दिन श्री गुसाईं जी आगरे पधारे हतै वीरबल की बेटी कूं श्री गुसाईं जी के दर्शन साक्षात् पूर्णपुरुषोत्तम के भये जब वीरबल की बेटी श्री गुसाईं जी की सेवक भई और नित्यक सुनवे कुं श्री गुसाईं जी के पास जाती और कथा में जो सुनती सो मन में लिख राखती। एक अक्षर भूलती न हती और दिवस रात वा कथा को अनुभव करत हुती एक दिन बीरबल कूं पादशाह ने पूछा के साहब को मिलनों कैसे होवे है ये निश्चयकर के हमकुं कहो तब वीरबल

इस वार्ता से यह भी स्पष्ट होता है कि अकबर बीरबल के साथ श्री गुसाईं विट्ठलनाथ से मिला था। वह घटना लगभग संवत् १५७६ की होगी जब अकबर धार्मिक सत्यता की खोज में संलग्न था और अनेक साधु, संतों, महात्माओं से मिलकर जीवन के वास्तविक तत्व को जानना चाहता था।

बीरबल और वैष्णव-धर्म

बीरबल की उपलब्ध रचनाओं में ऐसे अनेक छंद मिलते हैं जिनमें कृष्ण की बाल-लीलाओं, मुरली आदि का वर्णन हुआ है। वल्लभ-संप्रदाय में कृष्ण की बाल-लीला का अत्यधिक महत्व है और वही रूप उस संप्रदाय के भक्तों का उपास्य है। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में कई ऐसी कथाएँ मिलती हैं जिनसे पता चलता है कि बीरबल वल्लभ-संप्रदाय के अनेक प्रभावशाली भक्त-कवियों और महात्माओं के सम्पर्क में आये थे। 'बीरबल की बेटी की वार्ता' के आधार पर पहले कहा जा चुका है कि बीरबल अकबर के साथ गोस्वामी विठ्ठलनाथ से मिले थे। उक्त वार्ता ग्रंथ की 'रूपमंजरी' वार्ता में आया है कि अकबर 'अष्टछाप' के प्रमुख कवि नंददास से भी मिला था। बीरबल भी इसी संबंध में नंददास से मिले थे।[1] इसी वार्ता ग्रंथ में चाँपाभाई अधिकारी के संबंध में लिखा है कि वे इनके साथ वल्लभ-संप्रदाय के प्रतिष्ठित पद पर थे। एक बार गुसाईं जी उनके साथ गुजरात गये थे बीरबल उसी अवसर पर चाँपाभाई से मिले थे।[2]

ने सब पंडित और महतन सुं पूंछी परन्तु विनकी कही कछु नजर में आई नहीं तब बहुत चिंतातुर भये..... जब बेटी ने कही याको उत्तर श्री गुसाईं जी देवेंगे जब बीरबल श्री गोकुल आए। श्री गुसाईं जी कुं बीनती करी तब श्रीगुसाईं जी ने आज्ञाकरी जो उत्तर पादशाह कुं एकान्त में देऊँगो। जब बीरबल ने पादशाह सों कहीं तब पादशाह श्री गोकुल आये बीरबल हुं संग आये........." दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता, पृष्ठ १३१, १३२

१ तब पृथ्वीपती ने विचार कियो जो आपने ब्रज में जानो और नंददास जी कुं मिलनो तब पृथ्वीपति सह कुटुम्ब ब्रज में आये गोवर्धन में डेरा किये और नंददास जी के पास बीरबलकुं पठाये और कही जो नंददास जी कूं पूछ आवो अब हम तुमकूं मिलवे आवें के तुम हमकुं मिलवे आवोगे तव नंददास जी ने कही हम परसूं के दिन मानसी गंगा स्नान करवें कुं आवेंगे सो उहां बादशाह कुं मिलेंगे..................

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, रूप मंजरी की वार्ता, पृष्ठ ४६२

२ एक समय श्री गुसाईं जी गुजरात पधारे रस्ता में बीरबल मिले तब बीरबल ने

एक अन्य 'साहूकार के बेटा की बहू' वार्ता से पता चलता है कि श्री गुसाईं जी ने एक तुर्क और एक हिन्दू बहू के न्याय का भार अपने ऊपर लिया था। इसी सम्बन्ध में बीरबल श्री गुसाईं विट्ठलनाथ से मिले थे।[1] इस प्रकार इन वार्ताओं से स्पष्ट होता है कि बीरबल कई बार वल्लभ-मत के संचालकों तथा अधिकारी-वर्ग के संपर्क में आये थे। इन संपर्कों का यथेष्ट प्रभाव बीरबल के व्यक्तिगत जीवन तथा धार्मिक आचार-विचार पर पड़ा और उक्त वार्ता-ग्रंथ की 'छीत स्वामी की वार्ता' से बीरबल की वैष्णव-धर्म में आस्था का पूर्ण प्रमाण भी मिल जाता है जिसमें लिखा है कि छीत-स्वामी बीरबल के पुरोहित थे।[2] इसी वार्ता में आगे दिया है कि अकबर छिपे ढंग से जन्माष्टमी के अवसर पर गोकुल गया था। बीरबल पहले ही अकबर की आज्ञा लेकर उस अवसर पर गोकुल पहुँच गये थे। उत्सव की उस भीड़ में श्री गुसाईं विट्ठलनाथ ने अकबर को पहचान लिया।

चाँपाभाई सुं पूंछी जो श्री गुसाईं जी शीतकाल में क्युं परदेश पधारे हैं तब चाँपाभाई ने कही जो करज बहुत है तब बीरबल ने कही जितनो द्रव्य चहिए इतनो तैयार है श्री गुसाईं जी कुं पाछे श्री गोकुल पधराय ले जावो............

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, चाँपाभाई अधिकारी की वार्ता, पृष्ठ ४७३

१ .....तब वा तुरुक कुं और वा बहु कुं बुलायो और सब समाचार पूछें और सुन के पृथ्वीपति कुं खबर कराई जो हम याको न्याय पंदरे दिन में कर देवेंगे ये सुनके पृथ्वीपति प्रसन्न भयो और कही जो एक महिना के भीतर जो श्री गुसाईं जी करें सो न्याय मेरे को कबूल है ऐसे कह के बीरबल दीवान कुं श्री गोसाईं जी के पास पठायो सो बीरबल ने आय के वीनती करी...........

साहूकार के बेटी की बहू की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ १६३

२ सो वे छीत स्वामी बीरबल के पुरोहित हते सो वे बीरबल के पास वसौंधी लेवे कुं गये तब सवार के समैं छीत स्वामी ने यह पद गाए 'जै वसुदेव किये पूरण तप सोई फल फलित श्री वल्लभ देह' ये पद सुनके बीरबल बोले जो मैं तो वैष्णव हूं परन्तु ये बात देशाधिपति सुनेंगे तो तुम कहा जवाब देओगे वे तो मलैच्छ हैं.....जब ये बात देशाधिपति ने सुनी तब बीरबल सुं पूछो जो तुम्हारे पुरोहित क्यों रिसाय गये....तब देशाधिपति ने कही....ये बात विचार करते तुमारे पुरोहित की सब बात सांची है सो तुमने क्यों विचार न कर्यो......

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, छीतस्वामी चौबे, तिनकी वार्ता, पृष्ठ २२,

फिर लौटने पर अकबर ने बीरबल से पूछा कि तुमने क्या दर्शन किया ? बीरबल ने उत्तर दिया श्री गुसाईं जी पालना पर नवनीत प्रिया को झुला रहे थे। अकबर ने कहा—यह झूठ है, श्री गुसाईं जी को नवनीत प्रिया जी पालना पर झुला रहे थे। तुमको इस स्वरूप का ज्ञान इसलिये नहीं हुआ क्योंकि तुमको अपने गुरु छीतस्वामी में प्रीति नहीं है।[1] अतएव इस वार्ता से यह स्पष्ट है कि छीत स्वामी बीरबल के गुरु थे और उत्सवों पर वे श्री नवनीत-प्रिया जी के दर्शन के लिये जाते थे और इसी कारण अकबर का संपर्क भी वल्लभ मताधिकारियों से रहा करता था।

राजा बीरबल की संध्योपासना की अनेक वस्तुएँ पटना के संभ्रांत सेठ राय बहादुर राधाकृष्ण जालान के यहाँ मिली हैं जिनका विस्तृत वर्णन इतिहासवेत्ता डॉ० वेणी प्रसाद ने एक निबंध 'राजा बीरबल' में दिया है। पंचतन्त्र, ताम्रकुन्ड, आचमनी, नृत्य-गोपाल की मूर्ति आदि वस्तुओं के चित्र इस लेख में दिये हुए हैं जिनसे बीरबल की धार्मिक भावना पर यथेष्ठ प्रकाश पड़ता है। अतः इतना निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि बीरबल वैष्णव-मत के अंतर्गत कृष्ण-भक्ति शाखा के उपासक थे और वल्लभ-संप्रदाय से इतना लगाव होने के कारण यही जान पड़ता है कि वे कृष्णाश्रयी शाखा में वल्लभ-मत में विशेष आस्था रखते थे। बीरबल अकबर द्वारा स्थापित नवीन धार्मिक मत 'दीनेइलाही' के सदस्य भी थे जिस मत को इन्होंने अपनी धार्मिक भावनाओं से प्रभावित किया था।

---

१ एक दिन बीरबल देशाधिपति सों रजा ले के श्री गोकुल में जन्माष्टमी के दर्शन कुं आयो पाछे वेष पलटाय के देशाधिपति हूं छाने छाने आयो तब जन्माष्टमीके पालना क दर्शन करे। मनुष्य की भीड़ में तब देशाधिपति कुं श्री गुसाईं जी बिना और कोई ने पहिचान्यो नहीं तब छीतस्वामी कीर्तन करते हुए और श्री गुसाईं जी श्री नवनीतप्रिया जी कुं पालना झुलवाते हते....तब देशाधिपति आगरे आये फेर दूसरे दिन बीरबल हुं आए तब देशाधिपति ने बीरबल सूं पूंछी जो कहा दर्शन किए तब बीरबल ने कही श्री नवनीतप्रिया जी पालना झूलते हते और श्री गुसाईं जी झुलावते हते। तब देशाधिपति ने कही ये बात झूठी है श्री गुसाईं जी पालना झूलते हते और श्री नवनीतप्रिया जी झुलावते हते मोहुं ऐसे दर्शन भए हैं....तब बीर-बल ने कही मोकुं ऐसे दर्शन क्यूं नहीं भये तब देशाधिपति ने कही तुमकूं गुरु के स्वरूप को ज्ञान नहीं है.....ऐसे न सो तुमरी प्रीति नहीं है......

दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता, छीत स्वामी चौबे तिनकी वार्ता, पृष्ठ २३, २५

कहा जाता है कि राजा बीरबल की मृत्यु के अनन्तर अकबर ने उनके बड़े पुत्र से जो संस्कृत-विद्या का बड़ा पंडित था, पूछा कि राजा के साथ कितनी रानियाँ सती हुई। उसने उत्तर दिया—बहादुरी, दातारगी और बुद्धिमत्ता, ये तीन तो सती हो गई और चौथी नेकनामी शेष रह गई। बादशाह ने इस उत्तर को बहुत पसन्द किया और कहा—सच है इसको रहना ही चाहिये था। इसके रहने में कोई दोष नहीं, नहीं रहती तो दोष था।[1] उपर्युक्त वार्तालाप द्वारा बीरबल के गुणों पर प्रकाश पड़ता है। बीरबल की दानशीलता का परिचय कई सूत्रों से मिलता है। यह प्रसिद्ध है कि बीरबल ने एक बार आचार्य केशवदास को एक सवैये पर छः करोड़ दाम की हुंडियाँ दे दी थीं। ये केशवदास ओरछा-नरेश इन्द्रजीत के आश्रय में रहते थे और अकबर के पास किसी कार्य से गये थे और तभी रुपये की आवश्यकता होने पर राजा बीरबल से मिले थे किन्तु बीरबल ने भीतर से कहला भेजा कि उन्हें अजीर्ण है बाहर नहीं आ सकते। केशवदास ने यह सुनकर निम्न-लिखित दोहा उनके पास लिखकर भेजा :—

जस जाच्यो सब जगत को भयो अजीरण तोय
अपजस की गोली दऊं तवकाले सुध होय ॥[2]

बीरबल इसको पढ़ते ही बाहर चले आये और केशवदास ने उसी अवसर पर निम्न-लिखित सवैया पढ़ा जिसका भाव है—विधाता ने तीनों लोकों तथा विविध प्रकार की रचना कर बीरबल जैसे व्रतधारी, वीर पुरुष की रचना की और उनकी योग्यता के कारण उन्हीं को अपना 'करतारपना' देकर स्वयं सृष्टि-रचना से अवकाश ग्रहण कर लिया :—

नाक रसातल भूधर सिंधु नदी नद लोक रचे दिसि चारी
केसव देव ।अदेव रचे नर देव रचे रचनान निवारी
रचि के नृपनाथ बली बलवीर भयो कृतकृत्य बड़ो व्रतधारी
दे करतार पनो कर तोहि दई करतार दुहूँ करतारी ॥[3]

कहा जाता है कि बीरबल ने इसी सवैये पर प्रसन्न होकर अपने शाली रुमाल में बंधी हुई छः करोड़ दाम की हुंडियाँ केशवदास को भेंट कर दी थीं। यद्यपि उक्त दान का

१ राजा बीरबल, भाग २, पृष्ठ १८

२ राजा वीरबल, पृष्ठ २६

३ कविप्रिया, केशवदास, पृष्ठ ४७, छंद ७८

कथन अत्युक्तिपूर्ण है फिर भी इससे बीरबल की दानशीलता का परिचय तो मिलता ही है।

अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि गङ्ग ने राजा बीरबल के गुणों की प्रशंसा कई छन्दों में की है। राजा बीरबल ने सब हाथी-घोड़ों का दान कर दिया। केवल एरावत और सूर्य के रथ के दोनों घोड़े ही बच रहे थे। सारे स्वर्ण को भी दे डाला केवल सालिग्राम में लगा हुआ सोना ही शेष रहा :—

> एक बचो सुरराज हथीय सुता बल बाडव और न होनो
> और सबै बकसै बलवीर वचे रवि के रथ हय दोनों
> गंग कहै कर उन्नत देखि सुमंगन मौज गुनी तजि मोनो
> लंक सुमेरु लुटाई दई है रह्यो मुख सालिगराम को सोनो ॥[1]

निम्नलिखित छंदों में गंग ने बीरबल की दानशीलता, प्रतिष्ठा तथा मजलिस की प्रशंसा मुक्त कंठ से की है :—

> दान कृपान सुजान पनौ तू जगत को जीतब जीतन आयौ
> गंग कहै सब साहिबी के अंगते ही मनो पुरहूत पठायौ
> वीरवर नृप तेरी बराबरि और विरंचि न दूजो बनायौ
> साहू के सोच सिवाहू के सूल सचीहू के साथ सपूत न जायौ ॥[2]

बीरबल की उस मजलिस का वर्णन सरस्वती भी नहीं कर सकती, कहते हुए गंग ने निम्नलिखित ढंग से इसका वर्णन किया है :—

> मालती शंकुतला सी को है कामकंदला सी हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरे
> ऐल फैल फिरत खवास खास आस पास चोवन की चहल गुलाबन की गागरे
> ऐसी मजलिस तेरी देखी राजा वीरवर गंग कहै गूंगी है के रही गिरा गरै
> महि रह्यो मागधनि गीत रह्यो ग्वालियर गोरा रह्यो गोरना अगर रह्यो आगरै ॥[3]

एक छंद का भाव है, यश कैलाश-पर्वत से चलकर कहीं जाते हुए गंगा-सागर के पास कवि को मिल गया जिसने बीरबल के प्रताप का बखान किया और अपना गुण प्रकट करते हुए बीरबल के प्रति अपनी दासता प्रकट की :—

---

१ देखिए, गंग के छंद, प्रस्तुतत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३६

२ " " " " " छंद संख्या १२५

३ दखिये गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३९

आवत हुतो शिवसैल ते गिरीश जाचे मिल्यो हुतो मोहि जहां सागर सगर का
कविन की रसना की पालकी में बैठ्यो देख्यो साथ सोहे रावरे प्रताप तेज वर को
गंग हम पूछी तुम को हो कित जैहो तब हमसो संदेसो कह्यो बड़े थर को
जस मेरो नाम मोहि दसो दिसकाम मेरो कहियो प्रनाम हों गुलाम वीरवर को ॥[1]

इस प्रकार गंग ने बीरबल की उदार मनोवृत्ति और प्रतिष्ठा का सुन्दर वर्णन किया है। बीरबल के परवर्ती कवियों ने भी उनकी प्रशंसा में कई छंद लिखे हैं। चिन्तामणि कवि ने निम्नलिखित शब्दों में राजा वीरबल के दान का उल्लेख किया है :—

डर कै विडर ते न डर के रतन खान लंका दीप ढरकै फणीन्द्र फण फरके
वर कै वारि ईश खटकै खजानो श्री कै श्री निवास सोई रहे सिन्धु मध्य करके
पर कै पवंग उड़ सूरज को कै विमान जब वीरबल दान घटै वर करके
चिन्तामणि चटके सुमेरगिरि सरके कुबेर जिमि करके सुरेश जिय भरके ॥[2]

कवि होलराय ने भी वीरबल की दानशीलता के गुणों का परिचय दिया है। दिल्ली जैसा राजदरबार, आगरे के जैसा नगर खानों में खानखाना, वज़ीरों में टोडर-मल, राजाओं में राजा मान के जैसा होना दुर्लभ है। गंग के समान गुणी, तानसेन के समान संगीतज्ञ, वीरबल के समान दानी और सारे पृथ्वीमंडल पर जलालुद्दीन अकबर के जैसा सम्राट् का पाना कठिन है :—

दिल्ली से न तखत वखत मुगलन से न ह्वै है न नगर कहूँ आगरे नगर से
खानन में खानखाना राजन में राजामान ह्वै है न वजीर कहूँ टंडन टोडर से
गंग से न गुनी तानसेन सो न तानधारी कानूनगो बूचन न दाता बीरबर से
सात दीप के मंझार सात हूँ समुद्र पार ह्वै है न जलालदीन गाजी अकबर से ॥[3]

किसी अज्ञात कवि ने भी वीरबल के इस गुण की प्रशंसा की है :—

वरवीर करोरि दई तिन्हको जिहिं पाए नहीं कबहूँ दस कोड़े
रंकन संपति सिन्धु समथि कीए द्विज पुंजनि वाजि सगोड़े

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११८

२ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त छंद

३ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ३६९

इस प्रकार इन कवियों की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वीरबल में दानशीलता का गुण प्रधान था और इसी कारण इनकी प्रसिद्धि और भी हो गई थी। यह शंका संभवतः हो सकती है कि वीरबल अपनी इस दानशीलता को निबाहते कैसे होंगे। छः करोड़ की हुंडियों का दान न सही फिर भी विस्तृत दान सीमित आय के व्यक्ति के लिये संभव नहीं। हो सकता है कि इनके बड़े दान अतिरंजित रूप में प्रचलित हो गये हों किन्तु वीरबल दानी थे इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उस शंका का समाधान 'तवारिख मुन्ताखिबुल लुबाब' के आधार पर उल्लिखित मुंशी देवीप्रसाद के कथन से हो जाता है कि वीरबल को अपनी प्रत्युत्पन्नमति तथा सूझबूझ के कारण बादशाह उन्हें सदैव मूल्यवान वस्तुएँ भेंट करते रहते थे। वीरबल का बादशाह पर बहुत प्रभाव था।[1] इस प्रकार वीरबल के पास लाखों की संपति सदैव बनी रहती थी।

वीरबल केवल दानशील ही न थे। उनकी कर्तव्यपरायणता तथा न्यायपटुता भी बढ़ी-चढ़ी थी जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। वीरबल की इन्हीं विशेषताओं के कारण अकबर उनकी ओर आकृष्ट था। राजकीय जीवन की शुष्कता में वीरबल की हास्योद्दीपक उक्तियाँ और वाग्विदग्धता ने अकबर को उनके बहुत निकट कर दिया था। अकबर और वीरबल के इसी निकट सम्बन्ध के फलस्वरूप बहुत से चुटकुले चल पड़े हैं। इन चुटकुलों के संग्रह भी कई ग्रंथों में स्वतंत्र रूप से मिलते हैं। 'अकबर वीरबल विनोद', 'वीरबल के चुटकुले', 'अकबर-वीरबल' आदि ऐसे ही संग्रह हैं। इन चुटकुलों का आधार केवल जनश्रुति है किन्तु इन कहानियों द्वारा वीरबल की बुद्धिमत्ता, वाक्चातुर्य और प्रत्युत्पन्नमति का परिचय मिलता है। इस सम्बन्ध में डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी की निम्नलिखित पंक्तियाँ ठीक जान पड़ती हैं[2] :—

'कविताओं के अतिरिक्त वीरबर की पहेलियाँ और चुटकुले भी आजकल चल रहे हैं। यद्यपि वे हँसमुख, खुशमिजाज, मजाकपसंद थे किन्तु उससे यह नहीं सिद्ध होता कि वे ही उन सब चुटकुलों के जन्मदाता हैं जो उनके नाम से आजकल चल रहे हैं। कौन जाने उनका दूसरों के साथ कैसा मजाक रहता था किन्तु कम से कम बादशाह के साथ तो उनका विनोद यह परिहास बहुत ही कम और शिष्टतापूर्ण रहता होगा। कारण यह है कि अकबर स्वयं बड़ा गम्भीर, मितभाषी और गुरुवृति का पुरुष था। अतएव

---

१ राजा बीरबल, भाग २, पृष्ठ २९

२ राजा बीरबल, हिंदुस्तानी पत्रिका, पृष्ठ १४

वीरबर को विदूषक अथवा भांड़ समझना असंगत और अन्यायमूलक होगा। उनकी कविताओं में भी भड़ैती की पुट नहीं पाई जाती। ...वीरबल की वाकूचतुरता का आश्रय लेकर मसखरों ने उनके नाम से तरह तरह के भले बुरे मजाक गढ़ डाले हों तो कोई आश्चर्य नहीं।" मुन्शी देवीप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'राजा वीरबल' में अकबर-वीरबल सम्बन्धी कुछ कहानियाँ दी हैं। संभव है अकबर की कुछ समस्याओं की पूर्ति वीरबल ने किसी समय की हो क्योंकि समस्या-पूर्ति सम्बन्धी कुछ छंद उसकी रचनाओं में उपलब्ध होते हैं।

तानसेन

हिन्दी-साहित्य के कुछ ही इतिहासकारों ने अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन को कवि के रूप में स्वीकार किया है। हिन्दी-साहित्य के प्राचीन अन्वेषक मिश्र-बंधु[1], ठा० शिवसिंह सेंगर,[2] एडविन-ग्रीव्ज[3] तथा एफ़० ई० के[4] ने तानसेन का परिचय अपनी रचनाओं में दिया है। हिन्दी-साहित्य के अधिकांश लेखकों-पं० रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० श्यामसुन्दर दास, डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' आदि ने तानसेन का उल्लेख अपने इतिहास-ग्रन्थों में नहीं किया है। तानसेन को केवल एक संगीतज्ञ कहकर कला के संकुचित क्षेत्र में सीमित रखना उनके महत्व को कम करना होगा। 'तुजुक जहाँगीरी में जहाँगीर ने तानसेन को अपने पिता के दरबार का सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ और उच्च कोटि का कवि होने का उल्लेख किया है।[5] तानसेन की उपलब्ध रचनाओं में काव्य-सौष्ठव और भाषा-लालित्य का पूरा परिचय मिलता है। 'अष्टछाप' तथा अन्य कई भक्त-कवियों की दृष्टि

---

१ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

३ ए स्केच आव् हिन्दी लिट्रेचर

४ हिन्दी लिट्रेचर, पृष्ठ ३६

५ Of these poets the chief was Tansen Kalawant who was without a rival in my father's service (in fact there has been no singer like him in any time or age). In one of his compositions he has likened the face of a young man to the sun and the opening of his eyes to the expanding of the Kanwal and the exit of the bee. In another place he has compared the side glance of the beloved one to the motion of the Kanwal when the bee alights on it.

Tuzuk-Jahangiri, Volume I, page 413.

काव्य-रचना की ओर नहीं थी। भक्ति-भाव का प्रदर्शन उनका प्रधान लक्ष्य था और काव्य-रचना गौण। किन्तु आज उन्हीं कवियों की रचनाएँ हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। इसी प्रकार तानसेन उच्चकोटि के संगीत-कलाकार थे और अपने पदों द्वारा संगीत-कला का प्रदर्शन उनका मुख्य ध्येय था तथा काव्य-रचना गौण। किन्तु उनके पदों की भाव-सुषमा तथा भाषा-सौन्दर्य को दृष्टि में रखते हुए उन्हें हिन्दी के कवि के रूप में भी स्वीकार किया जाना चाहिये। उनकी सांगीतिक रचना हिन्दी-काव्य की दृष्टि से महत्वशाली है। ऐसा ज्ञात होता है कि तानसेन के संगीत-गुण की प्रशंसा ने उनके उच्च कवित्व-गुण को धूमिल कर दिया था। प्रसिद्ध भाषा-तत्त्ववेत्ता डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने तानसेन के हिन्दी-कवि के रूप का पूर्ण समर्थन किया है।[१]

तानसेन के इसी कवि-रूप का अकबरी-दरबार के अन्य प्रसिद्ध कवियों के साथ ववेचन करना लेखक का ध्येय है और इसीलिये उन कवियों की जीवनी के साथ यहाँ पर तानसेन का जीवन-चरित भी प्रस्तुत किया जा रहा है। तानसेन उन व्यक्तियों में थे जिनकी कीर्ति श्री आज भी भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली हुई है। तीन सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं किन्तु उनकी संगीत-कला की ख्याति अक्षुण्य है। इतने बड़े कलाकार के जीवन की कई घटनाएँ आज भी संदेहात्मक बनी हुई हैं। उनके जीवन की केवल कुछ बातें ही ऐतिहासिक ग्रन्थों, कवियों की रचनाओं और कवि के आत्म-चारित्रिक उल्लेखों से प्रमाणित होती हैं। विश्वस्त सूत्रों के अभाव में इनके जीवन के कुछ तथ्यों के निर्धारण के लिये अनेक प्रचलित जनश्रुतियों का भी आश्रय लेना पड़ता है। यहाँ इन्हीं आधारों पर तानसेन की जीवनी पर विचार किया जायगा।

तानसेन के जन्म-स्थान के विषय में किसी भी इतिहास-लेखक ने कुछ भी नहीं लिखा है। उनकी क़ब्र ग्वालियर में अब भी मौजूद है। वहीं पर तानसेन की क़ब्र की बगल में उनके गुरु गौस मुहम्मद की क़ब्र भी पाई जाती है। संभव है, तानसेन की जन्मभूमि ग्वालियर ही हो और वहीं पर बाल्यावस्था में गौसमुहम्मद से उनका परिचय हुआ हो। एक किंवदन्ती[२] से पता चलता है कि तानसेन वेहट गाँव में गौसमुहम्मद की

---

१ नेशनल फ्लैग एंड अदर एसेज़, तानसेन, पृष्ठ ७७

२ आँधी जोरों से चल रही थी। रिमझिम रिमझिम पानी बरस रहा था। एक व्यक्ति वगपूर्वक चला जा रहा था...वह चलता ही गया आखिरकार वह एक साधुओं की टोली के पास पहुँचा। एक साधु जो वेशभूषा से मुसलमान दिखाई देता था,

दुआ से उत्पन्न हुए थे। बचपन में इनका नाम 'तन्नू' और उनके पिता का नाम 'मकरन्द पांडे' था। हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने तानसेन को ग्वालियर-निवासी और उनके पिता का नाम 'मकरन्द पांडे' लिखा है।[1] कुछ विद्वानों ने इनका नाम त्रिलोचन मिश्र भी दिया है और इसी आधार पर इन्हें तन्ना मिश्र के नाम से भी कहा जाता है।

जन्म-काल

शिवसिंह सेंगर ने तानसेन का जन्म संवत् १५८८ दिया है परन्तु किसी प्रामाणिक आधार का उल्लेख नहीं किया है।[2] इसी तिथि को हिन्दी के अन्य इतिहासकारों ने भी अपना लिया है। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने तानसेन की जन्मतिथि संवत् १५७८ मानी है। 'अकबरनामा' से स्पष्ट होता है कि तानसेन संवत् १६१६ में रींवा

झोपड़ी के बाहर लकड़ी की चौकी पर बैठा था...आगन्तुक व्यक्ति पीर साहब के पैरों पर गिर पड़ा...पीर साहब ने उससे पूछा क्या चाहते हो आगन्तुक ने कहा, मैंने कई देवी देवताओं की मानताएँ की हैं पर मेरी मुराद पूरी नहीं हुई...मैं निःसंतान हूँ। पीर साहब को इस पर तरस आ गया और कहा जा तेरे घर पुत्र होगा और ऐसा पुत्र होगा जिसका नाम इस दुनिया में अमर हो जाएगा पीर साहब ग्वालियर के सुप्रसिद्ध पीर गौस हजरत थे और आगन्तुक मकरंद पांडे। पीर साहब की दुआ से मकरन्द पांडे के घर एक वर्ष बाद पुत्र हुआ। बेहट गाँव में बड़ी धूमधाम हुई...बच्चा बड़ा हुआ पर वह बोल न सकता था। बच्चे का नाम तन्नू रखा गया था। तन्नू बढ़ते बढ़ते आठ वर्ष का हुआ पर वह फिर भी गूंगा ही रहा।... एक दिन कुछ साधुओं की टोली गाँव में आई। मकरन्द पांडे तन्नू को लेकर साधु मंडली में गए। साधु महाराज ने आज्ञा दी 'पास ही में जो शिव जी का मन्दिर है उसमें जाकर प्रतिदिन ताजा दूध उस मूर्ति पर चढ़ाया करो...' एक दिन बरसात में पिता पुत्र दोनों मन्दिर में पहुँचे। दैवयोग से बिजली चमकी, मंदिर काँप उठा। तन्नू डर से काँप उठा उसकी चीख निकल गई। पांडे की साधना पूरी हुई। अब तन्नू बोलने लगा।

अमर कलाकार तानसेन, विलावल अंक, संगीत कला, पृष्ठ ५८, ५९

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

मिश्र बंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

दरबार से अकबरी दरबार में आये थे।[1] इस घटना का एक तत्कालीन चित्र भी उपलब्ध है जिसमें तानसेन पूर्ण युवा दिखाये गये हैं। यदि सेंगर द्वारा उल्लिखित तिथि मान ली जाय तो उस समय तानसेन २७ वर्ष के ठहरते हैं और डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या[2] के मत से इस अवसर पर तानसेन की अवस्था ४१ वर्ष की आती है जो चित्र को देखने से असंभव प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त तानसेन का एक दूसरा चित्र भी उपलब्ध होता है जिसमें तानसेन तानपुरा लिये हुए मजलिस के बीच में उपस्थित हैं। संवत् १५८८ जन्मतिथि मान लेने से इस अवसर पर उनकी अवस्था चित्र से मेल खाती है। इससे यही अनुमान निकलता है कि इनका जन्म १५८८ संवत् के लगभग ही हुआ होगा। तानसेन प्रतिभाशाली व्यक्ति थे और सुशिक्षा के कारण बहुत शीघ्र अपनी कला में निपुण हो गये थे। ३१ वर्ष की अवस्था में उनकी ख्याति हो गई थी और तभी अकबर ने रीवां-नरेश के पास तानसेन को बुलाने के लिये अपने आदमी भेजे थे।

जाति

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों और किंवदन्तियों के आधार पर पहले बताया जा चुका है, तानसेन ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए थे। 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में तानसेन की जाति के विषय में लिखा है—'सो तानसेन बड़ी जाति वारे हते।'[3] बड़ी जाति से द्विज का संकेत मिलता है किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि तानसेन के अपने धर्म-परिवर्तन के कारण वार्ताकार ने संकोचवश उनकी ब्राह्मण-जाति का स्पष्ट उल्लेख न कर उन्हें केवल बड़ी जाति /का ही बताकर संतोष कर लिया है। तानसेन की निम्नलिखित पंक्तियों से उनके ब्राह्मण-वंश का होने पर प्रकाश पड़ता है :—

> जै जै कर पूजो घोला गढ़ की रानी ने
> पान सोपारी ध्वजा नारियल पहले भेंट भवानी ने
> तेल फुलेल अरगजा अंबर ले चढ़ावत।वाक्‌वाणी ने
> तानसेन यह प्रसाद मांगत दीजै बुध और वानी ने।

---

२ अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ २७९, २८०

३ नेशनल फ्लैग एंड अदर एसेज़, पृष्ठ ८१

४ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, तानसेन की वार्ता, पृष्ठ ४७५

ब्रह्मा वेद पढ़े तेरे द्वार शंकर ध्यान समानी ने
वीरवल वंश ब्राह्मण कुल तारण तानसेन वरदानी ने ॥[१]

प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने भी तानसेन के धर्म-परिवर्तन को एक ऐतिहासिक तथ्य माना है।[२] तानसेन के वंशज भी मुसल्मान ही हैं जिनमें से कुछ रामपुर राज-दरवार के आश्रय में रहते हैं। तानसेन मुसल्मान क्यों हुए यह एक विचारणीय प्रश्न है। धन का प्रलोभन इन्हें नहीं था क्योंकि संगीतकला के सम्मानकर्ताओं की उस समय कमी नहीं थी। रीवां-नरेश रामचन्द्र के दरबार में उन्हें किसी प्रकार का अभाव नहीं था फिर अकवरी-दरवार तो गुणियों के राजाश्रय के लिये प्रसिद्ध ही था। तानसेन की जितनी भी रचना प्राप्त है उनमें हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-धर्म की पूरी झलक देखने भी को मिलती है। अतः इस्लाम धर्म की श्रेष्ठता से प्रभावित होकर उन्होंने अपने मूलधर्म का परित्याग कर दिया हो इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रायः चार कारण ही ऐसे होते हैं जो मनुष्य को धर्म-परिवर्तन के लिये प्रेरित करते हैं—धन का प्रलोभन, किसी धर्म विशेष की श्रेष्ठता और उच्चता, वासनाजन्य प्रेम तथा अधिक संपर्क। तानसेन के सम्बन्ध में प्रथम दो कारण लागू नहीं होते यह पहले कहा जा चुका है। तीसरे कारण का कोई प्रमाण नहीं मिलता। किंवदन्ती रूप में तानसेन का एक शाही राजकुमारी से प्रेम और फिर उसको अपनाने के लिये धर्म-परिवर्तन की घटना प्रचलित है। साथ ही तानसेन का अकबर की पुत्री मेहरुन्निसा से प्रेम, फिर विवाह की किंवदन्ती का उल्लेख मिलता है।[3] सम्भव है इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लेने की जनश्रुति को तानसेन का गौरव बढ़ाने के लिये इसको अकबर की अथवा किसी शाही राजकुमारी से सम्बद्ध कर दिया गया हो। तानसेन के हृदय में इस्लाम-धर्म के प्रति कोई द्वेष न होकर उदार भावना थी जो उनमें संभवतः गौसमुहम्मद के प्रभाव से आई थी। डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के मतानुसार तानसेन जिस वर्ग थे, सम्भव है, वह जबर्दस्ती मुसल्मान बना लिया गया हो।[४] किन्तु

---

१ देखिए, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७९

२ Tansen became a Muhammaden, assumed or was given the title of Mirza and is buried in Muslim Holy ground at Gwalior.

Akbar the Great Mughal, Page 123.

३ अमर कलाकार तानसेन, विलावल अंक, संगीत कला, पृष्ठ ६०

४ नेशनल फ्लैग एन्ड अदर एसेज़, तानसेन, पृष्ठ ८४

अकबर के शासनकाल में इस प्रकार की घटना हुई होगी ऐसा प्रतीत नहीं होता किन्तु तानसेन का अकबर के काल में ही मुसल्मान होना प्रसिद्ध है। अतएव डॉ० चाटुर्ज्या के इस मत को भी स्वीकार करने में बाधा पड़ती है। तानसेन के धर्म-परिवर्तन में उनके गुरु गौसमुहम्मद का प्रभाव ही सर्वोपरि था और यह सम्भव है कि उनमें बहुत अधिक संपर्क, रहन-सहन, यहाँ तक कि खान-पान की घनिष्ठता हो जाने पर उनको हिन्दू-समाज ने ऐसी स्थिति में विधर्मी की दृष्टि से देखा हो और चूँकि एक कलाकार को धर्म की संकीर्ण परिधियाँ नहीं बाँध सकती ऐसा समझ कर तानसेन ने स्वयं ही इस्लाम-धर्म के घेरे में प्रवेश पा लिया हो। इसका संकेत हमें हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों के विवरणों में भी मिलता है।[1] ऐसा ज्ञात होता है कि राजा रामचंद्र के यहाँ ये हिन्दू ही रहे होंगे। मुसल्मान होने के बाद फिर से ये गोस्वामी/विट्ठलनाथ जी तथा महात्मा सूरदास, गोविंद स्वामी आदि के प्रभाव से ये वैष्णव बन गये। इनके वंशजों ने हिन्दू-धर्म नहीं अपनाया। मृत्युपर्यंत ये दरबार में ही रहे थे। इसलिये इनकी क़ब्र ही बनाई गई, समाधि नहीं। किन्तु यह आश्चर्यजनक है कि तानसेन के मुसल्मान होने का विवरण उस काल के किसी कवि अथवा इतिहासकार ने नहीं दिया।

शिक्षा-दीक्षा

तानसेन की शिक्षा के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि गौसमुहम्मद ने मकरन्द पांडे से इन्हें अपनी देखरेख में शिक्षा देने की अनुमति ले ली थी और उन्हीं के साथ रहकर तानसेन ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की। गौसमुहम्मद ने फिर स्वयं इन्हें स्वामी हरिदास के पास दीक्षित होने के लिये भेज दिया था।[2] दूसरी किंवदन्ती है कि स्वामी हरिदास मकरन्द पांडे के घनिष्ठ और परिचित लोगों में से थे। स्वामी हरिदास के वे परमभक्त थे और स्वामी हरिदास ने तानसेन को गान-विद्या में पूर्ण कुशल कर दिया था।[3] तानसेन के पदों से भी स्पष्ट होता है कि गौसमुहम्मद और स्वामी हरिदास इनके संगीत-गुरु थे। प्रसिद्ध इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है कि तानसेन सूरदास के घनिष्ठ मित्र थे और अपनी अधिकांश शिक्षा उन्होंने राजा मानसिंह द्वारा संस्थापित ग्वालियर के संगीत-विद्यालय में प्राप्त की थी।[4] किन्तु ज्ञात होता है कि उनकी शिक्षा

---

१ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १. पृष्ठ २८२, २८३

२ अमर कलाकार तानसेन, विलावल अंक, संगीतकला, पृष्ठ ५९

३ नेशनल फ्लैग एंड अदर एसेज़, तानसेन. पृष्ठ ८१

४ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ ४३५

अधूरी ही थी क्योंकि उनका संगीत 'अष्टछाप' के कुछ भक्त-कवियों से घट कर था। स्वामी विट्ठलनाथ ने तानसेन के संगीत सुनने पर दश हज़ार रुपये और एक कौड़ी दी। रुपये इसलिये दिये कि वे राजदरबार के कलावंत थे और कौड़ी इसलिये कि उनका संगीत वल्लभ-संप्रदाय के संगीतकारों के समक्ष मूल्यरहित था। गोविंद स्वामी के पद सुनकर तानसेन फिर उनके सेवक हुए और उनसे गान-विद्या सीखी।[1] तानसेन ने निम्नलिखित पद में अपने गुरु विशेष के प्रति मान प्रदर्शित किया है :—

ब्रह्म गत अपरम्पार न पाऊँ
पृथ्वी पार पताल ढरा और गगन लो धाऊँ
जो लो न होय सुदृष्टि तुम्हारी मन इच्छा फल ही पाऊँ
तीरथ प्रयाग सरस्वती त्रवेणी सब तीरथ होकर गुरुद्वार जाऊँ
भागीरथी गौतमी और गंगा तानसेन गावै हरिद्वा चराऊँ ॥[2]

तानसेन गुणी और उच्चकोटि के कलाकार थे और इसी कारण जिस दरबार में रहे वहीं उनको यथेष्ठ मान मिला। अकबरी दरबार के इतिहासकार अबुल्फ़ज़्ल ने

---

१ एक दिन तानसेन श्री गुसाईं जी के पास गायवे कुं आये सो गाये तब तानसेन कुं श्री गुसाईं जी ने दस हजार रुपैया इनाम के दिये और एक कौड़ी दीनी। तब तानसेन ने पूछ्यो जो दस हजार रुपैया तो ठीक है परन्तु कौड़ी कैसी है तब श्री गुसाईं जी ने आज्ञा करी जो तुम बादशाह के कलावंत हो जाके दस हजार रुपैया है और तुम्हारे गावे की कीमत हमारे गवैयन के आगे कौड़ी है तब तानसेन ने कही जो ये बात मैं कैसे मानुं तब श्री गुसाईं जी ने गोविन्द स्वामी कुं आपके पास बुलाये और आज्ञा करी एक पद गावो तब गोविन्द स्वामी ने एक सारंग राग में गायो सो पद 'श्री वल्लभ नंदन रूप अनूठ सरूप कह्यो नहि जाई।' सो ये पद सुन के तानसेन चकित होय गये और गोविन्द स्वामी को गान सुनके विचार कर्यो जो मेरो गान इनके आगे ऐसे हैं जैसे मखमल के आगे टाट हैं ऐसे है सो ये कौड़ी की इनाम खरी। तब गोविन्द स्वामी सुं तानसेन ने कही जो बाबा साहब मोकुं गान सिखावो तब गोविन्द स्वामी ने कही हम तो अन्य मार्गीय सु भाषणहुं नहीं करें। तब तानसेन श्री गुसाईं जी के सेवक भये और पचीस हजार रुपैया भेंट करे और गोविन्द स्वामी के पास गायन विद्या सीखे............

दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, गुसाईं जी के सेवक तानसेन तिनकी वार्ता, पृ० ४७५, ४७६

२ देखिए, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७८

तानसेन की प्रशंसा में यहाँ तक लिख दिया है कि ऐसा संगीतज्ञ हज़ार वर्ष पहले तक नहीं हुआ था।[१] यह कथन अत्युक्तिपूर्ण है किन्तु इससे तानसेन के गुणी होने का परिचय मिलता है। दरबारी गवैयों में तो तानसेन सर्वश्रेष्ठ कलाकार थे ही। दरबार के बाहर उनका गुरुवर्ग ही उपस्थित था। तानसेन ने ज्ञानोपार्जन के पश्चात् संगीत के क्षेत्र में नई खोज भी की थी।[२] इतिहासकार स्मिथ ने लिखा है कि कुछ रूढ़िवादी हिन्दू-संगीतज्ञ तानसेन की भर्त्सना इसलिये करते हैं कि परंपरागत दो राग 'मेघ' और 'हिन्दोल' इनके समय से लुप्त हो गये थे।[३] तानसेन ने कुछ नई राग-रागिनियों की खोज कर प्राचीन संगीत के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया था। तानसेन ने तात्कालिक रुचि को ध्यान में रखकर ही संभवतः ऐसा किया था। निम्नलिखित छंद द्वारा तानसेन की संगीत-कला पर प्रकाश पड़ता है :—

खरज साधे गाऊँ मैं श्रवणन सुनहुँ सुनाऊँ
वेद पढ़ाऊं जोई सोई कहे सोई सोई उचराऊँ
भैरव मालकोश हिन्दोल दीपक श्री राग मेघ सुरहि ले आऊँ
तानसेन कहे सुनो हो सुवर नर यह विद्या पार नहि पाऊँ ॥[४]

संगीतकला के विकास में 'गणेश' की स्तुति करते हुए तानसेन की आकांक्षा है:-

ए गण राजा महाराजा गजानन जै विद्या जगदीश
सप्त स्वर सो गाऊं बजाऊं सब राग रागिनी पुत्र वधून सहीत छतीश
बाईस सुरत इकईस मूरछना उनचास कोट तान आवे जगदीश
तानसेन को दीजै छ राग छतीश रागिनी ताल लय संगीत मय सो होवे
कंठ-प्रवेश ॥[५]

वार्ताकार ने तानसेन की संगीत कला-प्रशंसा निम्नलिखित शब्दों में की है—'सो तानसेन बड़ी जात वाले हते और गान विद्या को अभ्यास बहुत सुन्दर हतो सो दिल्ली में

---

१ आइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ६१२

२ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ ६०

३ " " पृष्ठ ६१

४ देखिए, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग छंद संख्या, १५७

५ देखिए, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या, ११

पृथ्वीपति के पास रहते हते और सब गवैयन में तानसेन जी मुख्य हते।'[1] तानसेन अपने युग के उत्कृष्ट कलाकारों, में थे। उनकी ख्याति भी इसीलिये बढ़ गई थी क्योंकि दरबारों में इनकी पहुंच थी और दरबारी रुचि के अनुसार अपने को बना लेने में समर्थ थे। तानसेन की रचनाओं में ऐसे अनेक पद हैं जिनमें उनके हितैषियों और मित्रों का यश वर्णित है।

तानसेन आरंभ में सूरवंश के राजाश्रय में रहे। शेरशाह सूरी का पुत्र दौलतखां उनका प्रशंसक था और उसकी संरक्षा में ये कई वर्ष तक रहे थे।[2] उसकी मृत्यु के पश्चात् ये रीवां-नरेश राजा रामचन्द्र के यहां चले गये। रीवां-नरेश की संरक्षा में ये अकबरी दरबार में आने के पूर्व तक रहे। काशी नागरी प्रचारणी, सभा द्वारा प्रकाशित 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों के संक्षिप्त विवरण से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है।[3] रीवां-राज्य द्वारा प्रकाशित माधवकृत, 'वीर भानूदय काव्यम्' में राजा रामचन्द्र के आश्रित प्रसिद्ध कलाकार तानसेन का पर्याप्त परिचय मिलता है। उसमें कहा गया है—तानसेन राजा रामचन्द्र के दरबार के उच्चकोटि के संगीत-विशारद तथा विभिन्न भाषाओं की खूबियों तथा संगीत की विशेषताओं से पूर्ण तथा अभिज्ञ थे। उनके जैसा संगीतज्ञ न तो पहले हुआ, न उस समय कोई वर्तमान था और न तो भविष्य में होने की आशा ही है।[4] अबुल्फ़ज़्ल ने अकबरी-दरबार

---

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, पृष्ठ ४७५

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

३ तानसेन पहले शेरशाह के पुत्र दौलत खाँ के आश्रित थे। फिर रीवां नरेश महाराज रामसिंह के यहाँ रहे। उन्होंने इन्हें सम्राट् अकबर के दरबार में भेजा और उनके आश्रित रहे। यह भारत के प्रसिद्ध संगीताचार्य थे।

हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ ५८

४ भूतो भविष्यन्नपि वर्तमानो, न तानसेने सदृशो (नसमो) धरण्याम्।
तथा (ऽ) प्रसिध्या त्रिदितेऽपि मन्ये, नैतादृशः कोप्यनवद्यविद्यः ॥२९॥
दुर्लङ्घ्यशैलोपरिसिन्धुमध्ये, द्वीपान्तरालै (ऽपि) बिले वने च।
श्रीरामचारित्रसुधाभिषिक्ता, यस्य ध्रुपज्जीवति सर्वकालम् ॥३०॥
तत्रैव तत्रैव वचो विलासा, यत्रैव (यत्रैव) जनाश्चरन्ति।
यत्रैव यत्रैव वचांसि नूनम्, सा तानसेनोक्तिरुदेति तत्र ॥३१॥

वीरभानूदयकाव्यम्, दशमसर्ग, पृष्ठ १२१, १२२

में तानसेन के प्रवेश की घटना का स्पष्ट वर्णन किया है। तानसेन जो अपने युग के सब कलावंतों में प्रधान थे, दरबार में उपस्थित हुए। जब यह सूचना मिली कि वे दरबारी जीवन से अवकाश ग्रहण करना चाहते हैं और वे इस वक्त रीवां-नरेश रामचन्द्र के आश्रय में हैं तो इस पर शहंशाह ने आज्ञा दी कि वे हमारे दरबार में लाये जायं। जलालखां कुरची एक विश्वस्त मुलाज़िम थे। राजाज्ञा के साथ तानसेन को दरबार में ले आने के लिये भेजे गये। राजा रामचन्द्र ने उन्हें अनेक उपहारों, हाथी और जवाहिरात सहित विदा किया और तानसेन को भी अनेक वाद्यंत्र और उचित भेंट देकर दरबार में भेजा। इस वर्ष (सन् १५६२) तानसेन ने उपस्थित होकर शहंशाह को सलाम बजाया और स्वयं भी आदरान्वित हुए।"[1] इस सम्बंध में कुछ किंवदन्तियां प्रचलित हैं कि राजा रामचन्द्र का राजकुमार अकबर के यहां क़ैद था और तानसेन ने इसीलिये दरबार में उपस्थित होकर उसकी मुक्ति कराई थी। अबुलफ़ज़ल के उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि तानसेन की ख्याति ही उनके अकबरी-दरबार में प्रवेश की कारण थी न कि किसी प्रयोजनवश वे अकबरी-दरबार में उपस्थित हुए थे। तानसेन की उपलब्ध रचनाओं में राजा रामचन्द्र सम्बंधी कई पद मिलते हैं जिन्हें आगे दिया गया है। उनसे स्पष्ट होता है कि तानसेन रीवां-नरेश के प्रति कितने आकृष्ट थे और इस कारण उनसे उनका विछोह कितना दुःखद था इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रसिद्ध कलाकार तानसेन का अकबरी-दरबार में प्रवेश एक महत्वपूर्ण घटना थी। इतिहासकारों ने अपने ऐतिहासिक ग्रंथों में इसका उल्लेख किया है। चित्रकारों ने अपनी तूलिका द्वारा उस दृश्य का चित्रण किया और कवियों की वाणी भी इस घटना को सजीव बनाने के लिये मौन न रही होगी। तत्कालीन एक चित्र में तानसेन कुछ संगीतज्ञों के साथ अकबर के सम्मुख नीचे बायीं ओर खड़े दिखाये गये हैं।[2]

---

१ अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ २७९, २८०

२ Plate IX represents the arrival of the famous musician and singer Tansen at the court of Akbar—an event which took place in 1562 when the Emperor was 20 years of age .... Tansen with a small group of musicians, is seen below the Emperor in the left centre of the picture.

Indian Painting under the Mughals, page 56, 57

तानसेन अपने जीवनकाल में कई गुणी पुरुषों, राजाओं और महाराजाओं के संपर्क में आये थे जिनका वर्णन उन्होंने अपने पदों में किया है।

रीवां-नरेश राजा रामचन्द्र के प्रति उनका प्रगाढ़ स्नेह था यह पहले कहा जा चुका है। कवि ने राजा रामचन्द्र के दान तथा यश का वर्णन निम्नलिखित पंक्तियों में किया है :—

प्रथम ही आनंद रच्यो नीकी घरी महूरत पंछी शब्द बजाए
देश देश के याचक जेते आवत तेते पावत गज तुरंग नग दान मुक्ता बरसाए
अष्टो धरन मध्य नाम ज्योति अरिन के भाखे को विधि ने बनाए
तानसेन कहे युग युग चिरंजीव रहो राजा राम तेरो यश तिहूं लोक छाए ॥[1]

राजा रामचन्द्र की वीरता और उनकी सेना के आतंक का वर्णन निम्नलिखित पद में प्रभावपूर्ण ढंग पर हुआ है :—

ए तुम सज सज दल चढ़त जब भूप पर भार होत
थरथरात देश देश के गढ़पति सुन धाक धरहरात
जाके चढे ते खुर रैन उड़त गगन छिप जात
खलबल परत सिहहू पै बाजत निशान जब शब्द घहरात
देव दानव और रावरु ते भाज गए सब पाताल कमठ पीठ कलमलात
सहस सहस फुनकार करि चूर चूर भयो थरहरात
महाराजा न मणि राजा रामचन्द्र की असवारी होत
अश्वदल गजदल पयदल सुन सुन अकअकात धकधकात
एसो सुरो पूरो तप तेज वो सो वो ही दूजो नाही मेरे जान
तानसेन गुनी जन को अजाच कीनो वाकी सूरत मूरत पर खल बल जात ॥[2]

तानसेन राजा रामचन्द्र से इतने अधिक प्रभावित थे कि उनके गुणों का प्रकाशन उन्होंने अनूठे उपमानों द्वारा भी किया है। एक पद का भाव है, विक्रम के जैसा संवत्, करण के समान दानी, वेद के समान ज्ञान अद्वितीय हैं। शक्ति में भीम, प्रतिज्ञा-निर्वाह में परशुराम, वचन-निर्वाह में युधिष्ठिर, तेजस्वी में सूर्य के समान दूसरा दृष्टिगत नहीं होता। इसी प्रकार राजाओं में राजा रामचन्द्र प्रशंसित हैं :—

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १३९
२ " " " पद संख्या १२८

शाके को विक्रम देवे को कुल करण वेद सम नहिं ज्ञान
बल को भीम, पेज को परशुराम, वाचा को युधिष्ठिर, तेज प्रताप को भान
इन्द्रसेन राजा मूरत को कामदेव मेरु समान
तानसेन कहे सुनो शाह अकबर राजन् में राजा राम नंदन विरहभान ॥[1]

ऐसा ज्ञात होता है कि अकबर के कहने पर ही उक्त छंद में तानसेन ने रीवां-नरेश वीरभान के पुत्र रामचन्द्र के गुणों का वर्णन किया था।

अकबरी-दरबार में रहने पर तानसेन को अकबर की गुण-ग्राहकता का परिचय भली भाँति मिल गया था। उसने अकबर के विशिष्ट गुणों का परिचय कई पदों में दिया है। यहां पर उनमें से कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं। एक पद में तानसेन ने प्रकाशित सूर्य और अकबर को एक तुल्य माना है :—

इत भान उत साह अकबर दो दरस जो देखे सोई होत पवित्र
इन्दै राजनि मंद सुख के वर पावे गुप्त आनंद
वे तिमिरहरण ए दुख भंजन ताकि सोहै फरियत साह दिनों मकरन्द
वह सहस किरण प्रकाश कीनो अति बुधश्रेष्ठ मया घर जगवन्द
तानसेन कहै कहां लौं अस्तुत करै कारन हार विकार दुखदन्द ॥[2]

अकबर की वीरता, आतंक और उदारता का वर्णन एक ही स्थल पर कर दिया गया है :—

ए आयो आयो रे बलवत शाह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप औं अष्ट दिशा नर नरेन्द्र घर घर थर थर डर
निश दिन कर एक छिन पावे वरण न पावे लंका नगर
जहां तहां जीतत फिरत सुनीयत है जलालदीन मुहम्मद को लश्कर
शाह हुमायूं को नन्दन चन्दन एक तेग जोधा तकवर
तानसेन को निहाल कीजै दीजो कोटिन जरजरी नजर कमर ॥[3]

ऐसा ज्ञात होता है, किसी अवसर पर सम्राट अकबर तानसेन के गृह पर पधारे थे।

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग पदसंख्या १७७
२ ” ” ” पद संख्या १३५
३ ” ” ” ” पद संख्या १४६

उसी सम्बंध में अकबर के सौजन्यपूर्ण व्यवहार और महानता का गान करते हुए कवि कह उठा था :—

ए आयो आयो मेरे ग्रह छत्रपति अकबर मन भायो करम जगायो
पाछलो पुण्य मेरो प्रगट भयो याते अर्थ धर्म काम मोक्ष मन चायो चारो फल पायो
काहू की न इच्छा रही तेरे दरस देखे पाप तज धर्मराज अचल कर पढ़ायो।
तानसेन कहे यह सुनो छत्रपति अकबर जीवन जनम सुफल कर पायो ॥[1]

राज्य-सिंहासन पर विराजमान अकबर का दृश्य-वर्णन तानसेन के निम्नलिखित पद में अंकित है :—

शुभ नखत तखत बैठो राजत
छाजत है सब मूलक खलक ज विधना किए
सब छत्र धरे ते सब लागे सब सेवा करन
धन धन चक्रवर्ती नरेश अकबर
दुख हरण तानसेन ऐसो सुरपुरी नर नरेन्द्र नरन ॥[2]

राजा मानसिंह की दानशीलता और गुणग्राहकता का भी तानसेन ने वर्णन किया है :—

छत्रपति मान राजा तुम चिरंजीव रहो जो लों ध्रुव मेरु तारो
चहूं देश तो गुणीजन आवत तुम पे धावत पावत मन इच्छा सबही को जग उजियारो
तुमसे जो नहीं और कासे जाय कहूं दौर वही आज कीरत करे मोपे रक्षा करन हारो
देत करोड़न गुणी जनन को अजाचक किये तानसेन प्रति पारो ॥[3]

तानसेन का अकबरी-दरबार के अन्य पदाधिकारियों के संपर्क में आने का वर्णन भी मिलता है। 'दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता' में राजा आसकरण और तानसेन सम्बंधी वार्ता आई है जिसमें दिया हुआ है कि तानसेन ने राजा आसकरण को वल्लभ-सम्प्रदायी स्वामी विट्ठलनाथ से ले जाकर मिलाया था।[4] इस बात का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है।

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १४५
२ " " " " पद संख्या १३३
३ " " " " पद संख्या १४८
४ मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२

मिश्रबंधु-विनोद और शिवसिंह-सरोज में तानसेन और महात्मा सूरदास के वार्तालाप का भी उल्लेख मिलता है।[१] सूरदास और तानसेन समकालीन थे। सूरदास की प्रसिद्धि उस काल तक भक्त-कवियों में दूर दूर तक फैल गई थी। इतिहासकार स्मिथ ने सूर और तानसेन की मित्रता का उल्लेख किया है।[२] इसके अतिरिक्त 'दो सो बावन वैष्णव की वार्ता' से सिद्ध होता है कि तानसेन स्वामी विट्ठलनाथ और वल्लभ-संप्रदाय के अष्टछापी भक्त-कवियों के संपर्क में आये थे और वे गोविंद स्वामी के पद सुनकर इतने प्रभावित हुए थे कि वे उनके सेवक बन गये थे यह पीछे दी गई वार्ता में दिखाया जा चुका है। वल्लभ-संप्रदाय की ओर आकृष्ट होने पर 'अष्टछाप' के सर्व प्रधान कवि भक्त प्रवर सूरदास से इनका साक्षात्कार अवश्य हुआ होगा।

तानसेन की उपलब्ध-रचना में शिव, गणेश, सरस्वती, सूर्य, अनन्त देवता आदि की वन्दना के पदों से उनकी धार्मिक विचार-धारा पर थोड़ा प्रकाश पड़ता है। तानसेन ने अपने गेय पदों में कृष्ण की रूपमाधुरी, मुरली-माधुरी, मान, भक्ति, बालक्रीड़ा आदि विषयों का आश्रय लिया है। तानसेन अपने दीर्घकालीन जीवन में कई धार्मिक संप्रदायों के संपर्क में आये थे। स्वामी हरिदास 'सखी' संप्रदाय के कृष्ण-भक्त थे। उनसे तो उन्होंने संगीत की शिक्षा ही ग्रहण की थी।[3] अकबर स्वयं तानसेन को स्वामी हरिदास का प्रिय शिष्य जानकर छद्म वेश में उनसे मिला था। यह घटना संवत् १६६२ से १६७१ के मध्य किसी समय संपन्न हुई थी।[४] तानसेन वल्लभ-संप्रदाय के संपर्क में कई

---

१ तानसेन और सूरदास जी से बहुत मित्रता थी। तानसेन जी ने सूरदास की तारीफ में यह दोहा बनाया—

किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर को पीर।
किधौं सूर को पद लग्यो, तन मन धुनत सरीर॥

तब सूरदास जी ने यह दोहा कहा:—

विधना यह जिय जानिके, सेस न दीन्हें कान।
धरा मेरु सब डोलते, तानसेन की तान॥

शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४२९

२ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ ४२२

३ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, पृष्ठ ६८

४ कविता कौमुदी, भाग १, पृष्ठ २३०

५ भक्तमाल, नाभादास, पृष्ठ ६०९

बार आये थे। पहले दी गई 'दो सो बावन वैष्णवन की वार्ता' से ज्ञात होता है कि तानसेन स्वामी विट्ठलनाथ से मिले थे और गोविंद स्वामी के पद सुनकर इतने प्रभावित हुए थे कि बाद में वे उनके सेवक बन गये थे। 'राजा आसकरण की वार्ता' से प्रकट है कि तानसेन राजा आसकरण की गुण-ग्राहकता का परिचय पाकर उनसे मिले और उनके सम्मुख उन्होंने निम्नलिखित पद गाया था—

> कुंवर बैठे प्यारी के संग अंग अंग भरे रङ्ग
> अंग अंग भरे रङ्ग बल बल बल त्रिभंगी युवतिन सुखदाई
> ललित गती विलास हास दंपति मन अति उल्हास विकसित कच
> सुमन वास स्फुटत कुसुम निकर तैसी है शरद रैन जुन्हाई
> नव निकुंज मधुप गुंज कोकिल कल कूजत पुंज सीतल सुगंध
> मंद बहत पवन अति सुहाई
> गोविंद प्रभु सरस जोरि नवकिशोर नवकिशोरी निरख मदन
> कोज मोरी छल छबीले नवल कुंवर ब्रज नृप कल मनिराई ॥

इस पद से राजा आसकरण इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने वल्लभ-संप्रदायी गोविंद स्वामी से तानसेन के साथ मिलने की इच्छा प्रकट की। तानसेन उनके यहाँ दस-पंद्रह दिन रहकर राजा आसकरण को साथ लेकर गोकुल गये थे।[1] इससे स्पष्ट होता है कि तानसेन का वल्लभ-संप्रदाय से सम्बंध था। जब तानसेन वल्लभ-संप्रदाय के संपर्क में आये तो वे किस धर्म के मतावलंबी थे इस सम्बंध में प्रमाणिक सूत्रों के अभाव में निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। संभव है उस समय तक वे मुसल्मान न हुए हों अथवा संयोगवश मुसल्मान बने हुए तानसेन 'वल्लभ-भक्ति-मार्ग' की ओर आकृष्ट हो गये हों। वल्लभ-सम्प्रदायी भक्तों में सभी जाति के व्यक्तियों का प्रवेश था। कोई भी वर्ग और किसी जाति का भी व्यक्ति आवश्यक गुण होने पर उसमें प्रवेश पा सकता था। यह उसकी आस्था पर अवलंबित था।[2]

वल्लभ-मत में कृष्ण के बाल-रूप की उपासना, कृष्ण की रूप-माधुरी, मुरली-माधुरी, गोपी-विरह आदि की विशद व्यंजना हुई है। तानसेन की उपलब्ध रचनाओं में तत्सम्बंधी पदों का बाहुल्य है। 'वार्ता-साहित्य' से भी स्पष्ट है कि तानसेन ने श्रीनाथजी के मंदिर में कीर्तन किया था। दरबार में भी

---

१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, राजा आसकरण की वार्ता, पृष्ठ १९१, १९३

२ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ ७७

उनका आना-जाना इसीलिये कम हो गया था।[१] 'वार्ता' से यह भी पता चलता है कि पश्चात् तानसेन ने दरबार में आना-जाना बिल्कुल ही छोड़ दिया था जैसा कि निम्न-लिखित पंक्तियों से पता चलता है :—

'एक दिन तानसेन जी श्रीनाथजी के पास कीर्तन करत हते तब श्रीनाथजी सुनके मुसकाये तब वा दिन तै तानसेन ने बादशाह के इहाँ सुं जायबो आयबो छोड़ दियो और श्री गुसाईं के पास रह आये जिन सुं श्रीनाथजी बोलते, हँसते, श्री गुसाईं जी की कानतें तानसेन कुं श्रीनाथजी सब अनुभव करावते सों वे तानसेन जी ऐसे कृपापात्र हते।[२]

तानसेन के हृदय में वल्लभ-मत के प्रति इस प्रकार की आस्था की सम्पुष्टि उनके उक्त विषय के पदों से भी होती है।

तानसेन की मृत्यु-तिथि

हिन्दी-साहित्य के कुछ विद्वान और लेखकों ने तानसेन की मृत्यु-तिथि संवत् १६४६ दी है।[३] अकबर का राज्यकाल संवत् १६६२ तक रहा। 'अकबरनामा' में स्पष्ट रूप से मिलता है कि तानसेन की मृत्यु अकबर के शासनकाल में ही संवत् १६४६ (२६ अप्रेल, १५८९) में हुई।[४] डाँ सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने भी इसी तिथि का समर्थन किया है।[५] परन्तु 'तुज़ुक जहांगीरी' के तेरहवें वर्ष की दावत के वर्णनों में एक उल्लेख मिलता है कि एक तानसेन कलावंत दरबार में उपस्थित हुए थे। यह घटना संवत् १६७५ की है जिसमें दिया हुआ है कि दरबार के एक शेख अकस्मात बीमार हो गये और उन्होंने एक व्यक्ति को बादशाह के पास भेजकर तानसेन कलावंत को जो गान विद्या में अद्वितीय थे, बुला भेजने की प्रार्थना कराई। तानसेन ने उपस्थित होकर शेख को गाना

१. . . . . .तब तानसेन श्री गुसाई जी के सेवक भये और पचीस हजार रुपैया भेंट करे और गोविन्द स्वामी के पास गायन विद्या सीखे और श्रीनाथजी के पास कीर्तन गायबे लगे जब तानसेन महीना में एक बार बादशाह के पास जाते और बहुधा कर के महाबन में रहते।

गुसाईं जी के सेवक तानसेन तिनकी वार्ता, दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, पृष्ठ ४७६

२ " " " " पृष्ठ ४७६, ४७७

३ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२

४ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ ८१६

५ तानसेन, नेशनल फ्लैग एंड अदर एसेज़, पृष्ठ ८१

सुनाया था।[1] ऐसा ज्ञात होता है कि ये तानसेन कलावंत कोई दूसरे थे और उन्हें जहांगीर ने शेख़ की प्रार्थना पर बुलवाया था। क्योंकि स्वयं जहांगीर ने 'तुज़ुक जहांगीरी' में तानसेन को काव्य-प्रशंसा तो की है किन्तु दरबार में उनके अस्तित्व का उल्लेख नहीं किया है। तानसेन, प्रसिद्ध संगीतज्ञ और प्रस्तुत कवि तानसेन, का असली नाम नहीं था उनका यह उपाधि-प्राप्त नाम था। उक्त तानसेन कलावंत का नाम भी इसी प्रकार का ज्ञात होता है। तानसेन के बाद मुग़ल-दरबार के सर्वश्रेष्ठ गवैयों को, संभव है, तानसेन की उपाधि से विभूषित किया जाता हो। तानसेन की स्मृति और उनकी प्रतिष्ठा का स्मारक रखने के लिये ऐसा किया गया होगा।

गंग

कवि गंग सम्राट अकबर के दरबारी कवि थे और उनका साहचर्य दरबार के प्रसिद्ध व्यक्तियों—अब्दुर्रहीम खानखाना, बीरबल, मानसिंह आदि से था, जो अन्तर्साक्ष्य तथा बाह्य प्रमाणों से सिद्ध होता है।

जाति, जन्म-स्थान तथा समय

गंग के जन्मस्थान, काल और जाति के सम्बन्ध में शिवसिंह सेंगर ने इनको गंगा प्रसाद ब्राह्मण के नाम से सम्वत् १५९५ में उत्पन्न माना है। आरम्भ में इन्होंने गंग को ज़िला इटावा अथवा दिल्ली का निवासी लिखा था किन्तु बाद में अपने निश्चित विचारानुसार इन्हें इकनौर गाँव ज़िला इटावा का निवासी बताया है। बन्दीजन भट्ट-ब्राह्मण होते थे, इस सम्बन्ध में उन्होंने भाटों की प्रशंसा का निम्नलिखित छंद भी उद्धृत किया है :—

प्रथम विधाता ते प्रकट भए बन्दीजन पुनि पृथु यज्ञ ते प्रकाश सरसात है।
माने सूत सौनकन सुनत पुराण रहे यश को बखाने महासुख बरसात है।

---

१. In accordance with fate, the same night the traces of fever appeared and the next day, he sent some one to the king (with the request) to call Tansen Kalawant who was unequalled as a singer. Tansen, having gone to wait upon him. After this he sent some one to call the king.

Tuzuk-Jahangiri, part II, the 13th New Year's Feast, page 71

२. तुज़ुक जहाँगीरी, भाग १, पृष्ठ ४१३

चन्द चौहान के केदार गोरी साह जू के गंग अकबर के बखाने गुण गात है।
काग कैसे मास अजनास धन भाटन के लूट धरे ताको खरा खोज मिटि जात है ॥[१]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि गंग भट्ट-ब्राह्मण थे। कवि गंग ब्रह्म-भट्ट जाति के थे और उनका निवास-स्थान इकनौर गाँव था, ये तथ्य कवि के छंदों से भी प्रमाणित होते हैं। मिश्रबन्धुओं ने गंगाप्रसाद ब्राह्मण नामक एक कवि का जन्म सम्वत् १६६५ में और इकनौर गाँव ज़िला इटावा का निवासी लिखा है।[२] प्रसिद्ध कवि गंगा प्रसाद ब्राह्मण और अकबरी दरबार के कवि गंग एक ही कवि हैं। अन्तर्साक्ष्य द्वारा भी सरोजकार और मिश्रबन्धुओं के उक्त कथन प्रमगणित होते हैं। हिन्दी साहित्य के अन्य इतिहासकारों ने गंग को भट्ट-ब्राह्मण ही लिखा है।[3] गंग के छन्दों में उसके ब्रह्म-भट्ट होने का प्रमाण मिलता हैं। निम्नलिखित कविंत्त में 'कवि गंग भट्ट' नाम की छाप भी मिलती है :—

बैठे दरीखाने बीच साह को समूह दल दोंनों बीच आन दयी एक राखी है।
रोस कर बचन कहे है भुव पालन ते सावन को बन्धन बन्धे न सत्य भाखी है।
भनै कवि गंग भट्ट सोर महि मन्डल में हाडावंस वीर ने कृपान खोल राखी है।
ठोक भुज दंड प्रचंड सो जुझारसिंह बूंदीपति राखी सो तुम्हारे हाथ राखी है ॥[४]

'भट्ट' ब्राह्मण जाति में ही परिगणित होते हैं इसका निर्देश स्वयं कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में किया है :—

बाभन को जनमु जनेऊ मेलि जानि बूझि जीभ ही बिगारिबे को याच्यो जन जन में
कहि कवि गंगु कहा कीजै जो न जाने जात बाउ ग्यान देखो जु बुढाई ध्यान धन में
....॥[५]

अतएव कवि ने आत्मक्षोभ वर्णन के साथ-साथ, उक्त पंक्तियों में अपनी जाति का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्म-भट्टों में यह प्रख्यात है कि कवि गंग उन्हीं की जाति के कवि थे।' ब्रह्म भट्ट दर्पण' नामक एक छोटी पुस्तक में संस्कृत और हिन्दी के अनेक

---

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४०२

२ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ ३०३

३ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४५

मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७६

४ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३३

५ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १६१

भट्ट कवियों का उल्लेख मिलता है। इसमें गंग को अकबरी-दरबार का प्रमुख कवि माना गया है। भट्ट ब्राह्मण होते हैं, इस कथन की पुष्टि अनेक विद्वानों ने भी की है। पूर्व उल्लिखित 'प्रथम विधाता ते प्रगट भये वंदीजन' वाले छंद में भट्टों का ब्राह्मण होना सिद्ध है। इस प्रकार गंग का भट्ट-ब्राह्मण होना कई सूत्रों से सिद्ध होता है।

कवि गंग इकनौर गाँव ज़िला इटावा के निवासी थे, इसका परिचय जहाँगीर के सम्बन्धी जैनखाँ के विरुद्ध कहे गये कवि के छन्दों से भी मिलता है। 'जैनखाँ' ने इकनौर के कुछ ब्राह्मणों को मरवा डाला था। गंग ने अपनी जन्मभूमि के प्रेम के वशीभूत होकर जैनखाँ की निन्दा कई छन्दों में की थी :—

वाकरखाँ विरच विदरभ देस मार्यो गंग दल खान मारे मीर कन्हर गौर के।
दाही मीर मारि के अनेक देस पस्ति करि खानदेस खोहे चित्र मन्दिर मरोर के।
पूरब पछाह बरदाने मानसिंह मारे कासिमखां खोदे हैं मवास ठौर ठौर के।
केसोदास मारु मरि हरम कमठ करी जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के॥[1]

इससे स्पष्ट होता हैं कि गंग को 'इकनौर' गांव बहुत ही प्रिय था और ऐसा लगाव अपनी जन्मभूमि से ही हो सकता है। इनके दिल्ली-निवासी होने का कोई प्रमाण नहीं है। केवल शिवसिंह सेंगर ने इसका उल्लेख किया था और बाद में उन्होंने भी अपनी भूल स्वीकार करते हुए इन्हें इकनौर गांव ज़िला इटावा का ही माना है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। कवि की रचनाओं की ब्रज-भाषा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उसका जन्म कहीं भी हुआ हो किन्तु ब्रज-प्रदेश में वह बहुत काल तक रहा था। अन्य इतिहासकारों ने भी गंग को इकनौर गांव का निवासी लिखा है। उनकी ब्रज-भाषा के प्रयोग में कुछ कनौजी-बोली के प्रयोग भी मिलते हैं जिससे इस तथ्य की पुष्टि होती है कि वे कनौजी-प्रदेश ज़िला इटावा के निवासी थे। साथ ही इससे बीरबल और गंग की बाल-मैत्री का भी जो कवि के एक दोहे से स्पष्ट है,[2] समाधान हो जाता है क्योंकि बीरबल तिकवांपुर-निवासी थे जो कानपुर ज़िले में है और जहाँ से कवि गंग के इटावा ज़िले से सम्बन्ध होना असंभव नहीं कहा जा सकता।

---

१ देखिये गंग के छंद प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७२

२ आगे सुदामा कृष्ण हैं, गंग बीरबल फेर।
ता दिन में तंदुल हते, येहि दिनन में बेर॥
गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७०

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने कवि गंग की जन्म-तिथि सम्वत् १५६५ दी है। शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्म सम्वत् १५६५ लिखा है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। वीरबल का जन्म सम्वत् १५८५ माना गया है। यह अवस्था गंग से दश वर्ष अधिक है। गंग और वीरबल का बाल-मैत्री का परिचय ऊपर आ चुका है। कृष्ण और सुदामा की मित्रता सहपाठी के रूप में हुई थी। इससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि गङ्ग और बीरबल भी सहपाठी रहे होंगे। सहपाठी का केवल यही अर्थ नहीं होता कि दो समवयस्क मित्र एक ही कक्षा के विद्यार्थी हों। एक ही विद्यालय में भिन्न-भिन्न श्रेणी के विद्यार्थी भी इतने प्रगाढ़ मित्र बन जाते हैं कि कभी-कभी सकक्षता भी उस स्थिति तक नहीं पहुँच पाती। अतएव वीरबल का गंग की अपेक्षा बड़ी अवस्था का होना सम्भव है। इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर रहीम की प्रशंसा करते समय गंग ने खानखाना को 'नवल नवाब' कह कर संबोधित किया है—'नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास, भागे देसपति धुनि सुनत निसान की। खानखाना का जन्म संवत् १६१० में हुआ था। इस प्रकार गंग जिसे 'नवल नवाब' कहते हैं वह उनसे लगभग १५ वर्ष छोटे ठहरते हैं। प्रौढ़ या वृद्ध लोग जब अपनी अवस्था से न्यून अवस्था वाले व्यक्ति को संबोधन करते हैं तब उनमें कनिष्ठतासूचक प्रिय शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। उपर्युक्त 'नवल नवाब' में यही ध्वनि है। कवि के जीवन की अन्य घटनाओं की तिथियों का मिलान करने पर भी, जो आगे संवत् १५६५ के लगभग ही कवि का जन्म मानना उचित जान पड़ता है।

कवि गंग के जीवन-चरित से सम्बन्धित अन्य बातों पर विचार करने के पूर्व उनके नाम पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा। अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग के अतिरिक्त अन्य 'गंग' नामक कवि भी हिन्दी-साहित्य में हो चुके हैं। अतः इन सब कवियों के अलग-अलग व्यक्तित्व का निर्धारण कर लेना आवश्यक है।

गंगा-राम पुरोहित[1] जिनका रचना-काल संवत् १७४४ है, रीतिकाल के एक साधारण कवि थे। इनकी रचनाओं में 'गंग' की छाप मिलती है। हिन्दी-इतिहास-ग्रन्थों में इनकी 'हरिभक्ति-प्रकाश', 'सभा-विलास' आदि रचनाओं का उल्लेख आया है। एक दूसरे गंगाप्रसाद ब्राह्मण[2] नामक हिन्दी-कवि संवत् १८६० में हुए और इनकी गणना रीतिकाल के अच्छे कवियों में की जाती है। इन्होंने अपनी रचना 'दूती-विलास' में

---

१ मिश्रबंधु-विनोद, भाग २

२ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ४०२, ४०३

अपना उपनाम 'गंग' दिया है। उपर्युक्त गंग कवियों और प्रसिद्ध कवि गंग के रचना-काल में इतना अन्तर है कि एक दूसरे के साथ किसी का भ्रम संभव नहीं। इनकी रचनाओं को पढ़ते वक्त अवश्य एक दूसरे का भ्रम हो सकता है किन्तु यह भ्रम क्षणिक ही है। अकबरी-दरबार के कवि गंग के छंदों में जैसा काव्यगत-चमत्कार, वाग्वैदग्ध्य, भाषा-सौष्ठव वर्तमान है उनके प्रकाश में रीतिकालीन कवियों की रचनाओं की पृथकता स्पष्ट हो जाती है।

'ब्रह्म-भट्ट-दर्पण' नामक पुस्तक में जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, प्रसिद्ध कवि गंग का नाम गंगाधर[1] दिया गया है। इसी नाम के दो बुन्देलखंडी कवियों का भी परिचय मिलता है शिवसिंह सेंगर द्वारा उल्लिखित नाम गंगा प्रसाद ब्राह्मण का भी कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं मिलता है। सपौली निवासी 'गंगाप्रसाद ब्राह्मण' नामक एक अन्य हिन्दी-कवि का पता हिन्दी-इतिहास से चलता है जिसका पहले उल्लेख हो चुका है। इन विद्वानों ने 'गंग' का नाम निर्धारित करते समय कोई प्रमाण नहीं दिया है। अतः विश्वस्त प्रमाणों के अभाव में प्रसिद्ध कवि गंग को केवल 'गंग' नाम से पुकारा जाना ठीक जान पड़ता है। जब तक प्रामाणिक सूत्रों द्वारा इनका वास्तविक नाम ज्ञात न हो जाय तब तक 'गंगाधर' अथवा 'गंगाप्रसाद' आदि नाम के बखेड़े में में पड़ कर उनके व्यक्तित्व पर भ्रम फैलाना उचित नहीं है।

कवि गंग के जीवन का आरंभिक काल किस प्रकार बीता इस विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं। इतना स्पष्ट है कि इनकी आर्थिक दशा बहुत अच्छी न थी क्योंकि अपने मित्र वीरबल के पास बालमैत्री के विश्वास पर ही बेर के कुछ फल लेकर दरिद्रता विमोच-नार्थ आये थे। गंग का निम्नलिखित दोहा जिसका निर्देश पहले हो चुका है इस बात की पुष्टि करता है :—

> आगे सुदामा कृष्ण हैं, गंग बीरबल फेर।
> ता दिन में तंदुल हते, येहि दिनन में बेर॥

जैसा कवि ब्रह्म की जीवनी के प्रसंग में पहले कहा जा चुका है संवत् १६२० के लगभग वीरबल अकबर के राज्याश्रय में थे और संवत् १६२६ तक अकबरी दरबार में उनकी (बीरबल) अच्छी प्रतिष्ठा हो गई थी क्योंकि अगस्त सन् १५६६ (संवत् १६२६) में ही राजा वीरबल ने कजली के वकील को अकबर से मिलाया

१ ब्रह्म-भट्ट-दर्पण, पृष्ठ १९

था ।[1] इसके पश्चात् ही गंग वीरबल से मिले होंगे क्योंकि संवत् १६२७ में गंग का अकबर के दरबार में उपस्थित रहना प्रमाणित है जब उन्होंने अपनी गद्य-रचना 'चंद छंद वरनन की महिमा' अकबर को सुनाई थी। उक्त मित्रता से यही निष्कर्ष निकलता है कि वीरबल ही जो स्वयं कवि और साहित्यानुरागी थे गंग को लेकर अकबर से मिले होंगे। उसी समय से गंग का अकबरी दरबार में मान हो गया था। कविता-प्रेमी अकबर समय-समय पर अपने दरबारी कवियों के सम्मुख समस्याएँ उपस्थित करता था और उन समस्याओं की पूर्ति में गंग का प्रधान भाग रहता था। गंग द्वारा कहे गये समस्यापूर्ति वाले अनेक छंदों से यह बात सिद्ध होती है।

गंग की प्रतिष्ठा

अकबरी-दरबार में प्रतिष्ठित होने पर कवि गंग दरबार के विशिष्ट व्यक्तियों के संपर्क में स्वाभावतः आये। रहीम, वीरबल, मानसिंह, टोडरमल आदि सम्मानित व्यक्तियों द्वारा उन्हें यथेष्ठ सम्मान मिला। कहा जाता है कि खानखाना ने गंग को निम्नलिखित छप्पय पर प्रसन्न होकर छतीस लाख रुपये पारितोषिक रूप में प्रदान किये थे :—

चकित भंवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल वन
अहि फनि मनि नहिं लेत, तेज नहि बहत पवन घन
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिले अति
बहु सुन्दरि पदिमनि पुरुष न चहैं न करैं रति
खल-मलित सेस कवि गंग मन अमित तेज रविरथ खस्यो
खानानखान वैरम सुवन जवहि क्रोध करि तंग कस्यो ॥[2]

इस पारितोषिक का विवरण हिन्दी-इतिहास ग्रन्थों में भी मिलता है। साथ ही गंग के परवर्ती कवि 'खूबचंद' ने भी इसका उल्लेख निम्नलिखित छंद में किया है :—

मन दस लाख दियो दोहा हरिनाथ के पै हरिनाथ कोटि दे कलंक कवि कैहै को
बीरवर दै षट कोटि केशव कवित्तन में शिवराज हाथी दियो भूषन ते पैहै को
छप्पै पै छतीस लाख गंगे खानखाना दियो याते दीन ह्वै दूनौ दान ईदर में ऐहै को
राजा श्री गंभीरसिंह छंद खूबचंद के मैं विदा में दगा दई न दीन कोउ पैहै को ॥[3]

---

१ अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ ४९९

२ देखिये गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४५

३ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ ५३

इस प्रकार रहीम द्वारा गंग को प्राप्त पारितोषिक का उल्लेख उक्त छंद में मिलता है। सेंगर ने लिखा है कि गंग को उक्त छप्पय पर वीरबल ने भी एक लाख रुपये का पारितोषिक दिया था।[१] यह बात असंभव इसलिये भी नहीं कही जा सकती क्योंकि उस काल में कला का मान आज जैसी हीनावस्था में न था। किन्तु गंग को खानखाना द्वारा दिये गये छतीस लाख रुपयों के स्थान पर छतीस लाख 'दाम' अधिक प्रतीतिजनक ज्ञात होता है। संभव है भूल से लोगों ने 'दाम' के स्थान पर रुपये को किंवदंती चला दी हो। चालीस दाम का मूल्य चाँदी के एक रुपये के बराबर था और साधारण व्यवहार में 'दाम' का ही अधिक प्रचलन था।[२] इस प्रकार छतीस लाख दाम के मूल्य नब्बे हज़ार रुपये आते हैं और यह पारितोषिक कवि के लिये कम ज्ञात नहीं होता। वीरबल के एक लाख रुपयों के स्थान पर भी 'दाम' ही समझना चाहिये।

प्रतिक्रिया स्वरूप कवि गंग ने निम्नलिखित छंदों में वीरबल की सुयश गाथा का वर्णन किया है :—

मालती शकुंतला सी-कोउ कामकंदला सी हाजिर हजार चारि नटी नौल नागरै
फिरत खवास खास लिये फिरे आसपास चोग्रन की कूपी और गुलाबन की गागरै
ऐसी मजलिस तेरी देखी राजा बीरबर गंग कहै गूंगी ह्वैकै रही है गिरा गरै
महि रह्यो मागधनि गीत रह्यो ग्वालियर गौरा रह्यो गौरना अगर रह्यो आगरै ॥[३]

कवि ने वीरबल की दान वीरता का चित्रण भी गंभीरतापूर्ण ढंग से किया है :—

दान कृपान सुजान पनो तू जहान को जीतव जीतन आयो
गंग कहै सब साहिबी अंगते तै ही मानो पुरहूत बढ़ायो
वीरबली नृप तेरी बराबर और विरंचि न दूजो बनायो
साहू के सोच शिवाहू के सूल सचीहू के साधु सपूत न जायो ॥[४]

अकबरी-दरबार के प्रधान सेनापति मानसिंह ने भी गंग को भारी सम्मान दिया था। कहा जाता है कि एक समय एक भिक्षुक कवि के सम्मुख आ उपस्थित हुआ और अपनी पुत्री के विवाह के हेतु धन की याचना करने लगा। गंग ने शीघ्र ही एक हज़ार की हुंडी महाराजा मानसिंह के नाम लिखकर भिक्षुक के हाथ में दे दी :—

---

१ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ४०२

२ अकबर दि ग्रेट मुग़ल, पृष्ठ ३८८

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३९

४ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२५

सिद्धि श्री मानसिंह जी की कीरति विसद भई तो लो राज रहो जो लो भूमि थिर वेनी है
रावरी कुसल हम सिसुन समेत चाहैं घरी घरी पल पल यहांहु सुचैनी है
हुंडी एक तुम पर करी है हजार की सों कविन को राखो मान साह जोग देनी है
पोहिचे प्रमान मान वंस में सपूत मान रोक गिनि देने जस लेते लिख देनी है ॥[1]

भिक्षुक हुन्डी लेकर मानसिंह के पास गया और रुपये लेकर अपने घर की ओर चल पड़ा। पश्चात् मानसिंह कवि की इतनी छोटी सेवा कर तृप्त न हुए क्योंकि गंग पर उनकी प्रबल श्रद्धा थी और उसके अनुपात में इस तुच्छ सेवा का कोई स्थान नहीं ठहरता था। फलस्वरूप उन्होंने कवि को लिख भेजा :—

इतमें हम महाराज हैं उतै आप कविराज।
हुन्डी लिखत हजार की लिखत न आई लाज ॥[2]

गंग ने मानसिंह की इस उदारता पर मुग्ध होकर उनकी वीरता-वर्णन में भी अद्भुत कला प्रदर्शित की है :—

झुकत कृपान मयदान ज्यों उदोत भान एकन ते एक मनों सुखमा जरद की
कहै कवि गंग तेरे बलकी बयार लगे फूटी गजघटा घनघटा ज्यों सरद की
एते मान सोनित की नदियां उमड़ि चलीं रही न निसानी कहू महि में गरद की
गौरी गह्यो गनपति गनपति गह्यो गौरी गौरीपति गह्यो पूछ लपकि वरद की ॥[3]

दानियाल अकबर का पुत्र और खानखाना का दामाद था। अकबर ने उसकी शिक्षा-दीक्षा हिन्दू पंडितों की देखरेख में कराई थी। हिन्दी-भाषा और हिन्दी-कविता से उसे विशेष अनुराग था। वह स्वयं हिन्दी में कविता करता था। इतिहासकारों ने उसे स्वछन्द प्रकृति का और शराबी लिखा है। खानखाना और दानियाल में घनिष्ठ सम्बन्ध तो था ही। गंग संभवतः खानखाना द्वारा ही दानियाल की ओर आकृष्ट हुए थे। दानशाह की वीरता और सहृदयता ने कवि को उसकी प्रशंसा में कुछ छंद कहने के लिये बाध्य किया :—

दलपति दरि गये दरिया उसरि गये दौरे दानशाह जू के दरषत हैं
कहै कवि गंग हय हसित दुरद मद उदवस देखि देखि रोम हरषत हैं

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३८

२ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुतः ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५७

परी हुती कोरीं कोरां छाड़ी पिय चोरीं चोरां गोरिन के नैन गोराधार बरसत हैं
गरभ को गिरि गये गोद के गिराय दये पलना के परे ते पहार परषत हैं ॥[1]

दानियाल की यह प्रशंसा उसकी शुभ वीरता-सम्बद्ध है। उसकी यह वीरता इतिहास-सम्मत भी है। अपनी वीरता के कारण ही वह दक्षिण का सूबेदार होकर कई वर्ष तक वहां रहा था।[2]

इस प्रकार कवि गंग दरबार के अनेक विशिष्ट-मानी व्यक्तियों के संपर्क में आये थे किन्तु इन सब में कवि का रहीम से ही सबसे अधिक संपर्क था। अपने हितैषियों की गुणावली वाले छंदों में रहीम सम्बन्धी छंद ही सबसे अधिक संख्या में उपलब्ध हुए हैं। खानखाना ने जब भारतभूमि तिलक गोस्वामी तुलसीदास के हृदय को सहसा आकृष्ट कर लिया तो अपने साथ रहने वाले कवि गंग के सरस हृदय को क्यों न आकृष्ट करते। खानखाना की जितनी प्रशंसा कवि ने की है वह उसके अन्तर्तम से उद्भूत जान पड़ती है। खानखाना जिस प्रकार पंडित थे वैसे ही सुजन और वीर भी थे।

कवि की दयनीय स्थिति

कवि की उपर्युक्त स्थिति सदैव न रही। जीवन के उत्कर्षापकर्ष का भी उसे अनुभव हुआ था। कवि के दिये हुए कई छंदों से उसकी दुरवस्था और दयनीय स्थिति का पता चलता है। जहांगीर के शासन में राजकीय विरोध के कारण उसे बुरे दिन देखने पड़े। इनके हितैषियों में कुछ की तो मृत्यु हो गई थी और कुछ अपने जीवन की अत्यधिक दयनीय स्थिति में पड़े हुए थे। कवि-हृदय तो था ही, उस समय उस पर जो कुछ भी बीता उसने उन्हें सीधे सादे शब्दों में व्यक्त कर देना अनुचित नहीं समझा। यह निम्नलिखित छंदों में वर्णित है:—

एक दिन ऐसो जामे शिवकाहू गज बाजि रहे एक दिन ऐसो जामे सोयबो को सहसो
एक दिन ऐसो जामे गिलम गलीचा लागे एक दिन ऐसो जामे तामे को न पयसो
एक दिन ऐसो जामे राजन सो प्रीति होत एक दिन ऐसो जामे दुश्मन को धहसो
कहे कवि गंग नर मन में विचार देख आज दिन ऐसो जात काल दिन कै-असो ॥[3]

उपर्युक्त छन्द में कवि गंग ने ऐश्वर्य और निर्धनता की विषमता का अनुभूति-

---

१ दरबारे-अकबरी, आज़ाद, पृष्ठ ८९-९०

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ६२

३ " " " " १२४

जन्य चित्रण किया है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि को किसी मानसिक कष्ट में एक-एक दिन व्यतीत करना कठिन हो गया था। उसकी मानसिक दशा बहुत दुःखदायी हो गई थी।

कवि गंग की दानशीलता का एक उदाहरण पहले दिया जा चुका है। संभव है उनकी उदार वृत्ति ही उनकी निर्धनता की विशेष कारण बन गई हो। दुर्दिन में कवि-के याचकों को रिक्त-हस्त लौटना पड़ता था। याचक ही क्यों नाई, धोबी, मोदी आदि को भी निराश होना पड़ा था। अपनी इस विकट स्थिति का वेदनापूर्ण वर्णन कवि ने निम्नलिखित छंद में किया है :—

नटवा लों नटै न टरै रहै मोदी सु डाड़िन में बहु भाव भरैं
सजि गाजे बजाज अवाज मृदंग लों वाकिये तान गिलौरी लरैं
पट धोबी धरै अरु नाई नरै सु तमोलिन बोलिन बोल धरैं
कवि गंग के अंगन मंगनहार दिना दस तें नित नृत्य करैं॥[1]

किन्तु ऐसा जान पड़ता है कवि की स्थिति इसके बाद ठीक हो गई थी। उसने अपने जीवन में उन्नति-अवनति का कई बार अनुभव किया था। इसी का वर्णन निम्न-लिखित छन्द में हुआ है :—

कई बार इहि छिति छोटनि में छोट भयो कई बार छिति में छतीसा पायो नाऊं में
कई बार देवलोकि देवन में देव भयो देखि देखि देह दुख दुदुनि डराऊं में
कहै कवि गंग काहू ओर के शरण गए साचो न कहूँ तो तुअ शरण समाऊं में
नाथ की शपथ तोहि त्रिपथ पवित्र गंगा सुाथ लगाऊं जैसे कुपथ न जाऊं मैं॥[2]

'देह-दुख' से स्पष्ट है कि कवि रोग-ग्रसित भी हुआ था और उसकी दशा बहुत बिगड़ गई थी और इस स्थिति में उसने ईश्वर का आश्रय लिया था।

कवि की वृद्धावस्था

गंग जहांगीर के शासनकाल तक जीवित रहे इसका प्रमाण कवि की रचनाओं से ही मिल जाता है। एक छंद में गंग ने अपने जीवन के चौथे 'पन' वृद्धावस्था का वर्णन किया है :—

बाभन को जनमु जनेऊ मेलि जानि बूझि जीभ ही बिगारिबे को याच्यो जन जन में
कहि कवि गंगु कहा कीजै जो न जाने जातु आयु ग्यान देखो जु बुढ़ाई ध्यान धन में

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १६६
२ " " " " छंद संख्या १६०

काम क्रोध मद लोभ मोह तिनही के बस पर्‌यो तिहुं पुर नायक बिसार्‌यो तिहुं पन में
कालिमा के चलत कज्ञापति न्यों चेत होति केस आए सेत है न कैसो आए मन में ॥[१]

एक 'पन' के २५ वर्ष मानने से गंग की अवस्था इस समय ७५ वर्ष के लगभग थी क्योंकि वह जीवन के चौथे 'पन' में प्रवेश कर चुके थे। बाल भी उनके श्वेत हो गये थे। गंग के अनेक छंद भी जो जहांगीर के सम्बन्ध में कहे गये हैं इस बात के सूचक हैं कि कवि जहांगीर के राज्यकाल तक रहा। जहांगीर संवत् १६६२ में सिंहासनारूढ़ हुआ और उसने राज्य की सारी बागडोर संवत् १६६६ में नूरजहां के हाथों दे दी थी। इस काल की राजकीय परिस्थिति सम्बन्धी छंद भी अपना विशेष महत्व रखते हैं। अतः इसमें सन्देह नहीं कि इस समय तक कवि वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुका था।

कवि गंग की मृत्यु दैवी-घटना प्रेरित न थी। यह शासक की कठोर कुभावना से उद्भूत थी। उनकी मृत्यु राजाज्ञा द्वारा घटित हुई। कवि से प्रभावित जनता की हृदय धमनि विरुद्ध आन्दोलन के लिये हिल उठी होगी और संभव है गंग की चर्चा राज-विद्रोह समझी गई हो और कवि के ग्रंथों को भी फलस्वरूप नष्ट करा दिया गया हो। हिन्दू जनता कवि की गौरवगरिमा की विस्मृति को अन्तः गुफा में भुलाने के लिये बाध्य हुई किन्तु परवर्ती कवियों की वाणी इस सम्बंध में मूक न बनी रही। उन्हीं कवियों की उक्तियों से यह प्रमाणित होता है कि गंग की मृत्यु राजाज्ञा द्वारा हाथी के प्रहार से हुई। गंग की मृत्यु सम्बंधी जो जनश्रुति चली आती है वह भी इसी पक्ष में है। प्रसिद्ध हिन्दी-कवि 'देव' ने अकबरी-दरबार से सम्बंधित तीन प्रसिद्ध कवि बीरबल, केशवदास तथा गंग की मृत्यु का वर्णन करते हुए लिखा है कि बादशाहों की सेवा में पीछे पछताना पड़ता है। तीनों ही बादशाह के कृपापात्र थे और तीनों ही की मृत्यु बुरी रीति से हुई :—

केशव से गंग से प्रसिद्ध कविवर सेजे कालहिं गए न वृथा काल ही बितावहीं
साहिन की सेवा सुख नाहिन विचारि देखो लोभ की उमाहिन पै पीछे पछतावहीं
....
अकबर वीरवर वीर कविवर कैसो गंग की सु कविताई गाई रस पाथी ने
वरनि वरनि नारी नरनि धरनीपति मोह लीने ताना ही ताथनंग ताथी ने

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रन्थ का, परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १६१

विन भगवंत के भजन अंत विपत्ति पै देवगति न पाई काऊ संपत्ति के साथी ने
एक दल सहित विलाने एक पहली में एक भये भूत एक मीज मारे हाथी ने॥[1]

किसी अज्ञात कवि के निम्नलिखित छंद में भी गंग की हाथी द्वारा मृत्यु का उल्लेख आया है :—

सब देवन को दरबार जुर्यो तहं पिंगल छंद बनाय कै गायों
जब काहू ते अर्थ कह्यो न गयो तब नारद एक प्रसंग चलायो
मृतलोक में है नर एक गुनी कवि गंग को नाम सभा में बतायो
सुनि चाह भई परमेसर को तब गंग को लेन गनेस पठायो ॥[2]

अतएव अब प्रश्न यह है कि किसी राजाज्ञा द्वारा इन्हें हाथी का शिकार बनना पड़ा अथवा संयोगवश किसी मतवाले हाथी के चपेट में ये आ गये। कवि द्वारा कथित छंदों से स्पष्ट होता है कि जहांगीर का विरोध उसने कई बार किया था और अंत में शासन का खोखलापन बताते हुए उन्हें मृत्यु की गोद में जाना पड़ा था। जहांगीर की क्रूरता के कई उदाहरण इतिहास के पृष्ठों में मिलते हैं। जहांगीर निरपराध व्यक्तियों को भी प्राणदंड दे डालने में संकोच नहीं करता था। वह अपने मनोरंजन के लिये मनुष्यों को हाथी और शेर से लड़वाया करता था और मनुष्य जब हिंसक जन्तुओं का शिकार बन जाता तब उसे एक अपूर्व आनंद मिलता था। 'तुज़ुक जहांगीरी' में इस प्रकार की घटनाओं के उल्लेख आये हैं।[3] उस काल में प्रणदंड पाये हुए व्यक्तियों को मस्त हाथी के सम्मुख छोड़ दिया जाता था और हाथी उन्हें पकड़कर चीर डालता था। यह रीति केवल जहांगीर के शासनकाल ही में न थी वरन् अधिकांश मुग़ल शासकों द्वारा मृत्यु-दंड का यही ढंग था।

कवि की रचनाओं से पता चलता है कि वह आरंभिक अवस्था में सलीम के अनुकूल था। उसने राज्यसिंहासनस्थ जहांगीर तथा युवराज सलीम (जहांगीर) दोनों की

---

१ वैराग्य शतक, जगद्दर्शन पच्चीसी, पृष्ठ २

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४५

३ On the 22nd when I had got within a shot of nilgaw, suddenly a groom (Jiladaur) and two kahars appeared and the nilgaw escaped. In a great rage I ordered them to kill the groom on the spot and to hamstring the kahars and mount them on asses and parade them through camps that none should again have the boldness to do such a thing.

Tuzuk Jahangiri, part 1, Page 164.

प्रशंसा की है। अकबर के राजत्वकाल में ही कवि सलीम की ओर झुक गया था :—

हाथी चाहै सालवन सांप चाहै माथे मनि पानी को प्रवाह जैसे चाहैं वेली पान की
संजोगिनी रैन चाहै जोगी जैसे जोग चाहै आतुर नायक चाहै जैसे नित मान की
चंदहिं चकोर चाहै पिक घनघोर चाहै चकई चकोर जैसे चाहै भेट भान की
हंस चाहै मानसर मोर चाहै मेघ झर गंग चाहै नज़र सलेम सुलतान की ॥[1]

अकबर की मृत्यु के पश्चात् सलीम जहांगीर के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। इस समय कवि जहांगीर की प्रशंसा में कहे हुए छंदों से स्पष्ट होता है कि वह अपने जीवन का अन्तिम समय जहांगीर की छत्रछाया में व्यतीत कर रहा था। बहुत काल तक जहांगीर की दृष्टि कवि की ओर कृपापूर्ण रही थी इसका आभास कवि-रचित जहांगीर की प्रशंसा के छंदों से लग जाता है :—

दलहिं चलत हलहलत भूमि जल थल जिमि चल दल
पल पल खल खल भलत विकल बाला कर कुल कल
जिव पट्टहिं ध्वनि युद्ध धुंधु धुद्धु व धुद्धु व हुव
अरर अरर फटि दरकि गिरत धस मसति धुकनि ध्रु व
भनि गंग प्रबल मिह चलत दल जहांगीर तुव भार तल
फुं फुं फरिंद फुंकरत सहस गाल उगिलत गरल ॥[2]

उक्त छंद में जहांगीर की सेना के आतंक का भी कवि ने वर्णन कर दिया है।

जहांगीर संवत् १६६२ में सिंहासनारूढ़ हुआ था। उस समय गंग की अवस्था ६७ वर्ष की थी क्योंकि कवि के जन्म संवत् १५९५ का उल्लेख पहले हो चुका है। जहांगीर अपने पिता के दरबारी कवि पर श्रद्धा की दृष्टि रखता था किन्तु यह अवस्था बहुत काल तक न रही। नूरजहां जहांगीर की अधिष्ठात्री हुई और साथ ही राज्य की शासिका भी। जहांगीर ने राज्य-संचालन का सारा भार उसी पर छोड़ दिया था। इसके पश्चात् देश की राजकीय स्थिति बिगड़ने लगी। अयोग्य पुरुषों की दरबार में भरमार हुई और इस अराजकता के कारण लोग शासन से विमुख रहने लगे। जब खुर्रम को आश्विन सुदी १३, संवत् १६७४ में 'शाहजहां' की उपाधि मिली[3] तो दरबार के कई प्रतिभाशाली

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५९

२ „ „ „ „ „ „ १०६

३ तुजुक-जहाँगीरी, भाग १, पृष्ठ ३३८

व्यक्ति उसकी ओर आकृष्ट हो गये क्योंकि जहांगीर अपने क्रूर स्वभाव और विलास-प्रियता के कारण अधिकांश लोगों का घृणापात्र बन चुका था। राजनीतिक मामलों में वह नूरजहां के हाथों की कठपुतली होने के कारण उचित न्याय करने में भी असमर्थ रहता था। लोग नये युवराज से सुंदरतर शासन की आशा कर रहे थे। अतः वे अकारण ही शाहजहां की प्रशंसा करने लगे। गंग ने भी ऐसा ही किया। उन्होंने युवराज शाहजहां की प्रशंसा इस प्रकार की थी:—

नाउ लिए घर ते निकस्यो कवि गंग कहै साहजान तिहारो।
आइके देख्यो है कल्पतरु अरु काम दुधा मनि/चिंतति भारो।
आज हमारी भई परिपूरन आस सबै कबहूं नहिं वारो।
लोभ गयो सिगरो चित ते अब ये गयो दारिंद छेदन वारो॥[१]

दरबारी व्यक्तियों की इस प्रवृति का आभास नूरजहाँ को भी मिला। शाहजहाँ के पोषक व्यक्तियों से वह स्वार्थवश शत्रुभावना रखने लगी यद्यपि स्पष्ट रूप से अभी वह उनका प्रतिकार करना उचित नहीं समझती थी। गंग की भी नूरजहाँ के प्रति कोई विशेष श्रद्धा ज्ञात नहीं होती क्योंकि नूरजहाँ की प्रशंसा में उसका रचा एक भी छन्द नहीं मिलता है। राज्य का साम्राज्ञी की प्रशंसा उसी के दरबार का कवि न करे यह एक प्रकार का अपराध ही था। किन्तु कवि के जीवन दुःखमय समय तो तब आया जब नूरजहाँ के एक सम्बन्धी जैनखां[२] ने कवि गंग के इकनौर गाँव के जुनारदारों पर आक्रमण किया तथा क्रूर भाव से उनका विध्वन्स किया। इस परिस्थिति ने कवि के हृदय में विप्लव की भावना उत्पन्न कर दी। बात उचित ही थी—जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। कवि ने निर्भीकता से राज्य के इस क्रूर कार्य की कटु आलोचना की। उसने इस घटना का निम्नलिखित छंद द्वारा जिसका उल्लेख पहले हो चुका है विरोध किया :—

बाकंरखां विरच विदरभ देस मारयो गंग दलखान मारे मीर कन्हर गौर के।
दाही भीर मारि के अनेक देस पस्ति करि खानदेस खोहै चित्र मन्दिर मरोर के।

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३०

२ ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता कि जैन खाँ नामक नूरजहाँ का कोई भाई था। संभव है वह नूरजहाँ का कोई दूर के सम्बन्ध में भाई लगता हो जिसका इतिहास-ग्रंथों में उल्लेख नहीं मिलता।

पूरब पछाह वरदाने मानसिंह मारे कासिम खाँ खोदे हैं मवास ठौर ठौर के।
केसोदास मारु मरि हरम कमठ करी जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के ॥[1]

उक्त छंद में जैनखां के क्रूर कर्म की निन्दा के साथ ही समय-समय पर घटित अन्य व्यक्तियों द्वारा किये गये अत्याचारों का भी उल्लेख कर दिया गया है। इस घटना की पुष्टि किसी अज्ञात कवि के निम्नांकित छन्द से भी होती है :—

ठठा मार्यो खानखाना दच्छन अजीम कोका ईसफखां मीर मारे कसमीर ठौर के
साहि के हराम खोर।मारे साह कुलीखान कहाँ लौ गिनाऊं उमराव और के
रुस्तम नवाब मारि बालाघाट वार कियो फाजिल फिरंगी मारे टापनि सरोर के
वास्ती को काम छह हजार असवार जोरे जैनखाँ जुनारदार मारे इकनौर के ॥[2]

कासीराम रचित छंद में भी इस घटना का परिचय मिलता है :—

सालीग्राम कंठ तुरसी की कंठी कंठ आवे चारों वेद कंठ विरचैया जग्य ठौर ठौर के
घासिन से दर्भ बांधे उजरे अगोंछा कांधे नैसक सिखाऊं राखे वैरी वार और के
बड़े व्रतधारी लीने हाथन में झारी चारु कासीराम मन्त्रन करैया अघ चौर के
तप के पहार जैहैं पुन्य अवतार ऐसे जैनखां जुनारदार मारे इकनौर के ॥

शिवसिंह-सेंगर ने उक्त छन्दके 'कासीराम' को गंग का पुत्र लिखा है[3] किन्तु उन्होंने इसको मानने के लिये कोई निश्चित आधार नहीं दिया है।

नूरजहाँ का सगा भाई आसफखाँ था और उसे उसने राज्य के मंत्रीपद पर नियुक्त किया था। जैनखाँ संभवतः उसका सगा भाई न होकर किसी निकट के सम्बन्ध से भाई लगता था क्योंकि उसका उल्लेख गंग के परवर्ती कवि कृपामणि ने किया है :—

नूरजहाँ को भाई जैनखाँ जौन तिनकी खटाई कवि गंग ने कही हती
अजहुँ लो जात चली बात वह जहाँ तहाँ मुलक खजाना कहां उनकी कमी हती
कृपामणि कहै ओण दे के सरदारों सुनों कानि दै नसीहत न कौन की गनी हती
याते भूलि बैर नहि कीजै कवि लोगन ते कविन के बैर किये जुग लौ फजी हती ॥[4]

---

१ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

२ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

३ शिवसिह-सरोज, पृष्ठ ४०२

४ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

इस प्रकार स्वयं कवि के छंदों तथा अन्य परवर्ती कवियों की उक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनखाँ ने इकनौर के ब्राह्मणों को मरवाया था और कवि ने उस कृत्य की निन्दा खुले रूप में की थी। गंग के ये छंद जब नूरजहाँ के कानों पड़े तो उसके हृदय में प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो उठी। फलस्वरूप दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग को जहांगीर ने हाथी से कुचले जाने की आज्ञा दी। इसका उल्लेख दरबारे-अकबरी में इस प्रकार आया है:—

'जहांगीर बादशाह एक दिन तीरंदाज़ी कर रहा था। किसी भाट की यावागोई पर खफ़ा होकर हुक्म दिया कि उसे हाथी के पांव तले पामाल करें। खानखाना पास खड़ा था। फ़िरका मज़कूर की हाज़िर जवाबी उसकी ज़बानदराज़ी से भी बढ़ी हुई होती है। उसने अर्ज़ की कि हुज़ूर! ज़रैबा चीज के लिए हाथी क्या करेगा। एक चुहे चिढे का पाँव भी बहुत है। हाथी का पाँव खानखाना के लिये चाहिये कि बड़ा आदमी है। जहांगीर ने उसकी तरफ देखा कि इस लुफ़ज ने दिल पर क्या असर किया। पूछा क्या कहते हो? उन्होंने कहा—कुछ नहीं। दारोगा से कहा—तू बता दे। खानखाना खुद बोले कि हुज़ूर के तसद्दुक से खुदा ने मुफ्त नाचीज़ को ऐसा किया कि यह बड़ा आदमी समझता है मैंने उस वक्त शुक्रे-खुदा किया और कहा जब इसकी देगा खता माफ़ हो तो पांच हजार रुपये दे देना, हुज़ूर के जानो माल की दुआ देगा।[1]'

खानखाना ने इस ढंग की पैरवी गंग भट्ट के लिये ही की होगी किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि नूरजहां के कारण जहांगीर विवश हो खानखाना की प्रार्थना को कार्यरूप में न ला सका। उसमें नूरजहां का विरोध करने की सामर्थ नहीं रह गई थी और समय भी यह वह था जब खानखाना ने जहाँगीर के विरुद्ध शाहजहाँ से मिलकर राजविद्रोह किया था। ज़ल्लादों ने वृद्ध कवि को मतवाले हाथियों के सामने खड़ा कर दिया। परन्तु मरते समय भी कवि ने अपनी स्पष्टवादिता और निर्भीकता का एक उदाहरण दिया। निम्नोद्धृत दोहा कहते-कहते वह मृत्यु की गोद में चला गया:—

कबहु न भडुआ रन चढ़ै कबहु न बाजी बंब।
सकल सभाहि प्रनाम कर विदा होत कवि गंग॥[2]

---

१ दरबारे-अकबरी, पृष्ठ ६५०

२ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

निम्नलिखित छंद से भी कवि का जहांगीर की आज्ञा द्वारा हाथी से मारे जाने की पुष्टि होती है:—

शाह अकबर महाकवि नरहरि जी को दीन्हयों महापात्र पद मरजाद जाती में
तापै चौर चोपदार चामी कर पग दीन्ह्यो पालकी में कंध केते पुर लिखि पाती में
गंग कवि हेत घने तैसे गज ग्राम दीन्हें आज लगि बान मान भोज अधिकाती में
संग दिल शाह जहांगीर से उमंग आज देत है मतंग पद सोई गंग छाती में ॥[१]

एक और गुलाब कवि की 'गंग ऐसे गुनी सो गयंद सों चिराइये' पंक्ति द्वारा गंग का आज्ञा विशेष द्वारा हाथी से मारा जाना सिद्ध होता है।[२] कवि गंग की मृत्यु की घटना सम्बंधी उद्‌गारों को काव्य में व्यक्त करना कवि लोग अपना कर्तव्य समझने लगे थे। कवि गंग की मृत्यु की हृदय-विदारक घटना को किसी अज्ञात कवि ने निम्नलिखित प्रकार से दिया है:—

कायर को खेत कहा कपटी सो हेत कहा विसवा विसास कहा कबलों पताइये
वारु वारी भीत कहा ओछन सो प्रीति कहा रागे को रुपैया कहा बार बार ताइये
काठ तलवार घाटि कौन जंग जीत आयो कागज को घोड़ा कहौ कैसो दौर दौराइये
कहै ये गुलाम के तिलाम तिनके जे साह गंग केसे गुनीन को गयंद पै तुराइये ॥[३]

जहांगीर का शासन युद्ध, विजय और पराजय की विशिष्ट घटनाओं से आक्रांत नहीं था। एक तो उसने थोड़े ही वर्ष राज्य किया और इसमें भी उसके शासनकाल में अधिक काल तक अराजकता ही रही। विलासिता और सुख-लिप्सा का साम्राज्य था। अतः उक्त छंद तथा कवि गंग का कथन 'कबहु न भड़ुआ रन चढ़े कबहु न बाजी बंब' जहांगीर के शासन के लिये कहा गया उचित जान पड़ता है। जहांगीर की क्रूर प्रकृति, नूरजहां का स्वार्थ, इकनौर का अत्याचार, गंग की स्पष्टवादिता और निर्भीकता को दृष्टि के सम्मुख रखने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि जहांगीर की नृशंसता ने ही गंग को हाथी द्वारा मृत्यु का शिकार बनाया।

हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि कवि गंग किसी राजा अथवा नवाब की आज्ञा से हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाये गये।[४] कुछ

१ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४६

३ याज्ञिक-संग्रहालय से प्राप्त

४ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २४५

अन्य हिन्दी इतिहासकारों ने इसका समर्थन किया है। विचार करने पर यह भलीभाँति विदित हो जाता है कि मुग़ल दरबार के एक श्रेष्ठ और सम्मानित कवि-रत्न को कोई साधारण राजा अथवा नवाब इस क्रूर कृत्य को करने का साहस ही कैसे कर सकता था। ऐसा करने पर उसे मुग़ल सम्राट् से प्रबल शत्रुता मोल लेनी पड़ती। फिर इस समय तक ख़ानख़ाना जीवित थे। उनकी मृत्यु संवत् १६८२ में हुई। उनके सम्मुख उनके प्रिय कवि को कोई राजा या नवाब मरवा देता और वे चुप रह जाते यह भी असम्भव था। अतएव गंग की मृत्यु जहांगीर की क्रूरता का ही विषादपूर्ण परिणाम था और जिस क्रूरता ने लोगों के मुखों और इतिहासकारों की लेखनी को मौन कर दिया था। यह घटना खानखाना की मृत्यु के पहले संवत् १६७४ के बाद ही घटी होगी क्योंकि संवत् १६७४ में तो गंग ने युवराज शाहजहाँ की प्रशंसा ही की थी।

स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद यह कहते हुए कि गंग राजाज्ञा द्वारा हाथी से नहीं कुचलवाये गये, उन्हें औरंगजेब के राज्यकाल तक ले गये हैं और इसकी पुष्टि में उन्होंने निम्नलिखित छप्पय दिया है:—

तिमिर लंग लइ मोल चली बब्बर के हलके
साह हिमाऊं साथ गई फिरि सहर बलक्के
अकबर करी अजाच भात जहांगीर खवाए
शाहजहां सुलतान पीठि को भार छुड़ाए
उन छोड़ि दियो उद्यान वन भ्रमि फिरत है स्यार डर
औरंगजेब बखसीस किय अब आइ कवि गंग घर ॥[1]

इतिहासकार मिश्रबंधुओं ने तर्कपूर्वक इस छप्पय की प्रमाणिकता स्वीकार करते हुए अंतिम चरण का पाठ 'आई कविराज घर' पाठ देकर मुंशी जी का यह कथन गलत प्रमाणित किया है कि गंग औरंगजेब के काल तक जीवित थे।[2] लेखक को याज्ञिक-संग्रहालय में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों में यही 'कवि लाल घर' पाठ देखने को मिला। 'सुंदरदास कविराज' शाहजहां और औरंगजेब के समकालीन थे तथा पं० सुखदेव मिश्र 'लाल' कवि के नाम से प्रख्यात औरंगजेब के कृपापात्र थे। अतः इस आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अंतिम चरण का पाठ 'कवि लाल घर' अथवा 'कविराज घर' ही होगा।

---

१ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७७

२ " " " पृष्ठ २७८

इस प्रकार मुंशी देवी प्रशाद का गंग को राजाज्ञा द्वारा हाथी से न मारा जाना और औरंगजेब के समय तक ले जाने का प्रयास निष्फल सिद्ध होता है।

कवि गंग के कवित्तों में निम्नलिखित छंद भी दिया गया है :—

शाह सो सलाम करि मार्‌यो है सलावत खान नैक न सम्हार्‌यो बोल राख्यो ठोर ठाकरो
केते केते मीर मारे कैसे केते कंपू ठाड़े खेलत शिकार जैसे मृगन में बाघरो
कहै कवि गंग गजसिंह के अमरसिंह राखी रजपूती ते नवल्ल नर नागरो
पार्व सेर लोह ते हिलाई सारी बाशाही होती शमसेर तो छिनाय लेतो आगरो ॥[१]

राजा अमरसिंह सम्बंधी उपर्युक्त गंग को बादशाह शाहजहां के राज्यकाल तक ले जाता है, जो कि उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा गलत सिद्ध होता है। जहांगीर के शासनकाल मे ही गंग की मृत्यु हो गई थी। उक्त छंद की भाषा, लय, प्रवाह आदि गुणों के आधार से यह गंग की रचनाओं से मेल नहीं खाता। ऐसा ज्ञात होता है कि किसी कवि ने मुग़ल दरबार के प्रतिशोधनार्थ यह कवित्त लिखकर उसमें गंग की छाप डाल दी है। प्रक्षिप्त अंश मिलाने वाले कवि प्रतिष्ठित कवियों की छाप डाल कर ही अपने छंदों को प्रचलित कर देते हैं।

बाबा वेणीमाधवदास कृत कथित 'मूलगुसाईं-चरित' में यह दिया गया है कि कवि गंग ने तुलसीदास की भक्ति-प्रद्धति की कटु आलोचना उनकी उपस्थिति में ही की। महात्मा तुलसीदास कुछ बोले नहीं किन्तु 'ऋषि के क्षमा शाप से भारी', मार्ग में जाते समय एक हाथी ने बिगड़ कर गंग को अपनी सूंड़ में उठा लिया और फिर अपने पैरों से कुचलकर उनका काम-तमाम कर दिया। अयोध्या से प्रकाशित मूल-गुसाईं-चरित की निम्नलिखित पंक्तियों से इस कथन की पुष्टि की गई है :—

गंग कहै हाथी कवन माला जपेउ सुजान कठ मलिया बंचक भगत कहि सो गयो रिसान।
छमा किये नहिं साप दिय रंगे सान्ति रस रङ्ग मारग में हाथी कियो झपटि गङ्ग तन भंग ॥[२]

किसी अन्य कवि ने इस कथन का उल्लेख नहीं किया है। विशिष्ट महात्माओं के सम्बन्ध में ऐसी जनश्रुतियाँ प्रायः प्रचलित हो ही जाती हैं। फिर 'मूलगुसाईं-चरित' की प्रमाणिकता भी संदिग्ध है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पं० रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० दीनदयालु

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १८७
२ मूल-गुसाईं-चरित, पृष्ठ ३३

गुप्त, डॉ० माताप्रसाद गुप्त आदि विद्वानों ने अपनी खोजों से इसको एक अप्रमाणिक ग्रंथ सिद्ध किया है।[1] इसलिए गंग की मृत्यु वाला कथन भी अप्रमाणिक ही है दूसरे जैसा ऊपर कहा गया है कि अन्य किसी समकालीन अथवा परवर्ती कवि ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है और गंग की मृत्यु-घटना का ऊपर विस्तारपूर्वक विचार प्रस्तुत ही किया जा चुका है।

कवि गंग की धार्मिक भावना

कवि गंग की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वह कृष्णोपासक कवि थे। उनके कई छंद इसकी पुष्टि करते हैं। कवि ने राम और कृष्ण दोनों की महिमा का गुणगान किया है किन्तु उसकी उपलब्ध रचनाओं में कृष्णभक्ति का ही विस्तार पाया जाता है। कवि की भक्तिगत विह्वलता निम्नलिखित छंद में द्रष्टव्य है :—

> जो कहो मोहन जा मथुरा में तो मंदिर में मढ़ई इक छाऊँ
> जो कहो तो तुलसी तन माल तमालन बीच नचो अरु गाऊँ
> स्वाँग अनेक करो कवि गंग हो कैसेहु कान्ह तिहारो कहाऊँ
> काल गहे कर डोलत मोहि कछू इक बेर खुसी कर पाऊँ ॥[2]

कृष्ण की बाल-क्रीड़ा, राधा-कृष्ण-केलि-कमनीयता उनकी रूप-माधुरी, यमुना-महिमा आदि के वर्णन कवि की कृष्ण-भक्ति के परिचायक हैं। गंग के परम हितैषी राजा वीरबल भी कृष्णाश्रयी शाखा के भक्त थे यह पहले उनकी जीवनी प्रसंग में दिखाया जा चुका है। वीरबल की इस धार्मिक विचारधारा का प्रभाव संभव है, गंग पर भी पड़ा होगा किन्तु यह निश्चय नहीं होता कि वे कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी किस मत के पोषक थे। संभव है बल्लभ-संप्रदाय से उनका कोई सम्बंध रहा हो क्योंकि उनके मित्र वीरबल का उससे संप्रदाय से पूरा संपर्क था ही और कृष्णभक्ति संप्रदायों में उस काल में बल्लभ-मत ही प्रधान था।

अब्दुर्रहीम खानखाना

अकबरी-दरबार के उत्कृष्ट हिन्दी-कवियों में रहीम ही एक ऐसे कवि हैं जिनके जीवन की अधिकांश घटनाएँ ऐतिहासिक ग्रंथों में संग्रहीत हैं। रहीम का युवाकाल

---

१ अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, पृष्ठ १६२

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९०

अकबर और बुढ़ापा जहांगीर के दरबार में व्यतीत हुआ था तथा मृत्यु जहांगीर के शासनकाल में घटित हुई थी। अकबर के दरबारी इतिहासकारों—अबुल्फ़ज़ल, अब्दुल-क़ादिर बदाउनी आदि और स्वयं जहांगीर ने अपनी रचना 'तुज़ुक-जहांगीरी' में रहीम की जीवन सम्बंधी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है। अब्दुलबाक़ी रचित-मआसिरे-रहीमी द्वारा भी रहीम के लौकिक और साहित्यिक जीवन पर यथेष्ठ प्रकाश पड़ता है।

जाति, वंश, जन्म और शिक्षा—

रहीम तुर्कमान जाति और कराकयल् परिवार की बहारलू शाखा में उत्पन्न वैरमखां खानखाना के पुत्र थे। ये अपने पिता से भी अधिक गुण-संपन्न और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।

अकबर और उसके साथी जिस समय सिकन्दर सूर के लाहौर आक्रमण का विरोध करने के लिये सोमवार पौष सुदी ५ को दिल्ली से पंजाब की ओर प्रस्थान कर रहे थे उसी अवसर पर गुरुवार माघ बदी संवत् १६१३ को बैरमखां के घर में जमालखां मेवाती की छोटी बेटी से पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम अकबर ने अब्दुर्रहीम रक्खा।[1] स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने मुंशी देवीप्रसाद द्वारा उपलब्ध रहीम की जन्मकुंडली को उद्धृत करते हुए इस जन्म-तिथि की प्रमाणिकता सिद्ध की है।[2] अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों से भी संवत् १६१३ ही रहीम की जन्मतिथि निकलती है।[3] कालांतर में अकबर बैरमखां की अनधिकार चेष्टा देख-देख कर उसके विरुद्ध होता गया और इसके फलस्वरूप वैरमखां को शासन से अलग होना पड़ा। अकबर के विरुद्ध उसने राजविद्रोह की चेष्टा की किन्तु अकबर ने उसकी पिछली सेवाओं को स्मरण कर उसे क्षमा प्रदान किया किन्तु पाटन के एक पठान ने प्रतिशोध में उसे क़त्ल कर दिया और उस समय रहीम को लेकर जो केवल लगभग चार वर्ष का बालक था मुहम्मद अमीन दिवाना, बाबार जम्बूर और ख्वाजा मलिक अनेक कठिनाइओं को झेलते हुए अहमदाबाद पहुँचे जहां वे चार महीने तक रहे। तभी

---

१ अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ ७६

२ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ३, ३४

३ दर रोज़ चहारसंबर दहुमे माहेसफ़र सन् अरबाब सिक़्तीन वत्तिस्स में अत्त मौलूदे गायत महमूद..........अल्लाह तआल्लाह ब एशां करामत फ़रमूद ब मुसम्मा ब अब्दुर्रहीम खान गश्त।

मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ३

अकबर ने उसके पालन-पोषण और शिक्षा का भार लेते हुए उसे अपने पास आश्विन सुदी २, संवत् १६१६ को आगरे बुला लिया। अकबर ने रहीम की शिक्षा के लिये सर्वोत्तम प्रकार का प्रबंध किया था और इन्हें 'मिर्ज़ाखां' की उपाधि प्रदान की थी।[1] जीवनीकार इतिहासकार अब्दुलबाक़ी लिखता है कि स्वयं रहीम से उसे मालूम हुआ था कि उन्होंने ग्यारहवें वर्ष में काव्य-रचना आरंभ कर दी थी और उसी समय से लोगों ने उनकी कविता में रुचि दिखाना आरम्भ कर दिया था। उन्होंने किसी को अपना गुरू नहीं बनाया था वरन् अपनी काव्य-प्रतिभा के भरोसे ही आगे बढ़े थे।[2]

विवाह

अकबर ने अपनी धाय जीजी माहम अंगा की बेटी माहबानू से रहीम का विवाह किया था और इस प्रकार रहीम का बादशाह के खानदान से वही सम्बंध हो गया था जो इनके पिता बैरम खानखाना का था।

भाग्योदय और पद-प्राप्ति

गुजरात की चढ़ाई के अवसर पर अकबर ने रहीम को पाटन की जागीर अगहन सुदी ३, संवत् १६२९ को दी और सय्यद अहमद खां को इनका संरक्षक नियुक्त किया। गुजरात के लोगों ने उपद्रव मचाया किन्तु रहीम ने उन्हें पराजित किया और इसके उपलक्ष में उन्हें चैत सुदी ११, संवत् १६३३ में गुजरात की सूबेदारी मिली। वैसाख बदी १२, बृहस्पतिवार संवत् १६३५ को शाहबाज़खां की सहायता से इन्होंने कुंभलनेर का अगम दुर्ग जीता। उदयपुर भी इनके अधिकार में हो गया। इससे रहीम अकबर की दृष्टि में बहुत ऊंचे उठ गये। चैतबदी ११, संवत् १६३६ के आरम्भ में बादशाह ने इन्हें कुलीन, निःस्वार्थी तथा प्रजा का सच्चा सेवक जानकर 'मीर-अर्ज़' का पद प्रदान किया। इसके कुछ काल बाद ही बादशाह से इन्हें अजमेर की सूबेदारी और रणथंभौर का प्रसिद्ध क़िला प्राप्त हुए।[3] अकबर रहीम की कार्य-कुशलता, योग्यता और बुद्धिमता से इतना प्रभावित

---

१ अकबरनामा, भाग २, पृष्ठ २०३, २०४
मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १८३

२ अज़ईन सिपहसालारि आली मिक्दार इस्तिमारफ्त कि दर याज़दह सालगी मराब गुफ़्तनि अशआर रग़बत उफ़ताद.............

मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५६२

३ मआसिरुल उमरा, भाग २, पष्ठ १८३

था कि किसी भी उच्च पद के रिक्त होने पर इन्हीं की ओर उसकी दृष्टि जाती थी। अपने बड़े शाहज़ादे सलीम की 'अतालिकी' का भार अकबर ने इन्हीं को दिया था। कुछ काल बाद घाड़े के क्रय-विक्रय, देखभाल का कार्य भी इन्हीं को सौंपा गया। गुजरात में पुनः उपद्रव होने पर एक बड़े लश्कर के साथ इनको अकबर ने वहाँ भेजा। माघवदी १४, संवत् १६४० को पाटन पहुँचकर सात अंग का व्यूह रचा और स्वयं बीच में रहे। सेना के निरुत्साहित होने पर उन्होंने एक फ़रमान बादशाह की ओर से प्रकाशित किया जिसके फलस्वरूप सेना आह्लादित हो आगे बढ़ी और माघसुदी १५, संवत् १६४० को शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। शत्रुओं के सिर उठाने पर उन्हें दुबारा पराजित किया। अकबर ने इससे प्रसन्न होकर रहीम को जनवरी, १५८४ में 'खानखाना' का खिताब और पाँच हजारी का मनसब प्रदान किया।[1] 'वकील' का पद मुगलों के राज्य में सर्वोपरि समझा जाता था। राजा टोडरमल की मृत्यु के बाद यह पद पौष वदी १२, संवत् १६४६ में रहीम को प्रदान किया गया। खानखाना ने सिन्ध पर भी विजय प्राप्त की। फागुन बदी बुधवार संवत् १६५३ के अंतिम विजय से दक्षिण में भी मुग़ल-शासन की धाक बैठ गई।[2] अबुल्फ़ज़ल की हत्या के बाद भादों सुदी २, संवत् १६५६ से दक्षिण की लड़ाइओं का सारा भार खानखाना पर हो गया था। संवत् १६६१ में शाहज़ादा दानियाल की मृत्यु के पश्चात् दक्षिण का पूर्ण अधिकार खानखाना को मिल गया। इस प्रकार रहीम का जीवन अभी तक एक समृद्धशाली और वैभवयुक्त व्यक्ति के समान व्यतीत हुआ था। वे शासक की दृष्टि में बहुत ऊँचे उठ गये थे। अकबर के शासनकाल में इनका काफी मान हुआ था।

कार्तिक सुदी १४, सम्वत् १६६२ में अकबर की मृत्यु के बाद शाहज़ादा सलीम जहांगीर के नाम से सिंहासनारुढ़ हुआ। इस समय की रहीम की अवस्था ४१ वर्ष की थी। जहांगीर ने खानखाना को उसी अधिकार पर रहने दिया। 'तुज़ुक जहांगीरी' में जहांगीर ने खानखाना का दरबार में उपस्थित होने का वर्णन सजीव ढंग पर किया है—'एक पहर दिन चढ़ा था कि खानखाना जो मेरी अतालिकी के अधिकार से सम्मानित था, बुरहानपुर से आकर सेवा में उपस्थित हुआ। वह इतना आनन्दित और

१ मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५
मआसिरूल उमरा, पृष्ठ १८४

२ खानखानानामा, पृष्ठ ३५, भाग २

उत्साहपूर्ण था कि वह नहीं जानता था कि वह पाँव से आया है या सिर से। उसने बड़ी व्याकुलता से अपने को मेरे पैरों पर डाल दिया और मैंने भी दयालुता से उसको ऊपर उठाकर छाती से लगाया और उसका मुँह चूमा। उसने मोतियों के दो हार, कई हीरे और माणिक भेंट किये जिनका मूल्य तीन लाख रुपये था। इनके अतिरिक्त बहुत सी अन्य वस्तुएँ और सौगातें भेंट की।[1] बादशाह ने भी खानखाना को एक अद्वितीय घोड़ा और 'फ़तह' नामक एक हाथी को जो लड़ने में अद्वितीय था, बीस और हाथियों सहित भेंट किया।[2]

खानखाना ने पुनः मगसर वदी २, संवत् १६६५ को दक्षिण के लिये प्रस्थान किया। जहाँगीर ने इस अवसर पर उन्हें जड़ाऊ तलवार, पेटी और शिरोपाव खासा हाथी समेत प्रदान किया। किन्तु अपने सहायक शाहज़ादा परवेज, राजा वीरसिंह देव, विक्रमाजीत और शुजातखाँ की ईर्ष्या के कारण पराजित हुए। इस पर खानखाना संवत् १६६७ में दरबार में बुला लिये गये।[3] किन्तु खानजहाँ लोदी जिसके विश्वास दिलाने पर जहाँगीर ने खानखाना को वापिस बुला लिया था, शत्रुओं द्वारा पराजित हुआ। तब खानखाना पुनः दक्षिण भेजे गये। इस अवसर पर उनका मनसब छः हजारी का हो गया और जड़ाऊ तलवार, हाथी एवं इराकी घोड़ा भी भेंट में मिला।[4] पौष सुदी १०, संवत् १६७५ को बादशाह ने सात हजारी जात, सात हजार सवार का मनसब, खासा खिलअत, खासा हाथी, जड़ाऊ तलवार कमर पट्ट सहित और खानदेश तथा दक्षिण की सूबेदारी मिली। इस प्रकार खानखाना का दरबार में पूर्ववत् सम्मान हो गया था।

अपमान, वैभवहीनता तथा पुनर्सम्मान

खानखाना ने अभी तक सुखमय जीवन ही व्यतीत किया था और किसी प्रकार का अपमान उन्हें नहीं सहना पड़ा था। किन्तु नूरजहाँ के शासिका बनने पर परिस्थितियाँ बदलीं। उसने शाहज़ादा शाहजहाँ (खुर्रम) की अपेक्षा छोटे शाहज़ादे शहर्यार का अधिकार बढ़ाना आरम्भ किया। क्योंकि वैसाख सुदी ४, संवत् १६७८ को नूरजहाँ की पुत्री से उसका विवाह होने पर वह उसका दामाद हो गया।[5] इसके कुछ ही पहले चैत

१ तुजुक-जहाँगीरी, भाग १, पृष्ठ १४७
२ „ „ पृष्ठ १५१
३ „ „ पृष्ठ १७८
४ „ „ पृष्ठ २२१, २२२
५ „ भाग २, पृष्ठ १९४

वदी १४, संवत् १६७७ में उसे आठ हजारी जात और चार हजार का मनसब देकर फौज़ी अफसर बनाया गया था। किन्तु परिस्थितियों से विवश हो ख़ानख़ाना ने जहाँगीर के विद्रोही शाहजहाँ का साथ देना उचित समझा। इसी कारण संवत् १६८० में जहाँगीर ने खानखाना का अपमानजनक शब्दों में वर्णन किया है—'जब कि ख़ानख़ाना जैसा अमीर जो अतालिकी के ऊँचे पद पर पहुँचा हुआ था, ७० वर्ष की अवस्था में अपना मुँह नमकहरामी से काला कर ले तो क्या गिल्ला है। उसके बाप ने भी अंतिम अवस्था में मेरे बाप से ऐसा ही बरताव किया था। यह भी इस उम्र में बाप का अनुगामी होकर हमेशा के लिये कलंकित हुआ। भेड़िये का बच्चा आदमियों में बड़ा होकर भी अंत में भेड़िया ही रहता है।'[1] शाहजहाँ के विरोध के होते हुए भी ख़ानख़ाना ने महावतखाँ को पत्र भेजा जो शाहजहाँ की पकड़ में आ गया और वे कैद हुए। महावतखाँ और शाहजहाँ के शर्त-प्रस्ताव पर खानख़ाना छूट गये। परन्तु इसके बाद वे परिस्थितिवश परवेज से मिल गये जिसके फलस्वरूप शाहजहाँ और महावतखाँ दोनों ख़ानखाना के विरुद्ध हो गये। जब कोई उपाय दृष्टिगत न हुआ तो वे जहाँगीर के दरबार में पहुँचे और लज्जा के कारण बहुत देर तक उन्होंने अपना सिर जमीन की ओर से ऊपर नहीं उठाया। बादशाह ने उन्हें आश्वासन दिया और उनको उचित पद प्रदान किया। फागुन सुदी १५, संवत् १६८२ को रहीम को फिर से 'ख़ानख़ाना' की पदवी और खिलअत के साथ कन्नौज की हुकूमत मिली। इस स्थान पर 'मुआसिरुल उमरा' के लेखक ने लिखा है कि अब उस दुनियादार बूढ़े बेशर्म ने अपनी अंगूठी में इस भाव का शैर खुदवाया था कि जहाँगीर की मिहरबानी ने खुदा की मदद से मुझको जिन्दगी और ख़ानख़ानी दुबारा दी है।[3] ख़ानख़ाना को सात हजारी जात, सात हजार सवार का मनसब, खिलअत, तलवार, घोड़ा जड़ाऊ जीन सहित और खासा हाथी देकर जहाँगीर ने उनका फिर से सम्मान किया और अजमेर का सूबा भी जागीर में दिया। ख़ानख़ाना अस्वस्थता के कारण काफी निर्बल हो गये थे और फागुन संवत् १६८३ में इनकी मृत्यु हो

---

१ तुजुक-जहाँगीरी, भाग २, पृष्ठ २५०

२ मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १९४

३ मरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताई दाते ख्वानी, दो बार: जिंदगी दाद: दो बार: खान-खानानी।

मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १९६

गई ।[1] स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने उनकी मृत्यु-तिथि संवत् १६८६ दी है ।[2] ७२ वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु बताई गई है ।[3] उक्त मतभेद इसीलिये है क्योंकि उन्होंने इनका जन्म संवत् १६१३ में दिया था जिसे पहले दिया जा चुका है ।

पारिवारिक जीवन तथा स्वभाव

रहीम का पारिवारिक जीवन सुखकर नहीं रहा था। पिता की हत्या जब ये लगभग चार वर्ष के थे तभी हो गई थी। इनके एक पुत्री और तीन पुत्र हुए किन्तु अपने जीवन-काल में ही इन्होंने सभी की मृत्यु अपने आँखों से देखी । पौष वदी ३०, संवत् १६५५ को इनकी बेगम महाबानू का देहान्त होगया था जिसका शोक खानखाना को तो हुआ ही, अकबर ने भी उसका काफी शोक किया था क्योंकि वह उनकी दूध शरीक बहन थी। महाबानू अकबर की धाय माहम अंगा की पुत्री थी यह पहले लिख ही जा चुका है। खानखाना की पुत्री जाना बेगम का विवाह अकबर के पुत्र दानियाल के साथ हुआ था। शराब की अति से दानियाल की मृत्यु चैतवदी ३०, संवत १६६१ में हो गई थी। जाना बेगम ने उसके साथ सती होना चाहा किन्तु खानखाना ने बड़ी कठिनाई से इसे रोका और उसने अपने शेष दिन बड़े शोक-संताप से काटे।

जहाँगीर ने खानखाना के पुत्रों को भी विविध पद देकर अपनी कृपा-दृष्टि का परिचय दिया था। बड़े पुत्र दराबखाँ को हजारी जात, पाँच सौ सवारों का मनसब और गाजीपुर ज़िला जागीर में दिया था और एरच को जड़ाऊ पेटी तथा 'शाह नवाज़ खाँ' की उपाधि दी थी। माघवदी ६, संवत् १६६८ को बादशाह ने अपने बाँधने की तलवार जिसका नाम शाबचा था, शाहनवाज को दी और बाद में तीन हजारी का मनसब भी दिया। दराब खाँ को इससे कुछ अधिक का मनसब देकर छोटे पुत्र रहमान दाद को भी मनसब से विमुख नहीं रखा। किन्तु अपनी इस संपन्न स्थिति में होते हुए भी उनको पुत्रों का सुख नहीं मिला। शाहनवाज़ खाँ ३३ वर्ष की अवस्था में बूढ़े बाप को बिलखता हुआ छोड़कर शराब की अति के कारण इस संसार से विदा हो गया था। जहाँगीर ने स्वयं बैसाखसुदी १२, संवत् १६७६ के वृतांत में लिखा है—'इस अशुभ समाचार को सुनकर मुझे बहुत अफसोस हुआ...और शाह नवाज़ खां का जो पांच हजारी मनसब

१ मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १९६

२ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ८

३ मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १९६

था उसके भाइयों और बेटों के मनसबों में बढ़ा दिया।' उसका छोटा भाई दराब खां शाहनवाज़ की जगह बरार और अहमद नगर के सूबों का सरदार बना। रहमानदाद दो हजारी जात और सात सौ सवार का मनसब से सम्मानित हुआ। शाह नवाज़ खाँ के बेटे 'मनुचहर' को दो हजारी जात हजार सवार का मनसब, दूसरे पुत्र 'तुग़लक' को हजारी जात पाँच सात सौ सवार का मनसब मिला।[1] कुछ काल बाद रहीम के पुत्र रहमानदाद की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए जहाँगीर ने लिखा है—'ख़ानखाना के बेटे रहमानदाद के विषय में यह खबर पहुँची कि वह बालापुर में मौत से मर गया। वह योग्य युवा पुरुष था, तलवार चलाने में साहसी और निपुण था। अपने तलवार का चमत्कार दिखाने की उसकी इच्छा सदैव बनी रहती थी। अभी शाहनवाज़ खाँ का जख्म ही नहीं भरा था कि यह दूसरा घाव लगा। परमेश्वर उसको संतोष प्रदान करे।'[2] कहा जाता है कि संवत् १६६१ में महावतखाँ ने खानखाना की शत्रुता के कारण उनके पुत्र दराबखाँ का सिर कटवाकर उसे एक थाल से ढक कर तरबूज के नाम से खानखाना के पास भेजा। खानखाना ने देखकर कहाँ, तरबूज शहीदी है।[3] उक्त वर्णनों से स्पष्ट होता है कि ख़ानख़ाना के सभी पुत्रों की मृत्यु असामयिक हुई थी और जीवन की इस विषमता का प्रभाव खानखाना के व्यक्तिगत जीवन पर किसी रूप में पड़ा था इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। रहीम की 'दोहावली' में इस विषम अवस्था और कटु अनुभव का निरूपण हुआ है। लौकिक सुख-दुख,[4] जीवन की दुरवस्था[5], मानहानि, नियतिवाद में विश्वास[6] आदि से सम्बन्धित विचारों की झलक उनके दोहों में स्पष्ट रूप से मिलता है।

---

१ तुज़ुक-जहाँगीरी, भाग २, पृष्ठ ८८

२ " " पृष्ठ १७६

३ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ ८७

४ यों रहीम सुख दुःख सहत बड़े लोग सह सांति।
उवत चंद जेहि भाँति सों अथवत ताही भाँति॥

५ रहिमन विपदाहू भली, जो थोड़े दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि पड़त सब कोय॥

६ रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन के फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर॥

रहीम-रत्नावली, दोहावली, संख्या १६, १८, २३ क्रमशः

खानखाना के जीवन में तरह-तरह के चक्र आये किन्तु उन्होंने सदैव धैर्य और दृढ़ता के साथ उनका सामना किया। सुखमय स्थिति में वे कभी मर्यादा के बाहर नहीं गये और जब दुःख का वक्त आया तो उसे सहर्ष झेलने में कभी पीछे नहीं हटे।

प्रतिष्ठा

खानखाना में विशिष्ट गुणों का अभाव नहीं था। वे गुणवान, प्रतिभा-संपन्न, बुद्धिशाली व्यक्ति थे। जहाँगीर ने उनकी प्रशंसा में लिखा है–'खानखाना दरबार के बड़े अमीरों में से थे। अकबर के राज्य में इन्होंने बड़े-बड़े काम किये जिनमें तीन मुख्य थे—गुजरात की विजय, सुहैल के युद्ध में शत्रुओं को केवल बीस हजार सवारों से पराजित करना, सिंध और ठठ्ठे की विजय।'[1] खानखाना विद्या और योग्यता में भी बढ़े-चढ़े थे। वे अरबी, तुर्की, फ़ारसी, और हिन्दी भाषाओं को खूब अच्छी तरह जानते थे। इनकी विशेषता यह थी कि हिन्दी, अरबी, फ़ारसी के लेखों को समान गति से पढ़ सकते थे और पढ़ते वक्त ही एक भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में इस प्रकार कर देते थे कि ऐसा ज्ञात होता था कि मूल में वही भाषा पढ़ रहे हों'। हिन्दी को फ़ारसी, अरबी, फ़ारसी को अरबी, हिन्दी और अरबी को फ़ारसी हिन्दी में समान गति से पढ़ देना उनकी एक विशेषता थी।[2] हिन्दू शास्त्रों का भी इन्हें यथेष्ठ ज्ञान था। इन्होंने सभी कविताओं में अपना उपनाम 'रहीम' रखा था। हिन्दी में भी इन्होंने 'रहीम' की ही छाप रखी। यह कहा जाता है कि अकबरी-दरबार के लोगों में जितनी अधिक काव्य-रचना इन्होंने की उतनी संभवतः किसी ने नहीं लिखी और उनकी वह काव्य-रचना गुण में भी सब से बढ़-चढ़ कर थी।[3]

हिन्दी के अनेक कवियों ने रहीम की लोक-प्रियता, दानशीलता और काव्य-प्रेम का परिचय अपनी रचनाओं में दिया है। रहीम के साथ हिन्दी कवियों का एक समुदाय सदैव बना रहता था। उन्होंने इन हिन्दी कवियों को जितना पुरस्कृत किया उसका दसवां

१ मआसिरुल उमरा, भाग २, पृष्ठ १९८

२ मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५५५, ५५६

३ रहीम के नामि शरीफ़ी ईरान अस्त तख़ल्लुस मी नुमायन्द व बज़बानि हिंदी व तुर्की व अरबी नीज़ अशआरि आब्दार फ़रमूदह अन्द व दर ज़बानि हिन्दी यदि बैज़ा नमूदाअन्द चन्दान अशआरि मतीन व अबियाति दिल नशीन कि ईशान दर उन ज़बान दारिन्द हीव यक़ अज़ फ़ूहूलि शोअराइ उन ज़बान र नीस्त।

मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५६१

भाग भी फ़ारसी कवियों को नहीं दिया। फलस्वरूप हिन्दी कवियों ने रहीम की गुण-ग्राहकता की जितनी प्रशंसा की थी उसका सौवां भाग भी फ़ारसी-कवियों ने नहीं किया।[१] हिन्दी के प्रसिद्ध कवि केशवदास का रहीम से घनिष्ट परिचय था। उनकी रचना 'जहाँगीर चन्द्रिका' में रहीम की प्रशंसा मिलती है :—

साहि जू की साहिबी को रक्षक अनंत गति, कीनों एक भगवंत हनुवंत वीर सों
जाको जस केसोदास भूतल के आस पास सोहत छबीलो क्षीर सागर के क्षीर सों
अमित उदार अति पावन विचारि चारु जहाँ तहाँ आदरियों गंगा जी के नीर सो
खलन के घालिबे को खलक के पालिबे को खानखाना एक रामचन्द्र जू के तीर सों ॥[२]

उक्त पुस्तक के उद्यम और भाग्य प्रसंग में सरदारों के वर्णन में रहीम की वीरता और आतंक का उल्लेख किया गया है।

आसकरन नामक चारण ने जिसका उपनाम 'जाडा' था, खानखाना की प्रशंसा निम्नलिखित दोहों में की थी[3] :—

खानखाना नवाब हो मोहि अचम्भी एह।
मायो किमि गिरि मेरु मन साढ तिहस्सी दह ॥[४]
खानखाना नवाब दे, खाँडे आगा खिवंत।
जल वाला नर प्राजले, तृणवाला जीवंत ॥[५]

---

१ तअम्मुल व इन आभव एहसाने कि व शुअराइ फ़ारसी ज़बान नमूदह अन्द दह बराबरि उन व हिन्दी ज़बानान् नमूदह वाशेन्द व चन्दान अश आर कि उन जमा अह दर मद ही ईशान् गुफ़्त अन्द फ़ारसी गोयान उशरि अशीरि उन न गुफ़्त अन्द व अल्हाल जम्मए कसीर दर रिकाविह आलीन्इ ईशान हस्तन्द।

मआसिरे-रहीमी, भाग २, पृष्ठ ५६२

२ रहीम रत्नावली, पृष्ठ ७५

३ खानखानानामा, मुंशी देवीप्रसाद, भाग २, पृष्ठ १०५

४ मुझे यही अचंभा है कि खानखाना का मेरु पर्वत जैसा मन साढ़े तीन हाथ के शरीर में कैसे समा गया है।

५ खानखाना नवाब की तलवार से आग झड़ती है। पराक्रमी उसमें जल मरते हैं और दीन पुरुष बच रहते हैं।

खानखाना नवाब री, आदमगीरी धन्न।
मह ठकुराई मेरु गिरि, मन न राई भन्न ॥[1]
खानखाना नवाब रा, अड़िया भुज ब्रह्मंड।
पूठे तो है चंडिपुर, धार तले नवखंड ॥[2]

कहा जाता है, रहीम ने प्रसन्न होकर कवि के प्रत्येक दोहे पर एक-एक लाख रुपया देना चाहा किन्तु उसे अस्वीकार कर अपने आश्रयदाता महाराणा प्रताप के भाई जगमल को रहीम की सहायता से जहाजपुर का परगना जो मेवाड़ प्रांत का ही एक भाग था, दिलवाया था और साथ ही रहीम ने जाड़ा के दोहों का उत्तर निम्नलिखित दोहे में दिया था[3]—

धर जड्डी अंबर जड़ा, जड्डा मंहगू जोय।
जड्डा नाम अलाहदा, और न जड्डा कोय ॥

मंडन कवि ने रहीम की प्रशंसा निम्नलिखित छंद में की है :—

तेरे गुन खानखाना परत दुनी के कान, ये तेरे कान गुन आपनो धरत हैं।
तू तो खग्ग खोलि खलन पै कर लेत, लेत वह तो पै कर नेक न डरत हैं ॥
मंडन सुकवि तू चढ़त नवखंडन पै, यह भुजदंड तेरे चढ़िए रहत हैं।
ओहती अटल खान साहब तुरक मान, तेरी याक मान तोसों तेहु सो करत हैं ॥[4]

मुंशी देवीप्रसाद ने खानखाना की प्रशंसा का 'प्रसिद्ध' कवि कृत एक छंद दिया है :—

सात दीप सात सिंधु थरक थरक करैं जाके डर टूटत अखूट गढ़ राना के
कंपत कुबेर बेर मेर मरजाद छाँड़ि एक एक रोम झर पड़े हनुमाना के
धरनि धसक धस मुसक धसक गई भनत प्रसिद्ध खंभ डोले खुरसाना के
सेस फन फूट फूट चूर चक चूर भए चले पेस खाना जू नवाब खानखाना के ॥[5]

---

१ खानखाना की उदारता धन्य है कि मेरुगिरि जैसी बड़ी ठकुराई उन्होंने अपने मन में जरा सी भी नहीं मानी।

२ खानखाना नवाब के भुज ब्रह्मांड में अड़े हुए हैं। दिल्ली तो उसकी पीठ पर है और नौ खंड तलवार की धार के नीचे हैं।

३ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ १०६

४ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ७८

५ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ १४०

शिवसिंह-सरोज में भी 'प्रसिद्ध' कवि का खानखाना के आतंक का एक छंद में वर्णन मिलता है :—

गाजी खानखाना तेरे धौंसा की धुकार सुनि सुत तजि पति तजि भाजी बैरी बाल है
कटि लचकत बार भार ना संभारि जात परी विकराल जहं सघन तमाल हैं
कवि परिसिद्ध तहां खगन खिजायों आनि जल भरि भरि लेती दृगन विलास हैं
वेनी खैचे मोर सीस फूल को चकोर खैंचे मुकता की माल ऐचि खैंचत मराल है ॥[1]

स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने रहीम की प्रशंसा का एक अन्य छंद जो उनके संग्रहालय में है, दिया है :—

जलद चरन संचरहि सबर सोहै समत्थ गति
रुचिर रंग उतंग जंग मंडहि विचित्र अति
वैरम सुवन नित वकसि वकसि हथ देत मंगिनन
करत राग परसिद्ध रोस छंडहि न एक छिन
थर हरहिं पलट्टहिं उच्छलहिं नच्चत धावत तुरंग इमि
खंजन जिमि नागरि नैन जिमि नट जिमि मृग जिमि पवन जिमि ॥[2]

'संत कवि' द्वारा रचित खड़ी बोली मिश्रित भाषा के एक छंद में भी खानखाना की प्रशंसा द्रष्टव्य है :—

सेर सम सील सम धीरज समसेर सम साहबे जमाल सरसाना था
कर न कुबेर कलि कीरति कमाल करि ताले वंद मरद दरद मंद दाना था
दरबार दरस परस दरवेसन को तालिब तलब कुल आलम बखाना था
गाहक गुनी के सुख चाहक दुनी के बीच संत कवि दान को खजाना खानखाना था ॥[3]

अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि नरहरि के पुत्र हरिनाथ का एक कवित्त खानखाना की प्रशंसा का अवलोकनीय है :—

वैरम के तनय खानखाना जू के अनुदिन
दोउ प्रभु सहज सुभाए ध्यान ध्याए हैं

---

१ शिवसिंह-सरोज, पृष्ठ १९१

२ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ७९

३ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ८५

कहै हरिनाथ सातो द्वीप को दिपति करि
जहि खंड करताल ताल सों बजाए हैं
एतनी भगति दिल्लीपति की अधिक देखी
पूजत नए को मास तातें भेद पाए हैं
अरि सिर साजे जहांगीर के पगन तट
टूटे फूटे फाटे सिव सीस पै चढ़ाए हैं ॥[१]

नरहरि ने भी अपने एक छंद में 'परम प्रवीन षानिषाना सो उजीर जाके न्याहि विलसत साहि अकबरु' द्वारा खानखाना के गुणों की प्रशंसा की है।[२]

मुंशी देवी प्रसाद ने खानखाना की दानशीलता की प्रशंसा सम्बंधी अलाकुली कवि का एक छंद दिया है :—

लंका लायो लूट किधों सिंहन को कूट कूट हाथी घोड़े ऊंट एते पाए ते खजाने हैं
अलाकुली कवि की कुवेर ते मिताई कीनी अनतुले अनभाए नग औ नवीने हैं
पाई है तै खान लच्छ भई पहिचान भूल रह्यो है जहां नए समान कहां कीने हैं
पारस ते पाए किधों पारा ते कमायो किधों समुद्रहू ते लायो किधों खानखाना दीने हैं ॥[३]

खानखाना के परवर्ती 'तारा' कवि ने भी उनकी शुभ्र-वीरता और दानशीलता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है :—

जोरा वर अब जोर रवि रथ कैसे जोर बने जोर देखे दीठि जोरि रहियतु है
है न को लिवैया ऐसो है न को दिवैया ऐसो दान खानखाना को लहै ते लहियतु है
तन मन डारे बाजी ह्वै तन संभारे जात और अधिकाई कहौ कासो कहियतु है
पौन की बड़ाइ बरनत सब तारा कवि पूरो न परत याते पौन कहियतु है ॥[४]

'मुकुंद' नामक एक कवि का भी खानखाना की वीरता की प्रशंसा में एक छप्पय मिलता है :—

---

१ रहीम रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ८६
२ देखिए, नरहरि के विविध विषयक ग्रंथ, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२
३ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ १३८
४ रहीम रत्नावली, पृष्ठ ८६

कमठ पीठ पर कोल कोल पर फन फनिंद फन
फनपति फन पर पुहुमि पुहुमि पर दिगत दीप गन
सप्त दोप पर दीप एक जंबु जग लिख्खिय
कवि मुकुंद तंह भरतखंड उप्परहिं विसिख्खिय
खानानखान बैरम तनय तिहि पर तुव भुज कल्पतरु
जगमगहिं खग्ग भुज अग्ग पर खग्ग अग्ग स्वामित्ति वरु ॥[1]

अकबरी-दरबार के प्रसिद्ध कवि गंग ने खानखाना की प्रशंसा में लगभग पंद्रह छन्द लिखे हैं जिनका उल्लेख ग्रंथ में गंग की रचनाओं के प्रसंग में किया गया है। यहां पर गंग के केवल दो छंद उद्धृत किये जाते हैं जिनमें खानखाना के आतंक और दानशीलता का क्रमशः वर्णन हुआ है :—

बांधिबे को अंजलि विलोकिबे को काल ढिग राखिबे को पास जिय मारिवे को रोस है
जारिबे को तन मन भरिबो को हियो आंखे धारिबे को पग मग गनिबे को कोस है
खाइबे कों सोंहे भोंहे चढ़िबे उतारिबे कों सुनिबे को प्रानघात किए अफसोस है
बैरम के खानखाना तेरे डर बैरी बधू लीबै कों उसास मुख दीबै ही को दोस है ॥[2]

अन्य

चकित भँवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल बन
अहि फनि मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिले अति
बहु सुंदरि पदिमनी पुरुष न चहें न करें रति
खलमलित सेस कवि गंग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो
खानानखान बैरम सुवन जिदिन कोप करि तंग कस्यो ॥[3]

रहीम-रत्नावली में खानखाना की प्रशंसा के सात छंद अज्ञात कवि के नाम से से दिये हुए हैं। इन छंदों द्वारा रहीम की वीरता, दानशीलता, प्रभुत्व तथा आतंक पर समुचित प्रकाश पड़ता है।

---

१ रहीम रत्नावली, पृष्ठ ८६

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४०

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४५

रहीम और राणा अमर सिंह

मुंशी देवी प्रसाद ने उदयपुर के राणा अमर सिंह और खानखाना की मैत्री-भाव सम्बंधी वार्ता का उल्लेख किया है।[1] उदयपुर के महाराणा अमरसिंह जब जहांगीर की फौज़ के दबाव से जंगलों में फिरते-फिरते थक गये तो उन्होंने निम्नलिखित दोहे खानखाना के पास भेजे थे:—

हाडा कूरम राव बड़ गोखां जोस करन्त
कहियो खानखानान बनचर हुआ फिरन्त
तुवरूं सूं दिल्ली गई राठौढ़ा कनवज्ज
राण पयं पै खान तें वह दिन दीसे अज्ज ॥

कहा जाता है कि खानखाना ने इसके उत्तर में राणा को लिख भेजा था:—

धर रहसी रहसी धरम खप जासी खुरसाण।
अमर विशंभर ऊपरे राखो नहचो राण ॥

रहीम और रीवां-नरेश रामचन्द्र

अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना का संपर्क रीवांनरेश और गोस्वामी तुलसीदास से भी हुआ था जिसका परिचय हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रंथों में मिलता है।[2] कहा जाता है, ख़ानखाना जब दीन-दशा में थे एक याचक ने उन्हें आ घेरा। इन्होंने एक दोहा लिख कर उसे रीवां-नरेश के पास भेजा:—

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध नरेश।
जापर विपदा परति है सो आवत यहि देश ॥

रीवां-नरेश ने उस याचक को एक लाख रुपये दिये। उस काल रीवां के राजा रामचन्द्र थे जिसका संकेत उक्त दोहे में 'अवध-नरेस' से किया गया है।

रहीम और तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास जी से भी खानखाना का स्नेह भाव था। जनश्रुति है कि एक बार एक ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिये धनाभाव में गोस्वामी जी के पास आया। गोस्वामी जी ने उसे रहीम के पास दोहे की निम्नलिखित पंक्ति देकर भेजा:—

---

१ खानखानानामा, भाग २, पृष्ठ ११५
२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ २६२

सुरतिय नरतिय नागतिय यह चाहत सब कोय।

रहीम ने ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर बिदा किया और दोहे की दूसरी पंक्ति इस प्रकार पूरी कर के दे दीः—

गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय।

खानखाना और गोस्वामी तुलसीदास के संपर्क का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। रहीम की प्रेरणा से गोस्वामी जी की 'बरवै रामायण' की रचना बताई जाती है। अयोध्या से प्रकाशित बाबा बेणी माधव दास कृत, 'मूल गुसाईं चरित' में निम्नलिखित छंद मिलता हैः—

कवि रहीम बरवै रचै, पटये मुनिवर पास।
लखि तेइ सुंदर छंद में, रचना किये प्रकास ॥[1]

इसमें यह घटना संवत् १६७० की बताई गई है। किन्तु जिस 'मूल गुसाईं-चरित' को तुलसीदास के शिष्य बाबा वेणीमाधवदास विरचित कहा जाता है उसकी अप्रामाणिकता डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने इन शब्दों में सिद्ध की है—'इतिहास लेखकों का कथन है कि सं० १६६९ में रहीम दक्षिण भारत भेज दिये गये थे और वहाँ से संवत् १६७३ में वापिस बुलाये गये। यह बात असंगत सी जचती है कि सुदूर दक्षिण से रहीम ने कतिपय बरवै की रचना कर उन्हें कवि के पास भेजा था।'[2]

अतएव उक्त ग्रंथ की घटना के संदिग्ध होने पर रहीम द्वारा प्रेरित गोस्वामी जी की बरवै रचना की जनश्रुति भी अप्रामाणिक सिद्ध होती है। संभव है गोस्वामी जी रहीम की बरवै सम्बंधी रचनाओं को देखकर उसके लिये स्वतः ही प्रेरित हुए हों।

---

१ मूल-गुसाईं-चरित, पृष्ठ ३३, छंद ९३

२ तुलसीदास, पृष्ठ ५०,

अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय, भाग १, पृष्ठ १६३

तीसरा अध्याय

रचनाएँ

नरहरि की रचनाएँ

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने नरहरि के तीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है[1] —रुक्मिणी-मंगल, छप्पय-नीति और कवित्त-संग्रह। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित सन् १६०३ की खोज-रिपोर्ट तथा 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' नामक पुस्तक के प्रथम भाग में नरहरि कृत रुक्मिणी-मंगल का उल्लेख मिलता है।[2] लेखक ने काशी राज-पुस्तकालय में जाकर उक्त पुस्तिका को प्राप्त किया। यह डेढ़ सौ वर्ष के लगभग पुरानी ज्ञात होती है। पुस्तक में कुल पन्द्रह पृष्ठ है। लिपि देव-नागरी और कैथी मिली हुई है। लिपिकार ने दन्त्य 'स' के स्थान पर सर्वत्र तालव्य 'श' का ही प्रयोग किया है। परन्तु पुस्तक में लिपि-काल, रचना-काल तथा लिपिकार किसी का भी पता नहीं चलता। यह दोहा, चौपाई छन्दों में लिखी हुई है।[3] ग्रन्थ की भाषा प्राचीन है, इससे भी ग्रन्थ की प्रमाणिकता का बोध होता है। उक्त ग्रन्थ के रचयिता नरहरि भाट महापात्र नरहरि ही हैं जिसका उल्लेख स्वयं कवि ने ग्रन्थ के अन्त में किया है :—

महापातु कवि नरहरि मंगल गाएउ
जो यह मंगल गावै गाइ सुनावइ
व्याह काज कल्यान परम पद पावइ

---

१ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २५७, कवि संख्या १५०
हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ७३३

२ खोज रिपोर्ट, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सन् १९०३, कवि संख्या ११
हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृष्ठ ८४

३ पुस्तक संख्या २०१, बस्ता संख्या १५, सरस्वती भंडार, राज-पुस्तकालय, काशी।

रुकुमिनि हरन सुनै जो हृदै विचारइ
आप तरै भव सागर कुल निस्तारइ ॥[1]

उस काल में इस प्रकार के मंगल-ग्रन्थ लिखने की परिपाटी थी। तुलसी के पार्वती-मंगल, जानकी-मंगल प्रसिद्ध ही हैं।

नरहरि की 'रुक्मिणी-मंगल' के अतिरिक्त कोई अन्य छन्दोबद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती। केवल उनके स्फुट छन्द ही संग्रह ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के एक प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रन्थ में नरहरि की स्फुट रचनाएँ संग्रहीत हैं। उक्त संग्रह-ग्रन्थ[2] की प्राचीनता देखते हुए उसकी प्रमाणिकता पर संदेह नहीं होता। कुछ प्रकाशित ग्रन्थों तथा परंपरा रूप में नरहरि कृत जो छन्द मिलते हैं वे इस हस्तलिखित प्रति में भी उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें कवि के छन्दों की भाषा की प्राचीनता भी उसकी प्रमाणिकता सिद्ध करने में सहायक है। उक्त ग्रन्थ एक संग्रह ग्रन्थ है जिसका लिपिकाल संवत् १७२१ और रचना-काल संवत् १६८० अंकित है। ग्रंथ के संग्रह-कर्ता कोई लाल जी हैं। इसमें नरहरि की कविता का संग्रह 'वादु लोहे सोने के' शीर्षक से आरम्भ होता है और बाद में कई वादों लोहे सोने का वादु, नेन कान का वादु, तेल तंबोल का वादु, मंगनदानि का वादु, लजा और भूख का वादु, आदि का परिचय मिलता है। इसमें कवि कृत उपर्युक्त वादों के अतिरिक्त एक सौ तेईस छप्पय, कवित्त, दोहे आदि सब मिलाकर दिये हुए हैं। उक्त हस्तलिखित ग्रन्थ में नरहरि के छन्द संख्या ५१ से लेकर ७० तक उपलब्ध नहीं होते। प्रति के कुछ पृष्ठों के लोप हो जाने के कारण ही यह जान पड़ता है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में उल्लिखित 'छप्पय नीति' और 'कवित्त-संग्रह' ग्रन्थ लेखक के देखने में नहीं आये। संभव है ये ग्रन्थ कोई स्वतंत्र रचनाएँ न होकर कवि के स्फुट छन्दों के केवल संग्रहमात्र हों और उन्हीं के ये कल्पित नाम दे दिये गये

---

१ देखिए, नरहरि कृत रुक्मिणी मंगल, प्रस्तुत ग्रन्थ का परिशिष्ट भाग, पृष्ठ संख्या १०

२ ग्रंथ में लाल कवि का विक्रम विलास, सुंदर महाकबि का सुंदर-शृंगार, अमीर खुसरो की मारी, जयतसिंह महापात्र का अलंकार-ग्रंथ, हरिनाथ और नरहरि की फुटकर रचनाएँ संग्रहीत हैं।

हों। कवि के छप्पय और कवित्त उसकी स्फुट रचनाओं में उपलब्ध होते हैं जिन्हें प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्टि भाग में दे दिया गया है।

इस प्रकार नरहरि की उपलब्ध प्रमाणिक रचनाओं में रुक्मिणी-मंगल तथा पूर्व उल्लिखित वादों के अतिरिक्त १२३ छदों में ६० छप्पय, ४० सवैये, १२ दोहे, ५ कुंडलियां, ४ कवित्त, और २ सोरठों की गणना की जा सकती है।

रचनाओं का वर्ण्य-विषय

नरहरि हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन युग के कवि थे जब आधुनिक काव्य की भाव-अभिव्यंजना-प्रणाली, प्रकृति के सहारे विविध रूपों का संश्लिष्ट आयोजन और मानव भावनाओं के साथ उनका सुंदर विवेचन विशद रूप में प्रचलित न था। वहाँ तो अभिधा-प्रणाली द्वारा नीति, उपदेश एवं मानव आदर्शों का प्रकाशन करना कवि का ध्येय रहता था। नरहरि के उपदेश सम्बंधी छंद अनुभूतिजन्य है। उन्होंने केवल सुनी-सुनाई बातों का प्रकाशन नहीं किया है वरन् स्वयं उन सबका अनुभव किया था। लोक-मर्यादा और आदर्श-पथ के निर्माणार्थ नरहरि ने कई छप्पय लिखे हैं। कवि ने अपने समकालीन सामाजिक स्थिति का निरीक्षण किया था। वे राजदरबार में रहने वाले केवल कोरे कवि न थे वरन् समाज-स्रष्टा की भावना से भी अनुप्राणित थे और सम्भव है उनके व्यक्तित्व का जनता में प्रभाव हो। क्योंकि उसका समर्थन उनकी जनश्रुतियों से होता है। उस काल में ज्ञानी, धनी, पंडित, वृद्ध सभी अपने कर्तव्य-मार्ग से विचलित हो रहे थे। पारिवारिक बंधन शिथिल हो गये थे, सन्यासियों में अर्थ-लोलुपता ने घर कर लिया था और उनमें धन-संग्रह की भावना प्रधान हो गई थी। नरहरि ने इसकी चर्चा कई छंदों में की है। नरहरि के कुछ छंदों में ज्योतिष-विद्या की भी झलक मिलती हैं।

नरहरि के भक्ति सम्बन्धी छंद अल्प संख्या में ही प्राप्त हैं फिर भी ये कवि की भक्ति-भावना के समर्थक और द्योतक हैं। तत्कालीन वैष्णव, शैव के भेद को मिटाकर राम और शिव की समान उपासना का उपदेश उनका रचनाओं में साथ ही मिलता है। कविने आदर्श भक्ति-मार्ग को स्थापित करने का संकेत अपनी रचनाओं में दिया है जिसका विशद निरूपण तदोपरांत गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओ में पूर्ण रूप से मिलता है।

नरहरि की फुटकर रचनाओं में सीय-स्यंबर, राधा-कृष्ण का रूप-सौंदर्य तथा गोपी-विरह वर्णित हैं। कवि ने विरह के अन्तर्गत 'बारहमासा' का क्रमबद्ध वर्णन किया

है। बारहों महीनों में विरह की विविध अवस्थाओं का विवेचन हुआ है। उनकी इस विरह सम्बन्धी रचना में बहुत उच्च भावों का परिचय तो नहीं मिलता किन्तु इस विषय पर लिखी गई रचनाओं की अभिवृद्धि अवश्य करता है। नरहरि ने बारहमासा में विरह की अभिव्यक्ति के साथ-साथ प्रकृति के सुन्दर चित्रों की संश्लिष्ट योजना भी की है। उद्दीपन रूप में प्रकृति के नाना प्रकार के चित्रों को प्रस्तुत किया गया है। कवि की फुटकर रचनाओं में उपलब्ध अनेक वादों में भी उच्च काव्य-कला की प्रस्फुटन नहीं है किन्तु वे कवि की वस्तु के यथातथ्य वर्णन की कुशलता के परिचायक और उसकी तर्कशक्ति के द्योतक हैं। इन विवादों में नाटकत्व गुण प्रधान है। निर्जीव पदार्थों को मूर्तिमता प्रदान कर उन्हीं के द्वारा उनकी उपादेयता का प्रकाशन करवाया गया है। पात्रों के अनुकूल उनका चारित्रिक विकास भी हुआ है। वे अपने-अपने तर्क की पुष्टि जिस आवेश और स्फूर्ति के साथ करते हैं उनको दिखाने में कवि की लेखनी पीछे नहीं रही है।

नरहरि के छंदों से कुछ ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि भी होती है और कुछ नई घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। जगन्नाथपुरी के राजा मुकुन्द गजपति का तुलादान, चितौरगढ़-विजय, नरहरि और अकबर का ख्वाज़ा मुईनुद्दीन चिश्ती से पुत्र-फल के लिये प्रार्थना आदि ऐतिहासिक तथ्यों के वर्णन कवि की रचनाओं में मिलते हैं। साथ ही कई ऐतिहासिक व्यक्तियों का विवरण भी प्राप्त होता है। 'रुक्मिणी-मंगल' में कवि ने कृष्ण और कुन्दनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी के गंधर्व-विवाह का वर्णन किया है। सर्वप्रथम कुन्दनपुर के राजा भीषमराउ का परिचय, उसकी कन्या रुक्मिणी का यौवनावस्था का वर्णन, पुरोहित को लगन लेकर भेजना, जरासिन्धु शिशुपाल आदि राजाओं का स्वयंवर में आने तथा रुक्मिणी का गुप्त रूप से पुरोहित द्वारा कृष्ण के पास परिणय-संदेश भेजने आदि के वर्णन दिये गये हैं। अंत में कृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण और उनके द्वारा जरासिंधु तथा शिशुपाल तथा अन्या राजाओं की पराजय और कृष्ण का रुक्मिणी के साथ गंधर्वविवाह दिखाकर कवि ने ग्रन्थ के पाठ करने का महत्व बताया है।

ब्रह्म की रचनाएँ

वीरबल की स्फुट रचनाएँ 'ब्रह्म' उपनाम से प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में तथा कुछ प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों में उपलब्ध होती है। पहले वीरबल की जीवनी के आरम्भ में यह प्रमाणित किया जा चुका है कि वीरबल ने 'ब्रह्म' छाप रखकर अपनी रचनाएँ

लिखी थीं। कृष्णानन्द व्यास द्वारा संपादित 'संगीत-राग-कल्पद्रुम' नामक वृहत् संग्रह-ग्रंथ में 'ब्रह्म' छाप के अतिरिक्त 'ब्रह्मदास' की छाप के कई छन्द प्राप्त होते हैं। ब्रह्मदास छाप के छन्द बीरबल के नहीं हैं क्योंकि उनमें न तो 'ब्रह्म' की सी शब्दावली ही है और न वह छन्द और भावसुषमा ही।

ब्रह्म की कोई पुस्तकबद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती, फुटकर छंद ही मिलते हैं। संभवतः दरबार में व्यस्त जीवन होने के कारण ब्रह्म ने कोई प्रबन्ध-रचना लिखी ही नहीं। अकबर ने इनके दरबारी जीवन के प्रारंभ में ही इनको 'कविराय' की उपाधि से विभूषित किया था। इससे अनुमान लगता है कि इनकी रचनाएं उत्कृष्ट और सुंदर थी और उनका उस काल में मान भी होने लगा था।

याज्ञिक-संग्रहालय में ब्रह्म के लगभग दो सौ छंद संग्रहीत हैं, जो प्राचीन हस्त-लिखित प्रतियों तथा कई प्रकाशित ग्रंथों-सुंदरी-सर्वस्व, साहित्य-रत्नाकर, हफ़ीज़ुल्ला खां का हज़ारा, सुंदरी-तिलक, कविता-कौमुदी, कवि-वचन-सुधा (पत्रिका) आदि से लिये गये हैं।

कुछ हस्तलिखित प्रतियों का विवरण जिनको लेखक ने स्वयं देखा है और जिनमें ब्रह्म के छंद उपलब्ध होते हैं नीचे दिया जाता है:—

कांकरौली विद्या-विभाग, श्री द्वारकेश पुस्तकालय, सरस्वती भंडार।

उक्त पुस्तकालय की दो हस्तलिखित प्रतियां देखने को मिलीं[1]:—

१. बंद ५०, पुस्तक संख्या ३।३-४

इस प्रति में ब्रह्म के ८८ छंद क्रमबद्ध मिलते हैं। पुस्तक प्राचीन है किन्तु लिपि-काल का कुछ पता नहीं चलता। कुल १६ पत्र हैं, पुस्तक शोधित है, अक्षर सुपाठ्य हैं! पुस्तक का शीर्षक 'बीरबल के कवित्त' दिया हुआ है। चार-पाँच घनाक्षरी छंदों को छोड़कर शेष सवैये छंद ही हैं।

२. बंद ५१, पुस्तक संख्या ३, विशेष ११×५॥। इंच

उक्त प्रति एक संग्रह-ग्रन्थ है। विषय-विभाजन के अनुसार छंद दिये हुए हैं। पुस्तक में लिपि-काल का उल्लेख नहीं है किन्तु पुस्तक प्राचीन प्रतीत होती है। इस प्रति में बीरबल के ४२ छंद संग्रहीत हैं। उपर्युक्त कांकरौली की हस्तलिखित प्रतियों में संवत्

---

१ डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक जी के सौजन्य से प्राप्त

१७५० के बाद के किसी कवि की रचना का उल्लेख नहीं है। इससे यह संग्रह प्राचीन ज्ञात होता है।

याज्ञिक-संग्रहालय की कुछ हस्तलिखित प्रतियों का विवरण जिनमें ब्रह्म के फुटकर छंद मिलते हैं, निम्नांकित है—

१. प्रति संख्या १०९।१६ — इस संग्रह के आदि में 'आलम कृत कवित्त' लिखा मिलता है। आलम के १५४ छन्द देने के बाद गंग के छन्द दिये हुए हैं। अंत में वीरबल के १० छन्द प्राप्त होते हैं।

२. प्रति संख्या ७१८।४४ — यह एक खंडित स्फुट संग्रह-ग्रंथ है। लिपि-काल अज्ञात है किन्तु पुस्तक प्राचीन है। इसमें ब्रह्म के ८ छन्द संग्रहीत हैं।

३. प्रति संख्या ७०४।४४ — यह भी एक खंडित संग्रह-ग्रंथ है। इसमें लिपि-काल का निर्देश नहीं है। पुस्तक प्राचीन है। ग्रंथ में ब्रह्म के ७ छन्द दिये हुए हैं।

४. प्रति संख्या ३६१।२२ — यह संग्रह-ग्रंथ है, लिपि-काल अज्ञात है किन्तु पुस्तक प्राचीन है, अक्षर सुपाठ्य हैं। इसमें ब्रह्म के कुल ४ छंद उपलब्ध होते हैं।

इन प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के सब छन्द नवीन हैं। केवल एक दो छन्दों की पुनुरुक्ति मिलती है। इनके अतिरिक्त उपर्युक्त प्रकाशित संग्रह-ग्रन्थों में ब्रह्म के कुल ५० छन्द उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार इन सब को मिलाकर ब्रह्म के स्फुट छन्दों की संख्या लगभग २०० तक पहुंचती है।

रचना का वर्ण्य-विषय

वीरबल के अधिकांश छन्दों में भक्ति और उपदेश विषय का सन्निवेश है। वल्लभ-संप्रदायी छीत स्वामी इनके गुरु थे और संभवतः उन्होंने ही इनको इस मत की ओर आकृष्ट किया था। इनके कई छन्द कृष्ण की बाल-लीला, मान आदि के उपलब्ध हैं। उनके ये छन्द काव्य-कुशलता तथा सूक्ष्म निरीक्षण के द्योतक है। मर्यादा पुरुषोतम राम सम्बन्धी छन्द भी इन्होंने लिखे हैं। उपदेश और शिक्षा सम्बन्धी छन्द प्रभावोत्पादक तथा कवि की उच्च अनुभूति के परिचायक हैं। सम्भवतः प्राचीन कवि-पद्धति और दरबारी प्रभाव भी वीरबल पर यथेष्ठ रूप में पड़ा था और उसी के अनुरूप कवि की

रचनाओं में रूप-सौन्दर्य तथा विविध नायिकाओं के वर्णन आये हैं। संयोग शृंगार के अन्तर्गत कवि ने मुरली-माधुरी, राधा-कृष्ण केलि, रास आदि का वर्णन किया है। विप्रलम्भ के अंतर्गत ब्रह्म ने कृष्ण का मथुरा-प्रवास, गोपी-विरह आदि के चित्र प्रस्तुत किये हैं। कवि रचित प्रकृति-वर्णन और समस्या-पूर्ति के भी कुछ छन्द उपलब्ध होते हैं। इन रचनाओं में व्रजभाषा के परिष्कृत रूप का प्रयोग हुआ है। अलंकार-योजना के अंतर्गत उन्होंने नये-नये उपमानों का प्रयोग किया है। इसी कारण साहित्य-समीक्षकों की निम्नलिखित उक्ति प्रसिद्ध हो गई है :—

उत्तम पद कवि गंग के उपमा में बलवीर।
केशव अर्थ गम्भीरता सूर तीन गुन धीर ॥[1]

तानसेन की रचनाएँ

मिश्रबन्धु-विनोद में तानसेन कृत तीन ग्रंथों का उल्लेख किया गया है[2]—संगीत-सार, रागमाला, श्री गणेशस्तोत्र। संगीत-सार का परिचय सन् १६०१ की खोज-रिपोर्ट में भी मिलता है। संगीत-सार ग्रंथ सरस्वती भन्डार, दरबार पुस्तकालय, रीवाँ में सुरक्षित है।[3] इसमें कुल ८२ पृष्ठ हैं। ग्रन्थ का लिपि-काल सम्वत् १८८८ और लिपिकार कोई ईंठासिंह है। लिपि सुबोध है। संपूर्ण ग्रंथ अधिकतर दोहा छन्द में ही है। संगीत-राग-कल्पद्रुम के नित्य-कीर्तन तथा सूरसागर संस्करण में भी जो सम्वत् १८६८ का प्रकाशित है, तानसेन विरचित 'सगीतसार' ग्रंथ का थोड़ा सा उद्धरण मिलता है।[4] इस रचना में तानसेन ने संगीत-विद्या की विशेषताओं का वर्णन किया है। ग्रंथ में 'वन्दना' के बाद संगीत के दो प्रकार-मारग और देशी, नाद के लक्षण, सप्त स्वर, अवरोही-रोही लक्षण, ग्राम-लक्षण, स्वर-उचार-स्थान, गायन-दोष और गायन-गुण

---

१ यह दोहा किसी प्रमाणिक ग्रंथ में नहीं मिलता। किंवदंती रूप में ही प्रचलित हो गया है। इसका आधार संस्कृत का अत्यधिक प्रचलित निम्नलिखित श्लोक जान पड़ता है:—

उपमा कालिदासस्य भारवेर्थगौरवम्।
दंडिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

२ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २८२, कवि संख्या १६७

३ लेखक ने स्वयं रीवां दरवार-पुस्तकालय में जा कर ग्रंथ का अवलोकन किया। अवलोकनार्थ इसे प्रस्तुत ग्रंथ के परिशिष्ट भाग में दे दिया गया है। उक्त ग्रंथ की संख्या १२ और बस्ता-संख्या ११४ है।

४ संगीत-राग-कल्पद्रुम, नित्य-कीर्तन तथा सूरसागर, पृष्ठ १९, २१

के लक्षण, श्रुति, मूर्छना, भैरव मालकोश, हिंडोल, भार्या आदि के लक्षण तथा विस्तार आदि विषय वर्णित हैं। इनके अतिरिक्त 'संगीत-रत्नाकर' तथा भरत के मतानुसार विविध तालों के वर्णन भी विस्तार से दिये गये हैं। ग्रंथ में तानसेन ने रागों और तालों के आरंभ-अंत को विस्तारपूर्वक दिखाया है। लेखक के प्रयास करने पर भी ऊपर दिये गये तानसेन कृत 'रागमाला और गणेश-स्तोत्र' का पता नहीं चला।

तानसेन के जीवन-काल को देखते हुए उनकी उपलब्ध रचना न्यून है। उपर्युक्त पुस्तकबद्ध रचना 'संगीत-सार' और केवल कुछ सौ फुटकर पद ही प्राप्त हैं। अकबरी दरबार के अन्य नवरत्नो कवियों की तरह ही इनकी भी कोई प्रबन्ध-रचना प्राप्त नहीं होती।

तानसेन के स्फुट पद हिन्दी के संग्रह-ग्रंथों में मिलते हैं। इनका विशेष संग्रह-कृष्णानंद व्यास रचित संगीत-राग-कल्पद्रुम में हुआ है। इस ग्रंथ के पहले और दूसरे भाग में तानसेन के लगभग दो सौ पद उपलब्ध होते हैं जिसका संग्रह एक स्थान पर नहीं है वरन् ये पुस्तक के दोनों भागों के बीच-बीच में बिखरे मिलते हैं। जगत-शान्ति, औषधालय, बुटी रोड, सिताबर्डी, नागपूर सी० पी० के पास तानसेन विरचित लगभग तीन सौ पद संग्रहीत हैं जिनकी सूची लेखक को डॉ० भवानी शंकर याज्ञिक के सौजन्य से देखने को मिली। इनमें से दो सौ पद तो वही संगीत-राग-कल्पद्रुम के ही हैं। सौ पद नवीन ज्ञात होते हैं। इस प्रकार तानसेन की रचना-सामग्री में केवल तीन सौ पदों की सूची और उपर्युक्त 'संगीत-सार' की रचना के अतिरिक्त कोई अन्य सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

रचना-काल और वर्ण्य-विषय

तानसेन का रचनाकाल संवत् १६१५ के लगभग कहा जा सकता है। उनका जन्मकाल संवत् १५९५ माना गया है। तानसेन के जैसे प्रतिभाशाली और गुणी व्यक्ति ने बीस वर्ष की अवस्था से ही पद-रचना आरंभ की हो तो असंभव नहीं। अतः अपने ६० वर्ष के रचना-काल में तानसेन की काव्य-सामग्री काफी भरपूर होनी चाहिये। इससे यही ज्ञात होता है कि तानसेन की बहुत सी रचना अब भी अप्राप्य है।

तानसेन की रचनाओं को तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है। एक तो युवावस्था की रचनाएँ, दूसरे प्रौढ़ावस्था की और तीसरे वृद्धावस्था की। प्रथम अवस्था में उन्होंने अपने आश्रयदाताओं, संरक्षकों तथा हितैषियों की प्रशंसा और जीवन की सुखकर स्थिति का वर्णन किया है। दूसरे में अनेक देवताओं की गौरव-गरीमा का

प्रकाशन हुआ है परन्तु इसमें उनके धार्मिक विचारों की गहन अभिव्यक्ति नहीं हुई है। तीसरे में तानसेन के भक्ति-हृदय की अनुभूति की स्पष्ट रूप में झलक मिलती है। युवावस्था में तानसेन एक संरक्षक के यहां से दूसरे को यहां और वहां से फिर तीसरे की संरक्षा में रहे। उनके इस अस्थिर जीवन का परिचय इनको इस अवस्था के पदों से लगता है। रीवां-नरेश राजा रामचन्द्र, मुग़ल सम्राट् अकबर, मानसिंह आदि के यशोगान, जनोत्सवों-विशेष-कर ईद, विजयदशमी, होली आदि पर गाये हुए पद, रूप-सौंदर्य, नखशिख वर्णन, अवस्थाओं के अनुसार नायिकाओं का विवेचन आदि सम्बन्धी विषय इनकी युवाकाल की रचना के अन्तर्गत माने जा सकते हैं। कवि की वन्दना और स्तुति-सरस्वती, गणेश, महादेव, सूर्य, अनंत देवता आदि के पद, गौस मुहम्मद तथा अन्य पीर आदि के यशवर्णन कवि की प्रथम अवस्था में ही गाये गये होंगे। किन्तु तानसेन के जीवन में गम्भीरता ज्यों-त्यों आती गई त्यों-त्यों उनकी रचनाओं का विषय भी बदला। मन-प्रबोधन, नीति-वचन, ईश्वर की सर्वव्यापकता, फ़ारसी-शब्दावली में अल्लाह और मुहम्मद का गुण-गान तानसेन की दूसरी प्रकार की रचनाएँ हैं।

वल्लभ-संप्रदाय के संपर्क में आने पर ऐसा ज्ञात होता है। उनकी धार्मिक दृष्टि भगवान कृष्ण की छवि में केन्द्रित और एकाग्र हो गई थी। वे इस अवस्था में श्रीनाथ जी के सम्मुख कीर्तन पद गाते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगे थे। इसका परिचय उनके जीवन-चरित के प्रसंग में दिया जा चुका है। इस काल में उनका दरबारी जीवन प्रायः समाप्त हो चुका था और अवसर-अनवसर वहां पहुँचने पर भी वे भक्ति में विभोर कीर्तन-पदों के गाने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते थे। उनके जीवन का और उनकी रचना का यह अवसान-काल था। कृष्ण की बाल-लीला, मुरली-माधुरी, राधा-कृष्ण रूप-सौंदर्य, गोपी-उद्धवसंवाद, गोपी-मान, भक्तिगत-उपालंभ, गोपी-विरह व्यंजना आदि विषय के ही पद उन्होंने इसी अवस्था में गाये होंगे। तानसेन के तत्सम्बन्धी पद भाव औरं भाषा दोनों दृष्टि से भक्त-प्रवर सूरदास से मेल खाते हैं। इस अवस्था में ही उन्होंने 'संगीतसार' जैसी रचना लिखी होगी क्योंकि इसमें आरम्भ में ही अनहद-नाद, नाद के दो रूपों-आहत और अनाहत का वर्णन किया गया है। अनहदनाद का सम्बन्ध मुनियों और भक्तों से ही है। अतः यह उसी अवस्था की रचना हो सकती है जब उनकी प्रवृत्ति भक्ति-मार्ग में काफी ऊँची पहुंच चुकी हो।

तत्कालीन संगीत के स्वर सम्बंधी प्रायः सभी ग्रंथों का संक्षिप्त एवं सुरूप वर्णन तानसेन ने संगीतसार-पुस्तक में कर दिया है। नाद के आध्यात्मिक महत्व का दिग्दर्शन

भी कवि ने इसमें कराया है जो वर्तमान संगीत में अप्राप्य है। स्वरों का विभिन्न जातियों में वर्गीकरण आधुनिक संगीत के लिये एक नई वस्तु है। यों तो रे, ध, ग, नि, तथा स, प में षड्ज पंचम भाव है किन्तु इनका किसी जाति विशेष में होना यह कहीं नहीं मिलता 'मूर्छना' के अन्तर्गत वर्णित तीन-तीन स्वर भी आजकल के संगीत में प्रायः प्रयुक्त नहीं होते। कवि ने ताल की ओर भी विशेष ध्यान दिया है। उसका उद्देश्य केवल स्वर सम्बंधी पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या करना ही न था वरन् तालों का विविध मतों द्वारा परिचय देना भी उसको अभीष्ट था।

तानसेन ने अपनी रचनाओं में सर्वत्र ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है। कुछ पदों में फ़ारसी मिश्रित शब्दावली का अधिक व्यवहार हुआ है। यह उनकी रचना में दरबारी प्रवृत्ति का द्योतक है। अलंकार-छटा का स्वाभाविक रूप तानसेन की रचनाओं में दर्शनीय है। इस प्रकार तत्कालीन ब्रज-भाषा के परिमार्जित और परिष्कृत रूप का प्रयोग, विषय-वैविध्य, भाव-विशिष्टता उनकी रचनाओं की विशेषता है।

तानसेन एक महान् कलावंत थे। वे ध्रुपद-गायन में विशेष कुशल थे। उनके रचित ध्रुपद आज भी प्रायः सभी संगीतज्ञ गाते हैं। उन्होंने कुछ श्रुत-मधुर एवं मनो-रंजक नवीन रागों का भी आविष्कार किया, उदाहरणार्थ मियां की मल्हार, दरबारी कान्हरा आदि। इन रागों के अध्ययन से इनके संगीत विषयक पांडित्य का परिचय मिलता है।

कवि गंग की रचनाएँ

नागरी प्रचारिणी सभा, त्रैवार्षिक खोज-रिपोर्ट (सन् १६३२-३४) में गंग रचित तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है—१. गंग-पदावली, २. गंग-पचीसी, ३. गंग-रत्नावली। गंग पदावली में ७२१ अनुष्टुप छन्द और पंडित देवदत्त जी (सादाबाद, तहसील, ज़िला मथुरा) के पास यह सुरक्षित बताया गया है। गंग-पच्चीसी का लिपिकाल संवत् १६६० है और यह ठाकुर पीतमसिंह (बहना नगरी, ज़िला एटा) के पास लिखा गया है। किन्तु लेखक के प्रयास करने पर भी उक्त स्थानों में इन ग्रंथों का पता नहीं चला। जैसा शीर्षक से स्पष्ट होता है, गंग-पच्चीसी में कवि विरचित २५ छन्द होंगे। गंग-रत्नावली में १४०० अनुष्टुप छन्द हैं।[१] इसका संग्रह स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक के

१ अनुष्टुप छंद—लिपिकार ने गंग के छंदों का नाम यह रख दिया है। वस्तुतः गंग की कविता कवित्त, सवैया छंदों में ही उपलब्ध होती है।

संग्रहालय में जो अब डॉ० भवानी शंकर याज्ञिक की देखरेख में है, सुरक्षित है। इस ग्रंथ का कोई विशेष नाम नहीं दिया हुआ है। ऐसा अनुमान होता है कि खोजकर्ताओं ने ही उक्त नाम से इस संग्रह का निर्देश कर दिया। डॉ० भवानीशंकर याज्ञिक से ज्ञात हुआ कि संग्रह-ग्रन्थ में कोई नाम न रहने से उन्हीं के परामर्श से खोजकर्ताओं ने इसका नाम 'रत्नावली' रख दिया था। सम्भव है उक्त ग्रन्थ गंग-पदावली और गंग-पच्चीसी के भी ऐसे ही कल्पित नाम हों।

याज्ञिक-संग्रहालय के हस्तलिखित संग्रह ग्रन्थों में भी गंग के कुछ छन्द उपलब्ध हैं। कुछ संग्रह-ग्रन्थों के विवरण जिनमें गंग के छन्द ही अधिक संख्या में मिलते हैं, इस प्रकार से हैं :—

१. प्रति संख्या—१०६।१६—

इस संग्रह के आदि में 'आलम कृत कवित्त' लिखा है और आरम्भ में आलम के १५४ छन्द देने के अनंतर कवि गंग के छन्द' अथ कवि गंग कृत कवित्त लिष्यते' से आरम्भ होते हैं, पैंसठ छन्द देने के बाद 'इति श्री कवि गंग कृत कवित्त संपूर्ण' लेख दिया गया है। प्रति का लिपि-काल अज्ञात है। पुस्तक लगभग डेढ़, दो सौ वर्ष पुरामी ज्ञात होती है।

२. प्रति संख्या—७०४।४४—

यह भी एक संग्रह-ग्रन्थ है। प्रति खंडित है। इस प्रति में कुल पचास पृष्ठ हैं। इसमें गंग के छन्द एक क्रम में नहीं मिलते। प्रति के आरम्भ में गंग के कुछ छन्द दिये हुए हैं, कुछ बीच में और कुछ अंत में। गंग के कुल ३६ छन्द हैं। बीच-बीच में अन्य कवियों के छन्द हैं। प्रति के लिपि-काल का कुछ पता नहीं चलता। पुस्तक प्राचीन और अक्षर सुपाठ्य हैं।

३. प्रति संख्या—२५८।४१—

यह एक खंडित संग्रह-ग्रंथ हैं। पुस्तक प्राचीन है। प्रति का लेख बहुत सुन्दर है। इसमें गंग के केवल १८ छन्द ही उपलब्ध हैं।

याज्ञिक-संग्रहालय में कुछ और भी प्रतियां देखने को मिलीं जिनमें किसी में बारह और किसी में तेरह छंद उपलब्ध होते हैं। उनमें से कुछ प्रतियाँ खंडित हैं और कुछ पूर्ण। किसी-किसी में तो गंग के केवल तीन-तीन, चार-चार छन्द ही मिलते हैं।

कांकरौली-विद्या-विभाग की प्रतियाँ जो लेखक की देखी हुई हैं, विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनका विवरण निम्नलिखित है :—

१. पुस्तक संख्या—३।३-४, बंद ५०—

इस प्रति में कवि गंग के १०५ छन्द दिये हुए हैं। किन्तु इसके प्रथम पत्र के लुप्त हो जाने के कारण आरम्भ के छः छंद और सातवें छन्द के प्रथम दो चरण नहीं हैं। इसमें लिपि-काल का कहीं भी निर्देश नहीं है। ग्रंथ में सम्वत् १७५० के बाद का कोई कवि नहीं आया है। इससे पुस्तक प्राचीन और प्रमाणिक प्रतीत होती है। प्रति के कागज को देखने से भी इसकी प्राचीनता में विश्वास होता है। कुल १६ पत्र हैं। पुस्तक शोधित है और अक्षर सुपाठ्य हैं।

२. पुस्तक संख्या—३।५, विभाग-हिन्दी-साहित्य, विषय-पद्यकाव्य, विशेष ११×५।।।

यह एक संग्रह-ग्रंथ है और विषय-विभाजन के अनुसार छन्द दिये हुए हैं। छन्द पुस्तक भर में बिखरे पड़े हैं। हर एक कवि के रचना-संग्रह के लिये कुछ पृष्ठ छोड़ दिये गये हैं जिनमें से कई एक अधूरे दिखाई पड़ते हैं। लिपि-काल का कोई उल्लेख नहीं है किन्तु इस प्रति की प्राचीनता के सम्बन्ध में भी कोई संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें सम्वत् १७५० के बाद के किसी कवि की रचना नहीं दी गई है। इसमें गंग के ५६ छन्द उपलब्ध होते हैं।

उपर्युक्त प्रतियों में गंग रचित कुल मिलाकर लगभग ४०० छन्द उपलब्ध होते हैं किन्तु इन प्रतियों में कुछ छन्दों की पुनरावृत्ति भी हो गई है। अतएव इनमें कुल लगभग ३५० फुटकर छन्द हैं।

पहले कहा गया है कि याज्ञिक जी के पास गंग के १४०० अनुष्टुप छन्द हैं। इसमें अधिकांश छन्द तो उन्हीं की प्रतियों के हैं और शेष कांकरौली तथा कामवन की हस्तलिखित प्रतियों तथा अन्य प्रकाशित संग्रह-ग्रंथों द्वारा प्राप्त किये गये हैं जिनमें सुन्दरी-तिलक, नवीन-संग्रह, मनोज-मंजरी, शृंगार-संग्रह, हफ़ीजुल्लाखां का हजारा, साहित्य-रत्नाकर, कविता-कौमुदी, षट्ऋतु-हजारा, काव्य-संग्रह आदि विशेष उल्लेख-नीय हैं।

'महाकवि श्री गंग के कवित्त' नाम से पुरोहित हरिनारायण शर्मा बी० ए०, विद्याभूषण तथा मुंशी कन्हैयालाल माथुर, जयपुर ने गंग के छंदों का एक संग्रह प्रकाशित करना चाहा था। इसमें गंग के नाम से २७३ छंद दिये हुए है। उसकी एक प्रूफ़-कापी

लेखक को भी पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा डॉ० भवानी शङ्कर याज्ञिक के सौजन्य से प्राप्त हुई। किन्तु ४० छन्द इसमें ऐसे हैं जो लेखक को प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों में देखने को नहीं मिले। ये नवीन छन्द हैं। अतः गंग के उपर्युक्त ३५० छन्दों को लेकर कवि गंग के छन्दों की संख्या ४०० के लगभग पहुँचती है। पुरोहित हरिनारायण शर्मा जी के निधन हो जाने से गंग के छन्दों का उक्त संग्रह सम्भवतः प्रकाशित नहीं हो पाया क्योंकि खोज करने पर भी यह प्रकाशित संग्रह उपलब्ध नहीं होता।

ब्रह्मभट्ट-दर्पण, ग्रंथ में जिसका उल्लेख पहले हो चुका है, गंग कृत गंग-विनोद पुस्तक का परिचय मिलता है।[1] सम्भव है इनमें गंग के कुछ छन्दों का संग्रह हो। हिन्दी-खोज की तृतीय त्रैवार्षिक रिपोर्ट में चतुर्भुज सहाय वर्मा (बनारस) ने गंग कृत 'खानखाना-कवित्त' नामक ग्रंथ का उल्लेख किया है। इसमें गंग के ४२ अनुष्टुप श्लोक बताये गये हैं जो लगभग १० कवित्त अथवा १४ सवैये की संख्या है। गंग के अनेक छन्द खानखाना की प्रशंसा में लिखे हुए लेखक को उक्त संग्रह ग्रन्थों में मिले हैं। इनकी संख्या २५ है। अतः 'खानखाना कवित्त' कवि का लिखा हुआ कोई स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं जान पड़ता। ज्ञात होता है कि खानखाना की प्रशंसा के छन्दों का संग्रह कर यह एक कल्पित नाम दे दिया गया है।

'चन्द छन्द बरनन की महिमा' खड़ी-बोली गद्य-ग्रन्थ के लेखक भी प्रसिद्ध कवि गंग भट्ट ही कहे जाते हैं। नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित-हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण नामक ग्रन्थ में गंगा भाट जो संवत् १६२७ में बादशाह अकबर के आश्रित थे, कृत 'चंद छन्द वरनन की महिमा' नामक पुस्तक का परिचय दिया गया है। त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट (१६०६-१०-११) में उक्त ग्रंथ की प्राचीन हस्तलिखित प्रति का वर्णन मिलता है। ३३० श्लोक १६ पृष्ठों में दिए हुए हैं। ग्रन्थ का रचनाकाल सम्वत् १५७० और लिपि-काल सन् १६५६ है।[3] इसी ग्रंथ की एक पांडु लिपि की प्रति इंडिया एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी, कलकत्ता में सुरक्षित है। इसमें पांडु लिपिकार अथवा लिपि-काल का परिचय नहीं मिलता। प्रसिद्ध साहित्य-

---

१ ब्रह्म भट्ट-दर्पण, नरसिंहदास, पृष्ठ १९

२ हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, प्रथम भाग, पृष्ठ ३२

३ खोज रिपोर्ट, ना० प्र० सभा, काशी, १९०९, १०, ११, पृष्ठ १४६, १४७

समालोचक मिश्रबन्धुओं तथा स्व० पं० रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस ग्रंथ को प्रसिद्ध कवि गंग रचित ही माना है। अतः इसे प्रसिद्ध कवि गंग का लिखा हुआ ही ग्रन्थ कहा जा सकता है। इसके विरोध में कोई प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि अकबरी-दरबार में प्रसिद्ध कवि गंग के अतिरिक्त गंग भट्ट अथवा गंग कवि नामक किसी अन्य लेखक अथवा कवि की स्थिति सिद्ध नहीं होती। एक ही समय, एक ही नाम, एक ही जाति और एक ही दरबार में गंग नामक दो कवियों का उपस्थित रहना भी असंगत ही कहा जायगा। मिश्रबन्धुओं ने भी दोनों को एक ही व्यक्ति स्वीकार किया है।[1]

हिन्दी-साहित्य के भक्ति-काल के पूर्व की अनेक रचनाओं में खड़ी-बोली की झलक मिलती है। संत कवियों ने अपनी 'सधुक्कड़ी' भाषा में खड़ी बोली का व्यवहार किया है। इसके भी पहले अमीर खुसरो ने खड़ी बोली में ही अपनी पहेलियां और मुकरियां लिखी थीं। फिर सौर-काल के प्रसिद्ध कवि गंग भट्ट ने जो प्रतिदिन दरबार में फ़ारसी के उत्कृष्ट कवियों के संपर्क में आते थे, खड़ी बोली की रचना लिख दी तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिये।

गंग ने जैसा पहले कहा जा चुका है; अपनी रचनाएँ संवत् १६२० के लगभग आरम्भ की थीं। इनकी मृत्यु संवत् १६८० के कुछ ही पूर्व हुई इसका उल्लेख पहले हो चुका है। इस दीर्घकालीन जीवन में कवि ने काफी अधिक और महत्वपूर्ण रचनाएँ लिखी होंगी किन्तु वे अब सम्पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं होतीं।

मिश्रबन्धुओं ने कवि गंग का रचनाकाल संवत् १६२० के लगभग माना है।[2] संवत् १६२७ में गंग ने अपनी कृति 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' अकबर के सम्मुख सुनाई थी।[3] किन्तु इस कृति के पूर्व भी गंग ने कुछ रचनाएँ लिखी होंगी। भाषा-परिमार्जन, भावाभिव्यक्ति की पटुता और कथा-पुष्टि के गुण उनके काव्य में उत्तरोत्तर

---

१ This Ganga is probably identical with the great poet Ganga Kavi who was also a Bhatta and not a Brahmin as previously believed by us.

The second Triennial Report on the search for Hindi Manuscript–1909–10–11, Page 12–13

२ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २७६

३ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, पृष्ठ २९१

बढ़ते गये होंगे । अतः गंग का साधारण रचनाकाल सम्वत् १६२० ठीक ही प्रतीत होता है। इस काल की रचनाओं में उनका पांडित्य, काव्य-कला-ज्ञान और भाव-प्रदर्शन आदि विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। इसके अतिरिक्त उनकी रचनाओं में कई स्थलों पर संस्कृत-श्लोकों के भावसाम्य और कला-पांडित्य के दर्शन होते हैं। इससे भी स्पष्ट है कि गंग ने संस्कृत के अध्ययन में भ कुछ वर्ष लगाये थे। उस समय कवि की आयु लगभग २५ वर्ष की तो अवश्य रही होगी। इन तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए कवि गंग का रचनाकाल सम्वत् १६२० मान लेने में किसी प्रकार की अयुक्ति ज्ञात नहीं होती। स्वर्गीय पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने गंग का कविताकाल सत्तरहवीं शताब्दी के बीच का समय माना है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि कवि का रचना-काल सम्वत् १६५० के लगभग ही है। सम्वत् १६२०, सत्तरहवीं शताब्दी के पूर्व मध्यकाल में इनकी रचना आरम्भ हुई और विशेष प्रौढ़ता उसमें इस शताब्दी के उत्तर मध्यकाल में ही आई होगी।

रचनाओं का वर्ण्य-विषय

गंग के जितने भी छन्द प्राप्त हुए हैं उनमें विषय की विविधता और काव्योचित मौलिकता स्थल-स्थल पर द्रष्टव्य है। उन्होंने अपनी भक्ति-भावना सम्बन्धी छंदों में कृष्ण की महिमा, यमुना का महात्म्य तथा राम-नाम की महत्ता दर्शायी है। भक्ति-भाव की अनन्यता तथा व्यग्रता इन छंदों में सराहनीय है। भक्ति-भाव के छंदों से यह भी स्पष्ट होता है कि कवि ने अपने जीवन के अंतिम काल में भक्ति-मार्ग को अपनाया था क्योंकि श्रृंगार के दोनों पक्ष-संयोग और विप्रलंभ पर कवि की दृष्टि विशेष रूप से रमी है। गंग के पूर्व उनके पूववर्ती कवि जायसी और सूर श्रृंगार के अंतर्गत नखशिख का वर्णन कर चुके थे। जायसी ने रहस्योद्‌घाटन के लिये नखशिख-वर्णन को रूपकमात्र माना था और सूर ने नखशिख को भक्ति का उद्दीपन रूप दिया था। कवि गंग ने नखशिख को एक अलग ही रूप दिया, उसे भक्ति के साथ नहीं मिलाया। इसी पद्धति को गंग के परवर्ती रीतिकालीन कवियों ने अपनाया। संयोग श्रृंगार का वर्णन करते समय काम-चेष्टाओं, हाव-भाव आदि के चित्रण में गंग ने प्रेम के प्रकृत रूप को नहीं भुलाया है। विप्रलंभ की सूक्ष्म भावनाओं तथा अवस्थाओं के रूप व्यक्त किये गये हैं।

वीर-रस-चित्रण गंग का प्रधान क्षेत्र नहीं था फिर भी इस रस के कुछ छन्द इन्होंने लिखे हैं। वीर-रस की कविता का आलंबन अपने आश्रयदाता मुसल्मान शासकों

को ही अधिकतर बनाया। इसलिये इनकी तत्सम्बन्धी रचना प्रचलित न हो सकी। वीर रस के भीतर कवि गंग ने भयानक और रौद्र का भी कहीं-कहीं सुन्दर चित्रण किया है। गंग ने नीति और उपदेश सम्बन्धी विविध आवश्यक बातों का समावेश अपनी रचनाओं में किया है। इनकी नीति-वर्णन-पद्धति का खानखाना पर अधिक प्रभाव पड़ा था। प्रकृति-वर्णन का निर्वाह भी गंग की कविता में उचित रूप से हुआ है। प्रकृति के ये वर्णन उद्दीपन रूप में अधिकतर आये हैं। इस प्रकार गंग का काव्य-चित्रण स्वाभाविक, सुंदर और चित्ताकर्षक है।

प्राचीन काल से राजदरबारों में समस्या-पूर्ति की कविता भी कवियों की जीवन-संगिनी रही है। इस दिशा की ओर भी गंग ने पूर्ण सफलता प्राप्त की थी। भावुक अकबर की दी हुई अनेक समस्याओं की पूर्ति उन्होंने की थी जिसका परिचय आगे 'काव्य-विवेचन' के प्रसंग में दिया गया है।

गंग द्वारा कथित उपर्युक्त विषयों के विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने लाक्षणिक तथा व्यंजनात्मक शैली का भी अपने काव्य में सहारा लिया है। इन गुणों के कारण ही गंग के काव्य में उक्ति-वैचित्र्य तथा कल्पना-वैचित्र्य का परिचय मिलता है। अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक ढंग पर हुआ है। अतः गंग की इस अल्प-कृति द्वारा ही उनकी बहुमुखी प्रतिभा का पता चलता है।

रहीम की रचनाएँ

अब्दुर्रहीम खानखाना की रचनाएँ हिन्दी-साहित्य-जगत में 'रहीम' के नाम से प्रचलित हैं। मआसिरे-रहीमी और मुआसिरुल-उमरा में स्पष्ट रूप से दिया हुआ है कि अब्दुर्रहीम खानखाना अपनी कविता में 'रहीम' का तखल्लुस रखते थे जिसे पहले रहीम की जीवनी के प्रसंग में कहा जा चुका है। हिन्दी-साहित्य के कुछ इतिहासकारों ने हिन्दी-भाषा के दो रहीम कवियों का परिचय देने का प्रयास किया है। शिवसिंहसरोज में प्रसिद्ध कवि खानखाना के अतिरिक्त एक और रहीम का उल्लेख करते हुए शिवसिंह सेंगर ने इसके समर्थन में भिखारीदास का निम्नलिखित छन्द दिया है :—

सूर केसौ मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म चिंतामनि मतिराम भूषन सो जानिये
नीलकंठ नीलाधर निपट निवाज निधि नील कंठ मिश्र सुखदेव देव मानिये
आलम रहीम खानखाना रसलीन सुन्दर अनेक गन गनती बखानिये
ब्रज भाषा हेत ब्रज सब कीन अनुमान येते येते कविन की बानीहू ते जानिये ॥[1]

---

१ काव्य-निर्णय, भिखारीदास, पृष्ठ ३

संभवतः इसी आधार पर मिश्रबन्धुओं ने भी हिन्दी के दो रहीम कवि मान लिये हैं। रहीम कवि नाम से निम्नलिखित छन्द शिवसिंह सरोज में मिलता है :—

सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम राखिहौ हमें सोभा रावरी बढ़ाइहैं
तजिहौ हरषि कै तो विलग न सोचैं कछू जहाँ-जहाँ जैसे तहाँ दूनो जस गाइहैं
सुरन चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे पर सुकवि रहीम हाथ हाथ में विकाइहैं
देस में रहेंगे परदेस में रहेंगे काहू भेस में रहेंगे तउ रावरे कहाइहैं ॥[१]

उक्त छन्द रहीम कृत न होकर अनीस कवि का है जिसका उल्लेख शिवसिंह-सरोज में हुआ है।[२] अतएव केवल एक दूसरे रहीम के नाम को प्रचलित करने के लिये अन्य कवियों की रचनाओं का उनके साथ सम्बन्ध जोड़ देना असंगत और अनुपयुक्त प्रतीत होता है। हस्तलिखित प्रतियों में रहीम खानख़ाना की स्पष्ट छाप मिलती है। किसी अन्य ख़ानख़ाना-उपाधि-प्राप्त व्यक्ति ने रहीम नाम से हिन्दी-रचनाएँ लिखी हों, ज्ञात नहीं होता। अतएव रहीम ख़ानख़ाना एक ही व्यक्ति थे और वे अकबरी दरबार के प्रसिद्ध हिन्दी-कवि रहीम ही हैं, इसमें किसी प्रकार का संदेह निराधार है। स्व० पंडित मयाशंकर याज्ञिक ने भी हिन्दी-साहित्य के एक ही रहीम कवि के होने का समर्थन किया है!

रहीम की रचनाओं के अनेक संग्रह पच्चीस वर्ष से समय-समय पर छपते रहे हैं। इनमें ब्रजरत्नदास का 'रहिमन विलास', हिन्दी-साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'रहिमन विनोद', सुरेन्द्रनाथ तिवारी द्वारा संपादित 'रहीम कवितावली', रामनरेश त्रिपाठी का 'रहीम', रामनाथ सुमन का 'रहिमन चन्द्रिका', लाला भगवानदीन का 'रहिमन शतक' और पंडित मयाशंकर याज्ञिक द्वारा संपादित 'रहीम रत्नावली' विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सब संग्रहों में याज्ञिक जी का संग्रह पूर्ण और प्रमाणिक ज्ञात होता है। अन्य संग्रहों में रहीम की संपूर्ण रचनाओं का समावेश नहीं हुआ है। किसी में यदि कुछ संपूर्ण रचनाओं का विवरण है तो कुछ रचनाएं अधूरी ही दे दी गई हैं।

रहीम की कृतियों में सभी संग्रहकारों ने सर्वप्रथम उनकी 'दोहावली' का वर्णन किया है। कुछ लोगों के मतानुसार रहीम ने एक सतसई की रचना की थी यद्यपि लगभग

---

१ शिवसिंह सरोज, पृष्ठ ३०२

२ सुनिये विटप प्रभु पुहुप तिहारे हम राखिहौ हमें तो सोभा रावरी बढ़ाइहैं
तजि हौ हरषि कै तौ विलग न सोचै कछू जहाँ जहाँ जेहैं तहाँ दूनो जस गाइहैं
सुरन चढ़ैगे नर सिरन चढ़ैगे पर सुकवि अनीस हाथ हाथ में विकाइहैं
देश में रहेंगे परदेश में रहेंगे काहू भेस में रहेंगे तउ रावरे कहाइहैं ॥

रहीम कृत उक्त ग्रंथ स्वतन्त्र रूप में उपलब्ध नहीं होता। तीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं और तीनों में रहीम के बरवों के साथ मतिराम के दोहों का भी संग्रह मिलता है। काशीराज पुस्तकालय की प्रति अंतिम दोहे से यह स्पष्ट है :—

लच्छण दोहा जानिये उदाहरन बरवान।
दूनों के संग्रह भए रस सिंगार निर्मान ॥

संभव है मतिराम ने स्वयं इनका संग्रह किया हो क्योंकि याज्ञिक जी के कथनानुसार थोड़े काल के लिये रहीम और मतिराम समकालीन भी थे। रहीम और मतिराम के रचना-काल में काफी अंतर है और यह आवश्यक नहीं कि समकालीन कवियों की रचनाओं का ही प्रभाव एक दूसरे पर पड़े। पूर्ववर्ती कवि का प्रभाव परवर्ती कवि पर संभव है। उक्त ग्रंथ में लच्छण रूप में दिये गये मतिराम कृत 'रस राज' के हैं और उदाहरण रहीम के बरवों के और इन दोनों के संग्रह से ग्रंथ में पूर्णता आ गई है जिसका श्रेय रहीम को है। उक्त ग्रंथ के विषय को देखने से यही ज्ञात होता है कि रहीम ने इसे अपने जीवन के मध्यकाल में लिखा होगा। संभव है केशवदास के प्रसिद्ध ग्रंथ 'रसिक-प्रिया' के आस-पास ही जो संवत् १६४८ में लिखी हुई रचना है, यह ग्रंथ भी लिखा गया होगा। अतएव रहीम कृत यह रचना हिन्दी के नायिका-भेद सम्बंधी प्रारंभिक ग्रंथों में ही मानी जा सकती है।

'बरवै-नायिका-भेद' के अतिरिक्त रहीम के १०१ बरवै स्वतन्त्र रूप से लिखे हुए 'रहीम-रत्नावली' में मिलते हैं। स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक के कथनानुसार इस रचना की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति उनको खोज में मिली थी। रहीम की माता जमालखां मेवाती

पर मुंशी जी लौट कर न आए। जब चलने लगे तो बड़े चिंतातुर थे। स्त्री ने चिंता का कारण जानकर, चतुर तो थी ही, निम्नलिखित छंद लिखकर पति को दिया कि वह दरबार में पहुँचते ही खानखाना को दे दें :—

प्रेम प्रीति के बिरवा चलेहु लगाय।
सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाय॥

खानखाना ने इसे पढ़कर मुंशी को माफ कर दिया और इससे प्रेरित हो बरवै-नायिका भेद लिखा।

३ परिशिष्ट १, रचनाकार संख्या १, पृष्ठ २५, त्रैवार्षिक खोज रिपोर्ट, १९०९, १०, ११

की बेटी थी और यह प्रति भी उनको मेवात में ही मिली है।[1] अतएव ग्रंथ प्रमाणिक ही ज्ञात होता है। 'खानखाना कृत बरवै' शीर्षक नाम से म्युनिसिपल-संग्रहालय, प्रयाग के एक प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ में रहीम के कुछ बरवै मिलते हैं। इनमें नगर शोभा के तीन छंद तथा बरवों की संख्या ४६ है और छंदों को छोड़कर ये सभी बरवै रहीम रत्नावली-संग्रह में आगये हैं।[2]

इस रचना के आदि में मंगलाचरण के छः बरवै दिये हुए हैं जिससे यह एक स्वतन्त्र ग्रंथ प्रमाणित होता है। ग्रंथ की भाषा और भाव-चमत्कार के देखते हुए यह कहा जा सकता है कि ग्रंथ की भाषा नायिका-भेद से अधिक प्रौढ़ है। इससे यही अनुमान निकलता है कि यह रचना नायिका-भेद के बाद की रचना होगी। आरंभ के मंगलाचरण छंदों में और गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस के मंगलाचरण के सोरठों में काफी भाव-साम्य है। संभव है रहीम ने रामचरितमानस के सोरठों के ही तत्सम्बंधी भाव को बरवै में रचकर गोस्वामी जी के पास भेजे हों और जिसकी प्रेरणा से उन्होंने बरवै-रामायण की रचना की हो।

'मदनाष्टक' रहीम की एक श्रृंगारिक कृति है। संस्कृत में इस प्रकार के 'अष्टक' लिखे हुए मिलते हैं। रहीम की यह रचना संस्कृत-शैली पर मालिनी-छंद में लिखी हुई है। ये छंद संस्कृत मिश्रित खड़ी-बोली हिन्दी में लिखे गये हैं। संवत् १३८२ में अमीर खुसरो ने फ़ारसी-हिन्दी मिश्रित भाषा में अपनी कविताएं लिखी थीं। संवत् १४०० के लगभग शारंगधर ने अपनो रचना 'शारंगधर-पद्धति' में इसी मिश्रित 'रेख़ता' भाषा में श्रीकृष्ण सम्बंधी छंद दिया था। इस प्रकार मिश्रित भाषा में काव्य लिखने की परिपाटी रहीम के पूर्व प्रचलित थी। इसी भाषा में रहीम के आठ छंद तो उक्त रचना में और दो छंद रहीम की फुटकर रचनाओं में मिलते हैं। उनका 'खेटकौतुक जातकम्' भी इसी मिश्रित भाषा में लिखा गया है।[3]

रहीम विरचित 'मदनाष्टक' के तीन भिन्न-भिन्न पाठ संग्रह-ग्रंथों में दिये गये हैं। एक सम्मेलन पत्रिका से उद्धृत, दूसरा असनी से प्राप्त और तीसरा काशी नागरी-

---

१ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ २ ३

२ प्राचीन हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ, पुस्तक-संख्या ५६, बस्ता-संख्या १८७, म्यूनिसिपल संग्रहालय, प्रयाग।

३ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ २६, २७

प्रचारणी पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। स्व० पं० मयाशंकर याज्ञिक ने सम्मेलन-पत्रिका वाले पाठ को शुद्ध माना है।[१] शिवसिंह सरोज और मिश्रबंधु में उद्धृत छंद नागरी-प्रचारणी-पत्रिका वाले पाठ में नहीं है। असनी और नागरी प्रचारिणी सभा की पत्रिका के प्रथम छंद में नायक की उक्तियां हैं और शेष सात में नायिकाओं की, परन्तु सम्मेलन-पत्रिका के आठों छंदों में नायिका की उक्तियां हैं। इससे भाव सम्बद्धता बनी रहती है। नागरी-प्रचारणी-सभा पत्रिका वाले का तीसरा छंद और असनी वाले का सातवां छंद कुछ साधारण पाठान्तर के साथ केदार भट्ट विरचित 'वृत्त रत्नाकर' की नारायण भट्ट की टीका में दिया गया है। संभव है नारायण भट्ट की टीका में कथित छंद को देखकर 'रहीम ने मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी' की समस्या मानकर उक्त ग्रंथ को उसके पूरक के रूप में लिखा हो और यह भी संभव है कि इनमें से कुछ छंद स्वतंत्र हों और किसी ने इन सब का संग्रह करके 'अष्टक' नाम दे दिया हो।[२]

'मदनाष्टक' रहीम के प्रारंभिक जीवन की रचना ज्ञात होती है क्योंकि न तो इसमें भावों की प्रांजलता, मधुरता ही है और न भाषा की प्रौढ़ता ही। खड़ी बोली हिन्दी की दृष्टिकोण से यह रचना महत्वपूर्ण अवश्य है। रचना में एक दो स्थलों पर कुछ शब्दों के प्रयोग संस्कृत-विभक्ति सहित हुए हैं।

रहीम का ज्योतिष-ग्रन्थ 'खेटकौतुक जातकम्' भी प्रसिद्ध रचना है। ग्रंथ का प्रकाशन ज्ञान-सागर प्रेस, बम्बई से हुआ है।[३] यह ग्रन्थ फ़ारसी मिश्रित संस्कृत भाषा में लिखा गया है। ग्रंथ के आरम्भ में स्वयं रहीम ने लिख दिया है :—

करोम्यब्दुल रहीमोऽहं खुदाताला प्रसादतः। पारसीयपदैर्युक्तं खेटकौतुकजातकम्।

ग्रंथ में रहीम विरचित कुल १२३ श्लोक हैं। सूर्य, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु आदि भावों के फल तथा राज-योग पर अलग-अलग श्लोक हैं। ये श्लोक संस्कृत मिश्रित-भाषा में लिखे गये हैं जैसा ग्रंथकार के उपर्युक्त श्लोक से स्पष्ट होता है।

रहीम-रत्नावली में रहीम कृत रासपंचाध्यायी ग्रन्थ के नाम का भी उल्लेख किया गया है यद्यपि उस ग्रंथ के सविस्तार वर्णन का अभाव है।[४] भक्तमाल में प्राप्त कवि के कुछ

---

२ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ २८

१ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ २७, २८

३ खेटकौतुकजातकम्, छंद संख्या २

४ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ३२

पदों के आधार पर संभवतः उक्त ग्रंथ की कल्पना कर ली गई है। रहीम-रत्नावली में 'फुटकर' शीर्षक के अंतर्गत रहीम के चार कवित्तों, पांच सवैयों, दो दोहों और दो पदों का उल्लेख हुआ है। 'खानखानानामा' में मुन्शी देवी प्रसाद ने रहीम के 'संस्कृत-काव्य' शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दी का एक सवैया और एक घनाक्षरी दिया है। ये याज्ञिक जी के संग्रह में नहीं आये हैं। रहीम के छः सोरठे भी 'श्रृंगार सोरठा' शीर्षक के अन्तर्गत रहीम-रत्नावली में संग्रहीत है। रहीम के संस्कृत श्लोकों का संग्रह रहीम-रत्नावली में 'रहीम-काव्य' के नाम से उपलब्ध होता है।[1] संस्कृत के ये श्लोक वही हैं जिन्हें मुन्शी देवीप्रसाद ने खानखानानामा में दिया है। इनमें दो छन्द संस्कृत मिश्रित है। संस्कृत के प्रथम श्लोक को एक छप्पय में हिन्दी-अनुवाद भी रहीम कृत ही बताया जाता है। रहीम द्वारा रचित शतरंज के खेल की एक पुस्तक का भी उल्लेख किया गया है।[2]

अब्दुर्रहीम खानखाना की उपर्युक्त रचनाएँ उनकी हिन्दी-काव्य में सजग प्रवृत्ति की द्योतक हैं। विभिन्न राजकीय परिस्थितियों के बीच फंसे रहने पर भी उन्होंने स्वयं तो साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत की हीं, अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से उन्होंने दरबारी काव्य और कला को भी प्रश्रय दिया। रहीम की हिन्दी-रचनाओं के विषय पर दृष्टिपात करने से उनकी धार्मिक विचार-धारा का परिचय प्राप्त कर उन पर श्रद्धा उत्पन्न होती है। मुसल्मान होते हुए भी उन्होंने हिन्दुत्व की भावना को अपनी हिन्दी कविता में आश्रय दिया। सम्भव है बीरबल, गंग, तानसेन आदि के संपर्क ने उनकी इस भावना को यथेष्ठ रूप में प्रभावित किया हो। अकबरकालीन धार्मिक उदारता और राजाश्रयता तो इसके मूल में थी ही। गोस्वामी तुलसीदास के संपर्क ने उसको और वेगवान बनाया होगा।

रचनाओं के वर्ण्य-विषय

रहीम की समस्त रचनाओं में उनकी 'दोहावली' ही सब से अधिक जन-प्रचलित रचना है। शिक्षित, अशिक्षित, साहित्यिक, असाहित्यिक सभी वर्ग के व्यक्तियों में इनके कुछ दोहे जिह्वाग्र मिलेंगे। रहीम अपने दोहों के ही कारण हिन्दी-भाषा-भाषी जनता में प्रसिद्ध हैं। इन दोहों में हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेने की शक्ति है। उनके एक-

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ८१, ८४

२ रहीम-रत्नावली, भूमिका, पृष्ठ ३३, ३४

एक दोहे में कवि की सच्ची अनुभूति का परिचय मिलता है। इनमें नीति-उपदेश की कोरी शिक्षा नहीं है वरन् कवि के जीवन की मार्मिक परिस्थितियों का भी चित्रण हुआ है। दोहावली का आरम्भ 'गंगा' की स्तुति से मिलता है। इसके पश्चात् नीति, उपदेश, भक्ति, सहज अनुभूति सम्बन्धी बातों का वर्णन आया है। बीच-बीच में विरह और उसके सहारे प्रकृति के कुछ दृश्यों का भी परिचय मिलता है। नीति-उपदेश के अंतर्गत जीवन की अस्थिरता, भवितव्यता, धैर्य, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षड्रिपुओं के कुप्रभाव, मान-मर्यादा आदि का वर्णन किये गये है। दोहावली में उक्ति-वैचित्र्य के भी कहीं-कहीं सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

अकबरी दरबार की श्रृंगारिक भावनाओं का प्रभाव रहीम की 'नगर-शोभा' रचना में देखा जा सकता है। इसमें विविध जाति की स्त्रियों का सजीव चित्रण मिलता है। एक-एक या दो-दो दोहों में कैथनि, जौहरनि, बरइन, रंगरेजिन, बनजारिन, तुरकिन, गूजरी आदि स्त्रियों के सजीव चित्र नेत्रों के सम्मुख खड़ा कर देना रहीम के उत्कृष्ट वर्णन-शक्ति का परिचायक है। सम्भव है अकबर द्वारा आयोजित 'मीना-बाजार' में एकत्र सभी वर्ण और विविध पेशों की स्त्रियों को देखकर रहीम को इस रचना की प्रेरणा मिली हो।

कवि की 'बरवै नायिका-भेद' रचना में स्वकीया, परकीया, गणिका के भेद, उप-भेद के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। दश प्रकार की नायिकाओं-प्रोषितपतिका, प्रवत्स्यत-पतिका, वासकसज्जा, कलहंततरिता आदि के भी उदाहरण दिये गये हैं। त्रिविध नायिका-उत्तमा, मध्यमा और अधमा का भी वर्णन हुआ है। नायकों के भी उदाहरण ग्रन्थ में भेद, विभेद के साथ आ गये हैं। दर्शन के अंतर्गत श्रवण, स्वप्न, चित्र, साक्षात् और सखी तथा सखी-जन कर्म के सम्बन्ध में मंडन, शिक्षा, उपालंभ, परिहास के सजीव उदाहरण रहीम ने दिये हैं। दोहावली के पश्चात् रहीम की यही रचना अधिक प्रचलित है।

रहीम के फुटकर छन्दों में श्रृंगारिक भावनाओं का ही समावेश है। इनमें भी विशेष रूप से विप्रलम्भ श्रृंगार का। इसमें छः छंदों में कृष्ण की स्तुति के बाद वियोग सम्बन्धी छंदों का आरम्भ हो जाता है। यह वर्णन बारह-मासा के क्रम पर किया गया ज्ञात होता है। इनमें विरहिणी की दीन-दशा का सजीव चित्रण हुआ है। बरवै छंदों में व्यक्त विरह की भावना कवि की उत्कृष्ट कला की द्योतक है।

अपनी 'मदनाष्टक' रचना में रहीम ने कृष्ण की मुरली के व्यापक प्रभाव, गोपियों की विह्वलता तथा कृष्ण के रूप-सौन्दर्य द्वारा उद्दीप्त गोपी-प्रेम-भावना और कृष्ण से

मिलने की उनकी तीव्र आकांक्षा का वर्णन किया है। यह सम्पूर्ण वर्णन विप्रलम्भ श्रृंगार के अंतर्गत स्मृति-संचारी के ही रूप में हुआ है। गोपियों में कृष्ण के वंशी-नाद, उनकी रूप-माधुरी तथा उनकी मधुर चाल-ढाल तथा बोली ने उनके विरह को और भी उद्दीप्त कर दिया है और वे कृष्ण से मिलने के लिये लालायित हो उठती हैं।

रहीम के 'खेटकौतुक जातकम्' ग्रन्थ में ज्योतिष-विषय वर्णित है। आरम्भ में मंगलाचरण के पश्चात् सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि के नक्षत्रों के भाव-फल बारह-बारह श्लोकों में दिये गये है। इसके पश्चात् राहु का भाव-फल बारह श्लोकों और केतु का केवल एक श्लोक में वर्णित है। मनुष्य जीवन पर ग्रहों और नक्षत्रों के प्रभाव इस विद्या के अनुकूल ही दिखाये गये हैं। ग्रन्थ के अन्त में राजयोग पर एक अध्याय मिलता है जिसमें २५ श्लोक हैं। इस में वर्णित योग और उनके फल ज्योतिष-ग्रन्थों से प्रमाणित भी होते हैं।

रहीम के पदों में कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का वर्णन मधुर व्रज-भाषा में हुआ है। पदों की शब्द-योजना श्रुतमधुर और संगीतात्मक है। भाव और भाषा दोनों की दृष्टिकोण से ये पद सूरदास के पदों से मिलते हैं। कवित्त और सवैयों में कृष्ण का बालरूप-वर्णन, उनके गुणों का कथन और साधारण नीति तथा शिक्षा के विषय आये है। सवैयों का भाषा तो परिमार्जित व्रज है किन्तु कवित्तों में खड़ी बोली मिश्रित व्रज-भाषा का प्रयोग हुआ है, कवि के सोरठों में कृष्ण के रूप-सौन्दर्य तथा विप्रलम्भ-श्रृंगार का विशेष वर्णन हुआ है। इन सोरठों में कवि ने उक्ति-वैचित्र्य के सुन्दर उदाहरण दिये हैं। कवि ने अपने संस्कृत-श्लोकों में भगवान कृष्ण से मोक्ष की प्रार्थना की है और जाति-भेद मिटाने का प्रयास किया है।

चौथा अध्याय

काव्य-विवेचन

काव्य एक रमणीय कथन है और उसके दो पक्ष होते हैं, एक अन्तरंग और दूसरा वहिरङ्ग। यद्यपि वाक्य की रमणीयता जिसे काव्य-शास्त्र में 'रस' कहा गया है दोनों पक्षों की मिश्रित स्थिति पर निर्भर रहती है फिर भी किसी काव्य-कृति के विवेचन के लिये उसके आन्तरिक और बाह्य दोनों पक्षों में व्याप्त सौंदर्य का विश्लेषण करना पड़ता है। इन दोनों पक्षों के स्पष्टीकरण से वाक्य की रमणीयता का पूर्ण स्वरूप सामने आ जाता है। काव्य के अन्तरङ्ग में विषय-तत्त्व और भाव तथा वाह्यांग के अन्तर्गत अलंकार, छन्द, भाषा, उक्ति-वैचित्र्य आते हैं। प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार के काव्य का सौंदर्य-विवेक उपर्युक्त विषयों के ही विवेचन द्वारा हो सकता है। प्रबन्ध-काव्य में कथा-सूत्रों का संगठन, विकास, चरित्र-चित्रण आदि पर भी विचार करना पड़ता है। आधुनिक युग में यह वाद भी प्रचलित है कि काव्य का उपयोग और महत्व केवल आनंद-दान में ही नहीं वरन् जीवन को प्रगति देने में भी है। जीवन से नितांत अलग होकर काव्य स्थायी नहीं हो सकता। ऐसी दशा में उसके बाह्य रूप अर्थात् अभिव्यक्ति-पक्ष या कला को ही महत्त्व देना आवश्यक हो जाता है। अकबरी-दरबार के कवियों में से किसी ने भी प्रबन्ध-काव्य नहीं लिखा। प्रबन्ध-काव्य उस काल के दरबारी कवियों के द्वारा वैसे भी बहुत कम लिखा गया है। परन्तु इनके द्वारा लिखा गया काव्य केवल आश्रयदाता की प्रशंसा करने वाला ही नहीं वरन् जीवन के कटु और मधुर अनुभवों तथा जीवन की विविध समस्याओं पर प्रकाश भी डालने वाला है।

किसी काव्य-कृति में जब उसके अन्तः और वाह्य दोनों पक्षों में रमणीयता वर्तमान रहती है तो वह काव्य मन को अधिक चमत्कार पूर्ण और मुग्धकारी लगता है। भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए काव्य का वाह्य-पक्ष बहुत पुष्ट होना चाहिए। सब प्रकार के काव्य का विवेचन भारतीय परम्परा में उपर्युक्त भाव-व्यंजना, शब्द-शक्ति, छन्द,

अलंकार आदि के रूप में ही किया जाता है। हिन्दी में मुख्यतः तीन प्रकार की काव्य-रचना हुई है—प्रबन्ध, खंड और मुक्तक। इन तीनों में तात्विक अन्तर होते हुए भी सब का विवेचन काव्य की उपर्युक्त विशेषताओं के साथ ही किया जाता है। यह अवश्य है कि जो भाव की पूर्ण रस-धारा प्रबन्ध-रचना में सम्भव है वह मुक्तक में नहीं, फिर भी मुक्तक मे रस की स्निग्ध फुहारें अवश्य रहती हैं जिनसे पाठक या श्रोता का हृदय खिल उठता है। इसीलिये वह सभा-समाजों के विनोद और तात्कालिक प्रभाव के लिये अधिक उपयुक्त होता है!

प्रस्तुत ग्रन्थ के कवियों की रचनाएँ अधिकांशतः मुक्तक हैं। यह बात इन कवियों की रचनाओं के प्रसंगों में पहले स्पष्ट की जा चुकी है। नरहरि के छप्पय, तानसेन के पद, ब्रह्म, गंग के कवित्त और सवैये, रहीम के दोहे तथा बरवै आदि मुक्तक-रचना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। नरहरि, गंग दरबार के कवि और तानसेन दरबारी संगीतज्ञ थे। ब्रह्म और रहीम दरबार के विशिष्ट पदों पर आसीन थे और उनका जीवन दरबार के कार्य-भार से इतना दबा हुआ था कि उन्हें सम्भवतः किसी प्रकार की प्रबंध-रचना का अवकाश ही नहीं मिला। समय मिलने पर वे फुटकर रचनाएँ ही कर पाते थे। इन कवियों ने अपनी रचनाओं में काव्य की किसी शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण नहीं किया। उनकी कविता जीवन के नित्य-प्रति के अनुभवों और उक्ति-सौंदर्य से अनुप्राणित है। भावाभिव्यंजन ही उनका प्रधान लक्ष्य था। इनके काव्य में रीति सम्बन्धी कलात्मक बातों का समावेश गौण रूप में ही हो पाया। उनकी रचनाओं में शृंगार और भक्ति के भाव विशेष रूप से आये हैं वैसे वीर, क्रोध आदि के भाव भी कुछ कवियों की रचनाओं में व्यक्त हुए हैं। प्रकृति के कुछ सुन्दर चित्र भी इनके काव्य में उपलब्ध होते हैं। उनकी नीति और उपदेश की रचनाएँ तत्कालीन लोक-रुचि और लोकोपकार-भावना की सूचक हैं। इनकी रचनाओं में छन्दों की विविधता और नूतनता, पद-लालित्य, उक्ति-वैचित्र्य, परिष्कृत और परिमार्जित भाषा, वृत्तियों तथा अलंकारों का संयोजन यद्यपि सूर और तुलसी जैसे महान् कवियों के समान नहीं है फिर भी इनका इन्होंने सुखद प्रयोग किया है। इनके काव्य का आंतरिक रूप-भाव-व्यंजना, वस्तु-वर्णन और नीति-उपदेश, उच्चकोटि का है।

रूप-वर्णन

भारतीय काव्य-धारा की एक बहुत बड़ी विशेषता रूप-वर्णन में निहित है। संस्कृत-साहित्य के लगभग प्रत्येक कवि ने रूप-वर्णन को अपने काव्य का मुख्य अंग

बनाया है। प्राकृत-साहित्य भी इस प्रकार के रूप-राग से भरा पड़ा है। हिन्दी कवियों की रचनाओं में आरम्भ से ही इस काव्य-पद्धति का अनुसरण मिलता है। इसमें विशेष रूप से नारी-सौंदर्य का चित्राङ्कन ही अधिक हुआ है। हिन्दी-साहित्य के भक्ति-काल में नारी-सौंदर्यानुभूति द्वारा अधिकतर अलौकिक सौंदर्य की कल्पना की गई थी किन्तु रीति-काल में इस सौंदर्यानुभूति की आध्यात्मिक भावना का ह्रास सा हो गया और इस पद्धति के निर्वाह में भौतिक सौंदर्य का चित्रण ही कवियों का लक्ष्य रहा। प्रस्तुत ग्रंथ के कवि हिन्दी-साहित्य के उत्तर-मध्यकाल में हुए थे जब रीति-काल की विशेषताओं का आरम्भ हो रहा था। इन कवियों की वर्णन-पद्धति में दोनों काल-भक्ति और रीति के प्रभाव दृष्टिगत होते हैं। उनके राधा-कृष्ण के रूप-चित्रण में आध्यात्मिक सौंदर्य की कल्पना और भौतिकता की भावना दोनों के मिश्रित रूप मिलते हैं। उनके ये वर्णन प्रेम-भाव को उद्दीप्त तथा उसका तीव्र बोधन कराने के लिये ही हुए हैं।

नरहरि ने धनुर्भंग के प्रसंग में सीता के रूप-सौंदर्य का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

चरण कमल केलि की सी शील गति फूली फिरे बाल मानो कुंदन कनक की
नरहरि सुकवि सुगंध संग सखिन के मधुर मधुर मृदु बानिक बनक की
आज जयमाला धर्‌यो माथे रघुनाथ जू के हाथहि सनाथ कीन्हों जाई सु जनक की
टूटत पिनाक पानि पान षान लागी सिया सुख निधरक भई धाक ही धनुक की ॥१

ब्रह्म ने प्रेमभाव की तीव्रता और सौंदर्यानूभूति का बोध कराने के लिये विविध उपमानों का आश्रय लिया है। उन्होंने प्रायः रूपकातिशयोक्ति और विस्मय भाव द्वारा सौन्दर्य-कल्पना के कई चित्र प्रस्तुत किये हैं। रूप-सौन्दर्य वर्णन ब्रह्म की विशेषता है। निम्नलिखित छंद में नायिका की अपार रूप-माधुरी से अभिभूत हो कवि कह उठता है :—

आजि एक ऐसो अचरज को तमासो देख्यौ पन्नग के माथे उयौ पूरन पून्यो को ससि
सारंग है मीन कीर कोकिला के कलरव सुपक सुरंग बिंब सुन्दर सरस असि
तिन पर बिंब संभु कनक की आभा धरै तिनपर विद्‌दला बने ज्यों घने हैं मसि
गिरजा को वाहन सो कदली बिरख पर कदली कमल पर ब्रह्म कवि यह कसि ॥२

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४६

२ देखिये, ब्रह्म के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या २६

नायिका की भृकुटि, नयन, अधर, कुच, जंघे आदि अवयवों के उचित उपमानों की जुटान कर कवि मुख की कान्ति की कल्पना पूर्णिमा के चन्द्र से करता है किंतु नायिका के उज्ज्वल मुख-भाग को उसकी काली वेणी के आश्रित देख आश्चर्यान्वित हो कह उठता है—'पन्नग के माथे उयो पूरन पून्यो को ससि।' वेणी और मुख की संश्लिष्टावस्था की यह सुन्दर कल्पना सराहनीय है।

अंगराई लेती हुई नायिका के शोभा की कवि ने विचित्र कल्पना की है। उसके ऐसा करने पर शरीर की रोमावलि, त्रिवली के अभाव और पीठ के तनाव में अप्रतिम शोभा का संयोजन हुआ। एड़ियों से वेणी को स्पर्श होने पर ऐसा प्रतीत हुआ मानों तीनों लोकों को जीतने के लिये कामदेव ने सोने की कमान को चढ़ा लिया हो :—

सेज ते ठाढ़ी भई उठि वालि लई उलटी। अंगराय जम्हाई
रोम की राजी विराजी विसाल मिटी त्रिवली अरु पीठ खिलाई
वेनी परी पग ऊपर पाछे ते ब्रह्म यहै उपमा उर आई
लोक त्रिलोक के जीतबे कारन सोने की काम कमान चढ़ाई॥[१]

उपर्युक्त छंद में नायिका के सहज स्वाभाविक सौन्दर्य वेणी की लम्बान और स्वर्ण-सदृश तन दीप्ति की व्यंजना द्वारा प्रकट है। निम्नलिखित छंद में ब्रह्म ने नायिका के मस्तक पर स्थित काली विंदी का सुन्दर रूपक बांधा है :—

कनएनसुरा विंदुली दिये भाल सो नैक न मो मन ते टहलै
मनु इंदु के बीच में कीच अमी अलि बालक आय परयो चहलै
कवि ब्रह्म भनै घुवरी अलकैं अपने बल काढ़न को कहलै
जुरि बैठे मयंक के कूल दुहु दिसि कोउ न पैठि सके पहलै॥[२]

सद्यःस्नाता नायिका की सौंदर्य-प्रभा भी अवलोकनीय है :—

बैठी अन्हाय बनाइ विरंचि सुंदरता वरषै वरषा सी
कंज से आनन खंजन लोचन कोऊ कहै कटि आहि मृषासी
ब्रह्म भनै नंद लाल विलोकति लागि रही लट लागि तृषा सी
झीनै दुकूल में झाईं झलमलै देह दिपे दुति दीप सिषा सी॥[३]

---

१ देखिये, ब्रह्म के विविध छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या २९

२ देखिये, ब्रह्म के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ३४

३ देखिये, ब्रह्म के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४३

उपर्युक्त सौन्दर्यानुभूति में कवि ने अपनी मधुर, स्निग्ध और शांत-कल्पना का परिचय दिया है। कटि की सूक्ष्मता का वर्णन कई कवियों ने विविध उपमानों द्वारा किया है किन्तु ब्रह्म ने उपमानों का निराकरण कर 'कटि आहि मृषा सी 'कह कर उसके अस्तित्व में ही संदेह उत्पन्न कर दिया है, 'सी' शब्द द्वारा उसको पूर्ण लोप होने से बचा लिया है अन्यथा इसके चित्रण में कोई विशेषता न रह जाती। सूक्ष्मवस्त्रवेष्ठित नायिका के शरीर की कान्ति 'दीपशिखा' सदृश बताकर कवि ने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है।

इस प्रकार ब्रह्म ने अपनी सौंदर्यानुभूति का परिचय अलंकारों द्वारा अधिक दिया है। इस सम्बंध में भावों की सरल अभिव्यक्ति उपमानों द्वारा विशेष रूप से हुई है।

तानसेन के पदों में नायिका के बाह्य-रूप का सौंदर्य परंपरागत रूप में वर्णित है। नखशिख के लिये पुराने उपमानों के ही प्रयोग किये गये हैं। निम्नलिखित छन्द में नायिका के नखशिख-शृंगार का एक चित्र देखिये :—

सोहत बनी बाल भाल चन्द्र भुव धनुष नेत्रकमल
श्रवण कुंडल सुंदर कपोल विलोकत रंभा रे
नासिका करि विद्रुम अधर दाडम दसन चमक सुंदर
बिजली सी चोंधत स्वरन मानों कंठ कोकला रे
ग्रीवा कपोल कुच श्रीफल नाम कटि केहरि कदली खम्भ जांघ रच कै धरे री
तानसेन निरखि मैन रति लजित भई आवत गज मत चाल मन को हरै री ॥[1]

नायिका की सुन्दरता कामदेव की रति को भी लज्जित कर देने वाली है। कवि ने उक्त छन्द में नायिका के समस्त अंगों के लिये परंपरागत उपमानों को सुन्दरता से जुटाया है।

नायिका के सोलह शृंगार का वर्णन कवि के निम्नलिखित पद में मिलता है :—

हारि हमेल सों नीकी लागत और गोरे हाथन चुरी हरी
कंठ पोति वदन जोति कानन वीरी और बेसर केसर की
खोर तापर लटपटात लटकत लट सुथरी

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ७६

भुज मृणाल श्रीफल से कुच कटि केहरी जंघ कजरी
चन्द्र वदनी शावक नयनी बोलत अमृत बैन धजरी
तानसेन प्रभु रिझाय लियो सोलह श्रृंगार बत्तीस आभरण सजरी ॥[1]

नायिका की तन-दीप्ति, रूप-माधुर्य, भाव-भंगी देख कर नायक रीझकर उसी को ही सर्वश्रेष्ठ मान बैठता है :—

अहो टेटी पागरि नागनि नारि सीस धरे जैसे टेटी पाग को राख रहत चिकनीया
ठुरि ठुरि मुरि मुरि बतीया करति अगली पछिलान सो दोउ करतारी
मारति एकनि सों नैन से नव बनीया
लाही को लहंगा पचरंग चूनरि कंठ छरा और तार्वीच मनिया
तानसेन प्रभु रीझि चकित भए तुही सबनि में धनि धनिया ॥[2]

इस प्रकार तानसेन के रूप-सौंदर्य-वर्णन में यद्यपि कोई अनूठापन नहीं है फिर भी वह वर्णन अपनी शब्द-योजना के कारण सुंदर बन पड़ा है । नायिकाओं के अंग-प्रत्यंगों के लिये परंपरागत प्राचीन उपमानों का ही आश्रय कवि ने लिया है। नये उपमानों की ओर उसकी दृष्टि नहीं गई है। परन्तु सौंदर्य का स्पष्टीकरण आकर्षक और प्रभावात्मक रीति से हुआ है क्योंकि वर्णन में स्वाभाविकता है। तानसेन ने एक-दो स्थलों पर नायक के रूप-सौंदर्य का भी वर्णन किया है ।

कवि गंग ने नायिका के नखशिख का वर्णन एक छंद में परंपरागत ढंग पर किया है :—

केस पर शेष दृग चलन पर खंजनी भोंह पर धनुष धरि सुरति सारों
दसन पर दामिनी कंठ पर कोकिला अधर पर बिंब रहि रहि सम्हारों
जंघ पर कदलि कटि छीन पर केहरी कुचन पर मेघ महा मंड टारों
जोति पर जोति छबि अंग पर गंग श्री राधिका नखन पर चन्द्र वारों ॥[3]

उपर्युक्त छन्द में कवि ने अंग-अंग के उपमान जुटाकर उन्हें उपमेय से हीन सिद्ध किया है। 'लट' की शेष से उपमा द्वारा कवि ने केश की दीर्घता इंगित की है। साथ

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ८८

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९०

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३८

ही नायिका के शुभ्र ज्योतिस्वरूप के लिये प्रयुक्त गंगावाची 'गंग' को श्लिष्ट कर कवि ने अपने नामोल्लेख का भी निर्वाह कर दिया है।

गंग ने नायिका के अंत: और वाह्य दोनों सौंदर्य का उचित सम्मिश्रण निम्न-लिखित कवित्त में दिखाया है, जो विशेषता एक स्थल के लिये गुण है वही दूसरे स्थल के लिये अवगुण ठहरती है :—

उरज कठोर वाकी बानी न कठोर कछु मन्द मन्द गति हो न मन्द मति पाइये
जाकी भौंह वक्र मन में न वक्रताई कहूँ उदर तो छीन न नितंब छीन छाइये
चंचल नयन हो न चंचल चरित्र ताके कारे केस पास हो न कारे गुन गाइये
नाभि तो गम्भीर न गम्भीर हो रवनि गेह कहै गंग कामिनी कहूँक ऐसी पाइये ॥[१]

भक्ति-पद्धति के कवि तुलसी, सूर, मीरा आदि के समान कवि गंग ने नंद-नंदन के अलौकिक रूप की कल्पना भी की है :—

मोर को मुकुट रु मुक्तान के वे अवतंस रोम रोम रूप मनों मनमथ दयी है
काछनी रुचिर रुचि सोहै पीत पट शुचि चटकीले अंग पर अति छवि छयी है
कहै कवि गंग तिहि बानक विविध भांति आभा तीनों लोक की सो एक ठौर भई है
मनि मनमोहन के कंठ में यों झलकत जानिये जुन्हैया जमुना में फैल गई है ॥[२]

ऐसा प्रतीत होता है, त्रिलोक का समस्त सौंदर्य एकत्र हो कर कृष्ण-रूप हो गया है। नीले जल वाली यमुना की अजस्र-धारा में जिस प्रकार ज्योत्स्ना का प्रतिबिंब झलकता है उसी प्रकार कृष्ण की ग्रीवा में मणि की माला झलक रही है। अंग-प्रत्यंग में एक से एक अनूठा, सौंदर्य व्यक्त हो रहा है।

निम्नलिखित कवित्त में परंपरा-निर्वाह पद्धति पर कवि ने रूप-राग में उपमेय की अपेक्षा उपमानों की हीनता दिखाई है:—

चांद को कलंक दीनो धनुष को टेढ़ो कीनो बानहू को चूक मृग पसू ही दिसीजिए
कीर हाटहू बिकात बिंबहु न कोउ खात हीर तो हलाहल रूप रस लीजिए
पंकज के काटे भारी कोकिला तो कीनी कारी सांपिन के विष मुख कामिनी सुनीजिए
कहै कवि गंग और अंगनि वसनि साथ प्यारी जी के मुखहू की कौन सोभा दीजिए ॥[३]

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७५

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७६

३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७७

उपर्युक्त छंद में कवि के सम्मुख केवल कामिनी के मुख के उचित उपमान का ही अभाव नहीं है वरन् कामिनी के अन्य अंगों के भी यथार्थ उपमान नहीं मिलते किन्तु 'और अंगनि वसनि छाए' के कथन से कवि कुछ छुटकारा पा जाता है परन्तु मुख तो खुला रहता है। इसीलिये कवि कह उठता है-'प्यारी जी के मुखहू की कौन सोभा दीजिए'।

संपूर्ण अंगों के साथ-साथ किसी एक अंग के सौंदर्य-वर्णन में भी गंग ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। नायिका के नेत्रों के वर्णन में कवि ने रूपक की सहायता लेकर संदेह अलंकार द्वारा नेत्र और कामदेव के तुरंग के समान गुणों का वर्णन किया है :—

दीरघ ढरारे तहां डोरे रतनारे लगे कारे तहां तारे अति भारे जे सुरंग हैं
कहै गुनि गंग जनु दूध ही सो धोए पुनि कोए त्रिकसत सित असित दुरंग हैं
पारद सरस चार थिर से थिरकि जात तिर में चलत मानों कूदत कुरंग हैं
खैचे ना रहत अनुरागहू के वागवर मानिनी के नैन कैधों मैन के तुरंग हैं ॥[१]

निम्नलिखित छंद में गंग ने 'वेणी' का अनुपम वर्णन किया है :—

मृग नैनी की पीठ पै वेनी लसै सुख साज सनेह समोय रही
सुचि चीकनी चारु चुभी चित में भरि मौन भरी सुख बोय रही
कवि गंग जु या उपमा जो कियो लखि सूरत ता अति गोय रही
मनो कंचन के कदली दल पै अति सांवरि सांपिनि सोय रही ॥[२]

उपर्युक्त छंद में कवि ने नागिन के स्वाभाविक चांचल्य का परिहार उसे सुषुप्तावस्था में दिखाकर वेणी की उपमा का पूर्णरूपेण निर्वाह कर दिया है। कवि की विशेषता पीठ को कदली-दल के रूपक बांधने में भी परिलक्षित है। नागिन की चंचलता वेणी की स्थिरता से सर्वथा भिन्न है। इस विभिन्नता के कारण दोनों का सादृश्य नहीं दिखाया जा सकता था। इसीसे कवि ने सोती सर्पिणी से चंचलता का निवारण दिखा कर उपमा को सुंदर बना दिया है।

इसी प्रकार कवि गंग ने नायिका के नख के शिख तक का सौंदर्य-वर्णन किया है। उसकी वेणी, नेत्र, भृकुटि, नासा, तिल, कुच, मुख, कर, पग, जंघे आदि के अलग-अलग और कहीं एक साथ वर्णन दिये हैं। कहीं-कहीं वाह्य सौंदर्य वर्णन के साथ-साथ

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १०

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९५

अन्तः सौंदर्य का भी वर्णन हो गया है। अंगों के लिये उपमानों के प्रयोग परंपरागत ढंग पर ही हुए हैं। कुछ नये उपमान भी आये हैं जिनके प्रयोग उनके परवर्ती कवियों की रचनाओं में मिलते हैं।

रहीम ने कृष्ण की रूप-माधुरी की विशद व्यंजना की है। उनके रूप-लावण्य, मुरली की मोहकता आदि सुन्दर ढंग से चित्रित हुए हैं। कृष्ण की छवि गोपियों के रोम-रोम में पैठ गई है। नंद-नंदन की मधुर मूर्ति ने उन्हें विह्वल कर रखा है :—

छवि आवन मोहन लाल की
काछे काछनि कलित मुरलिकर पीत पिछौरी साल की
वंक तिलक केसर की कीने दुति मानो विधु बाल की
विसरत नाहि सखी मो मन ते चितवनि नयन विसाल की
नीकी हँसनि अधर सुधरनि की छवि छीनी सुमन गुलाल की
जलसों डार दियो पुरइन पर डोलनि मुकुता माल की
आप मोल बिन मोलनि डोलनि बोलनि मदन गोपाल की
यह सरूप निरखै सोइ जानै इस रहीम के हाल की ॥[1]

एक अन्य पद में कृष्ण के कमल-नेत्र, उनकी मंद मुस्कान, दाँतों की कांति, विशाल हृदय पर स्थित मोतियों की माला तथा पीतांबर की शोभा का भी वर्णन हुआ है :—

कमल दल नैननि की उनमानि
विसरत नांहि सखी मो मनते मंद मंद मुसकानि
यह दसननि दुति चपलाहू ते महा चपल चमकानि
वसुधा की बस करी मधुरता सुधा पगी बतरानि
चढ़ी रहे चित उर विसाल की मुकुतामाल थहरानि
नृत्य समय पीतांबर हू की फहरि फहरि फहरानि
अनु दिन श्री बृन्दावन व्रज ते आवन आवन जानि
अब रहीम चित ते न टरति हैं सकल स्याम की बानि ॥[2]

रहीम के एक छंद में नेत्रों के विषय में किसी नायिका की उक्ति की द्रष्टव्य् है: —

---

१ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७८
२ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७९

अति अनियारे मानो सान दै सुधा महा विष के विषारे ये करत परतात हैं
ऐसे अपराधी देख अगम अगाधी यहै साधना जो साधी हरि हिय में अन्हात हैं
बार बार बोरे याते लाल लाल डोरे भये तोहू तो रहीम थोड़े विधिना सकात हैं
घाइक घनेरे दुख दाइक हैं मेरे नित नैन बान तेरे उर बेधि बेधि जात हैं ॥[1]

उपर्युक्त छंद में कवि ने नेत्रों की तीक्ष्णता का सुंदर वर्णन किया है।

'मदनाष्टक' रचना में भी रहीम ने इसी प्रकार कृष्ण के नेत्रों की तरलता, मधुरता, विशालता और उनके प्रभाव का चित्ताकर्षक वर्णन किया है :—

तरल तरनि सी हैं तीर सी नोकदारें
अमल कमल सी हैं दीर्घ हैं दिल विदारें
मधुर मधुप हेरें माल मस्ती न राखें
विलसति मन मेरे सुन्दरी श्याम आखें ॥[2]

रहीम ने इस प्रकार कृष्ण के अलौकिक रूप का बोध कराने के लिये विचित्र कल्पना का आश्रय ले कर अपनी सौंदर्यानुभूति का परिचय दिया है। साथ ही इनका वर्णन कहीं-कहीं स्थूल रूप वेष्टित है ताकि उसका लौकिक अनुभव भी किया जा सके।

रूप-राग में भावों की सरल अभिव्यक्ति ब्रह्म कवि के अतिरिक्त शेष सभी कवियों के काव्य में समुचित ढंग पर हुई है। इन कवियों ने रूप-सौंदर्य का बोध कराने के लिये अलंकारों का अपेक्षाकृत कम सहारा लिया है किन्तु ब्रह्म ने सर्वत्र अलंकारों द्वारा ही अपनी सौंदर्यानुभूति का परिचय दिया है। कवियों के इस वर्णन में परम्परागत उपमान का ही अधिक प्रयोग हुआ है। ब्रह्म और गंग ने अवश्य कुछ नये उपमानों की सृष्टि करके अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है। प्रायः नरहरि और रहीम की तत्सम्बंधी रचनाएँ कहीं-कहीं आध्यात्मिक भावना से प्रेरित है। ब्रह्म, तानसेन और गंग की इस विषय की रचनाएं आध्यात्मिक भावना से इसलिये प्रभावित हैं क्योंकि वह युग ही भक्ति का था। लेकिन उनकी प्रवृत्ति लौकिक वर्णन की ओर विशेष है और इस प्रकार वे रीतिकालीन कवियों का मार्ग प्रशस्त करते दिखाई देते हैं।

---

१ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७५

२ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७४

संयोग तथा उसके सहकारी भाव

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में शृंगार के अंतर्गत राधा, कृष्ण तथा गोपियोंके रूप-सौंदर्य का वर्णन ऊपर किया गया। इसके अतिरिक्त प्रेम-क्रीड़ा, विविधप्रकार की नायिकाओं के वर्णन, विरह तथा मान सम्बन्धी विषय भी प्राप्त हैं। इनमें राम और कृष्ण सम्बंधी भक्ति-भावना की भी झलक मिलती है। इनमें से कुछ कवियों की रचनाओं में शासक तथा अन्य लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों के वीर-भाव की भी अभिव्यक्ति हुई है। वीभत्स, क्रोध, भयानक आदि भावों के केवल एक-दो छंद ही इनकी रचनाओं में मिलते हैं। संचारी और अनुभावों के रूप में ही उनकी भाव-व्यंजना अधिकतर देखने को मिलती है।

नरहरि ने अपने छंदों में संयोग-शृंगार का बहुत कम वर्णन किया है। राधाकृष्ण के संयोग-विलास का कविकृत केवल निम्नलिखित एक छंद ही मिलता है—

करत विनोदु स्याम स्यामा संग दऊ मन मुदित रूप गुन भाजन
अंग अंग प्रति रंग रंग मह छवि उप्पम घन विंदु विराजन
नरहरि यह विपरीत सुरत रति राधे के चरन उचत अति लाजन
उछरि उछरि वेनी परति पिठ्ठि पर मार तमनहुँ मनमत्थ ताजन ॥[1]

उक्त छंद में कवि ने शृंगार के अन्तर्गत 'हर्ष' संचारी का उल्लेख किया है।

ब्रह्म की रचनाओं में संयोग शृंगार की उच्च भावनाएं दृष्टिगत नहीं होतीं। प्रेम-क्रीड़ा का साधारण वर्णन ही उपलब्ध होता है।

कवि ने निम्नलिखित छंद में नायक की कामातुरता, नायिका की नारीसुलभ लज्जा, शंका आदि की अभिव्यंजना की है।

सेजहितें उठि नारि चली मन मोहन जू हसि चीर गह्यो
प्रगट्यो रवि कान्ह विहान भयो मुख मोरि के यों मृगनैनी कह्यो
बेनी दुहूँ कुच बीच रही उपमा कवि ब्रह्म यहै निबह्यो
जनमेजय के मनो जज्ञ समे दुरि तच्छक मेरु की संधि रह्यो ॥[2]

उपर्युक्त छंद में मोह, त्रास, लज्जा संचारियों का सुंदर निर्वाह हुआ है तथा मुख मोड़ कर कहना, चीर पकड़ना आदि अनुभावों का भी एक ही स्थल पर निर्वाह कर दिया गया है।

---

१ देखिये, नरहरि के १८विध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ४१

२ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९९

कवि ब्रह्म ने प्रेम-क्रीड़ा के कई और छंद भी लिखे हैं किन्तु उनमें विपरीत-रति, आलिंगन आदि के ही विशेष वर्णन हुए हैं।

तानसेन के संयोग-श्रृंगार के कुछ चित्र अवश्य सुंदर हैं। निम्नलिखित छंद में नायिका ने अपनी सखी से कृष्ण के संयोग-सुख का वर्णन किया है :—

आज बजाई मुरली मनोहर ने सुध न रही कछू मो तन में
हों यमुना जल भरन जात ही कान्हा ठाड़ो री वृंदावन में
सुध न रही कछु ठगन की अंगन में भूली सब काम काज घरन में
तानसेन के प्रभु तुम बहुनायक मेरो मन मोह्यो आली मदनमोहन ने ॥[1]

मुरली की ध्वनि, एकान्त-स्थान यहां उद्दीपन के कार्य करते हैं और नायिका को कृष्ण के प्रेम में विभोर कर देते हैं। यहाँ पर नायिका की प्रेम-विह्वलता, तन्मयता तथा एकाग्रता का भी कवि ने सुंदर चित्रण कर दिया है। उक्त छंद में स्मृति, उन्माद, मोह संचारी आये हैं।

नायिका होली के अवसर पर यमुना से जल भरने जाती है और इधर कृष्ण पिच-कारी, रंग, रोली आदि लेकर घाट पर पहुंच जाते हैं :—

लंगर बटपार खेले होरी
बाट घाट कोउ निकस न पावे पिचकारिन रंग बोरी
मैं जु गई जमुना जल भरन गह मुख मीजो रोरी
तानसेन प्रभु नन्द को ठोटा वरज्यो न मानत गोरी ॥[2]

यहाँ पर कवि ने प्रेमगत उपालंभ का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है। नायिका अपनी मानसिक स्थिति की अभिव्यक्ति उपालंभ के रूप में करती है। हर्ष, स्मृति संचारी तथा सखी से कथन, बरजना आदि अनुभावों के उल्लेख भी कर दिये गये हैं।

प्रेम-विरह के उपरांत संयोग श्रृंगार का भी तानसेन ने वर्णन किया है :—

धन भाग मेरो धन आवन धन धन पति प्रेम भयो
मन दरस देखत इन अखियन सो तन इन अंग संग ते विरह गयो टर
इन आनंदन आनंदी बाँदी भइहों इन चरणन रहन कहत गर वगर अगसर

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ६०
२ „ „ „ „ „ „ „ पद संख्या १५८

जनम जीतब सुफल सखी मदन मोहन मया कीनी लीनी रस बस कर
तानसेन प्रभु सुख के नैनन सैनन हाव भाव कटाछन मोह लीनी तब मिट्यो दुख डर ॥[१]

उपर्युक्त छन्द में गर्व, हर्ष संचारी और सखी से कथनादि अनुभाव के निर्वाह सुन्दर ढंग से हुए हैं।

तानसेन के उक्त वर्णन में संयोग-शृंगार मर्यादानुमोदित ढंग पर आया है। परन्तु इनमें शृंगार की संपूर्ण अभिव्यक्ति न होकर संचारियों के ही प्रकाशन हुए हैं। इसलिये इन्हें भाव-वर्णन के अंतर्गत ही रखना चाहिये। संचारियों के निर्वाह में ही कवि को विशेष सफलता मिली है।

गंग की रचनाओं में संभोग-शृंगार के कवित्त और सवैये अधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं। कृष्ण की विविध क्रीड़ाओं के वर्णन में कहीं-कहीं उनका शृंगार-काव्य संयमित सीमा के बाहर भी चला गया है। ऐसे स्थलों पर कवि की काव्यानुभूति का परिचय नहीं मिलता वरन् वातावरण तथा दरबार की विलासमयी प्रवृत्ति की झलक ही विशेष रूप से प्रकट होती है।

गोपियाँ यमुना में स्नान करने के लिये प्रविष्ट हुई ही थीं कि कृष्ण उनके पहनने के समस्त वस्त्रों को लेकर तुरन्त कदंब-वृक्ष पर चढ़ गये। गोपियाँ की तात्कालिक मानसिक स्थिति की कवि ने निम्नलिखित छन्द में सुन्दर अभिव्यक्ति की है :—

इक झीनी अधीनी करै बतियाँ जिनकी कटि छीनी छलामें करैं
इक दोष धरैं अफसोस करैं इक रोष तै नैन ललामें करैं
कवि गंग कहै हित जंघन सो उर दै श्यामैं सलामैं करैं
निज अंबर माँगै कदम्ब तरैं ब्रज बामैं मुलामैं कलामैं करैं ॥[२]

कवि ने यहाँ गोपियाँ के दैन्य, रोष, लज्जा आदि भावों के सुन्दर सम्मिश्रित वर्णन करके भाव-शबलता का उदाहरण प्रस्तुत किया है। सामान्य परिस्थितियों में विभिन्न व्यक्तियों के हृदय में पृथक-पृथक भावों का उदित होना एक मनोविज्ञानसम्मत सिद्धांत है जिसका कवि ने उक्त छन्द में भलीभाँति निर्वाह कर दिया है।

एक समय राधा और कृष्ण एक साथ वन-कुन्ज के पास खड़े हुए थे। तत्काल ही बादलों की घरघराहट और हवा के थपेड़ों ने उनकी प्रेम-क्रीड़ा में उद्दीपन का कार्य

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १३२

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७८

किया और ज्योंही नायिका ने प्रस्थान करना चाहा त्यों ही नायक ने उसके वस्त्र पकड़ लिए। कवि ने इस भाव का वर्णन इस प्रकार दिया है :—

एक समय वृषभानु सुता हरि ठाढ़े हुते बन कुन्ज कुटी तर
गंग कहै घन की घहरान सुवात सघातन जात बनै घर
लीने दुकूल दबाय तिही ललना ललना कहि आज भले धर
मानों बिलथ्थल के दल को कन लै उड़्यो भौंरु बधू बिधु के पर ॥[१]

उक्त छन्द में उद्दीपन तथा विशेष रूप से 'त्रास' संचारी-भाव के उपरांत रति-भावोदय का व्यंग-वर्णन अपना विशेष चमत्कार रखता है। गंग ने अपने संभोग-वर्णन में रति-केलि, विपरीत-रति, आलिंगन आदि के ही अधिक वर्णन किये हैं जिनमें अश्लीलता ही विशेष रूप से चित्रित हुई है।

रहीम ने शृंगारिक भावनाओं की अभिव्यक्ति संयमित सीमा के भीतर ही की है। रूपगर्विता की संयोगावस्था का चित्रण कवि ने निम्नलिखित सवैये में दिया है :-

जाति हुती सखि गोहन में मनमोहन को लखि के ललचानो
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नन्द लाल को रीझिबो जानो
जाति भई फिरिके चितई तब भाव रहीम यहै उर आनो
ज्यों कमनैत दानक में फिरि तीर सों मारि लै जात निसानो ॥[२]

नायिका के प्रति कृष्ण की रुझान वैसी ही है जैसे किसी तीरन्दाज़ ने तोपों की बाढ़ में तीर मार कर अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया हो। नायिका विजित होने पर भी अपने आप को विजयिनी ही बताना चाहती है। उक्त छन्द में नायिका कृष्ण पर आसक्त है किन्तु अपनी इस असक्ति को कृष्ण पर मढ़कर अपने रूप-गौरव को अक्षुण्य बनाये रहती है। कवि ने यहां नायिका की उत्कंठा, कृष्ण-सौंदर्य पर रीझ कर कटाक्ष से देखने आदि के संकेतपूर्ण वर्णन किये हैं। विषम परिस्थिति में मनोभाव की उत्पत्ति तथा प्रकाशन की चतुराई का ही इस छन्द में विशेष सौंदर्य है।

रहीम ने बरवै नायिका-भेद के उदाहरणों में संयोग संचारी भावों के कुछ आकर्षक चित्र दिये हैं :—

---

१. देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १८१

२. देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७७

बहुत दिवस पै पियवा आएहु आजु।
पुलकित नवल बधुइया करु गृह काजु ॥[1]

यहाँ 'हर्ष' संचारी भाव का सुन्दर वर्णन है।

कृष्ण राधिका का स्पर्श-सुख प्राप्त करने के लिये उसे जानबूझ कर छू चोर बन जाते हैं :—

खेलत जानेसि टोलवा नन्द किशोर।
छुई बृषभान कुमरिया भैगा चोर ॥[2]

उपर्युक्त उदाहरण द्वारा कवि ने संयोग-सुख की चित्ताकर्षक अभिव्यंजना की है। राधाकृष्ण प्रेम का यह बरवै उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस प्रकार उक्त वर्णनों से स्पष्ट है कि नरहरि, ब्रह्म और गंग के उपलब्ध संयोग-श्रृंगार सम्बन्धी विविध भावों के छन्द भावपूर्ण होते हुए भी अश्लीलता की परिधि से अछूते नहीं है। इनमें संचारी भावों तथा अनुभावों के ही विशेष वर्णन हुए हैं। इनके वर्णन में विशेषता यही है कि भाव-वर्णन करते-करते अन्त में इन कवियों ने विशेष रूप से ब्रह्म और ग ग ने उत्प्रेक्षा अथवा उपमा के सहारे नवीन उपमान लाने का प्रयत्न करके अलंकार को प्रधान और भाव-वर्णन को गौण कर दिया है। श्रृंगार-रस का पूर्ण विश्लेषण इनकी रचनाओं में नहीं हुआ है। कुछ ही छन्द ऐसे हैं जिनमें रस के सम्पूर्ण अवयव देखने को मिलते हैं। तानसेन और रहीम की तत्सम्बन्धी रचना अश्लील नहीं है किन्तु इनमें रस की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं मिलती।

विप्रलंभ-श्रृंगार

संस्कृत काव्य-शास्त्रों में विप्रलंभ-श्रृंगार के अन्तर्गत अभिलाषा-हेतुक, ईर्ष्या-हेतुक, विरह-हेतुक, प्रवास-हेतुक, और शाप-हेतुक विप्रलंभ माने गये हैं[3] और इनसे उद्भूत दश विरह दशाएँ-अभिलाषा, चिंता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मृत्यु मानी गई हैं। आचार्यों ने विप्रलंभ-श्रृंगार का विभाजन अयोग और विप्रयोग दो रूपों में भी दिया है। नायक और नायिका में प्रेम होने पर भी परतन्त्रता के कारण जहां मिलन न हो सके वहां अयोग और जब मान अथवा प्रवास के कारण

---

१ देखिये, रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ५६

२ „ „ „ पृष्ठ ९१

३ काव्य-कल्पद्रुम, रस-मंजरी, पृष्ठ ९१-९४

संयोग न हो सके तब विप्रयोग होता है। मानजन्य और प्रवासजन्य प्रणय और ईर्ष्या-ये दोनों मान के हेतु हैं। इसी प्रकार प्रवास भी कार्यवश अथवा शापवश माना गया है। अतः अयोग श्रृंगार अभिलाषा-हेतुक और विप्रयोग ईर्ष्या, विरह, प्रवास और शाप-हेतुक विप्रलंभ श्रृंगार के समानुकूल कहे जा सकते हैं।

जीवन का प्रत्येक क्षण सुखपूर्ण नहीं होता। उसमें कभी दुःख की अनुभूति होती है। वियोगजन्य दुःख नायक-नायिका के प्रगाढ़ प्रेम का परिचायक और साक्षीस्वरूप होता है। इसमें दोनों की प्रेम-दृष्टि एकाग्र होकर उनका समस्त ध्यान प्रेम-क्रीड़ा की मधुर और आनंद-प्रदायिनी स्मृतियों में केन्द्रित रहता है और उसके बाद जो मिलन होता है वह और भी सुखपूर्ण और स्थायी होता है। हिन्दी के कुछ कवियों ने विषय की तीव्रता का अनुभव कराने के लिये विप्रलंभ-श्रृंगार के वर्णन में अत्युक्ति के काम लिया है। कहीं-कहीं पर उनका यह वर्णन बिल्कुल खिलवाड़ सा हो गया है। शब्दों की तोड़-मरोड़ और कल्पना की ऊँची उड़ान के अतिरिक्त वहां और कुछ भी नहीं है। परन्तु अकबरी दरबार के कवियों की रचनाओं में विप्रलम्भ के अन्तर्गत सुन्दर भाव-व्यंजना हुई है। उन्होंने कुछ स्थलों पर ऊंची कल्पना का आश्रय अवश्य लिया है किन्तु इसके द्वारा उनका उद्देश्य प्रेम की अनन्यता और तल्लीनता व्यक्त करना ही है। इस प्रकार की रचनाओं में उनके प्रेम-मनोविज्ञान की विशेषता का परिचय मिलता है। मान-निदर्शन में स्त्रियों की मानसिक स्थिति का विशेष परिचय दिया गया है।

नरहरि ने विरह के अन्तर्गत 'बारहमासा' का वर्णन किया है जिससे कवि की सहृदयता का परिचय मिलता है।

प्राप्त-प्रेम के पोषण के लिये प्रेमी कितना सचेष्ट रहता है यह नरहरि ने निम्न-लिखित 'असाढ़' के वर्णन में दिखा दिया है। शोक-संतप्ता नायिका अपनी सखी से कहती है कि प्रेमियों के मिलने की ऋतु यही है। मेघों से घिरे आकाश को देखकर अपनी प्रियतमाओं से बिछुड़े हुए प्रेमी कैसे बाहर रह सकते हैं। इसी आशा में प्रोषितपतिका अपने आगत प्रिय के लिये पूजा की सब सामग्री संजो कर रख लेती है। सारे जगती-तल पर हर्ष नाचता हुआ दृष्टिगत होता है परन्तु उसे कृष्ण का विरह ही निरन्तर जलाता रहता है :—

आवहि पथिक पेष्षि घन आगम राग मलार सुणत मन बाढ़
अद्रा नृपति पूजा ग्रह संचित जंपित प्रेम परस्पर गाढ़

नरहरि बुन्द विनोद वसुंधर हरि बिनु सखि विरहानल डाढ़
पथु जोवहि जिय जाति जितहि तित सब कह मिलनु अवधु असाढ़ ॥[1]

उक्त छंद में कवि ने मोह, अभिलाषा, उत्कंठा भावों के सुन्दर चित्रण किये हैं।

चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई पड़ती है। नदियाँ जल से परिपूर्ण हो वेगवान हो गई हैं। चकवा-चकवी प्रसन्न होकर चहक रहे हैं और पपीहा भी अपनी आशा को फलीभूत होते देखकर नाच उठता है। आकाश पर काले बादल अत्यन्त सुहावने मालूम पड़ते हैं। नायिका जब अपने पास ही चारों ओर सखियों को हिंडोले रचकर प्रेमियों के साथ विहार करते देखती है तो उसके विरह-दुःख की सीमा नहीं रहती :—

विज्जु तरक्कि चक्कि पपीहा चहक्कित स्याम सुहघ सुहावन
भुम्मि हरित्त सरित्त भरित्त दिगत्त रहित जित्त तित्त आवन
नरहरि स्वामि समीप जहाँ लगि रचहि हिंडोल सखी सुख गावन
बेआदर विलपत्तइ न कह बिन विट्ठल विलपति हे सावन ॥[2]

उक्त छंद में विषाद, मोह संचारी भावों के निर्वाह हुए हैं।

प्रिय के बिना सब सुखद वस्तुएँ किस प्रकार दुःखद हो जाती है, इसका दिग्दर्शन कवि ने फागुन के चित्रण में कराया है :—

रास विलास वसु सुर पूरित खेल्लत फिरत नृपति प्रजटागुन
बाजहि पंच सद्द बहु भांतिन सज्जन समीप सुषि न सुषतागुन
नरहरि निरषि होलिका पूजहिं सब जग मुदित मोर परमागुन
वै जदुनन्दन भेग सषा सब पिय बिन वृथा फागु भई फागुन ॥[3]

मोह और स्मृति संचारी भावों के कवि ने यहां सहज ही में वर्णन कर दिये हैं।

नरहरि के विरह-चित्रण में यद्यपि बहुत उच्च भावनाओं की तीव्रता नहीं मिलती और उद्दीपन का भी सामान्य विवरणमात्र है, भावों के संकेत प्रायः छंद के अन्त में मिलते हैं जो इस प्रकार के वर्णन की परिपाटी-पालन ही कहा जा सकता है।

---

१ देखिये, नरहरि का बारहमासा, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १०४
२ ” ” छंद संख्या १०५
३ ” ” छंद संख्या १११

ब्रह्म ने अपने विप्रलम्भ शृंगार में गोपियों तथा राधा के वियोग के वर्णन किये हैं। गोपियाँ कृष्ण के रूप-सौन्दर्य तथा गुणों को स्मरण कर विह्वल हो उठती हैं।

कृष्ण के विरह में गोपियों को दशों दिशाएँ जलती हुई मालूम पड़ती हैं और काले बादलों का बरसना उन्हें श्यामदृगों से आँसू की धार के समान जान पड़ता है। काले बादलों के रूप में वे कृष्ण का दर्शन करती हैं :—

काल के कान्ह गये मथुरा मनौ बीत गये जुग बासर से
विरहागिन काम लगाइ दई है दसो दिस देखि वही दरसे
कवि ब्रह्म भने मोहि जान पड़े सखि स्याम घटानल सो परसे
विरही वर बार ही बार उठे दृग नीर किधौं घन धों बरसे ॥[1]

कृष्ण की रूप ठगोरी के दुःखद प्रभाव का वर्णन कवि ने निम्नलिखित छंद में किया है :—

जब ते नन्द लालु चिते चलिगे संगही चलि चेटकु सो कछु कीनो
नेकु जो देखो दिखाई जू मोहि सुदेखे हियो हरि जू हरि लीनो
ब्रह्म भने तलफें दो नैन विसेखहि नीर ते न्यारे के मीनो
गए गड़ आँखिनि में सजनी वडडी अखियानि बड़ो दुख दीनो ॥[2]

उक्त छंद में कवि ने कृष्ण की चितवन को उद्दीपन स्मृति, मोह, विषाद को संचारी भावों तथा तड़पन आदि को अनुभाव के रूप में सुन्दर ढंग से निर्वाह कर दिया है।

नायक की अनुपस्थिति में रात पावक की भांति बढ़ती ही जाती है। केवल कृष्ण ही एक ऐसे थे जिसकी करुणा से वह अभिसिक्त रहती थी और अब तो वह शुभ ज्योत्स्ना के अस्तित्व को ही मिटाने पर तुली है। ऐसा ज्ञात होता है कि ऊधो से उसने भी योग का पाठ सीख लिया है :—

राति अराति भई सजनी सुनि पावक ज्यों विधि बूढ़ बढ़ी है
कान्ह विना करुणा बिनु माई री जानति जोन्ह जू सीस चढ़ी है
ब्रह्म भनै निघटे न घटीक यहो किधौं ऊधो सो जोग पढ़ी है
जीवन ज्यों जसु ज्यों बलि को अलि बावन ज्यों यह रैनि बढ़ी है ॥[3]

---

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५१
२ " " छंद संख्या ५०
३ " " छंद संख्या १००

उक्त छद में विशेष रूप से विषाद, स्मृति सचारी के वर्णन हैं। कृष्ण के बिना सुखद वस्तुएँ दु खदायी हो गई हैं और स्वल्प वस्तुएँ दीर्घ। रात जो सयोग के दिनों छोटी जान पडती थी अब वही लम्बी हो गई है। नायिका की इसी मनोदशा का यहाँ पर विशेष चित्रण है।

सयोग शृङ्गार की अपेक्षा विप्रलम्भ मे श्रृङ्ग की भावाभिव्यक्ति सुन्दर हुई है। अलकारों के प्रयोग के साथ-साथ कवि के इस वर्णन मे भावों की गहराई स्पष्ट है।

तानसेन के विरह सम्बन्धी पदों मे तीव्र वेदना और प्रेम की तन्मयता का परिचय मिलता है। कल्पना की ऊँची उडान और शब्दों के चमत्कार में कवि ने सुन्दर भावों का लोप नहीं होने दिया है। तानसेन के ये पद भाव व्यजना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

निम्नलिखित छद मे कवि ने नायिका की चिन्ता, अभिलाषा और दु:खमय परिस्थिति का वर्णन किया है :—

तन की तपन तब ही मिटेगी मेरी जब प्यारे को दृष्टि भर देखोंगी
जब दरस पाऊ प्राण प्रीतम को जनम जीतन सुफल अपनो लेखोंगी
अष्टयाम मोहि को ध्यान रहत वाको आली को लों भेटोंगी
तानसेन प्रभु कोउ आन मिलावै ताके पावन शीश टेकोंगी ॥[1]

इस पद मे नायिका के दैन्य और मोह भावों की भी अभिव्यजना हो गई है।

प्रिय के सयोग-समय यह ध्यान नहीं रहता कि आगे वियोग भी होगा। अतः वियोग और भी असह्य हो जाता है :—

माई री महा कठिन भई मिल बिछुरे की पीर
घड़ी घडी पल छिन जुग से बीतन लागै नैनन भर भर आवत नीर
जब से प्यारो भयो न्यारो कल ना परत मेरी वीर
तानसेन के प्रभु वेग आवन कीजो जियरा धरत नहीं धीर ॥[2]

उपर्युक्त पद में दैन्य, मोह, विकलता की व्यजना कवि ने सफलता के साथ की है।

नायिका ने जिस प्रेम को साधारण और सहज प्राप्त समझ रखा था उसकी विषमता का अनुभव उसे अब वियोगावस्था में लग रहा है। निद्रा भी डर के कारण पास नहीं फटकती अन्यथा स्वप्न में ही प्रिय के दर्शन हो जाते :—

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १०७

२ „ „ पद सख्या १८१

कठिन माई पी को री नेहरा गेहरा नहि भावै रहों नित उदास
सबन समान मेरे जान आली अरध उरध दोऊ सांस
मोहे जगत रैन चैन नहीं नेनन ताते सपनेहू मे कहा मा भई सुपने नहीं आस
तानसेन प्रभु समझ समझ कियो भोग विलास ॥[1]

निम्नलिखित पद मे तानसेन ने नायिका के विरह को प्रेम का साध्य मान कर चित्रित किया है। प्रस्तुत नायिका इसीलिये विरह-बेलि को नित्य हरा भरा रखना चाहती है। दु:ख का सुख मे पर्यवसित होने का दार्शनिक सिद्धात यही है :—

इन अखियन मन में विरह की बेलि बई
सींच सींच जल असुअन पानी री दिन दिन होत चाह नई
उलहन पातन नए सो बूद पाताल गई
तानसेन प्रभु तुमरे दरस बिन सब तन छीन भई ॥[2]

महाकवि सूरदास के पद 'नैना विरह की बेलि बई' मे भी उक्त भाव व्यक्त हुआ है।

तानसेन ने अपने पदों मे विप्रलभ के अतर्गत भावों के चित्रण मे स्वाभाविक भाव-व्यजना का परिचय दिया है। सचारी भावों के अधिकतर वर्णन बड़े हृदय-द्रावक एव मनोग्राही हैं। ब्रह्म से इनके वर्णन मे विशेषता यह है कि उनके वर्णन नवीन कल्पना, अलकार से जटिल हैं परन्तु तानसेन के वर्णन स्वाभाविक गति को लेकर चलते हैं। ये सरल होते हुए भी मर्मस्पर्शी हैं।

गग की रचनाओं मे विरह के वर्णन मे उच्च कल्पना और सु दर भाव-व्यजना हुई है। गग के वियोग सम्बधी कुछ उदाहरणों का विश्लेषण यहा किया जाता है।

नायिका पूर्ण आशान्वित है कि नायक अधिक से अधिक सध्या तक आ जायगा। वह नायक की प्रतीक्षा मे तीन प्रहर रात बिता देती है। बचा हुआ एक प्रहर भी बीतने पर है। उसके हृदय की ज्वाला इतनी तीव्र हो जाती है कि वक्षः स्थल पर अचल भी नहीं रखा जाता :—

डसन डसत आली वासर वितीत भयो हियो हहरात अति बात न सुहाति है
विरह अगिनि अति अग अग आच बाढी आचर जो छप्यो त्यों त्यों छाती जरी जाति है

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १०३
२ ,, पद सख्या १११

कह कह कुह कुह कोकिला के कुहकत कहा करै गग मेरी कछू न बसाति है
आवन गए है कहि अजहूँ न आए लाल पहरक राति रही सोउ पतराति है ॥[1]

उपर्युक्त छन्द में विषाद और शका, व्याधि, औत्सुक्य सचारी भावों का निर्वाह कवि ने किया है। विरह-व्यथा की विषम और तीव्र अनुभूति उत्कृष्ट रूप मे प्रकट हुई है। यहां पर 'हियो हहरात,' 'पतिराति,' 'आच' आदि शब्द बड़े भावपूर्ण है।

निम्नलिखित छन्द मे कवि ने सहज सुखद वस्तुओं की स्वाभाविक धर्म-विपरीतता का मनोरम चित्रण किया है जो इस समय विरह-अवस्था मे दुःखमय भावों को उद्दीप्त करती है :—

जा दिन ते माधो मधुबन को सिधारे सखि ता दिन से दृगनि दवागिन सी दै गयो
कहि कवि गग अब सब ब्रजवासिन की सोभा और सिंगार सुत सग लाई लै गयो
आछे मन भावने वे विविध बिछावने जे सकल सुहावने डरावने से कै गयो
फूले फूले फूलनि म सेज के दुकूलनि मे कालिंदी के कूलन मे बिसासी बिस बै गयो ॥[2]

इस छद मे कवि ने विषाद, निर्वेद और त्रास सचारी भावों के भी सहज ही में वर्णन कर दिये हैं।

सयोगावस्था में जो नायिका अत्यत मानिनो थी वही वियोगावस्था मे बावलो सी बन जाती है —

अजन मजन तेल तबोल तजे बिलखै बिन हार हियो है
वेंदी ललाट न बेसरि नाक सिंगारिन को मनो मेट कियो है
गग कहै नख ते सिख लों पुनि सेलि को मान समटि दियो है
तेरे चले बिनु मोहन लाल वै मान ठगी जिन जोग लियो है ॥[3]

उक्त छद में 'मानठगी' शब्द से स्पष्ट होता है कि नायिका रूप गर्विता थी किंतु अब उसकी दयनीय दशा है। यहाँ नायिका के वर्णन मे 'निर्वेद' सचारी भाव का प्रभाव स्पष्ट है। विरह की उन्माद दशा का इसमे सुदर चित्रण हुआ है। विरह मे अपनी प्रेम-भावना के उद्दीप्त होने पर नायिका दीनता के साथ उपालम्भ का सहारा लेती हुई नायक की दृढ़ प्रेम-प्रतिष्ठा पर निम्नलिखित आक्षेप करती है :—

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ४२
२ " " छद सख्या ४०
३ " " छद सख्या ३४

कालिंदी के कूल कूल कुजन की छाया मधि कोयल की कूकन करेजा जारियतु है
दौहनी को नाम सुने दूनो दुख होत दई बाँसुरी की सुधि आए आँसू डारियतु है
कहे कवि गग तुम दीनबन्धु दीनानाथ एहो गोपीनाथ जन यों विसारयतु है
गोधन की छाया म छिपाय राखे छाती तर मेह ते बचाय अब नेह मारियतु है ॥१

यहाँ मोह, स्मृति सचारी भावों के चित्ताकर्षक वर्णन हुए हैं। प्रिय की उदासीनता पर उपालम्भ का सकेत बडा ही तीव्र है।

विरहिणी वियोग की अग्नि में प्रति पल जलती जा रही है। वियोग को सीमित समझकर उसने बहुत दिनों तक धैर्य-नीति का पालन किया किन्तु धीरे-धीरे उसे वियाग की असीमता का ज्ञान होने लगा और नैराश्य के महानद मे गोता लगाती हुई उपालभ का छोर पकड कर एक बार फिर प्रेमाकाश में आशा-घन का अवलोकन करती है :—

के बहूँ बिछुर्‌यो न हुतो बिछुरते मिल्यौ बहुर्‌यो न बिसासी
एकहि बार दयो दुख ढारि के नारि करी कृश चन्द कला सी
गग कहे तन मैन दहे अति सुख पिया बिनु लागत गासी
गोकुल जारि उजारि जदुप्पति अब भए हरि वारिध वासी ॥२

कवि ने उपर्युक्त छन्द में विषाद, मोह, आदि भावों के सुन्दर निर्वाह कर दिये हैं।

गग ने इस प्रकार उपालभ का आश्रय लेकर अपनी विरह की भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति की है। इसमें भी मोह, विषाद, निर्वेद, स्मृति आदि सचारी भावों की ओर कवि की दृष्टि स्पष्टतया गई है। उद्दीपन रूप मे कुजों, श्याम बादल, कृष्ण रूप-सौंदर्य आदि का विशेष वर्णन हुआ है।

रहीम ने विप्रलभ-शृगार का वर्णन बरवै और दोहों मे दिया है। बरवै में यह वर्णन बारहमासा की पद्धति पर है किन्तु इनमें बारहों महीने का वर्णन नहीं मिलता। कवि के इस चित्रण में न तो कल्पना की ऊची उडान है और न निरर्थक शब्दों के प्रयोग ही। ये वर्णन स्वाभाविक और भावपूर्ण हैं।

विरहिणी के लिये सावन-भादों के महीने बहुत दुःखदायी होते हैं। मेघों की गर्जन, बिजली की कौंध हृदय को कपा देने वाली होती है। इस समय प्रिय-मिलन की

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ४७

२ " " छद सख्या ३८

इच्छा और तीव्र हो उठती है। उसकी यह वेदना और बढ जाती है जब वह पास ही अपनी सखियों को प्रिय के साथ प्रेम क्रीडा मे निरत देखती है :—

घन घुमडे चहु ओरन चमकत बीज।
पिय प्यारी मिल झूलत सावन तीज ॥[१]

यहा स्मृति सचारी उद्दीपन-विभाव के साथ सुदरता के साथ वर्णित है।

नायिका एक पथिक द्वारा अपने प्रिय के पास विरह सदेश भेज रही है :—

कहियो पथिक सदिसवा गहि के पाय।
मोहन तुम बिन तनकहु रह्यो न जाय ॥[२]

उक्त छद में 'तनकहु' शब्द द्वारा नायिका को आतुरता विशेष तीव्रता से व्यक्त हुई है। उसकी अनन्यता और दैन्य 'गहि के पाय' पद में भली प्रकार से भासित है।

प्रिय के विरह मे नायिका का शारीरिक सुख नहीं है और अपने प्रेम के प्रवाद के फैल जाने से उसकी मानसिक अशान्ति भी नष्ट गई है :—

विरह बढ्यो सखि अगन बढ्यो चवाउ।
कर्यो निठुर नद नदन कौन कुदाव ॥[३]

यहा 'चिन्ता' सचारी का निर्वाह कवि ने सुदर ढग से किया है।

वाह्य-दृश्य जो प्रिय के सयोग में प्रमोदोत्पादक थे वही अब विरह की अवस्था में नायिका के लिये दुःखदायी हो गये हैं :—

बन उपवन गिरि सरिता जिती कठोर।
लगत देह से बिछुरे नद किशोर ॥[४]

स्मृति, मोह, विषाद सचारियों की एक साथ यहा सहज ही अभिव्यक्ति हो गई है।

निम्नलिखित छद में कवि ने विप्रलभ के अतर्गत मोह, विषाद सचारी भावों और अनुभावों के वर्णन किये हैं :—

जब से बिछुरे मितवा कहु कस चैन।
रहत भर्यौ हिय सासन आँसुन नैन ॥[५]

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ६४
२ ,, पृष्ठ ६५
३ ,, पृष्ठ ६५
४ ,, पृष्ठ ६६
५ ,, पृष्ठ ६७

प्रिय के बिछुड जाने से चैन कहा है। इस समय तो सपूर्ण शरीर में दुःख ही दुःख व्याप्त है। हृदय विषाद से भरी हुई सासों और नेत्र आसुओं से ओत-प्रोत हैं। ये दोनों ही वस्तुएँ प्रिय की सुधि को प्रखर करती हैं। विरह की व्यथापूर्ण दशा का बड़ा मर्मस्पर्शी चित्र इन पक्तियों में कवि ने रखा है।

इसी प्रकार कृष्ण की विनोद भरी बातें किसी भी प्रकार नहीं भूलतीं। हृदय चाहे कितना ही कठोर करे परन्तु वे उसको प्रभावित करती ही हैं। इसका तीव्र एव मर्मस्पर्शी वर्णन निम्नलिखित बरवै मे देखिये :—

मनमोहन की सजनी हँसि बतरान
हिय कठोर कीजत पे खटकत आन॥[१]

निम्नलिखित छद मे विरह की जड़ता अवस्था का कवि ने उल्लेख किया है। कृष्ण के चले जाने के बाद प्राण आँखों म आ गये और आँखें एक टक उनकी प्रतीक्षा करती हुई मार्ग म बिछी रहती हैं और न किसी प्रकार की सुधि है और न चेष्टा :—

जब ते मोहन बिछुरे कछु सुधि नाहि।
रहे प्रान परि पलकनि दृग मग माँहि॥[२]

प्रिय के आगमन का मार्ग देखती हुई फाग के अवसर पर विरहिणी प्रेमी-प्रेमिकाओं को क्रीड़ा करते देख अपना हृदय मसोस कर रह जाती है क्योंकि इस आनन्द-उत्सव के अवसर पर उसे काग उडाना पड रहा है। स्वय प्रिय के बिना उत्सव में सम्मिलित नहीं हो सकती :—

लोग लुगाई हिल मिल खेलत फाग।
परयो उडावन मोकों सब दिन काग॥[३]

उक्त छद में स्मृति, औत्सुक्य, विषाद सचारियों का भी निर्वाह हो गया है। इस प्रकार रहीम द्वारा लिखे हुए छोटे छोटे बरवै मधुर भाव से ओत-प्रोत हैं। सरल, स्वाभाविक मर्मस्पर्शी शब्दों द्वारा रहीम ने न केवल बरवै छद को ही एक बड़ा लुभावना रूप दे दिया है वरन् इसमे व्यक्त भावना हृदय के इतने समीप आ जाती है कि वह स्थायी रूप से मन में बैठ जाती है।

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ६८
२ „ „ पृष्ठ ६८
३ „ „ पृष्ठ ७१

दोहों में भी रहीम का विप्रलभ-वर्णन उच्चकोटि का है। निम्नलिखित दोहे में कवि ने स्मृति-सचारी का आश्रय ले कर नायिका की मिलन-अवस्था का परिचय और विरह-स्थिति का उल्लेख एक साथ कर दिया है:—

रहिमन इक दिन वै रहे बीच न सोहत हार
वायु जो ऐसी बह गई बीचन पडे पहार ॥[1]

अलकार द्वारा भी कवि ने विप्रलभ भावों की सुदर अभिव्यक्ति की है :—

विरह रूप घनतम भयो अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा चमकि जात खद्योत ॥[2]

विरह के बीच में अवधि की आशा की उपमा भादों की रात के बीच चमकने वाले खद्योत से देकर यथार्थ भाव का स्पष्टीकरण किया गया है जिससे कि विरह की गहराई और आशा के अस्तित्व दोनों का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार दोहे और बरवै जैसे छोटे छदों मे विरह के उत्कृष्ट भावों की अभिव्यक्ति रहीम के काव्य-कुशलता की परिचायक है।

सक्षेप में अकबरी-दरबार के इन कवियों की विरह व्यजना 'ऊहा' अथवा (अत्युक्ति-पूर्ण-कल्पना) की स्थिति तक नहीं पहुची है। उसमें काव्य की मर्यादा बनी रहती है। इनके उपलब्ध सपूर्ण विप्रलभ के काव्य में गग का केवल एक सवेया ही ऐसा मिलता है जिसमें कवि ने यमुना-जल के काले होने का कारण विरहिणी गोपियों के अजन मिश्रित-आँसुओं का मिलना माना है[3] अन्यथा ऐसे अत्युक्ति-पूर्ण वर्णन का इनके काव्य मे अभाव ही है। रीतिकालीन कवियों की सी झलक इन कवियों की तत्सम्बधी रचनाओं में नहीं मिलती। उसका इन कवियों ने प्रायः निराकरण ही किया है। इनकी विरहिणी

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १६

२ " " पृष्ठ २४

३ जा दिन ते जदुनाथ चले तजि गोकुल को मथुरा गिरिधारी।
ता दिन ते ब्रज नायिका सुदर रपति झपति कपति प्यारी ॥
नैनन ते उनके सरिता भई अजन आँसु चरयो बहि बारी।
गग कहै सुनु शाह अकब्बर ता दिन तें जमुना भई कारी ॥
देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १०५

नायिकाओं की विरह भावना व्यापक न होकर गहरी अवश्य है। बाह्य दृश्यों से उन्होंने अपना अधिक तादात्म्य स्थापित नहीं किया है किन्तु वे अपनी मनोव्यथा को सयत शब्दों में प्रकट करना अच्छी तरह जानती हैं। यह पहले कहा ही जा चुका है कि इन कवियों के शृंगार काव्य में रस की पूर्ण अभिव्यक्ति एक ही स्थल पर नहीं मिलती। विप्रलंभ-शृंगार के अंग-वर्णन में उद्दीपन और सचारियों के ही अधिक प्रयोग छंदों में देखे जाते हैं।

मान-वर्णन

संस्कृत शास्त्रकारों ने मान के दो भेद किये हैं—प्रणयमान और ईर्ष्यामान। नायक और नायिकाओं के हृदय में प्रमाधिक्य होते हुए भी अकारण एक दूसरे के ऊपर कोप से प्रणय-मान और प्रिय की अन्य स्त्री में आसक्ति के कारण ईर्ष्यामान का उद्भव होता है। ईर्ष्यामान नायक द्वारा स्वप्न में अन्य नायिका की बातें बड़बड़ाने अथवा नायक में उसके सभोग-चिह्नों के देखने अथवा नायक के मुख से अचानक किसी दूसरी नायिका के नाम निकल जाने से उत्पन्न होता है।[1]

स्त्री का मानभंग करने के लिये शास्त्र में छः उपायों के निर्देश किये गये हैं :— साम, भेद, दान, नति, उपेक्षा और रसातर। प्रिय-वचन द्वारा मानभंग का उपाय साम, नायिका की सखियों को अपनी ओर मिला लेने को 'भेद', बहाने से आभूषण, वस्त्र आदि के देने को 'दान', नायक का नायिका के पैरों पर गिरने को 'नति', निष्फल होने पर निरुपाय बैठ रहने को 'उपेक्षा' और घबराहट, भय, हर्ष आदि के कारण मानभंग के उपाय को 'रसान्तर' कहा गया है।[2]

---

१ मान कोप स तु द्वेधा प्रणयेर्ष्या समुद्भव। द्वयो प्रणयमान स्यात्प्रमोदे सुमहत्यपि॥१९८॥
प्रेम्ण कुटिल गामित्वात्कोपो य कारण विना। पत्युरन्य प्रिया सग दृष्टेऽथानुमित श्रुते ॥१९९॥
ईर्ष्या माना भवेत्स्त्रीणा तत्र त्वनुमितिस्त्रिधा। उत्स्वप्नायित भोगाक गोत्रस्खलन सभवा ॥२००॥
साहित्य-दर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृष्ठ १५१, १५२

२ साम भेदोऽथ दान च नत्युपेक्षे रसान्तरम्। तद्भगाय पति कुर्यात्षडु पायानिति क्रमात ॥२०१॥
तत्र प्रिय वच साम भेद स्तत्सख्युपार्जनम्। दान व्याजेनभूषादे पादयो पतन नति ॥२०२॥

सयोग-शृङ्गार के अतर्गत 'मान' संचारी रूप मे भी माना गया है। जब यह अनुनय-विनय की अवस्था तक ही रह कर भग हो जाता है तो वह सभोग सचारी के रूप म रहता है। किन्तु यदि वह अनुनय-विनय के बाद तक भी रहता है तो विप्रलभ शृगार के अतर्गत आता है।

प्रस्तुत ग्रथ के कवियो का मान-वर्णन विप्रलभ के अतर्गत ही आयगा क्योकि अनु-नय-विनय के पश्चात् भी मान-भग नही होता वरन् वह ज्यो का त्यों स्थिर रहता है। इन कवियों की रचनाओं मे प्रणय और ईर्ष्या दोनों प्रकार के मान के वर्णन हुए हैं। इन कवियों मे मान का प्रसग केवल ब्रह्म, तानसेन और गग के काव्य मे ही मिलता है।

ब्रह्म के मान सम्बधी छद बहुत न्यून सख्या मे हैं। इनके इस वर्णन मे भाव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति उतनी नहीं जितनी अलकार-योजना और उक्ति-वैचित्र्य मिलती है। ब्रह्म के प्रणयमान और ईर्ष्या-मान दोनों के उदाहरण समान रूप से मिलते है।

निम्नलिखित प्रणयमान के छद म 'साम' उपाय द्वारा मान-भग का प्रयत्न है। कृष्ण क अनेक अनुनय-विनय करने पर भी राधिका का हृदय मुरझाया ही रहता है किन्तु प्रेमाधिक्य के कारण वह कुछ कह नहीं पाती। उसका यह कठोर मान अन्त तक बना रहता है :—

मानवती वृष-भानु सुता मुख माने न माने मनावे हरी
ब्रह्म भने मन-मोहन को मनु मोहति यों मनों चित धरी
गल हाथ दिए सिर नाइ निरखति द्रिष्ट चकार ज्यों कान्ह करी
अरविन्द बिछाइ बिरुधहि निदत मानहु इदुहि निद परी ॥[1]

ईर्ष्या-मान का भी कवि ने एक छद मे वर्णन किया है जिसमें नायिका नायक के सभोग चिह्नों को देखकर अन्य नायिका मे उसकी आसक्ति का शीघ्र अनुमान कर लेती है :—

भली भई भोरहू आए हो मेरे भलो हो जो जानी भली भलाई
ब्रह्म भने चलि देखो धों चलिये हे हरि जू .. . .

सामादौ तु परिक्षीणो स्यादुपेक्षा व धीरणम्। रम सत्रासहर्षादै कोप भ्र शी रसान्तरम् ॥२०३॥
साहित्य-दर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृष्ठ १५३

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ५८

याही ते फूलत फूल गिरे सिर फूलनि फूली सी डार हिलाई
को ललना जिहि लाल किए दृग लाल कहा गई ओठ ललाई ॥[1]

ब्रह्म की रचनाओं मे मान के बहुत उत्कृष्ट उदाहरण नहीं मिलते । कवि ने इस प्रसग का केवल साधारण निर्वाह सा कर दिया है।

तानसेन के पदों मे मान के स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढग पर वर्णन हुए है। इनमें प्रणय और ईर्ष्या दोनों प्रकार के मान के उदाहरण मिलते हैं। इनमें ईर्ष्या मान के पदों की अधिकता है।

निम्नलिखित प्रणयमान के छद मे नायक ने नायिका के मान भग के लिये 'साम' से काम चलता न देख उसकी दूती को अपनी तरफ मिलाकर 'भेद' का आश्रय लिया है :—

जोवन के जोर तोर कैसे समझाय राखू मेरो कह्यो मान प्यारी आज तेरो दाव री
तन मन धन न्याछावर करहुँ बीत गई रैन तासो टूट गयो चाव री
लाल मनावत तू नहि मानत उठ री गवार नार घने समझाव री
तानसेन कहै प्रभु सों तज मान हाल से गवाय लाल फेर पछताव री ॥[2]

निम्नलिखित छद भी प्रणयमान का सुदर उदाहरण है —

आज कहाँ तज बैठी है भूषण ऐसे अग, कछू अरसीले
बोलत बोल रुखाई लिए तुम काहे कुठग किए अहसीले
क्यों न कहो दुख प्राण पिया सो असुअन रहे भर नैन लजीले
तानसेन सुख होवै जिनके तिनके मन भावन छैल छबीले ॥[3]

कवि ने निम्नलिखित छन्द मे मान-भग के लिये 'साम' और 'भेद' उपाय की निष्फलता दिखाते हुए 'नति' उपाय-ग्रहण का स्पष्ट उल्लेख किया है :—

है यह मानिनी मनायबे को अति ही हुलास जिय मनहु न माने पिय कैसेक मनाइए
बहोत ही सौंह दई उठ चल फिर प्यारी वाके पाय पर धरि सीस नवाइए

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ७३

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १००

३ ,, ,, पद सख्या ९८

माने न मनायो नेक रचपच हारी कैसे कर वाको समझाइए
तानसेन प्रभु प्यारे आप नेक चलिए वल पायन मे सिर नाय बिनती कराइए ॥[1]

निम्नलिखित छन्द मे नायिका नायक के सभोग चिह्नों को देखकर तुरन्त ही मान कर बैठती है :—

मोसों ज्यां अवध बद गए साझ को यह आए भोर भए
ऐसो को चतुर सुघर नार जिन तुम बिरमाए ऐसे सुख दए
अधरन अजन कहु पीक पलक लीक और न सो चित हित बहु भाँतिन लए
तानसेन के प्रभु वहाँ ही पाँव धारो ए जहाँ किए नेह नए ॥[2]

उक्त छन्द ईर्ष्यामान का उदाहरण है ।

गग ने अपनी रचनाओं मे प्रणयमान का ही विशेष रूप से वर्णन किया है। ईर्ष्यामान के छन्दों का प्राय. अभाव ही है ।

निम्नलिखित कवित्त में कवि ने प्रणयमान के भग के लिये 'भेद' उपाय का आश्रय लिया है जिसमें दूती ने अनेक उपायों से मानिनी का मान-भंग करने का प्रयत्न किया है ,—

चकई विछूर मिली तू न मिली प्रीतम सों गग कवि कहै ये तो कियो मान ठान री
अथये नक्षत्र ससि अथई न तेरी रिस तू न परसन परसन भयो भान री
तू न खोली मुख खोलो कज औ गुलाब मुख चली सीरीवाय तू न चली भो विहान री
राति सब घटी नाही करनी घटी तेरी दीपक मलीन ना मलीन तेरो मान री ॥[3]

ऊपर के कवित्त में मान वर्णन के साथ ही प्रभात का भी मनोरम वर्णन हो गया है। इसी प्रकार नायक ने नायिका की सखी द्वारा मानभग के लिये 'भेद' उपाय को ग्रहण किया है :—

बोलि हारी कोयल बुलाइ हारे प्यारे लाल मारि हारयो मदन मनाइ हारे मानई
कहि कवि गग ऐसे प्रिय सों वियोग मोही सखी सो उदेगु सब एक ही बआ गई

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९७
२ ,, ,, पद सख्या ११६
३ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ६८

मानिनी मनायो नेकु समुझि अयानी आली जो पे जी की ऐसी ही तो नीको काहे को भई
कोउ एक ऐसो होय मेरो ज्यों तो मे देह खीर सी खुराई गति जाति है दई दई ॥[1]

कृष्ण ने राधिका के मान-भ ग के लिये 'भेद' का आश्रय लिया किन्तु वह मान-भग में प्रयत्नशील दूती से भी मान कर बैठती है :—

काहे को सतरि होत वो दिना सभारि देखो सीरे सीरे कमल कहू ते नीन लावती
कहे कवि ग ग तेरी हितू तो हजार है है विरह की वेर पीर हां ही काम आवती
अनिल के हरत दुकुल देत दिस निस पति घसि घसि चारु चन्दन चढावती
उनसों तो मान कीजे मोसो कत मौन हूजै रूठ करे राधिका जो हों ही न जिआवती ॥[2]

इसमें सखी के प्रति मान स्पष्ट हुआ है। नायक के प्रति मान का भाव स्पष्ट नहीं है व्यग्य ही है। मान दूर करने के लिये यथार्थ प्रेम आवश्यक होता है। इसका चित्रण ग ग के निम्नलिखित छन्द में किया गया है। सहृदया नायिका पर 'नति' उपाय काम करता है और नायक के सदेश और स्वय आकर बेठ जाने पर मान का भाव अपने आप ही मिट जाता है :—

में तब उत्तर दीनो हुतो जब दूती दु तीन बुलावन आई
ग ग सुतो मन मोहन आन अचानक बैठि रह्यो ढिग बाई
मैं कहुँ धोखे निहारयो उते उनमें छवि काम की कोटिक पाई
मान को त्याग न नेकु रह्यो सब आग चल्यो ढरि राग की नाईं ॥[3]

उक्त छन्द मे कवि ने मान-भङ्ग के 'नति' आश्रय का वर्णन किया है। गग के उक्त मान वर्णन में भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। कहीं कहीं पर इसके सहारे वाह्य दृश्यों विशेष कर प्रकृति के वर्णन भी आ गये हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत कवियों में केवल बीरबल, तानसेन और ग ग की मान सम्बन्धी रचना उपलब्ध होती है, नरहरि और रहीम की नहीं। जैसा पहले कहा जा चुका है, मान के दोनों भेद ईर्ष्या और प्रणय इनके काव्य में वर्णित हैं। मान-भङ्ग के उपायों में केवल 'साम', 'भेद', 'नति' के ही वर्णन इन कवियों ने किये

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ७०
२ „ छद सख्या ६७
३ „ छद सख्या १७९

हैं। तानसेन और ग ग की अपेक्षा ब्रह्म के मान सम्बन्धी छन्दों मे भावों की अभिव्यक्ति अलङ्कारों के सहारे अधिक हुई है। इस मे सुदर भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से ग ग की रचना जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ब्रह्म और तानसेन की नहीं।

नायिका भेद

सस्कृत के आचार्यों ने नायिका भेद पर विस्तारपूर्वक तथा वैज्ञानिक ढग से विचार किया है। डॉ० रामप्रसाद त्रिपाठी ने नायक नायिका भेद के मूल भाव को स्पष्ट करते हुए लिखा है -'स्नेह, रति, प्रेमादि के द्वारा इष्ट के प्राप्त करने का सिद्धात बहुव्यापक हो गया था। दाम्पत्य भाव की प्रधानता वैष्णवों में तो थी ही साथ ही अन्य मत वाले भी उसका सम्मान करते थे। जिस समय साहित्यकारों ने इस ओर अपना ध्यान दिया तो वे साहित्य के तत्कालीन शास्त्रसम्मत गुणावगुणों की दृष्टि से उसका सस्कार करने लगे। प्रेम, दाम्पत्य अथवा मिथुन-भाव से प्रेरित होकर मानसिक ससार में जो सकल्प विकल्प और अनुभूतियां अथवा विकार उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं, उसका निरूपण और उनकी व्याख्या सूक्ष्म एव स्थूल रूप में होने लगी। रस, भाव, अनुभाव, विभाव आदि का अध्ययन देश काल और पात्र के अनुसार होने लगा। अवस्था और व्यवस्था से जो परिवर्तन होते रहते हैं, उनका मनोवैज्ञानिक और साहित्यिक विश्लेषण किया जाने लगा।'[१] नायिकाओं की वाह्य और आभ्यन्तर रूपों के मनोरम चित्र सस्कृत में देखने को मिलते हैं। स्वकीया, परकीया, सामान्या के विविध भेद और उपभेद, मानसिक अवस्था के अनुसार दस प्रकार की नायिकाओं के वर्णन और इनके अतर्गत, समस्त प्रकार की नायिकाओं के विभाजन तथा उत्तमा, मध्यमा, अधमा प्रकार की नायिकाओं के शास्त्रीय विवेचन आचार्यों ने किये हैं।

अकबरकालीन सुखमय स्थिति में कवियों को सस्कृत काव्य-शास्त्रों के अध्ययन का विशेष अवसर था। फलस्वरूप दरबार के वैभव और विलास में सस्कृत की शृगारिक रचनाओं को भी प्रश्रय मिला और दरबार के कई कवियों ने लोगों के मनोरजनार्थ नारी-सौंदर्य के अन्तर्गत प्रेम की विविध क्रीड़ाओं, सयोग वियोग शृ गार की अनेक अवस्थाओं के वर्णनों द्वारा अपनी कला प्रदर्शित की। अतएव इस चित्रण में ही नाना प्रकार की नायिकाओं के वर्णन स्वतः उनके काव्य में आ गये हैं।

---

१ ब्रजभाषा साहित्य का नायिका-भेद, भूमिका, पृष्ठ ६

अकबरी दरबार के प्रस्तुत हिन्दी कवियों ने विविध नायिकाओं के चित्ताकर्षक, सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत किये हैं। रहीम के अतिरिक्त शेष कवियों की दृष्टि नायिकाओं के शास्त्रीय वर्गीकरण की ओर नहीं थी। उनकी शृंगारिक रचनाओं में नायिकाओं के उदाहरण स्वतः ही मिलते हैं। रहीम ने अवश्य अपनी रचना 'बरवै नायिका-भेद' में नायिकाओं का शास्त्रीय वर्गीकरण किया है। अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट, शठ नायकों के उदाहरण भी बरवै छन्द में दिये गये हैं। उपपति तथा वैसिक, प्रोषित, मानी, वचन-चतुर, क्रिया-चतुर नायक के भी वर्णन उक्त ग्रन्थ में मिलते हैं। रहीम के उन उदाहरणों के साथ साथ हिन्दी के प्रसिद्ध रीतिकालीन कवि मतिराम कृत दोहे लक्षण रूप मे दिये हुए हैं जिसका उल्लेख तीसरे अध्याय में किया जा चुका है। मानसिक अवस्थानुसार नायिका-भेद मे प्रोषितपतिका, प्रवत्स्यत्पतिका, खडिता, वासकसज्जा आदि के विशेष वर्णन इन कवियों की रचनाओ में मिलते हैं। प्रत्येक स्वकीया तथा परकीया नायिका के चित्रण में सुन्दर भावों तथा मनोवैज्ञानिक तथ्यो का भी निर्वाह किया गया है।

नरहरि की दृष्टि नायिका-भेद-वर्णन की ओर नहीं थी किन्तु प्रसगवश कई नायिकाओं के वर्णन उनकी रचनाओं में आ गये हैं।

'प्रोषितपतिका' वर्षा के आगमन पर प्रिय के विरह मे व्याकुल हो उठती है। सखी से अपने दुःख को प्रकट करती हुई वह कहती है :—

> आवहि पथिक पेष्षि घन आगम राग मलार सुणत मन बाढ
> अद्रा नृपति पूजा ग्रह सचित जपित प्रेम परस्पर गाढ
> नरहरि बुन्द बिन्दु विनोद बसुन्धर हरि बिनु सषि विरहानल डाढ
> पशु जीवहि जिय जाति जितहि तित सब कह मिलन अवधु असाढ ॥[1]

सीता के चरित्र में कवि ने 'स्वकीया' नायिका के प्रेम का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

> कबहुँ घामु कबहुँ जलु चलि सुपत्थ कइ ाडे सदनह
> तजि सुपट्ट पहिरति तखबकल पग कटक कुहु सोच हदनह
> नरहरि फिरति निकुज साम सघ जिनके रूप अचिरुज्ज मदनह
> त दिन दुष नहि गनति सीय मन जब देषति रघुनदन बदनह ॥[2]

---

१ देखिये, नरहरि का बारहमासा, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १

२ „ „ „ छद सख्या ४०

ब्रह्म की रचनाओं में भी प्रसगवश ही नायिकाओं के कुछ सुन्दर चित्र आ गये हैं। इस ओर कवि का कोई विशेष प्रयास ज्ञात नहीं होता।

नायिकाओं मे कवि ने ऊढा, अनूढा, मुग्धा, प्रौढा तथा उनकी मानसिक अवस्था के अनुसार विभाजित वासकसज्जा, खडिता, प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषितपतिका आदि के ही विशेष रूप से वर्णन किये हैं।

ज्ञातयौवना मुग्धा नायिका की मानसिक और शारीरिक स्थिति का परिचय निम्नलिखित छद मे देखिये :—

खेलत सग कुमारिन के सुकुमारि कछू सकुची मन माहीं
काम कला प्रगटी अग अग विलोकि बिलोकि हसे परछाहीं
ब्रह्म भनै न रहै उर अचल ले छिन ही छिन चपति बाहीं
डारति है शिव के सिर अबर मानौ दिगम्बर राखत नाहीं ॥[1]

यहाँ नायिका की स्वाभाविक क्रीडा और मनोदशा के सुन्दर वर्णन हुए हैं।

'अनूढा' की विचित्र मानसिक दशा का चित्रण निम्नलिखित छद में हुआ है। कृष्ण की रूप ठगोरी के कारण उसे घर के भीतर और बाहर सभी से वैर करना पडता है। फिर भी लज्जा और घूघट का निवारण ही उसके लिये श्रेयस्कर है :—

मेरी सी आँखिन मेरो सौ ज्यों करि जो विलोके हीयो गहि गाढौ
आयौ री आयौ चितै किन देखै वहै चित चोर चितौत ह्वै ठाढौ
ब्रह्म भनै मन लाल को भो घर बाहरि वैरि को वारिध बाढौ
यहै मुख देखि कहै घरिहाई री लाज करै अरु घूघट काढौ ॥[2]

विक्षिप्त दशा मे कभी-कभी 'अनूढा' भी 'ऊढा' का सा कार्य-व्यापार करने लगती है। एक 'ऊढा' परकीया नायिका की उक्ति निम्नलिखित सवैये में देखिये :—

मात पिता पति पेखत ही अहो को प्रति लोम नहीं पुलकी
नद लला लहि मैन मलाकनि कौने धौं कामकला तुलकी
ब्रह्म भनै केहि केहि न लागी ठगोरी हो मूरति मजुल की
सखी मोही न मोहन को मुख देखि जु ऐसी धो गोकुल के कुल की ॥[3]

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९५
२ ,, ,, ,, ,, ३७
३ ,, ,, ,, ,, ४१

निम्नलिखित छद में कवि ने राधा के वासकसज्जा-रूप का वर्णन किया है:—

एक समय वृषभान सुता परभात ही काम की केलि बनाई
नैननि की लखि आरति कीरति मोतिन माल सुहाई
बेंदी जराव लिलाट दिये गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई
ब्रह्म भनै रिपु जानि गह्यो रवि की मुसके जनु राहु चढाई ॥१

'प्रवत्स्यत्पतिका' नायिका का रूप भी कवि ने प्रस्तुत किया है —

जब मेरो दाहिनो नयन फरकि उठ्यो उठी अकुलाइ करि तब ही ते तुकी सी
बात के सुनत गात अति राते भये तातो भयो तनु मानो आगि दीनी फूक सी
ब्रज भयो वारिधि सो वास भयो बडवा सो ब्रह्म के वियोग तें विधी सी उठी हूक सी
हाय हाय हाय रे बलाय कहूँ कहाँ हूतै कूर अकरुर ते तो छाती दीनी छाकि सी ॥२

निम्नलिखित छन्द में 'सामान्या' नायिका का ही वर्णन ज्ञात होता है क्योंकि उसने अपना शृगार अपने प्रिय विशेष के लिये न कर सर्वसाधारण की दृष्टि हेतु किया है। सब के समक्ष उसके अगों के तोड़-मरोड से भी यही आभास मिलता है :—

गोरे से गात फुलेल चुचात भरी अंगीया रग केसरि बोरे
वेनी बडी अरु छोटी सी आपु छई छवि सो गुदना मुख गोरे
नैननि की अरुनाई कह कहौ अजन दै दृग खजन जोरे
ब्रह्म भनै यह को ही तिया जु चली गई आगन आग मरोरे ॥[3]

तानसेन ने अपने पदों मे कई प्रकार की नायिकाओं से सबद्ध भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। उनकी इस व्यजना मे कल्पना-वैचित्र्य का भी समन्वय हुआ है।

'प्रोषितपतिका' नायिका को प्रिय का विरह अब असह्य हो उठा है। उसके आवेगों के कवि ने निम्नलिखित छन्द में सुन्दर चित्रण किये हैं :—

वा दिन केवल बलि जैए री जा दिन पीतम ते होय मिलन
तन मन धन नोछावर करहूँ चरण कमल पावडे बिछाउगी नयन पलन

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ३२
२ ,, ,, छद सख्या ९६
३ ,, ,, छद सख्या ३५

अनेक दिनन मे प्यारे मोहि मिलिहैं लेऊँगी बलिया दोउ करन
तानसेन के प्रभु सुधा की दृष्टि करि मोर मुटकी हलन ॥[1]

निम्नलिखित छद मे 'खडिता' नायिका की उक्ति भी मनोरम है :—

बरसाने ते आए अरसाने हम जाने जू लक्षण तिहारे पहचाने
कहुँ कज्जर कहूँ पीक लीक अनमन स्वभाव न मोपै जात बखाने
नयनन नींद ध्यान मन हृदय बसत तीय ताही के लगत गुण गाने
धन्य तेरो नेह तानसेन के प्रभु ऐसे नटनागर को छलकर नाच नचाने ॥[2]

प्रेमगर्विता 'स्वकीया' नायिका ने स्वय अपने मुख से प्रिय के मिलन पर आनन्द प्रकट किया है, देखिये :—

धन भाग मेरो धन आवन धन धन पति प्रेम भयो मन दरस देखत इन
अखियन सो इन इन अग सग ते विरह गयो टर
इन आनन्दन बादी भइ हौं बन चरनन रहन कहत गर बगर अगसर
जनम जीतब सुफल सखी मदन मोहन मया कीनी लीनी रस बस कर
तानसेन प्रभु सुख के ऐन नैनन सैनन हाव भाव कटाछन सों मोह लीनी
जब मिट्यो दुख डर ॥[3]

'परकीया' नायिका के नाट्य का एक चित्र तानसेन ने निम्नलिखित पद में प्रस्तुत किया है :—

अहो टेटी पागरि नागरि नारि सीस धरे जेसे टेटी पाग को राखे रहतु चिकनीया
ढुरि ढुरि मुरि मुरि बतीया करति अगली पछिलान सो दोऊ करतारो मारति एकनि सों
नैन से नव बनीया
लाही को लहगा पचरग चूनरि कठ छरा और ताबीच मनीया
तानसेन प्रभु रीझि चकित भए तुही सबनि में धनि धनीया ॥[4]

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १२३
२ „ „ „ „ पद सख्या १३१
३ „ „ „ „ पद सख्या १३२
४ „ „ „ „ पद सख्या ९०

मध्या-नायिका के 'प्रोषितपतिका' रूप के चित्रण में कवि ने भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है :—

ए सखी नन्दकुमार बालापन मे मेरो मन हर लीनो
जिय अकुलात और नैनन सों नीर जात मेरे हिय को दुख दीनो
सावरो सलोनो श्याम बाट रोक ठाढो भयो मोको बुलाय पास अधरन को रस लीनो
नैन सों नैन मिलाय हृदय सों हृदय लगाय तानसेन बशी बजाय जादू सो कीनो ॥[1]

'वासकसज्जा' नायिका का भी वर्णन कवि ने एक छन्द में कर दिया है —

एक कर दर्पण एक कर कजरा अचरा गहे सुधारत
ललना एक काजल से दूर करन उठत मोर मुख कमल परत सीस फूल अति विराजत
नगन जडत की उपमा जीय यह पै मेरे जान वेऊ दूर रहे सकुचन लाजत
जे कहियत है माना पुन दुरत ही तानसेन देखत दुख भाजत ॥[2]

तानसेन ने अधिकतर 'खडिता' नायिका के ही चित्र प्रस्तुत किये हैं। बीच-बीच मे अन्य प्रकार की नायिकाओं के भी वर्णन हो गये हैं। स्वकीया, परकीया, सामान्या मे भी परकीया नायिकाओं की ओर ही कवि का ध्यान अधिक ज्ञात होता है। परकीया की ही विविध अवस्थाओं के चित्रण कवि ने किये हैं जो ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट होता है।

गग ने नायिकाओ के वर्णन मे अपनी काव्य-कुशलता का परिचय दिया है। इनमें स्वकीया और परकीया के ही चित्रण अधिक हुए हैं। कवि का निम्नलिखित प्रसिद्ध छन्द 'प्रवत्स्यत्पतिका' प्रौढा नायिका का सुन्दर उदाहरण है :—

बैठी ही सखिन मध्य पिय का गवन सुन्यो सुख के समूह मे वियोग आग भरकी
गग कहै त्रिविध सुगन्ध लै पवन बहै लौ लागत ही ताको तन भई विथा जुरकी
प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पइ लागत ही औरे गति भई मानसर की
जलचर जरे और सेवार जरि छार भयो जल जरि गयो सूख्यो पक भूमि दरकी॥[3]

अतिम पक्ति मे कवि ने प्राकृतिक तथ्य का मनोरम चित्र भी प्रस्तुत किया है। जल के अत्युष्ण होने से मीनादि जलचरों का विनाश, जल के समीप घास फूस का झुलस

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १०८

२ ,, ,, ,, पद सख्या ७७

३ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ५९

आना, पक का सूख जाना, साथ ही स्थान-स्थान पर दरारे निकल आना स्वाभाविक ही है।

निम्नलिखित कवित्त मे कवि ने 'स्वकीया' मध्या नायिका का वर्णन किया है। इसमे काम और लज्जा समान रूप मे द्रष्टव्य है :—

प्यारे लाल जिनमे है मोल को न थाह पै अथाह कुल कानि के समुद्र परिहारी हैं
भौहनि भवर मध्य तरि निकसत याते महाबली घूघट ते टरति न टारी हैं
पूतरी मलाह जुग जाने कवि गग जिय आने नहीं पैहै नेम देखे मतवारी हैं
खेइबो कटाछ बानन को होत कैसे लाज भरी अखियाँ जहाज हू ते भारी हैं ॥[1]

गग ने 'प्रोषितपतिका' नायिका के कई चित्र प्रस्तुत किये हैं। इनमे से एक का अवलोकन कीजिये :—

तुम बिन सूनी राति कारी सापिनी ह्वै खाति रीती सेज देखे वाकी छाती उमगति है
हा हा नेकु जाइ लेहु कह्यो है तिहारो नेह कोई ह्वै देखाइ देहु डोरी ज्यों जरति है
कहै कवि गग कान्ह विकल इते मान नाज की कनाई जैसे करेजे खगति है
कोइल अलग डार बोलत उ हारी लगे डहडही जोन्ह जा मे डास सी लगति है ॥[2]

निम्नलिखित छन्द में कवि ने 'नवोढा' मुग्धा नायिका का स्वाभाविक वर्णन किया है :—

चाल न जानत चचलता चुनरी चहु खूब बनी अति राती
चदन खोर खुनाव की बेंदी नवेली तिया सब सग सगाती
सेज को नाम लिये सकुचे कवि गग कहै न कही छवि जाती
सोने से गात सलोने से नैन अनूठे से ओठ अछूती सी छाती॥[3]

'मुग्धा' नायिका की 'वय'सन्धि' की दशा का एक चित्र देखिये:—
झिरहरे जल जैसे दुरे ह्वै कमल कली तैसे उरजन उर दई है दिखाई सी
गग कहै साफ सी सुहाई वैसे पेस आई तरुनाई लरिकाई मैं न लखि पाई सी

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १८०
२ „ „ छद सख्या ६०
३ „ „ छंद सख्या ७१

स्यामा को सलोनो नन तामें दिना चारक मैं फिरथोई चहत मनमथ की दुहाई सी
सीसी में सलिल जैसे सुमन पराग तैसे सिसुता में झलमलात यौवन की झाईं सी ॥[1]

कवि गग के उपर्युक्त छदों से स्पष्ट है की नायिकाओं की विविध अवस्थाओं के सौंदर्य और उनकी *मानसिक* दशा के उसने विशद वर्णन किये हैं।

रहीम ने नायिकाओं का शास्त्रीय वर्गीकरण अपने प्रसिद्ध ग्रथ 'बरवै नायिका-भेद' में किया है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। पुस्तक में कवि ने आद्योपात उदारण ही दिये हैं, लक्षण नहीं। इसलिये पाठक उन्हे पाकर विभोर हो भावमग्न हो जाता है। एक दो बरवों में ही नायिका का सपूर्ण चित्र नेत्रों के सम्मुख आ जाता है। कवि ने इनके चित्रण में *आवश्यक कल्पना का भी आश्रय लिया है। नायिका की* मनोदशा के साथ विभाव, अनुभाव, सात्विक वृत्तियों आदि के चित्रण का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है।

रहीम ने इस ग्रथ में स्वकीया का विभाजन मुग्धा-ज्ञातयौवना, अज्ञातयौवना, नवोढा, विश्रब्ध नवोढा, और प्रौढा, परकीया का विभाजन ऊढा और अनूढा मे किया है। परकीया के छ भेद *गुप्ता लक्षण* जिसके *अतर्गत* भूतसुरति-गोपना, *भविष्य सुरति-*गोपना, विदग्धा लक्षण जिसके अतर्गत वचन-विदग्धा, क्रिया विदग्धा, लक्षिता जिसके अतर्गत प्रथम अनुसयना, द्वितीय अनुसयना, मुदिता और कुल्टा के रूप भी दिये गये हैं। गणिका, अन्य सभोगदु खिता, प्रेम-गर्विता, रूप-गर्विता नायिकाओं के भी उदाहरण आये हैं। फिर दसविधि नायिका के अनुसार प्रोषितपतिका मुग्धा, मध्या प्रौढा, खडिता-मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया खडिता, सामान्या खडिता, कलहातरिता मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया कलहांतरिता, सामन्या कलहातरिता, विप्रलब्धा मुग्धा, प्रौढा परकीया विप्रलब्धा, सामान्या, विप्रलब्धा, उत्कठिता मुग्धा, परकीया कठिता, सामान्य उत्कठिता, वासकसज्जा-मुग्धा मध्या, प्रौढा, परकीया वासकसज्जा, सामान्य वासकसज्जा, स्वाधीन पतिका, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्प्रेयसी आगतपतिका का विभाजन-मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया, सामान्या रूपों मे भी किया गया है। अभिसारिका के अन्तर्गत शुक्ला-भिसारिका, दिवाभिसारिका के उदाहरण आये हैं। उत्तमा, मध्यमा, अधमा त्रिविध नायिकाओं के भी उदाहरण दिये गये हैं। *त्रिविध नायक* में पति के अतर्गत अनुकूल,

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ७५

दक्षिण, धृष्ठ,शठ, उपपति तथा वैसिक के वर्णन हुए हैं। प्रोषित, मानी, वचन-चतुर, क्रिया चतुर नायकों के भी उदाहरण आये हैं।

रहीम द्वारा वर्णित नायिकाओं के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। 'स्वकीया' मुग्धा की रूप माधुरी निम्नलिखित बरवों में अवलोकनीय है

लहरत लहर लहरिया लहर बहार
मोतिन जरी किनरिया बिथुरे बार
लागेउ आन नवेलिअहिं मनसिज बान
उकसनु लागु उरुजवा दृग तिरछान ॥[1]

'ऊढा' नायिका कृष्ण की मुरली माधुरी और उसकी छवि पर मुग्ध है :—

निस दिन सासु ननदिया मोहि घर घेरु।
सुनन न देत मुरलिया ना धुन टेरु ॥[2]

'भूत-सुरति-गोपना' नायिका ने चतुरता से अपनी सुरति को छिपाने का भी वर्णन किया है :—

चूनत फूल गुलबवा डार कटील ।
टुटिगौ बन्द अगिअवा फटु पट नील ॥[3]

परकीया 'कुलटा' का वर्णन भी स्वाभाविक है :—

जस मद मातिल हथिआ हुमकत जाय
चितवति छैल तरुनिआ मुहु मुसक्याय
चितवनि ऊँच अटरिया दाहिन बाम
लाखन लखन विदेसिया ह्वै बस काम ॥[4]

'शुक्लाभिसारिका' नायिका ने शुभ्रज्योत्सना में अपने अस्तित्व को छिपाने के लिये श्वेत पुष्प, श्वेत मोतियों के आभूषण आदि पहन रखे हैं :—

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ४१

२ „ „ पृष्ठ ४३

२ „ „ पृष्ठ ४४

३ „ „ पृष्ठ ४७

सेत कुसुम के हरवा भूषन सेत।
चली रैनि उजिअरिया पिय के हेत ॥[४]

'क्रिया-चतुर-नायक' का एक चित्र देखिये '—

खेलत जानेसि टोलिया नदकिसोर ।
हुई बृषभानु कुमरिआ भैगा चोर ॥[५]

वासकसज्जा का निम्नलिखित उदाहरण मिलता है :—

हरुए गवन नेवैलिअहिं दीठि बचाय ।
पौढी जाय पलगिया सेज बिछाय ॥[६]

'बरवै-नायिका-भेद' के अतिरिक्त अपनी फुटकर रचनाओं में भी रहीम ने कई नायिकाओं के वर्णन किये हैं।

एक पद म रहीम ने 'प्रोषितपातिका' नायिका की विरह-विकलता का चित्रण किया है .—

कमल दल नैननि की उनमानि
बिसरत नाहि सखी मो मन ते मद मद मुसुकानि
यह दसनन दुति चपलाहू ते महा चपल चमकानि
सुधा की बस करी मधुरता सुधापगी बतरानि
चढी रहे चित उर बिसाल की मुकुतमाल थहरानि
नृत्य साथ पीताबरहू की फहरि फहरि फहरानि
अनुदिन श्री बृदावन ब्रज ते आवन आवन जानि
अब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की वानि ॥[१]

शरत्ऋतु की मध्य-रात्रि में ज्योत्स्ना इठलाती हुई अपनी अपार राशि का आस्वादन करा रही थी कि ऐसे ही समय में कृष्ण ने सघन बन मे निकुज के बीच

---

४ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ५५
५ ,, ,, पृष्ठ ६१
६ ,, ,, पृष्ठ ५३
१ ,, ,, पृष्ठ ७९

कामोद्दीपक वंशी की तान छेड़ दी। उसे सुनते ही ऊढा परकीया नायिकाओं की क्या दशा हुई उसका चित्रण कवि ने निम्नलिखित छंद में किया है :—

शरद निशि निशीथे चांद की रोशनाई
सघन वन निकुंज कान्ह वंशी बजाई
रति पति सुत निद्रा साइयां छोड़ भागी
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी ॥[1]

'ऊढा' नायिका नायक में इतनी अनुरक्त है कि वह अपनी ननद, जिठानी आदि सभी को तिरस्कृत कर देती है :—

मो जिय कौरी सिगरी ननद जिठानि।
भई स्याम सौं तब ते तनक पिछानि ॥[2]

प्रवत्स्यत्-प्रेयसी नायिका प्रिय से कहती है :—

उमडि उमडि घन घुमडे दिसि विदिसान।
सावन दिन मन भावन करत पयान ॥[3]

इस प्रकार इन कवियों में केवल रहीम ने ही नायिका-भेद का संपूर्ण वर्णन शास्त्रीय-पद्धति के अनुसार किया है। ब्रह्म, गंग आदि ने इस सम्बंध में केवल कुछ फुट-कर छंद ही लिखे हैं जिनमे नायिकाओं की विविध अवस्थाओं के ही विशेष वर्णन हैं। इनमें भी प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषितपतिका, खंडिता आदि के ही अधिक चित्रण आये हैं। वासकसज्जा, अभिसारिका, कलहांतरिता के केवल एक-दो उदाहरण मिलते हैं।

नायिका-भेद के अंतर्गत विविध प्रकार की मनोवृत्तियों वाले स्त्री-पुरुषों की विशेषताओं को स्पष्ट करके उनका मनोवैज्ञानिक आधारों पर वर्णन दिया गया है। स्त्री-पुरुषों का इस रूप में वर्णन संसार के सभी साहित्यों में हुआ है। भारतीय साहित्य की विशेषता इस बात में है कि उसका वैज्ञानिक विवेचन कर उसका वर्गीकरण काव्य-शास्त्र तथा नायिका-भेद के ग्रंथो में किया गया है और इस दृष्टि से इसका महत्त्व और भी बढ जाता है। हरिऔध जी ने अपने 'रस-कलश' की भूमिका में इसी भाव को व्यक्त

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७३
२ ,, पृष्ठ ७१
३ ,, पृष्ठ ६४

करते हुए लिखा है—'नायिका-भेद के मूल में जो सत्य है, वास्तविक बात यह है कि सार्वभौम एवं सार्वकालिक है। उसके भीतर वे स्वाभाविक मानवी भाव सदा मौजूद रहते हैं, जो व्यापक और सर्वदेशी हैं, इसलिए उसकी अभिव्यक्ति विश्व भर में अज्ञात रूप से यथाकाल और यथावसर होती रहती है। यह मगलमयी प्रकृति का वह गुप्त विधान है कि जिससे ससार सस्कृति सूत्र स्वत. परिचालित होता रहता है। मेरा विचार है, नाट्य-शास्त्रकार ने उसको वैज्ञानिक रीति से विधि बद्ध करके साहित्य की शोभा ही नहीं बढ़ाई है, लोकहित साधन का भी आयोजन किया है।'[1]

भक्ति-काव्य

अकबरकालीन धार्मिक परिस्थिति के प्रसग में पहले कहा जा चुका है कि भक्ति के युग में दरबार के बाहर कई श्रेष्ठ भक्त कवि भक्ति-भावनाओं का प्रचार कर रहे थे जिसका प्रभाव दरबार पर पड़े बिना न रहा। इसके साथ अकबर की ज्ञान और भक्ति सम्बन्धी जिज्ञासा तथा इबादतखाने (प्रार्थनागृह) के धार्मिक वादविवादों का भी यथेष्ट प्रभाव दरबार के कवियों पर पड़ा था। शृगारिक तथा विलासमय वातावरण होते हुए भी उक्त विशेषता के कारण ही दरबार के इन हिन्दी-कवियों-नरहरि, ब्रह्म, तानसेन आदि ने अपनी रचनाओं में राधा, कृष्ण, राम, शिव तथा अन्य देवताओं को आलम्बन मानकर भक्ति भाव का प्रकाशन किया है। इनके काव्य में ईश्वर की निर्गुणोपासना सम्बधी छद तथा सगुण-भक्ति भरे गान दोनों मिलते हैं। इन्होंने भक्ति की जिन भावनाओं को अपनाया है उनमें उनकी तन्मयता, तल्लीनता तथा ईश्वर में अटल विश्वास की झलक मिलती है।

नरहरि की रचनाओं में भक्ति-रस की गभीरता का वह रूप नहीं मिलता जो कि यथार्थ में भक्त कवियों में पाया जाता है परन्तु इस भाव के छींटे उनकी अनेक कवित्वपूर्ण रचनाओं में स्पष्ट लक्षित होते हैं। यह कहा जा सकता है कि कवि द्वारा भक्ति परम्परागत एक भाव रूप में ग्रहण की गई है जैसा कि निम्नलिखित कवित्त में स्पष्ट है.—

चोटी गहि द्रोपदी निझोरिबे को ठाढ़ी कीन्हीं कोपि कह्यो सुमिरि सहाय कौन करिहै
लैनि पावे उसासि न दुसासनि पै दीन ह्वै पुकारी कहूँ दीनबन्धु हरिहै
गुरुजन पुरजन देखत तमासो सब नरहरि कोउ न करत धरहरिहै
ऐसे में अनाथनि की कोन सुध लैहै मोरपच्छ धरिहै सो मोर पच्छ धरिहै॥[2]

---

१ रसकलश, भूमिका, पृष्ठ १२५

२ देखियें, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १२७

यहाँ पर कवि ने आर्त-जनों की रक्षा करने वाले ईश्वर के रूप का दिग्दर्शन कराया है। इस भाव का मुख्य आधार पौराणिक कथा है, कवि की निजी अनुभूति नहीं। इसी प्रकार कवि ईश्वर के अनुग्रह में उनके परस्पर विरोधी गुणो एव आचरणों के कारण विलम्ब देख उपालम्भयुक्त वाणी मे कह उठता है :—

जो पै दिगम्बर भयौ धरयौ कत धनुप सल्ल कर
जो पै धाम तजि ग्राम बस्यो कत सैल सिखर पर
जो पै भस्म ले अग सग सुन्दरिय लयो कत
जो पै सुन्दरिय सग काम जारेउ सो कौन मत
सर्वज्ञ नाम नरहरि निरखि हठि मसान साज्यो सयन
यह अनरस सभु केहि सन कहौं सब विरुद्ध पेखियय नयन ॥[1]

शङ्कर का भक्त उन्हीं के चरित्र में पाई जाने वाली विपमता और विपरीतता का निवेदन किससे करे! अतः उपालम्भ और विवशता के द्वारा भक्ति क्रोध रूप मे प्रकट हुई है।

ईश्वर की नामावली का स्मरण भक्त का एक सहज अवलम्ब है। इसकी महिमा से अवगत कवि ईश्वर-भक्ति की याचना करता है :—

माधव केशव कृष्ण विष्णु बैकुठ दमोदर
हरि मुकुन्द गोविन्द अमर अविगच्छ अगोचर
नारायण नरसिंह सत्य विट्ठल बल गजन
प्रभु मुरारि बनवारि गोपि जीवन जनरजन
सारग शख गद चक्रधर पढत गुनत सकट हरण
जय रामचन्द्र भगवत हित कहि नरहरि तक्यो शरण ॥[2]

भक्ति के साथ अन्य भावों का सम्मिश्रण भी प्रायः कवि के छदों मे देखने को मिलता है। प्रायः प्रसिद्ध देवी-देवताओं के पराक्रम वर्णन द्वारा उनको प्रसन्न करने का मार्ग कवि ने ग्रहण किया है। नीचे लिखे छद मे हनुमान के पराक्रम वर्णन के साथ आतक वर्णन में भक्ति-भावना स्पष्ट है :—

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १२८
२ ,, ,, ,, ,, ,, छद सख्या ११७

हनूमत गिरि चढ्यो लक को कियो पयानह
भय सुमेरु डगमग्यो इन्द्र इन्द्रासन जानइ
शेषनाग भरम्यो सेज पर थर थर कम्प्यो
भानु मुदित ह्वै गयो रावण निश्चय करि शक्यो
जुरि रही सिन्धु पर भीर अति मन लछिमन आनद भयो
दशकध अवधरणी धरी पवन दूत लकाहि गयो ॥[१]

इसी प्रकार भक्ति के साथ विस्मय-भाव का भी सकेत निम्नलिखित छप्पय में हुआ है :—

रहति गौरि अरधग गग जट मुकुत मध्यवस
ससि ललाट जगमगात भगत भय हरत भिष्णु अस
तिन्नि नयन मुख पच सच सगीत गीत रस
अमर सुल्ल लिए हत्थ तत्थ तिहुँ पुर प्रसिद्ध अस
तिहु लोक त्रिगुन नरहरि निरखि भेद रहित बदौ चरन
हर हर जै सित जै सभु जै सो जै जै सिव सकर सरन ॥[२]

निम्नलिखित छद में सूर्य वन्दना कवि की भक्ति-भावना की द्योतक है :—

तुव दरसन तम ललित ललित पकज सुहवसर
तिमि प्रकास चहुँ चक्र चक्र चक्रिय अनद कर
विप्र करहिं षट धर्म कर्म सचरहि उदै दिन
गन नाग जाग जस जपहिं एक्क दिन सुर नर मुनि
भो प्रभु दयाल कस्यप तनय कहि नरहरि बदौ चरण
जन आपद भय हर कलुष हर जह तह कर दिनकर सरण ॥[३]

इस प्रकार नरहरि की भक्ति-भावना तत्कालीन पद्धति के अनुसार ईश्वर तथा देवी-देवताओं की वन्दना उनके पराक्रम और गुणों के रूप मे व्यक्त हुई है ।

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १२९
२ " " " छद सख्या ८२
३ " " " छद सख्या ११६

ब्रह्म उन कवियों में थे जिन्होंने अकबर के लिए उसकी धार्मिक जिज्ञासा तृप्ति के साधन जुटाये थे। यहा तक कि अकबर के नवीन धर्म 'दीने-इलाही' में जैसा पहले कहा जा चुका है केवल यही एक हिन्दू सदस्य थे जिन्होंने उसमें अपनी उपस्थिति द्वारा अकबर की विचार-धारा को हिन्दू-धर्म की विशेषताओं से प्रभावित किया था। ब्रह्म ने अपने छदो में निर्गुण और सगुण दोनो प्रकार की ईश्वरोपासना का परिचय दिया है।

निम्नलिखित छद में ईश्वर के सर्वव्यापक, निराकार-रूप का वर्णन मिलता है '—

दूरि रहे सब ही सब कोऊ नही परसे एसो भेखु बनायो
जलहू थलहू तलहू नभहू तुम एक हो एक भलो घर छायो
एतो बडो सुकहाइ के नाथ जु है सु जहा आप छपायो
देख्यो सबै सब देखे तुम्हे नहि ब्रह्म लुके जनु है कित पायो ॥[1]

कवि ने और कई छदो में निर्गुणोपासना के द्वारा अपनी धार्मिक उदारता, धार्मिक ऐक्य-भावना तथा हृदय-विशालता का परिचय दिया है किन्तु कवि वैष्णवभक्त था जैसा उसके जीवन-चरित मे पहले दिखाया जा चुका है। अतएव अपनी सगुणोपासना सम्बधी छदों मे कृष्ण-भक्ति का कवि ने पूरा परिचय दिया है।

इनमें सगुणोपासना भक्ति के अन्तर्गत कहीं-कही अद्वैत-भाव का स्पष्ट रूप भी दिखाई देता है। ईश्वर सम्बन्धी अद्वैत-भावना की झलक कवि के निम्नलिखित सवैये मे मिलती है —

दूसरो आहि न दूसरो देखिए दूसरो मानिए एक बिसारे
वहै परगास वहै अवलोकिए ब्रह्म विवेक विचारे विचारे
यसे, ही नाथ निरतर साथ रहे तन में मन में मनु मारे
ज्यो पानी में पावक को प्रतिबिबु न आगि जरै न बुझै जलु डारे ॥ [2]

निम्नलिखित छंद में निर्गुण ईश्वर-प्राप्त की कठिनाइओं का उल्लेख कर कवि ने सगुण भक्ति को सहज बताया है।

प्राण चढाय कै जोग करो काहे करो व्रत पु ज विशाला
देह तपाय तपाय पचागिन काहे सहो बन बैठि कसाला

---

१ देखिय, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ११

२ ,, ,, छद सख्या १२

ब्रह्म विचारत जो हिय मे सोइ रूप धरे नर को इहि काला
जाय लखो किन या नदराय के आगने खेलत नद को लाला ॥[1]

कवि ब्रह्म का निम्नलिखित छन्द भक्ति के वात्सल्य-भाव का उदाहरण है :—

चतुराननहू चतुरानन ह्वै परि पायो न भेदु वेदनि गायो
हारि हिए हरु तो पटके करु हारि रहे हरि ही पै न आयो
ब्रह्म भने मुनि मौन के मन मारत नेक मनो न मनायो
कितो बडी भाग भाग जसोमति को करतार दे दे करतार नचायो ॥[2]

निम्नलिखित छन्द मे कवि ने भक्ति के अन्तर्गत दैन्य-भाव को व्यक्त किया है :—

जो तुम छत्र की छाह चलावत तो न कहु कछु मैं रिधि पाई
जो तू घराघर भीख मगावत तो कहु कछु आप दयाई
ब्रह्म भनै विनती इतनी अब छोरू नहीं हरि तो सरनाई
दीनदयाल दया करि माधव मोहि कहा सब तोहि बडाई ॥[3]

हिन्दू-समाज में देवी-देवताओं के प्रति जो पूजनीय भाव मिलते हैं उसका भी प्रकाशन 'ब्रह्म' की कविता में कहीं-कहीं पर हुआ है।

तानसेन के भक्ति सम्बन्धी पदों में कृष्ण-भक्ति ही प्रधान है वैसे इनके पदों में शिव, राम के प्रति भी भक्ति-भावना देखने को मिलती हैं। फारसी शब्दावली के एक-दो पदों में इस्लाम-मजहब की विशेषताएँ भी दी गई हैं। साथ ही सूर्य, गणेश, सरस्वती आदि की वन्दना के पद भी कवि ने गाये हैं और इसके द्वारा सामान्य हिन्दू-धर्म में देवी-देवताओं के प्रति जो भाव तथा विश्वास मिलते हैं वह भी प्रकाशित हुए हैं। तानसेन पर वल्लभ-भक्ति का यथेष्ट प्रभाव पडा था जिसका उल्लेख कवि के जीवनचरित में पहले किया जा चुका है।

निम्नलिखित पद में कवि ने ईश्वर की सर्वव्यापकता का सकेत किया है :—

ब्रह्मगत अपरम्पार न पाऊ
पृथ्वी पार पताल ढरा और गगन लौं धाऊ

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ४
२ ,, ,, छद सख्या ८
३ ,, ,, छद सख्या १

जो लौं न होय सुदृष्टि तुम्हारी मन इच्छा फल ही पाऊ
तीरथ प्रयाग सरस्वती त्रिवेणी सब तीरथ होकर गुरुद्वार जाऊ
भागीरथी गौतमी और गगा तानसेन गावै हरिद्वार चाऊ ॥[१]

वल्लभ-भक्ति में कृष्ण की मुरली का बहुत बडा माहात्म्य है। मुरली योग माया है जिसकी पहुच तीनों लोकों में मानी गई है। यह आत्मास्वरूपा गोपियों का परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण से मिलन कराने वाली है। मुरली के इस माहात्म्य का वर्णन कवि ने निम्नलिखित पद में किया है :—

मुरलिया कैसे बाजै रस सानी गरजि धों करे अमृतबानी
अति ही नाद प्रवाह ताल मूल जिय धारे एसो रस कहाँ ते उपजत एसी स्थानी
सप्त स्वर तिन ग्राम इकईस मूरछना यह गावत सब गानी
तानसेन के प्रभु मुरली अधर धरे जाकी त्रई लोक राजधानी ॥[२]

तानसेन को कृष्ण के विविध नामों का स्मरण भी 'स्मरण-भक्ति' के अतर्गत हुआ जान पडता है :—

गोविंद गोपाल गरुड़गामी गोपीनाथ गोवरधनधारी गोपी मन रजन
वशी गिरिधारी कुजविहारी बहु रूपधारी कसारि मुरारि गर्वप्रहारी दुष्ट गजन
मधुसूदन माधव मथुरापति मुक्तेश्वर मन भावन दुख भजन
वासुदेव विट्ठल बनवारी बद्री नाथ बौधरूप विष्णु तानसेन भक्त मन रजन ॥[3]

भक्तिगत उपालभ का भी सुन्दर चित्र कवि ने निम्नलिखित पद में प्रस्तुत किया है :—

एरी गवार ग्वार तू कहा जाने रे गोपिन को मरम
कान्धे कामरी और हात लकुट लिए ताको जिय कहा होत नरम
कटि सोहै पीत वसन डारो फिरत याही ते जानी जात तेरो धरम
तानसेन कहे शबरी को झूठो खायो ताके जिय कहा होत सरम ॥[४]

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १७८
२ ,, ,, पद सख्या ६३
३ ,, ,, पद सख्या ३१
४ ,, ,, पद सख्या १८०

उपालम्भ प्रेमोद्दीपन में अत्यधिक सहायक होता है और इसीलिये भक्त उसका आश्रय लेता है।

तानसेन की सूर्य-वन्दना उनकी व्यापक भक्ति-भावना की परिचायक है :—

जै सूरज जगच्चक्षु जग वन्दन जगत्राता जगत करता जगन्नाथ
आदित्य सवितर अरक खग पुषर गभस्ती भान भानु दिवाकर जग कारज होय तेरे हाथ
ज्ञान ध्यान जप तप तीरथ व्रत सयम नेम धर्म कर्म सब उदे होय सनाथ
तानसेन पै प्रभु कृपा कीजिये राग रंग स्वरन सों निशदिन गाऊ तेरो गाथ ॥[१]

तानसेन ने फारसी-शब्दावली में 'अल्लाह' की सर्वव्यापकता तथा उसके 'नूर' के भी वर्णन किये हैं :—

पाक महम्मद अल्ला रसूल तेरो ही नूर जहूर
धन धन परवर्दिगार गुन्हैगार तुव करन तुही जग रम रह्यो भरपूर
बेच गुन बेच गुन वे शुवे नमुन अव्वल आखर तही निकट तू ही दूर
जित देखू तित तुही व्याप रहो जल थल धरनी आकाश तानसेन तुही हजूर ॥[२]

तानसेन की भक्ति के अतर्गत षड्रिपु-काम, क्रोध, मोह आदि के त्याग, ईश्वर के साकार तथा निराकार रूप की उपासना तथा अनेक देवी-देवताओं की स्तुति और वन्दना भी वर्णित हैं जिनके विवरण कवि द्वारा वर्णित तत्कालीन रहन-सहन, विश्वास आदि की सामग्री के अतर्गत पाचवें अध्याय में आगे दिये गये हैं।

गग ने कई सवैयों और कवित्तों में अपनी कृष्णोपासना तथा अन्य भक्ति-भावना के परिचय दिये हैं। इसमें अपनी दीनता, ईश्वर-अनुग्रह-प्राप्ति, प्रेमगत उपालम्भ का प्रदर्शन कवि ने स्पष्ट रूप से किया है।

निम्नलिखित छद में गग की ईश्वर के साथ तादात्म्य-प्राप्ति सम्बन्धी विविध उपायों की व्यजना मार्मिक और गहन है :—

जो कहो मोहन जा मथुरा में तो मन्दिर में मढई एक छाऊ
जो कहो तो तुलसी तन माल तमालन बीच नचौं अरु गाऊ

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या २५
२ " " " " पद सख्या ३३

स्वाग अनेक करौ कवि गग जु कैसेहु कान्ह तिहारो कहाऊ
काल गहे कर डोलत माहि कछू इकबेर खुसी कर पाऊ ॥[1]

उपर्युक्त छद मे भक्त की व्याकुलता उसके आध्यात्मिक प्रेम की द्योतक है।

भक्त भगवान के बल पर ही अपनी जीवन-तरणि भवसागर में छोड़ देता है। मागर के मध्य-स्थल मे पहुँचने पर प्रबल वायु के झोंके उठते हैं। उसकी नौका डगमगाने लगती है। भक्त ईश्वर की विरुदावलि का अवलम्ब ग्रहण करके विलम्ब होने के कारण उलाहना देता है। कवि गग ने इसी प्रकार के भाव का वर्णन निम्नलिखित छद मे किया है:—

दीनबन्धु दीनानाथ द्रोपदी पुकार कहै वेदन विदित कैधों विरद भुलानो है
छाडि गजराज खगराज लाज काज धाये कहे कवि गंग कैधों पौरुष पुरानो है
दुखी प्रहलाद जान सकर सहाय भये भक्त के प्रताप कोऊन गिनो रक रानो है
देह भयो दूबरो कि नेह तज्यो दीनन सों चक्र भयो भौतरो कि वाहन खुरानो है ॥[2]

भौतिक ससार की अभिवृद्धि के लिये मनुष्य के सपूर्ण अग कार्यरत रहते हैं किंतु राम-नाम नही लेना चाहते जो सपूर्ण परमार्थों का आश्रय है:—

मेरो चेरो मेरो घोरो मेरो घ्रो मेरो। घरु मेरो मेरो कहत न रसना अघाति है
कहि कवि ग गु और औरउ जु आक वाक कहत कहत क्योंहु क्योंहु न रसाति है
चार्यो वेद चबाति पढति छओ दरसन नवरस निरुपति षट रस खाति है
देखो देखो पुरबि ले पाप के प्रताप यह राम नाम लेत जीभ ऐंडी बेडी जाति है ॥[3]

उपर्युक्त कवित्त में भक्ति के अन्तर्गत पूर्व-कर्म सस्कारों पर भी कवि की आस्था जान पड़ती है।

भक्त की दीनता और आत्म-समर्पण निम्नलिखित छन्द में अवलोकनीय है:—

कामिनी कमल नैनी करै न रहसि केलि कमल विसासिनी विशेषि वामै दयो है
घर के रहत कोऊ घरि को न पूछे बात किकिंधा बन्धि सिंधु छोर छयो है

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९०
२ " " " " छद सख्या ८७
३ " " " छद सख्या ७८

कहि कवि ग ग तुम करुनानिधान कोटि जो ही ऐबदार और द्वार भयो है
तुमहि किये की लाज करे ही बनेगी राज गाहक तें गयो सो गुसाई हू तें गयो है ॥[1]

ईश्वर का अनुग्रह ही भक्त का सर्वस्व है। ग ग ने ईश्वर के इसी अनुग्रह का वर्णन निम्नलिखित छद मे दिया है और पापियो को भी उद्धार करने वाले यश का स्मरण दिलाया है :—

पढ्या गुन्यो कीर ना कुलीन हुतो हस कुल छूट्यो गीध छिन मे न छाती छापे दिये ता
तार्‌यो अजामिल जौन परम पतित पापी सदा से सुरापी चरनोदकन पिये तो
गग कहे तारिनी के त्रास ते मुकुत कियो काली नाग कहा को तिलक मुद्रा किये तो
धाये हरि लोक ते हकार सुनि पायक ला हाथी कहा हाथ तुलसी की माला लिये तो ॥[2]

ग ग ने यमुना महिमा का भी वर्णन एक-दो छन्दों मे किया है। यह कवि की भक्ति का प्रदर्शक है। इस प्रकार ग ग के काव्य में भी भक्ति का परम्परागत रूप देखने को मिलता है।

रहीम ने सभी प्रकार के छन्दों-बरवै, सोरठा, दोहा, सवैया तथा पदो मे भक्ति-भावना का समुचित परिचय दिया है। राम, कृष्ण, शिव आदि के भक्ति सम्बन्धी छन्द रहीम की रचनाओं में प्रायः देखने को मिलते हैं तथा सूर्य, गणेश, सरस्वती आदि की वन्दना भी कवि ने की है। इन रचनाओं से रहीम की अनन्य भक्ति, धार्मिक उदारता और हिंदू-धर्म-पद्धति के प्रति श्रद्धा का भाव प्रकट हाता है।

भक्त रात-दिन कृष्ण-भक्ति में इतना लीन रहता है कि उसे अपने चारों ओर की चिन्ता है ही नहीं :—

जिहि रहीम मन आपनो कीन्हों चारु चकोर।
निसि वासर लाग्यो रहे कृष्ण चन्द्र की ओर ॥[3]

कृष्ण-भक्ति में कवि जितना द्रवीभूत हुआ है उतना ही राम-भक्ति में उसकी दयार्द्र-भावना का परिचय मिलता है :—

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ८९
२ „ „ „ छद सख्या ८५
३ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ९

भजि मन राम सियापति रघुकुल ईस ।
दीनबन्धु दुख टारन कोसलधीस ॥[1]

उपालभ के रूप मे भी कवि ने अपनी भक्ति प्रदर्शित की है :—

रहिमन कीन्ही प्रीति साहब को भावै नहीं ।
जिनके अगनित मीत हमे गरीबन को गनै ॥[2]

शिव, गणेश की वन्दना कवि ने निम्नलिखित छदों मे की है :—

ध्यावहुँ सोच विमोचन गिरिजा ईस ।
नागर भरन त्रिलोचन सुरसरि सीस ॥
बन्दहुँ विघन विनासन रिधि सिधि ईस ।
निर्मल बुद्धि प्रकासन सिसु ससि सीस ॥[3]

रहीम ने एक बरवै में सूर्य की भी उपासना की है :—

भजहु चराचर नायक सूरज देव ।
दीन जनन सुखदायक त्यारन ऐव ॥[4]

रहीम ने भक्ति के अंतर्गत ईश्वर के नरसिंह अवतार, गगा-माहात्म्य, षडरिपुओं-काम, क्रोध, लोभ आदि निवारण के वर्णन तथा अनेक देवताओं की स्तुति की है जिनके उदाहरण कवि के रहन-सहन, विश्वास आदि के प्रसग में आगे दिये गये हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत कवियों ने कृष्ण, राम, शिव तथा अनेक देवी-देवताओं की उपासना की है। इन सब में कृष्ण-भक्ति का ही विशेष वर्णन हुआ है। गगा, यमुना के माहात्म्य का भी सकेत इन कवियों ने किया है। रूपासक्ति द्वारा भी भक्ति प्रदर्शन का संकेत मिलता है। सूर्योपासना हिन्दू-धर्म का सदैव से एक अग रहा है। पारसी-धर्म के अतर्गत भी सूर्योपासना का विशेष महत्व है। तानसेन तो किसी न किसी रूप में वल्लभ-सम्प्रदाय से सम्बधित थे ही परन्तु रहीम की इस विषय की भावना उनकी जाति को देखते हुए अवश्य सराहनीय है। उससे उनकी उदार भावना स्पष्ट रूप में प्रकट होती है।

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७०
२ ,, पृष्ठ २६
३ , पृष्ठ ६३
४ ,, पृष्ठ ६३

वीर-काव्य

भक्ति काल मे काव्य की सामान्य-भूमि भक्ति ही थी। फिर भी पहले से प्रवाहित वीर-रस-धारा इस काल मे और उसके अनतर भी यत्र-तत्र दृष्टिगत होती है। भक्ति-काल के सर्वमान्य कवि महात्मा सूरदास और महामना तुलसीदास के मानस की रचनाओं में भक्ति भाव की प्रधानता होते हुए भी उनकी रचनाओं मे कुछ स्थलों पर वीर-रस की निर्मल छटा भी देखने को मिलती है। यही विशेषता प्रस्तुत कवियों की भी है। वीर के अतर्गत युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर, दयावीर चार भेद आचार्यों ने माने हैं।[1] हिन्दी-काव्य मे अधिकतर युद्ध-वीर का ही वर्णन मिलता है।

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं मे शासकों की युद्ध वीरता और दान वीरता के ही अधिक चित्रण हुए हैं। युद्ध के अवसर पर वैरी नारियो की दशा का इन कवियों ने स्वाभाविक और मनोरजक वर्णन किया है। किन्तु इन विशेषताओं के होते हुए भी इनकी वीर-भाव की कविता अधिक प्रचलित न हो सकी क्योंकि इन कवियों ने अपनी रचनाओं का आलबन अपने आश्रयदाता मुसलमान तथा उन हिन्दू-शासकों को बनाया जो हिन्दू राष्ट्र से अपना नाता तोड चुके थे। इसी कारण उनकी कविता लोक-प्रिय न बन सकी। उसी युग के कुछ काल बाद ही सूदन, लाल, भूषण की तत्सम्बन्धी रचनाएँ इसीलिये अधिक प्रचलित और लोक-प्रिय बन गईं क्योंकि उन्होंने अपनी रचनाओं के आलबन हिन्दू राष्ट्र के कर्णधारों को बनाया था अन्यथा गग के कई छदों में प्रस्तुत वीर भाव कवि भूषण के समान ही ओजपूर्ण हैं।

नरहरि अपने जीवनकाल मे कई शासकों के सम्पर्क म आये थे जिनका परिचय इनकी जीवनी-भाग मे दिया जा चुका है। इन शासकों की वीरता और दान का कवि ने मुक्तकठ से गान किया है।

हुमायू की वीरता तथा धैर्य का वर्णन नरहरि ने निम्नलिखित छद में किया है :—

पूरब हद्द पछिम पहार दोऊ पन किए विधि जानि अगाऊ
इत सुमेरु उत चढत लक हय मारि तेग नरपति सब नाऊ
हिद ते बेदि पठान षग्ग वर दल दलमलि दरियाय बहाऊ
गज्जिहि बहुरि जित्ति दिल्ली पति इमि हिडोल रच्यो साहि हुमाऊ ॥[2]

---

[1] साहित्य-दर्पण, तृतीय परिच्छेद, श्लोक २३८, पृष्ठ १६२

[2] देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ८

निम्नलिखित छप्पय में कवि ने अकबर की सेना की वीरता और उसके आतंक का चित्रण किया है :—

फनपति गय थरभरहिं जलधि उछूछलहि छडिकुमु
उडि रज परिहरि भुअन भए सुर सकल सभु समु
निसुदिन विछुरहिं चक्र कवल सकुचहि रवि झपहिं
धूम समुझि अरि नृपति भमरि भज्जहि तन कपहिं
नचहिं मऊर नरहरि निरषि सो दुरग अनवन वरन
दलु चलत अकबर साहि को गिरिवन धन असरन सरन ॥[1]

नरहरि ने दान-वीरता का भी वर्णन कई छन्दों मे किया है। रीवा-नरेश रामचन्द्र जितने युद्धवीर थे उतने ही धर्मवीर तथा दानवीर भी। उनकी वीरता, धर्म-परायणता तथा दानशीलता की प्रशसा अत्यधिक प्रचलित थी।

निम्नलिखित छद में कवि ने रामचन्द्र की धर्मवीरता का उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

वर बघेल निरलोम्भ धम्म रत सेवत चरन साहि सुषरत्ती
यह सो लोभ असरन्न सरन्न किय भारि भुआरि लेत भुई अत्ती
नरहरि एक बात कहत सकुचत हा परसत पुरुषोत्तम पगसत्ती
हों अपने नृप रामचन्द्र पर वारों मै कोटि कोटि गजपत्ती ॥[1]

शेरशाह की युद्ध वीरता तथा दान-वीरता दोनों के परिचय कवि ने निम्नलिखित छप्पय में दिये हैं :—

असपत्ति नर गजपत्ति हुतेउ भुअपत्ति अनेक तब
ते त्वै समर सघरेउ भरेउ जसु जगत जित्ति अब
तोहि जाचहिं गुनि सकल कोउ न उपरेउ भुम्मि मह
नपत प्रात सम तकत जियत जल जलधि अत कह
वोहित कष भुजिमि पिष्पिए मगन गति नरहरि भनै
अस समुझि साहि सेरन प्रगट ऐसो अस दिह्लेहि बनै ॥[2]

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ३४

१ ,, ,, छद सख्या १३

२ ,, ,, छद सख्या १६

नरहरि के उक्त वीर-काव्य वर्णन म वीर-रस के सपूर्ण अवयवों का निर्वाह नहीं हुआ है। आलबन, अनुभाव तथा सचारियों में धैर्य, मति, गर्व के विशेष प्रयोग मिलते हैं।

तानसेन की रचनाओं मे युद्धवीर तथा दानवीर के ही वर्णन अधिक हुए हैं। अकबर की वीरता और आतक के चित्रण कवि ने निम्नलिखित पद में किये हैं :—

ए आयो आयो रे बलवत साह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप और अष्ट दिशा नर नरेन्द्र धर धर थर थर डर
निश दिन कर एक छिन पावै वरण न पावे लका नगर
जहा तहा जीतत फिरत सुनीयत है जलालीन महम्मद को लश्कर
शाह हुमायू को नन्दन चढत एक तेग जोधा तकबर
तानसेन को निहाल कीजे दीजे कोटिन जरजरी नजर कमर ॥[1]

तानसेन ने निम्नलिखित पद मे राजा मानसिंह की दानशीलता का भी परिचय दिया है :—

छत्रपति मान राजा तुम चिरजीव रहो जा लों ध्रुव मेरु तारो।
चहु देश ते गुणी जन आवत तुमपै धावत पावत मन इच्छा सब ही को जग उजियारो
तुम से जो नहीं और कामे जाय कहु दौर वही आरज कीरति करै मोपै रक्षा करन हारो
देत करोडन गुणी जनन को अजाचक किए तानसेन प्रति पारो ॥[2]

गग की रचनाओं में वीर-काव्य का सयत रूप दिखाई देता है। वीर-भाव की ओर कवि की लेखिनी उसी द्रुत गति से बढी है जिस गति से वह अन्य भावों की ओर प्रगतिमान हुई है। उन्होंने अपनी इस रचना में ओजगुण का उचित सम्मिश्रण किया है।

वीरकाव्य के अतर्गत कवि ने अकबर के पुत्र दानशाह की सेना के वर्णन में कमठ के कलमलाने, शेष के फन फटने आदि में अनुभावों का आश्रय लिया है :—

कहै कवि गग दानि साहि फौजें फरहरै थरहरै दिग भूप थरहर थारी सी
घुघरी धरनि निधि ओक भरनि उठी हैं घुघराति दिसि दई है किनारी सी

---

१ देखिए तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १४६
२ ” ” पद सख्या १४८

झल्मल्यो कमठ और दलमली दंति पाँति चले दिगपाल पेल पियूप पनारी सी
सरपट शेष के फरक मे फटत फन मनिन की चट उचटति चिनगारी सी ॥[1]

निम्नलिखित छद मे 'वीर' भाव के साथ-साथ 'वीभत्स' का भी चित्रण हो गया है :—

मार मची रणभुम्मि रची उमडे दलसाहि अकब्बर के
अदले बदले भई बारहि ब.र परे तरवारिन के झटके
गग तहा जुग टूटि परै फिरै रुड-भुसुड बिना सर के
सुमनौ रगरेज के रावर माह महावर के मथना ढरके ॥[2]

गग की रचनाओं मे रहीम की युद्ध वीरता, और दान-वीरता के कई छद उपलब्ध होते हैं। गग का निम्नलिखित छद खानखाना की युद्ध-वीरता का परिचायक है :—

प्रबल प्रचड बली बैरम के खानखाना तेरी धाक दीपक दिसानि दह दहकी
कहै कवि गग तहा भारी सूर वीरन के उमडि अखड दल प्रल पौन लहकी
मच्यो घमासान तहा तोप तीर बान चले मडि बलवान किरिवान कोपि गहकी
तुड काटि मुड काटि जोसन जिरह काटि नीम जामा जीन काटि जिमी आन ठहकी ॥[3]

उपर्युक्त छद में कवि ने खानखाना को आश्रय तथा शत्रुओ को आलम्बन रूप मे चित्रित किया है। तोप, तलवार, तीर आदि अनुभाव, दलों का उमडना तथा वार की चेष्टा उद्दीपन रूप मे आये हैं।

गग के काव्य में जितने उत्साहपूर्ण ढग से खानखाना की युद्ध-वीरता का वर्णन मिलता है उतने ही उत्साहपूर्ण ढग से उनकी दानवीरता भी वर्णित है :—

साहिबी की हद्द तूही साहिब सुमति तूही शाह को सुहैली सपत्ति को धाम है
तू ही दान तू ही जान तू ही बलवीर खान तू ही ललनान उर लागत ललाम है
कहे कवि गग ते अकेली जान्यो खानखाना ऐसे खाये खरचे खजाने खोजे काम है
जोऊ निधि नो रसन निरखि तातें नवाब तेरी नौऊ खड नाम है ॥[4]

---

१ देखिये गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ११२
२ „ „ छद सख्या १३५
३ „ „ „ छद सख्या १४४
४ , छद सख्या १८५

महाराणा प्रतापसिंह की युद्धवीरता का वर्णन कर कवि गग ने अपनी लेखनी पूत की है। इनसे कवि के हृदय की विशालता तथा उदारता का परिचय मिलता है —

उदित प्रताप सवै साहि के प्रताप साहि रोस सुनि काहि रही कुजति कुरड में
गग कहे धनपति नृपति विकल मति लक्हू को अधिपति विपति विनड मे
कुडली कमठ कोल भूमि गोल हाल डोल परत पलौवा जैसे पवन प्रचड मे
देखिए खुमान रान रगे तेरे पास मान भासमान भाजि पेठ्यो आसमान खड मे ॥[1]

उपर्युक्त छन्द में वर्णित वीर-भाव महाराणा प्रताप के अनुकूल ही है।

निम्नलिखित छद मे कवि ने खानखाना की वीरता से उद्भूत आतक तथा वैरी नारियों की विकलता, त्रास, चिन्ता, विषाद, दैन्य आदि सचारियों के वर्णन किये है :—

नाधिबे को अजलि बिलोकिबे को काल ढिग राखिबे का पास जिय मारिबे को रास है
जारिबे को तन मन भरिबे का हिया आखे धरिबे कौ पगमग गनिबे का कोस है
खाइबे कौ सौह भौहे चढिबे उतारिबे कौ सुनिबे कौ तान ध्यान किए अपसास है
बैरम के खानखाना तेरे डर वैरी वधू लीबे को उसास मुख दाबे ही को दोस है ॥[2]

गग ने राजा वीरबल की दानवीरता का भी उत्साहपूर्ण वर्णन निम्नलिखित छन्द में किया है :—

एक बचो सुरराज हथीय सुताबल और न होनो
और सबे बकसे बलबीर बचे रवि के रथ के हय दोनों
गग कहे कर उन्नत देखि सुमगन मौज गुनी तजि मौनो
लक सुमेरु लुटाई दई है रह्यो मुख सालिगराम के सोनो ॥[3]

गग के उपर्युक्त छन्दों से स्पष्ट है कि कवि में वीर-काव्य रचने की पूर्ण क्षमता थी। भूषण गग के परवर्ती कवि थे। गग की तत्सम्बन्धी रचनाओं का प्रभाव भूषण की रचनाओं पर भी पडा हो तो असभव नहीं क्योंकि यह कई छदों में उपलब्ध भाव साम्य से प्रकट होता है।

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १८४
२ „ „ „ „ छद सख्या १४०
३ „ „ „ छद सख्या १३६

प्रस्तुत कवियों में केवल ब्रह्म और रहीम ही ऐसे कवि हैं जिनकी रचनाओं में वीर-काव्य के उदाहरण नहीं मिलते। केवल नरहरि, तानसेन और गंग की ही तत्सम्बन्धी रचना उपलब्ध होती है जिनके उदाहरण ऊपर दिये गये। वीर काव्य के अंतर्गत केवल युद्धवीर और दानवीर के ही वर्णन अधिक हुए हैं। धर्मवीर और दयावीर के केवल एक-दो उदाहरण ही मिलते हैं। साथ ही इन कवियों की वीर-रस के संपूर्ण अवयवों की ओर दृष्टि नहीं थी क्योंकि कहीं पर उद्दीपन विभाव और कहीं पर अनुभाव अवयवों के प्रायः अभाव ही मिलते हैं। भावाभिव्यंजन की दृष्टि से इन कवियों की ये रचनाएँ महत्वपूर्ण अवश्य हैं।

प्रस्तुत कवियों ने शृंगार, भक्ति, वीर-काव्य रचना की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। रौद्र, भयानक, वीभत्स, करुण, हास्य तथा अद्भुत भावों की अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में नहीं हुई है। प्रसंग वश ही इनके एक दो उदाहरण मिल जाते हैं।

गंग ने भयानक रस के अंतर्गत भय भाव की व्यंजना कई छन्दों में की है किन्तु इस रस के संपूर्ण अवयवों की अभिव्यक्ति नहीं हुई है। नीचे लिखे छंद में कवि ने रहीम को आलंबन मानकर भय-भाव को व्यक्त किया है :—

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास भागे देसपति धुनि सुनत निसान की
गंग कहै तिनहू की रानी रजधानी छांडि बन बिललानी सुधि भूली खान पान की
तेउ मिली करिन हरिन मृग बानरन तिनहू की भली भई रच्छा तहां प्रान की।
सची जानो करिन भवानी जानी केहरनि मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी।।[1]

उपर्युक्त छन्द में त्रास, मोह, दीनता आदि संचारी भावों के भी प्रयोग हुए हैं।

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में हास्य, अद्भुत तथा वीभत्स के भावों की अभिव्यक्ति का प्राय अभाव ही मिलता है।

प्रकृति वर्णन

संस्कृत साहित्य में प्रकृति-वर्णन दो रूपों में मिलते हैं। एक में तो प्रकृति के नाना रूप आलंबन रूप में आये हैं और दूसरे के अंतर्गत प्रकृति का चित्रण स्वतन्त्र रूप में न होकर उद्दीपन रूप में हुआ है। हिन्दी-साहित्य में इसी दूसरे प्रकार के रूप के

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १४१

उदाहरण अधिकतर मिलते हैं। प्रकृति के स्वतन्त्र चित्रण बहुत कम स्थलों पर आये हैं। प्रकृति मनुष्य की सुखानुभूति मे उल्लसित और दुःखानुभूति मे पीडित दृष्टिगत होती है। ऐसे स्थलों पर उसके नैसर्गिक रूप का लोप हो गया है। हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध कवियों—जायसी, सूर, तुलसी आदि ने प्रकृति के मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं किन्तु उनके ये वर्णन स्वतन्त्र रूप में न होकर मानव-भावनाओं से ही ओत-प्रोत हैं। आधुनिक हिन्दी-काव्य मे अवश्य प्रकृति के आलम्बन रूप म उसकी नैसर्गिक छटा देखने को मिलती है।

प्रस्तुत अकबरी दरबार के कवियों नरहरि, ब्रह्म, तानसेन, गग आदि की रचनाओं में प्रकृति के आलबन रूप का प्रायः अभाव सा ही है। उन्होंने उद्दीपन-रूप का ही अधिक आश्रय लिया है।

नरहरि ने अपने 'बारहमासा' वर्णन म विरह-भावों की अभिव्यक्ति के साथ प्रकृति के कुछ सुन्दर चित्रों की योजना की है। वर्षा ऋतु के वर्णन मे प्रकृति की सजीवता का अवलोकन कीजिये --

> बिज्जु तरक्कि चक्कि पपीहा चहक्कित स्याम सुहृद सुहावन
> भुम्मि हरित्त सरित्त भरित्त दिगन्त रहित जित्त तित्त आवन
> नरहरि स्वामि समीप जहाँ लगि रचहि हिंडोल सखी सुर गावन
> बेआदर बिलपत्तिइ न कह बिन विट्ठल विलपति है सावन ॥[1]

'शरद' मास की प्राकृतिक छटा का भी कवि ने सुन्दर वर्णन किया है

> सोभित कास अकास दसों दिसि चन्द को मोद सरोज रसार
> जागी जप्पन्न प्रपन्न प्रजा सब स्त्राध समुद्र बिविद्ध विचार
> नरहरि प्यास स्नाति दुहू कर पष्खि पिउ पिउ पिउ पुकार
> मोनहू ते नरिन्द मनोरथ उओ भागवन्त अगस्ति कुवार ॥[2]

नरहरि ने इसी प्रकार और महीनों के भी वर्णन किये हैं किन्तु उनमें चित्रित प्राकृतिक दृश्य नायिकाओं की विरह-भावना को उद्दीप्त करने के लिये ही आये हैं। एक स्थान पर जग-जलनिधि के रूपक में भी प्रकृति की छटा दिखाई गई है।[3]

---

१ देखिये, नरहरि का बारहमासा, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १०५
२ ,, ,, ,, ,, छद सख्या १०७
३ देखिये, नरहरि के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९१

'ब्रह्म' की रचनाओं में भी प्रकृति के आलम्बन रूप का प्रायः अभाव है। एक दो स्थलों पर ही प्रकृति के स्वतन्त्र रूप के चित्रण हुए हैं। निम्नलिखित छंद में ग्रीष्म-ऋतु के व्यापक प्रभाव का अवलोकन कीजिये :—

उछरि उछरि भेकी झपटे उरग पर उरग पे केकिन के लपेटें लहकि हैं
केकिन के सुरति हिये की ना कछू है भये एकी करी केहरि न बोलति बहकि है
कहै कवि ब्रह्म वारि हेरत हरिन फिरैं बैहर बहत बड़े जोर सों जहकि है
तरनि के तावन तवा सी भई भूमि रही दसहूँ दिसान में दवारि सी दहकि है ॥[1]

उपर्युक्त कवित्त कवि के सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण का परिचायक है। ब्रह्म के परवर्ती कवि बिहारी के एक दोहे में उक्त कवित्त का भाव मिलता है।[2]

उद्दीपन-रूप में ही कवि ने प्रकृति के दृश्यों के अधिकतर वर्णन किये हैं। निम्नलिखित कवित्त में कवि ने प्रकृति के इसी रूप का आश्रय लिया है :—

कामहू कुमुद चंद कल हंस कोकिला कुलाहल करत कोक केकी छेकी लयो हो
ब्रह्म भने सीतल समीर तीर तीर वार धीरो न धरत देत छाती ही में छयो हो
एते सब चेरे मेरे तबहू ते तेरे साथ तिनहिं बिछुरि अब चोरी करि दयो हों
कैसे नीके रहो नीके लागतु हो जो पे ऐसे रूप को वियोग विधि ठयो हों ॥[3]

कृष्ण के वियोग में राधा की विरह-अग्नि के कारण आकाश का रंग लाल हो गया है और यदि जलनिधि से उसका साथ न होता तो सम्भवतः जल ही जाता। नायिका के तन-तेज से चन्द्रमा का रंग भी लाल हो गया है। कवि ने प्रकृति के इसी उद्दीपन रूप का उदाहरण निम्नलिखित छंद में प्रस्तुत किया है जो उसकी अत्युक्तिपूर्ण कल्पना का भी परिचायक है :—

सीतलता सुत अंग पियूष पियूष में अंग अमुज्जवल कामो
राधिका कान्ह वियोग अगिन्नि गगन्न बर्यो सुभयो रंग रातो

---

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ७२

२ कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ॥
बिहारी-बोधिनी, पृष्ठ २३६, दोहा संख्या ५६५

३ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ५६

ब्रह्म भनै जु जलनिध जात सुजुगे न होतो तो ततो यरि जातो
तो तनु तेज तप्यो तरुनी ताते लागतु तोहि तमी पति तातो ॥[१]

ब्रह्म ने इस प्रकार परपरागत रूप के अनुसार उद्दीपन रूप मे प्रकृति की छटा के अधिक वर्णन किये हैं। आलबन रूप की ओर उनकी दृष्टि उतनी नहीं थी।

तानसेन ने प्रकृति के दोनों रूपों के समान वर्णन तो किये हैं किन्तु वे प्रकृति के उद्दीपन रूप की छटा को दिखाने के ओर ही अधिक तल्लीन दिखाई पडते हैं।।

प्रकृति विरहिणी नायिका के लिये किस प्रकार भयावह हो गई है यह निम्नलिखित पद मे देखिये —

बादर ऊनइ आए सो पिय बिन लागे डर पाए
एक तो अधियारी कारी लागत डरावन जिय को भारी तेमहि अवध
बीतन लागे अजहू न आए
दादुर पिक मोर सोर करन लागे विरही तुन लागे डराए
तानसेन के प्रभु तुम नीके जानो भली लीनो सुध सो अजहू न आए ॥[२]

तानसेन ने उपर्युक्त भाव की पुनरुक्ति निम्नलिखित पद मे की है --

बादर आए री लाल पिया बिन लागे डरपावन
एक तो अधेरी कारी बिजुरी चमकत उमर घुमड़ बरसावन
जब ते पिया परदेस गवन कीनो तब ते विरहा भयो मो तन तावन
सावन आय अति झर लावत तानसेन न आए मन भावन ॥[३]

तानसेन के प्रकृति-वर्णन के आलबन रूप की भी एक झलक देखिये .—

सघन बन छायो द्रुम बेली माधो भुवन अति प्रकाश वरन वरन पुष्प रग लायो
कोकला खजन कीर कपोत अति आनन्दकारी चहु ओर झर बरसायो
सप्त सुर तीन ग्राम इकइस मूर्छना उक्त युक्त लाग डाट कर देखायो
तानसेन कहे सुनो साह अकबर प्रथम राग भैरव गायो ॥[४]

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ५५
२ „ „ , पद सख्या ११८
३ „ „ „ पद सख्या ११०
४ „ „ „ पद सख्या १५०

गग ने भी प्रकृति के दोनों रूपों के सुन्दर उदाहरण अपनी रचनाओं मे प्रस्तुत किये हैं। कवि के इन छन्दों में भावों की चित्ताकर्पक अभिव्यजना भी मिलती है।

निम्नलिखित छन्द मे कवि ने शिशिर ऋतु का बोध कराने के लिये प्रकृति को यथार्थ आलबन रूप प्रदान कर दिया है :—

कोप काश्मीर ते चल्यो है दल साजि वीर धीर ना धरत गल गाजिबे को भीम है
सुन होत साँझ ते बजत दन्त आधी रात तीसरे पहर मे दहल दै असीम है
कहै कवि गग चौथे पहर सनावै आनि निपट निगोरी मोहि जानि कै यतीम है
बढै शीत शका कापै उर हूँ अतका लघु शकाके लगत होत लका की मुहीम है ॥[1]

निम्नलिखित छन्द मे 'वसत' का चित्रण साकेतिक रूप म होता हुआ भी यथा-तथ्य प्रभाव डालता है :—

गुजहु कुज मधूव्रत पुज सरोज के सौरभ की सरसाई
गग सु प्रानपती का पयान भरो केहि भाँति वियोग दसाई
कोकिल बालत बाग ही बाग बसत के बासर सौ न बसाई
चत की चाँदनी को चितए तन कैसे के छाडेगो काम कसाई ॥ [2]

कवि गग के उपर्युक्त छन्दों से उनकी विशिष्ट प्रकृति-वर्णनात्मक प्रतिभा का आभास मिलता है और उन्होंने प्रकृति को आलबन और उद्दीपन दोनों दृष्टियों से देखा है।

रहीम की रचनाओं में भी प्रकृति की छटा बिखरी मिलती है किन्तु भावविशेष के आवरण में वह अपना पूरा प्रकाश नही बिखेर पाती। फलस्वरूप कवि के इन प्राकृतिक चित्रों को दो रूपों में बाँटा जा सकता है। प्रथम तो भावोद्दीपन के रूप मे और दूसरे उपदेशात्मक रूप में। प्रकृति के आलबन रूप का कवि की रचनाओं मे प्रायः अभाव ही मिलता है।

प्रकृति नायिका की विरह-भावनाओं को किस प्रकार उद्दीप्त करती है यह कवि के निम्नलिखित बरवों से प्रकट है :—

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १७३

२ „ „ „ छद सख्या १७८

बरसत मेघ चहूं दिसि मूसरधार।
सावन आवन कीजत नन्द कुमार॥
करत घुमडि घन पुरवा मुरवा सोर।
लगि रह बिरमि अकुरवा नन्द किसोर॥
घन घुमडे चहु ओरन चमकत बीज
पिय प्यारी मिलि झूलत सावन तीज॥[1]

कवि ने रूपक द्वारा भी प्रकृति के रूपों की अभिव्यजना की है

बिरह रूप घन तम भयो अवधि आस उद्योत।
ज्यों रहीम भादों निसा चमकि जात खद्योत॥[2]

रहीम द्वारा वर्णित प्रकृति के उपदेशात्मक रूप के कुछ उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं। रीति-नीति के प्रसग में भी कवि ने प्रकृति के विविध रूपों के आश्रय लिये हैं। बड़े लोगों की जान-पहिचान से क्या लाभ जब कि विधाता ही अनुकूल नही है, इसका विस्तार कवि ने निम्नलिखित छन्द में दिखाया है :—

बडेन सो जान पहिचान कै रहीम कहा जो पय करता ही न सुख देनहार है।
सीतहर सूरज सों नेह कियो याही हेत ताऊ पै कमल जारि डारत तुषार है।
छीर निधि माहि धस्यो शकर सीस बस्यो तऊ न कलक नस्यो ससि में सदा रहै।
बडो रिझिवार है चकोर दरबार है कलानिधि सो यार तऊ चाखत अगार है।[3]

दोहों में भी कवि ने उपदेश द्वारा प्राकृतिक चित्रण के रूप प्रस्तुत किये हैं :—

मानसरोवर ही मिले हसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर बक बालक नहिं जोग॥[4]
दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहिं।
रहिमन चातक रटनि हूँ सरवर कोउ नाहिं॥[5]

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ६३, ६४
२ ,, पृष्ठ २८
३ ,, पृष्ठ ७५, ७६
४ ,, पृष्ठ १८
५ पृष्ठ १०

इस प्रकार के वर्णन में रहीम की अपनी विशेषता है और गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में भी उपलब्ध प्रकृति-वर्णन बहुत कुछ इसी प्रकार का है।

अतएव प्रस्तुत कवियों ने प्रसगवश ही प्रकृति के कुछ दृश्यों के वर्णन कर दिये हैं। उन्होंने प्रकृति को कुछ स्थलों पर आलबन और अधिकतर शृगार के अतर्गत उद्दीपन तथा उपदेशात्मक रूप में ही अपनाया है। इनमें कहीं कहीं भावों की सुन्दर व्यजना भी हुई है।

नीति और उपदेश

काव्य का उद्देश्य सत्य का प्रकाशन है और श्रेय सत्य का उद्घाटन ही सच्ची शिक्षा है। भारतीय कवियो ने काव्य के 'स्वातः सुखाय' और 'लोकोपकाराय' दोनों स्वरूपों के चित्रण अपनी रचनाओं में किये हैं। वस्तुत. महान् आत्माओं का निज सुख समष्टि के सुख में ही अन्तर्हित रहता है और इस विचार से उनकी स्वांतःसुखाय रचनाओं में भी किसी न किसी रूप में लोकोपकारिता के गुण मिलते हैं। गोस्वामी तुलसीदास का काव्य लोकोपकारिता के भावों से पूर्ण है। हिन्दी-साहित्य के अधिकाश कवियों की रचनाओं में नीति-उपदेश सम्बन्धी विषय का थोडा बहुत परिचय मिलता है। यह ठीक है कि इस प्रकार के काव्य में भावों की विभोरकारिणी अभिव्यजना नहीं मिलती किन्तु उनमें मनुष्य की सहज अनुभूति के पूर्ण दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत कवियों के काव्य में नीति-और उपदेश का विशिष्ट स्थान है। नरहरि, गग के छप्पय और कवित्त, रहीम के दोहे इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इन कवियों की ये रचनाए केवल सुनी सुनाई बातों पर आश्रित नहीं है। उनकी रचनाओं से प्रकट होता है कि उन्होंने अपने जीवन की विभिन्न परिस्थतियों के बीच मार्मिक अनुभूति प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त वह काल ही कुछ ऐसा था कि अवसर-अवसर सभी को शासक के उचित पथ प्रदर्शनार्थ नीति और उपदेश से अवगत और उसमें कुशल होना आवश्यक था। इसीलिये दरबारी कवियों के काव्य में इसका विशेष पुट मिलता है।

नरहरि प्रस्तुत सभी नीति और उपदेश के कवियों में अग्रगण्य थे। इनके 'छप्पय-नीति' ग्रथ का विवेचन पहले किया जा चुका है। कहा जाता है नरहरि ने अकबर की अपरिपक्व अवस्था में सिंहासनारूढ होने पर यह ग्रथ उसी के लिये बनाया था। कवि ने इस विषय के बहुत से छदों को अकबर को सबोधित करके लिखा भी है। यहा पर उनमें से कुछ के उदाहरण दिये जायेगें। सर्वप्रथम कवि अकबर के बुद्धि-चातुर्य का परिचय निम्नलिखित उत्साहवर्धक शब्दों में देता है :—

को सिखवत कुल वधून लाज गृह कज्ज रग रति
को हसनि सिक्खवत करत पय पानि भिन्न गति
कै सिहन को सिक्खवत हनत गज बानि ततच्छन
कै सज्जनसि सैखएउ दत गह वस्त सुलच्छन
विधि रचेउ जानि नरहरि निरखि कुल सुभाउ नहिं मिट्टवै
गुन धर्म अकब्बर साहि कह कहहु सो को नर सिक्खवै ॥[1]

माला और राजा का रूपक बाँधकर कवि ने राजा के कर्तव्य को बडे उचित ढग से अलकारिक रूप में समझाया है :—

शिथिल मूल दृढ करे फूल तोरे जल सिंचै
ऊरध डार नवाय डार गहि ऊरध खिंचै
जै मलीन मुरझाय तिन्हैं दै टेक सभारै
कूडा कटक गलित पत्र चुनि बाहर डारै
लघु वृद्ध करै नरहरि कहत बाग सभारै फल भखै
माली समान नृप चतुर जो सो सम्पति विलसै अखै ॥[2]

राजा के उपदेश के कई छद नरहरि ने लिखे हैं जो उनकी नीति कुशलता के परिचायक हैं। जीवन की सार्थकता तथा विशिष्ट गुणों की ओर कवि ने अकबर को निम्नलिखित छद द्वारा प्रेरित किया है :—

शठ सनेह जे करहिं मान बेचहिं जे लुब्भ कह
पिय वियोग सुख चहहि साकरे तजहि स्वामि कह
नृपति मित्र कर गनहि खेल दुर्जन सग खेल्लहिं
मनु बधहि पर रमनि सर्प मुख अगुल मेल्लहिं
चुक्कहि ते समय नरहरि/निरखि जड आगे विस्तरहिं गुनु
पछितार्हिं ते नरहरि भक्ति बिन सुछितिपति अकबर शाह सुनु ॥ [3]

निम्नलिखित छप्पय में कवि ने धन, धर्म, दुःख, परोपकार, लोभ आदि की सार्थकता का निरूपण करते हुए हरि-भक्ति का परमोपदेश दिया है :—

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १२६

२ ,, ,, ,, ,, छद सख्या १२७

३ ,, ,, ,, ,, छद सख्या १६

धन स्वभै अति धाम धाम स्वभै प्रसन्न मुख
मुख स्वभै सुभ वयन वयन स्वभै जु भजि दुख
दुख स्वभै परकज्ज कज्ज सोभै निरलोम्भ मह
लोम्भ सोभै पर हितह हितह सोभै मो सभु मह
सोभै जो किति नरहरि निरखि नृपति दुवन गुनिजन भुवन
सोभै सो भवनु जीवनु जनमु सो जुपो रुक्मिनि रवन ॥[1]

नरहरि ने हरि-भक्ति की प्रेरणा करते हुए विशिष्ट गुणों के समावेश तथा अवगुणों और कुसगति के परिहार के उपदेश भी दिये हैं :—

नसै प्रीति अति लोभ नसै वासरु अदत्त जॅह
नसै द्रव्य कह जय गीत नसै कुकठ पॅह
धर्मु नसै अभिमान राजु नसै हट रँगह
कुल कपूत ते नसै बुद्धि नसै जु कुसगह
सुख नसै पराए जमिन ह्वै नसै दुःख सब सग बिन
मन कसित निरखि नरहरि कहै नसै जन्मु हरि भक्ति बिन ॥[2]

उन्होंने मनुष्य की सम-विषम परिस्थितियों तथा प्रारब्ध आदि के उल्लेख निम्नलिखित छद में किये हैं :—

कबहुँक काजु माजु सुष सपति कबहुँक विपति विषम दुष पैए
लिपे लिलाट पट्ट विधि आखर मिटहिं न कोटि जतन धपि धैए
नरहरि नर नरपरि सुणहुँ अब बिन हरि भक्ति अत पछितैए
वित के घटे घटतु नही नरु साहसु सत्य घटे घटि जैए ॥[3]

नरहरि अकबरी-दरबार के वयोवृद्ध कवि थे जिन्होंने हुमायू, शेरशाह आदि की विषम परिस्थितियों तथा अकबर की कठिनाइओं का स्वय अवलोकन किया था जिनके फलस्वरूप ईश्वर विश्वास की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने नीति-उपदेश के काव्य को अपनी रचनाओं में एक विशिष्ट स्थान दिया।

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १२९
२ „ „ „ छद सख्या १३०
३ „ „ „ छद सख्या ३३

ब्रह्म को रचनाओं मे नीति-उपदेश के कई छद उपलब्ध होते हैं। उनमे कवि ने लोक-ज्ञान का समुचित दिग्दर्शन कराया है। ब्रह्म दरबार के उच्च पद पर थे और भक्ति भावना तथा राजनीतिक अनुभवो से प्रेरित होकर उन्होंने ये छद लिखे हो तो असभव नहीं।

जीवन की अस्थिरता का परिचय कवि ने निम्नलिखित छद मे दिया है.—

बीच ही मिल्यो है साथ हाथ ही भयो असाथ दारा सुत मीत बधु दीन भलो भाखिए
हाटक एरु हाथी कोन के भये है साथी लागे बेर लाप पाए तउ अभिलाखिए
ब्रह्म भने नाथ ही को नीको नातो नीको विति विषय विरचि के पिउप रस चाखिए
साथ ही रहत रहत साथ छोडे न छुटत साथ साथ आन साथि जाइ साइ साथ राखिए ॥[1]

दु.खी मन को सात्वन देते हुए कवि ने ईश्वर मे अपने अटल विश्वास का परिचय दिया है :—

जब दात न थे तब दूध दिया अब दात भए कहा अन्न न दैहै
जीव पसेहि जल म औ थल म तिनको सुध लेइ सो तेरा लहै
जान को अदेत अजान को देत जहान को दत सो ताहूँ को दैहै
काहे को सोच करै मन मूरख सोच करे कछू हाथ न ऐहै ॥[2]

नीति सम्बधी तथ्यों के उल्लेख कवि ने निम्नलिखित छद में सरल ढग से कर दिय हैं —

नमे तुरी बहु तेज नमे दाता धन देतो
नमे अब बहु फल्यो नमे जलधर वर सतो
नमे सुकवि जन शुद्र नमे कुलवन्ती नारी
नमे सिह गय हने ते नमे गज बैल सम्हारी
कुदन इमि कसियो नमे वचन ब्रह्म सचा सच्चवे
पर सूखा काठ अजान नर टूट पडे पर नहि नमे ॥[3]

ब्रह्म की रचनाओं में उपर्युक्त उदाहरणों से जैसा स्पष्ट है, उपदेश के ही अधिक छद मिलते हैं। इससे ज्ञात होता है, नीति-विवेचन की ओर कवि की दृष्टि सभवत उतनी नहीं थी जितनी उपदेश की।

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ६२
२ ,, ,, ,, छद सख्या ६५
३ ,, ,, ,, छद सख्या ६६

तानसेन के पदों में भी नीति-उपदेश सम्बधी बातों के थोडे उल्लेख मिलते हैं। इनमें उपदेशात्मक छदों की ही अधिकता है। धैर्य-धारण मनुष्य जीवन का एक प्रधान गुण है। तानसेन ने इसका उपदेश अकबर को निम्नलिखित पद में दिया है :—

धीरे धीरे धीरे मन धीरे ही सब कुछ होय
धीरे राज धीरे काज धीरे योग धीरे ध्यान धीरे सुख समाज जोय
धीरे तीरथ धीरे व्रत सयम धोर ही को सतसग साथ के बेठ मन को धीरे रासोय
तानसेन कहे सुनो शाह अकबर एतो बडो राज एती बडी बादशाही धीरे ही ते पाई सोय ॥[1]

इनके पूर्ववर्ती कवि कबीर ने भी भाव का सकेत अपनी एक साखी में उदाहरण के रूप मे किया है।[2]

तानसेन ने मन-प्रबोधन के कई पद गाये थे जिनका परिचय इनकी रचनाओं से मिलता है। इनके कुछ उपदेश भक्ति-भावना से भी प्रेरित हैं। इनमे नीतिसम्बन्धी बातों के उल्लेख प्रायः नहीं के बराबर हैं।

गग ने व्यावहारिक जीवन को सफल बनाने के लिये नीति और उपदेश सम्बन्धी तथ्यों के कई स्थलों पर वर्णन किये हैं। राजनीति की ओर उनका कोई लक्ष्य ज्ञात नहीं होता। अपनी सूक्तियों द्वारा उन्होंने इस प्रकार के वर्णन को रोचक बनाने का भी यत्न किया है। कवि के ये तथ्य सवैये, कवित्त तथा कुछ स्थलों पर छप्पय छदों में भी निरूपित हुए हैं।

निम्नलिखित छद मे कवि ने कई तथ्यों के एक ही स्थान पर स्पष्ट रूप में वर्णन कर दिये हैं :—

ज्ञान घटे कोउ मूढ की सगति ध्यान घटे बिन धीरज लाए
पीति घटे कोउ गूगे के आगे मान घटे नित ही नित जाए

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग पद सख्या ४९

२ धीरे धीरे रे मना धीरे ते सब कुछ होय।
माली सीचे सौ घडा रितु आए फल होय ॥
कबीर वचनावली, दोहा सख्या ५८३

सोच घटे कोउ साधु की सगति रोग घटे कछु ओखद खाए
गग कहै सुन शाह अकब्बर पाप घटे हरि के गुन गाए ॥[1]

उपर्युक्त छद में 'प्रीति घटे कोउ गूगे के आगे' की उक्ति से कवि के प्रेम-मनोविज्ञान का परिचय मिलता है। प्रेम का विकास प्रत्युत्तर के अभाव म सभव नहीं होता। छद में लौकिक तथा पारलौकिक दोनों के अभ्युदय की ओर सकेत किया गया है।

गुणी व्यक्ति ही गुण-विशेष की पहिचान कर सकते हैं अन्य नहीं। इसी तथ्य का उल्लेख कवि ने कई छदों मे किया है। निम्नलिखित कवित्त मे इसी का वर्णन है.—

गुनियन रसन बीच बसन फुलेलन को बोले औ खोले बिन कैसे कर जानिए
जुरेंगे बिरादरी महीपन की जहा चारु गुनी औ गवार तहा कैसे पहचानिए
मोती मोती एक रग मोल भाति भाति कहै जौहरी के आए बिन कैसे कर जानिए
कहै कवि गग देखा भवर कुरेवा दोउ एक रग डार बैठे कल पहचानिए ॥[2]

मनुष्यता की कसौटी बचन-रक्षा है और इस सम्बन्ध में ऐसी ही और समान उक्तियों का निर्वाह कवि ने निम्नलिखित कवित्त में किया है।

दुष्टन की प्रीति कहा खार बिन खेत जैसे प्रीति बिन मित्र वाकु चिराहू न आनिये
मति बिना मोह औ नूर बिन नारी कहा अर्थ बिन कवि वाकू पशू ज्यों प्रमानिये
तोपे बिन फौज कहा हस्ती बिन हौदा जैसे द्रव्य बिन देवे दान देवधर मानिये
कहै कवि गग सुनो साहिन के साहि सूरा आदमी को मोल एक बोल मे पिछानिये ॥[3]

उपर्युक्त छद मे कवि ने 'अर्थ बिन कवि' की उक्ति द्वारा कवित्व के आदर्श 'अर्थ-गौरव' का स्पष्ट रूप से सकेत किया है।

गग ने निम्नलिखित छद मे फूट के कुपरिणाम का वर्णन कर पारस्परिक प्रेम-भावना को जगाने का प्रयास किया है—

फूट गए हीरा की कनी बिकानी हाट हाट कहुँ घाट मोल कहु बाढ मोल को लयो
टूट गई लका फूट मिल्यो जो बिभीषन है रावन समेत वस आसमान को गयो

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १०८
२ ,, ,, ,, छद सख्या ९९
३ ,, ,, ,, छद सख्या ९५

कहे कवि गग दुरयोधन से छत्रधारी तनक मे फूट ते गुमान वाके नै गयो
फूट ते नरद उठि जाति बाजी चौसर की आपसु के फूटे कहु कौन को भलो भयो ॥[१]

कवि गग ने इसी प्रकार मनुष्य-जीवन की छोटी-छोटी बातों के सांगोपांग अध्ययन का समुचित परिचय अपने इन छ दों में दिया है। इनकी बहुत सी सूक्तिया जनप्रचलित भी हो गई हैं।

रहीम हिन्दी-भाषा के उन कवियों में हैं जिनके नीति-उपदेश सम्बधी दोहे हिन्दी-भाषी जनता के मस्तिष्क में बैठ गए हैं। इसका कारण यह है कि उनके उन दोहों में मर्मस्पर्शिता कूट-कूट कर भरी है। उनके ये नीति के वचन शब्दों के कोरे वाक्य नहीं हैं वरन् उन्होंने स्वय जीवन के घात प्रतिघात के बीच इनकी अनुभूति प्राप्त की थी। रहीम के इन दोहों में विषय की दुरूहता, भावशिथिलता और कल्पना की झूठी उडान नहीं झलकती। उनकी जीवन से प्रेरित काव्यानुभूति अपनी दिव्य छटा का प्रसार करती हुई पाठक के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। यहा उनके कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं।

मनुष्य को अपनी मर्यादा के भीतर रहने के लिये रहीम ने निम्नलिखित उपदेश दिया है :—

रहिमन अती न कीजिये गहि रहिये निज कानि।
सेजन अति फूलै तऊ डार पात की हानि ॥[२]

'घर का भेदी लका ढावे' उक्ति का आश्रय लेकर कवि ने निम्नलिखित उदाहरण में मार्मिकता के साथ आसू के रहस्य को स्पष्ट किया है :—

रहिमन असुवा नयन ढरि जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते कस न भेद कहि देइ ॥[३]

रहीम ने निम्नलिखित दोहे मे अपनी राजनीतिक सूझ-बूझ का परिचय दिया है। यदि शासक दिन को रात कहे तो उसे तारे भी दिखा देना चाहिये :—

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १०७

२ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १६

३ " " १६

रहिमन जो रहिबो चहै कहै वाहि के दांव।
जो वासर को निसि कहै तौ कचपची दिखाव ॥[1]

कवि ने आडम्बरपूर्ण प्रेम को खीरा के स्वरूप से उदाहरण देकर सुंदर भावाभिव्यक्ति की है :—

रहिमन प्रीति न कीजिए जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला भीतर फाके तीन ॥[2]

रहीम ने मान-निर्वाह के भी दोहे दिये हैं :—

रहिमन तब लगि ठहरिए दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं तुरतहिं करिय पयान ॥[3]
रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे मोती मानुष चून ॥[4]

उपर्युक्त दोहे में कवि ने पानी में 'यमक' की छटा भी दिखाई है। रहीम ने इसी प्रकार क्रोध, लोभ मोह आदि के निवारण, सुसगति तथा कुसगति के प्रभाव आदि सम्बन्धी विषयों पर भी उपदेशात्मक दोहे लिखे हैं जिनमे उक्ति-वैचित्र्य तथा भावों के सुन्दर प्रयोग हुए है।

उक्ति-वैचित्र्य

कवि अपने काव्य के वर्ण्य-विषय में घुल-मिलकर उसकी तीव्रानुभूति कराने के लिये कल्पना का आश्रय लेते हुए जब किसी स्थल-विशेष के वर्णन को चमत्कारपूर्ण बना देता है तो वे स्थल काव्यगत उक्ति-वैचित्र्य के उदाहरण होते हैं। प्रायः ऐसे स्थलों पर कवि की सुन्दर भावव्यजना का भी परिचय मिलता है। किन्तु इस प्रकार की रचना के लिये कवि में गहरी सूझ, अनूठी कल्पना और शब्द की लक्षणा-व्यजना शक्ति का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इसमें कवि तथ्यों के विचित्र प्रकाशन द्वारा उच्च कला की सृष्टि करता है। प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में उक्ति-वैचित्र्य के

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १९
२ ,, ,, २०
३ ,, ,, पृष्ठ १९
४ ,, ,, पृष्ठ २०

बड़े सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। इन कवियों ने इस प्रकार की रचना के लिये कल्पना क उचित आश्रय लिया है।

नरहरि की रचनाओं मे उक्ति-वैचित्र्य के एक दो उदारण ही मिलते हैं। निम्नलिखित दोहे में कवि ने सज्जनों को परखने के लिये विपत्ति-कसौटी का परिचय दिया है :—

नरहरि सुख सगी सबै परै जो दुख मे चीन्हि।
मोनो सज्जन कसन को सो विपत्ति कसौटी कीन्हि ॥[1]

ब्रह्म ने अपने काव्य के कुछ स्थलों पर वस्तु की महत्ता का बोध कराने के लिये सुष्ठु कल्पना का सहारा लेकर चमत्कार ला दिया है। रमणी की वेणी वस्तुतः मुख को आश्रित रहती ही है किन्तु कवि ने इस तथ्य की कल्पना निम्नलिखित प्रकार से कर उसे विलक्षण ढग से व्यक्त किया है :—

आजि एक ऐसो अचरज को तमासो देख्यो पन्नग के माथे उयो पूरन पून्यो को ससि
सारग है मीन कीर कोकिला के कलरव सुपक सुरग बिंब सुन्दर सरस असि ॥[2]

शिशिर ऋतु में प्रातःकाल जलाशयों का जल कुछ गर्म रहता ही है, किन्तु कवि ने इस तथ्य को अनूठे ढग से व्यक्त किया है :—

एक समै लकापति रावन आनि हरी सिय राम की रानी
कोपि चढे दशरत्थ के नन्दन अजनि पूत भयो अगवानी
बाधि लगोट कगूर चढयो अरु लक जरी धरती अकुलानी
जाय समुद्रहिं पूछ बुझी इहि कारन प्रात भभात है पानी ॥[3]

कवि ब्रह्म के कई अन्य छदों में भी कल्पना-वैचित्र्य का परिचय तो मिलता है किन्तु उनके कहने के ढग में किसी प्रकार की विशेषता प्रदर्शित नहीं की गई है।

तानसेन ने एक-दो पदों में कमनीय कल्पना का आश्रय लेकर उक्ति वैचित्र्य के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। यहाँ उनकी कल्पना औचित्य की परिधि के भीतर ही हुई है।

चन्द्रमा शुक्लपक्ष और कृष्ण-पक्ष के अनुसार घटता-बढता रहता है और अपनी

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ८७
२ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या २६
३ „ „ „ छद सख्या ७७

दिशाओं को भी स्वाभाविक रूप से बदल देता है किन्तु इस कथन को कवि ने नायिका के मुख-सौंदर्य का हेतु बताते हुए कल्पना द्वारा इसे मर्मस्पर्शी और प्रभावपूर्ण बना दिया है :—

तुअ मुख औ चन्द्रमा विरचि तुलाकार तोलनौ
ओछो आकाश गयो धुकि धरणी रही निकाइ को भारो भरो री पला
याही ते शशी घटत बढत है देखि देखि तेरो वदन निर्मला
तो सम नाहिन पूजिये सब मिलि कलगी नाम धरयो निशि भ्रमत फिरत
न रहे अचला
तानसेन प्रभु सरस बस कर लीयो रूप आभारी रूप कला ॥[1]

तानसेन के रूप-सौंदर्य-वर्णन मे कल्पना-वैचित्र्य के ही अधिकतर उदाहरण मिलते हैं, उक्ति-वैचित्र्य के केवल एक-दो उदाहरण ही मिलते हैं।

गग की रचनाओं मे ऊहात्मक छन्दों की अधिकता है। किन्तु केवल कल्पना की उडान मे ही कवि नही रमा, वरन् कथन की विचित्रता भी देखने को मिलती है।

नीचे लिखे गग के छन्द मे उक्ति और कल्पना-वैचित्र्य का सुन्दर सम्मिश्रण देखने को मिलता है। भगवान ग्राह-ग्रस्त गजराज की करुण पुकार सुनकर छीर-सागर से पैदल ही दौड पडे। उनका प्रयाण देखकर गरुड भी उनकी सवारी के हेतु पीछे दौड पड़ा किन्तु वहाँ तो बात ही कुछ और हुई। भगवान ने ज्यों ही ग्राह के प्रति रोष प्रकट किया और उसे दड देना चाहा त्यों ही चक्र सुदर्शन द्वारा वहाँ उनके पहुँचने के पूर्व ही ग्राह का अत हो गया :—

गाढे गहौ गहिबो गुहारिबो विसारो कियो ए हो दीनबन्धु अब दीन कहू दलि गयो
श्रवण भनक परे धायो कमला को कत अस्त्र वस्त्र छाडि प्रभु वाहन वचलि गयो
भनि कवि गंग ताके पाछे पछिराज धायो अतल वितल तलातलहू वितल गयो
जो लौं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइबे को तौ लौं ग्राह ग्रीवा पै अगारु चक्र चलि गयो ॥[2]

उपर्युक्त छन्द में कवि ने कारण और कार्य को एक कालावछिन्न रूप में दिखाकर अपनी कला प्रदर्शित की है।

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या ८१

२ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ८६

नीचे लिखे छन्द मे भी गग ने उक्ति-वैचित्र्य का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

गयद की चुराई चाल मैदही को लक चोरयो मुख तेरों चद चोर्‌यो नासा चोरी कीर की
मृगनि के नैनि चोर्‌यो पिकनि के बैन चोर्‌यो ओठ तेरो लाल चोर्‌यो दत छवि हीर की
कहै कवि गग बेनी नाग ते चुराइ ल्याइ भौंह ते कमान पल पारथ के तीर की
जेते तुम लूटे ते पुकारत कन्हैया जू पे एतनि की चोरी कहा छपेगी अहीर की ॥[1]

उपर्युक्त छन्द में कवि ने कृष्ण को राधिका के रूप-सौंदर्य की ओर आकृष्ट करने के लिये सुन्दर उक्ति का आश्रय ग्रहण किया है।

सुख समय की सहचरी निद्रा भी दुःखावस्था में विरहिणी नायिका का साथ छोड देती है। निद्रावरोध उस काल का एक स्वाभाविक तथ्य है किन्तु कवि ने अपनी अद्‌भुत कल्पना द्वारा उस उक्ति मे लक्षणा का आश्रय लेकर विचित्रता ला दी है :—

कान्ह चले कहि आयो कछु न कपी कदली दल ज्यों थहरानी
सोचत ही सब द्योस गयो पुनि रात पुकारत राधिका रानी
आई निवास को ज्यों नित आवत आखिनहू ते रह्यो परि पानी
गग सु तो नाहीं फिरी उत बूडन के डर नीद डरानी ॥[2]

वस्तुतः निद्रा का निवास-स्थान नेत्र ही है और नेत्रों से जब आसुओं की प्रबल धारा बह रही है तो बेचारी नींद को भी लौट जाना पडा क्योंकि उसमें उसका प्रवाहित हो जाना अनिवार्य ही था।

गग ने कुछ और स्थलों पर भी उक्ति-वैचित्र्य के सुदर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं और उनमें आवश्यक कल्पना और शब्द की लक्षणा-शक्ति का आश्रय लिया है।

रहीम के दोहों मे ही उक्ति वैचित्र्य के सुदर उदाहरण मिलते हैं किन्तु उनके अन्य छदों में यह विशेषता देखने को नहीं मिलती।

मनुष्य का वैभव स्थिर नहीं रहता। आज जो वैभवशाली है वही कल दर-दर का भिखारी बन जाता है। लक्ष्मी किसी एक व्यक्ति के पास टिक कर नहीं रहती। कवि ने अपने वर्णन से इस कथन में अनूठापन ला दिया है :—

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १७
२ ,, ,, छद सख्या ६१

कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू क्यों न चचला होय ॥[1]

ईख में प्रत्येक स्थल पर रस नहीं रहता। जहाँ उसमें गाँठ होती है वहाँ रस का लेशमात्र भी नहीं मिलता। किन्तु विवाह मडप के नीचे नव वर वधू की प्रत्येक गाँठ में प्रेम-रस छलकता दृष्टिगत होता है। कवि ने इस भाव को पुनरुक्ति के सहारे निम्न-लिखित ढग से व्यक्त किया है :—

जहाँ गाँठ तह रस नहीं यह रहीम जग जोय।
मडए तर की गाँठ मे गाँठ गाँठ रस होय ॥[2]

हाथी का यह स्वभाव ही होता है कि वह अपनी सूड से धरती को टटोलता चले और इस प्रकार अपने मस्तक को धूल-धूसरित करता रहे। किन्तु कवि ने इसी के कथन में एक अनूठापन ला दिया है :—

धूर धरत नित सीस पै कहु रहीम केहि काज
जेहि रज मुनि पत्नी तरी सो ढूढत गजराज ॥[3]

हाथी के दो दात सूड मे बाहर की ओर निकले ही रहते हैं और उसका पेट भी बहुत बड़ा होता है परन्तु कवि ने इसी के तथ्य-निरुपण के लिये अद्भुत कल्पना का आश्रय लिया है :—

बडे पेट के भरन को है रहीम दुख बाढि।
याते हाथिहि हहरि कै दिये दाँत द्वै काढि ॥[4]

उपर्युक्त छदों से यह भी स्पष्ट है कि रहीम के सीधे-सादे शब्दों में लिखे गये छदों मे काव्य-कला का भी प्रस्फुटन हुआ है।

इस प्रकार प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में कल्पना की विचित्रता अधिकतर कथनों के अनूठेपन को व्यक्त करने के लिये ही प्रयुक्त हुई है। उनमें न तो कल्पना की ऊँची और बेपर की उड़ान है और न भाव-व्यजना का अभाव ही, वरन् आवश्यक

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ३
२ ,, पृष्ठ ६
३ ,, पृष्ठ ११
४ ,, पृष्ठ १२

कल्पना के साथ साथ शब्द की लक्षणा और व्यजना-शक्तियों का भी कुछ स्थलों पर उचित आश्रय लिया गया है। उक्ति-वैचित्र्य के अतर्गत अधिकतर अलकारों की छटा ही रहती है वही इन कवियों में व्यक्त हुई है।

भाषा

भाषा भावाभिव्यक्ति का प्रधान साधन है। भाव की अभिव्यजना श्रेष्ठ काव्य का लक्ष्य होता है। अतएव काव्य-कला की दृष्टि से भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाव कविता की आत्मा है तो भाषा शरीर। उत्तम काव्य की रचना के लिये दोनों की उच्चता अपेक्षित है। इनमें से एक भी निर्बल हुआ तो काव्य छटा धूमिल सी दृष्टि-गत होने लगती है। भाषा काल और परिस्थिति के अनुसार विकास को प्राप्त होती है। इसलिये भाषा विशेष पर सम्यकरूपेण विचार करने के लिये उसके विविध रूपों पर भी दृष्टिपात करना समीचीन होता है।

नरहरि, ब्रह्म, गग आदि कवियों के समय मे उत्तरी भारत मे पश्चिमी-हिन्दी के अतर्गत सब से अधिक समृद्ध और ललित ब्रज-भाषा थी और यही अकबर के काल मे काव्य की प्रधान भाषा रही। पूर्वी हिन्दी की अवधी-बोली का भी प्रचार था। सूफी हिन्दी कवियो तथा तुलसीदास ने उसका प्रयोग अपने काव्य मे किया है। परन्तु उसका क्षेत्र ब्रज के समान विस्तृत नही था। अत दरबार के इन कवियों की रचनाओं की मुख्य भाषा ब्रज ही मिलती है। इनमें अवधी का व्यवहार बहुत कम मिलता है। रहीम के 'बरवै नायिका-भेद,' फुटकर बरवा तथा नरहरि के छप्पय की भाषा अवश्य अवधी है और बरवै, छप्पय छद विशेष रूप से अवधी मे ही फबते हैं। ब्रह्म, गग, तानसेन आदि की ब्रज-भाषा पर पश्चिमी हिन्दी की कनौजी, बुन्देली आदि बोलियो का भी प्रभाव पडा है। यह प्रभाव कवियों की व्यक्तिगत स्थानीय विशेषता के कारण जान पडता है। अकबरी दरबार की राजकीय भाषा फारसी थी और जैसा पहले कहा जा चुका है कि अनेक फारसी के कवि दरबार में उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त भारत के कोने-कोने से गुणी व्यक्ति भी दरबार में एकत्र हुए थे। अतएव इन सब में भाषा की विविधता स्वाभाविक ही थी। फारसी भाषा का स्पष्ट प्रभाव इन कवियों की रचनाओं पर मिलता है। उक्त कवियों की रचनाओं में फारसी शब्दों के व्यवहृत होने के कारणों पर कुछ विचार कर लेना यहाँ अप्रासगिक न होगा।

अकबर के नवीन राजकीय धर्म 'दीने-इलाही' मे इस्लाम-धर्म के प्रभाव का लोप नहीं हो गया था। इस्लाम से सम्बन्धित आवश्यक शब्द सभी दरबारी व्यक्तियों तथा कवियों के मस्तिष्क में बैठ गये थे और कवियों ने उनका प्रयोग अवसर उपस्थित होने पर अपनी रचनाओं मे किया था। तत्कालीन रहन-सहन, पहनावे, बातचीत की शैली, फारसी, तुर्की वाद्यों, युद्ध-कौशलादि से सम्बन्धित, विदेशी अनेक हथियारों, शासन के विविध सूत्रों के लिये फारसी तथा विदेशी नामों के व्यवहार बराबर मिलते हैं। अल्लाह, हाल, साहब, रहीम, रहमान, करीम, परवर्दिगार, हजरत, अली, आलम, दीदार आदि शब्द इस्लाम-धर्म के प्रभाव के कारण इन कवियों की रचनाओं मे मिलते हैं। रहन-सहन, पहनावे के लिये मुकाम, आराम, सूम, गरीब, दाग, हरम, खरच, जुल्फे, जेहरि, हमेल, तावीज, आदि, बातचीत के लिये मुबारक, अरज, यार, अफसोस, सरम, गरूर, निहाल, नजर आदि, वाद्यों के सहनाई, रबाब, डफ आदि, युद्ध-कौशलादि से सम्बन्धित फौज, तरवार, कूच, दमामा, मुहीम, निसान, डका, कमनैत, बन्दूक आदि, शासन के विविध पदों और शब्दो के लिए प्यादा, मीर वजीर, सवार, सरदार, फरमान, खिताब, हुकुम, साह, गस्त आदि, विविध प्रकार के पेशों के अनुसार सराफ, बजाज, रगरेज आदि शब्दों के प्रयोग प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में यत्र तत्र मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ और भी शब्द हिन्दू-यवनों के सपर्क के फलस्वरूप प्रयुक्त हुए हैं जैसे गरज, दर-दर, कागद, इज्जत, जरद चुगल, मसक, बिकरार, दिल्दार, रेखता, हजार, अकल, हाला, जजीर, दरम्यान, तखत, रद्दी, बगसाइये, कबूल, मुलक, मुसाफिर, खास, दरार, खवास, ईद आदि। इन कवियों की विशेषता यह है कि केवल कुछ शब्दों को छोड कर सभी विदेशी शब्दो के प्रयोग हिन्दी के ढग पर हुए हैं, जो उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट ही हैं। फारसी और अरबी शब्दों को अपनाये जाने के जिस ढग का निर्देश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दो सौ वर्ष बाद किया था वह इन कवियों की रचनाओं मे पहले से ही मिलता है। तालव्य, ऊष्म ध्वनि के स्थान पर दन्त्य, मात्राओं की घटा-बढी, 'स्वर भक्ति' द्वारा सयुक्त व्यजनों के बीच में स्वर-आयोजना जैसे खर्च7 खरच, अर्ज7 अरज, शर्म7 सरम आदि तथा विदेशी शब्दों के वर्णों के नीचे से बिन्दु का लोप कर उन्हें हिन्दी का स्वरूप देकर अपनाया गया है।

प्रस्तुत कवियों मे गग और रहीम ने फारसी-शब्दों के व्यवहार अपने काव्य में अधिक किये हैं। नरहरि, ब्रह्म और तानसेन में इनके प्रयोग कम हैं। इस सम्बन्ध में

कुछ उदाहरण यहाँ देना असगत न होगा। नरहरि ने अपने एक, दो छदों की भाषा बिल्कुल फारसी रखी है। यहाँ उसका एक उदाहरण निम्नाकित है—

नेक बख्त दिल पाक सखी ज्वा मर्द शेर नर
अव्वल अली खुदाय दिया विसियार मुल्क जर
तुम खालिक बहु वेश शकुन सालिया अमालिम
दौलत बख्त बुलन्द जग दुश्मन पर जालिम
इन्साफ तुरा गोयद खलककवि नरहरि गुफतन चुनी
बाबर न बरोबर बादशाह मन दिगर न दीदम दर दुनी ॥[1]

तानसेन की रचनाओं के भक्ति-प्रसग में फारसी-शब्दावली से पूर्ण कई पद उपलब्ध होते हैं जिनसे तानसेन के इस्लाम-धर्म के सपर्क का परिचय मिलता है।

गग की रचनाओं में फारसी-शब्दावली के दो छद उपलब्ध होते हैं[2] जिनमें प्रत्येक की दो पक्तियाँ इसी प्रकार की हैं। निम्नलिखित छद इसका उदाहरण है :—

एक समय घर से निकसी सखियान के सग सु सावल सूरत
बाम्ज नाद नमूद सनम वेताब शुदम अफजूद कदूरत
मुसकाय कै मो तन ताकि दियो तिरछी अखियाँ चितवन को मरूरत
होशम रफ्त न मुन्द वदस्त शुदे दिल मस्त जिदीदने सूरत ॥[3]

रहीम, अरबी, फारसी, तुर्की तथा हिन्दी भाषाओं के पूर्ण पडित थे। इन सब में उनकी समान गति थी। अपनी हिन्दी-रचनाओं में उन्होंने यत्र-तत्र फारसी शब्दों के व्यवहार तो किये हैं किन्तु उनके कुछ छदों की शब्दावली तो बिल्कुल फारसी ही है :—

मी गुजरत ई दिलरा बे दिलदार
इक इक सा अत हमचू साल हजार ॥[4]
कै गोयम अहवालम पेश निगार
तनहा नजर न आयद दिल लाचार ॥[5]

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १२८

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या ३०

३ देखियें, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १७४

४ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७०

५ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७१

सभव है इन फारसी-शब्दावली पूर्ण छदों से दरबार के फारसी भाषा के कवियों, विशेषत, मुल्ला-मौलवी, अधिकारी-वर्ग तथा स्वय शासक को आनद-लाभ हुआ हो किन्तु हिन्दी भाषा भाषी जनता के लिये ये छद ग्रीक, लेटिन के सदृश ही दुरूह हैं। हा, इनसे प्रस्तुत कवियों की भाषा-विविधता के ज्ञान का परिचय अवश्य मिलता है।

इन दरबारी कवियों की भाषा की कुछ विशेषताएँ भी द्रष्टव्य हैं। हिंदी के 'अर्धतत्सम' तथा 'तद्भव' शब्दों के ही अधिक प्रयोग हुए हैं। आधुनिक खड़ी बोली हिन्दी की भांति 'तत्सम' शब्दों के प्रयोग का प्रायः निराकरण मिलता है। 'स्वर-भक्ति' 'स्वरागम', 'स्वर-सकोच' आदि द्वारा उनकी यह विशेषता प्रकट ही है। उदाहरणतया भक्त>भगत, पुरुषार्थ>पुरुपारथ, क्लेश>कलेस, स्नेह>सनेह, रत्न>रतन, वर्ण> वरन, मुग्ध>मुगध, दर्शन>दरसन, मुक्त>मुकत, दीर्घ>दीरघ, लवण>लोन, पर-मेश्वर>परमेसुर, अवधि>ओधि आदि। प्राकृत भाषा के कुछ शुद्ध प्रयोग भी इनमें से नरहरि की रचनाओं मे मिलते हैं :—मित्त<मित्र, अक्खर<अक्षर, कज्ज<कार्य, अप्प< आत्मा, कित्ति<कीर्ति, विज्जु<विद्युत, दुजन<दुर्जन, समत्थ<समर्थ, पेम्म<प्रेम, पुहुप<पुष्प आदि।

पहले कहा जा चुका है कि प्रस्तुत दरबारी कवियों की रचनाओं पर ब्रजभाषा की सजातीय बोलियों—कनौजी, बुदेली के भी प्रभाव पड़े हैं और यह उन कवियों की स्थानीय विशेषता और उनके देश देशातर के पर्यटन के फलस्वरूप कहा जा सकता है। ब्रज और कनौजी में 'अकारात' सज्ञाओं के स्थान पर 'उकारात' रूप प्रायः अधिक मिलता है। नरहरि के काव्य में मानु, धनु, षिताबु, चदु, जसु, आजु, आदि, ब्रह्म के छदों में प्रतिबिबु, तपु, भेदु, जपु, बपु, तनु, कबु, आदि, गग मे घरु, सगु, साहसु, गगु, नीरु, जनमु, जतनु आदि, रहीम ने भी आजु, काजु आदि कनौजी रूपों के व्यवहार किये हैं। कनौजी के भूतकाल का रूप 'हते' अथवा 'हुतौ' का प्रयोग भी मिलता है—

'आवत हुतौ शिव सैल ते गिरीश जाचे मिल्यौ हुतौ मोहि जहाँ सागर सगर को',
हुती लरिकाई, ता दिन में तदुल हते (गग)
हुतो कहि कौन को, लोगनि में हुती खांची (ब्रह्म)
बुन्देलखण्डी का प्रभाव गग और रहीम की रचनाओं पर पड़ा है :—
आनबी, सानिबी, बखानबी, जानबी आदि (गग)
सराहिबी, काहिबी, लाहिबी, साहिबी आदि (रहीम)

बुंदेली के प्रथम पुरुष सर्वनाम 'में' का प्रयोग प्रस्तुत कवियों के काव्य मे मिलता है—में अपुबल (नरहरि), में तो सुन्यो है, मे तो जान्यो (ब्रह्म), में वारी, मे पायो री (तानसेन)। ब्रह्म के छ्दों में ब्रज-भाषा के बीच एक-दो स्थलों पर अवधी की क्रियाओं का प्रयोग हुआ है—दूसरो आहि न दूसरो देखिए, भविष्य क्रिया के रूप दीबो, कीबो, पीबो आदि। गग ने तकिबे, ढकिबे, चकिबे, लीबे, दीबे आदि अवधी-क्रियाओं के प्रयोग अपनी रचनाओं में किये हैं। राजस्थानी के कुछ शब्दों के प्रयोग भी इनमें से कुछ कवियों ने किया है। नरहरि के छदों मे बढ्ढे लज्या, भज्या आदि, ब्रह्म के में बड्डी, बढी, जान्या आदि शब्द मिलते हैं। अरबी शब्द 'इजार' से—'इजारे लेत है' और फारसी शब्द 'बख्श' से 'बगसाइए' हिन्दी-क्रियाओं के रूप बनाये गये हैं।

हिन्दी की खडी बोली का भी उस समय विकास हो गया था और हिन्दी की ब्रज, अवधी, कनौजी आदि बोलियों की भाँति ही उसका भी प्रयोग जनता मे प्रचलित था। मेरठ, मुजफ्फरनगर आदि तथा दिल्ली के आस-पास के प्रदेशों में इस बोली का विस्तार था। हिन्दी-भाषा के सम्बन्ध में प० चन्द्रबली पाडे ने लिखा है :—

.फिर भी अकबर के शासन मे भाषा का महत्त्व कम नहीं हुआ बल्कि स्वय अकबर के अपना लेने से उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ गई। वह सचमुच भारत की राष्ट्र-भाषा बन गई। दक्षिण के बहमनी राज्य मे उसे दफ्तर में भी जगह मिली और हिन्दी हिन्द की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। . उसके (प्रजा) काम काज, लेन देन, बनिज-व्यापार आदि की भाषा वही भाषा थी। फारसी की जरूरत तो तब नजर आती थी जब हुजूर के फरमान निकलते थे या हुजूर से किसी खास रहम की हाजत होती थी।[1]

उक्त कथन से स्पष्ट होता है कि दरबार के भीतर और बाहर राजकीय विशेष कार्यों के अतिरिक्त बोल-चाल के लिये हिन्दी-भाषा ही व्यवहृत होती थी। हिन्दी-भाषा की खडी बोली में फारसी-अरबी शब्दों के भी प्रयोग होने लगे और हिन्दी का वह रूप 'रेख्ता' कहलाया। खड़ी-बोली हिन्दी के पहले कवि अमीर खुसरो थे जिन्होंने 'खालिकबारी' नामक कोष फारसी, अरबी तथा हिन्दी भाषा के अर्थों को स्पष्ट करने के लिये लिखा था और जिसका प्रचार देश-देशान्तर में किया गया।[2] अमीर खुसरो का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। हिंदी की खड़ी बोली का स्वतन्त्र रूप में प्रयोग केवल कवि गग की रचनाओं

१ कचहरी की भाषा और लिपि, पृष्ठ १२, १३

२ दि लाइफ एन्ड वर्क्स आव् अमीर खुसरो, पृष्ठ २३१

मे मिलता है। इनकी 'चद-छद वरनन की महिमा' की भाषा खडी बोली हिंदी है जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है। उक्त पुस्तक की कुछ पक्तियाँ निम्नोद्धृत हैं—

'सिद्धि श्री १०८ श्री श्री पातसाहि जी श्री दलपति जी अकबर साह जी आम खास में तखत ऊपर विराजमान हो रहे हैं और आम खास भरने लगा है जिसमे तमाम उमराव आय आय कुर्निश बजाय जुहार कर के अपनी अपनी बैठक पर बैठ जाया करे अपनी अपनी मिसल से। जिनकी बैठक नहीं सो रेसम के रस्से में रेसम की लूमें पकड़ पकड के खडे ताजीम में रहे। . . इतना सुन के पातसाहि जी श्री अकबर साहि जी आद सेर सोना नरहरदास चारन को दिया। इनके डेढ सेर सोना हो गया रास वचना पूरन भया। आमखास बरखास हुआ।'[1]

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि फारसी के कुछ व्यावहारिक शब्द ही ग्रथ मे प्रयुक्त हुए हैं जिनका उसमे आ जाना स्वाभाविक ही था। क्योंकि फारसी उस समय दरबार की राज्य-भाषा थी।

रहीम की 'मदनाष्टक' रचना की भाषा खडी बोली हिन्दी ही है। किन्तु इसमें सस्कृत के कुछ शब्दों के प्रयोग सविभक्तिक रूप में हुए हैं। इस रचना के कुछ छद देखे जा सकते हैं :—

शरद निशि निशीथे चाँद की रोशनाई।
सघन बन निकुजे कान्ह वशी बजाई॥
रति पति सुत निद्रा साइयाँ छोड भागी।
मदन शिरसि भूयः क्या बला आन लागी॥
जरद वसन वाला गुल चमन देखता था।
झुक झुक मतवाला गावता रेखता था॥
श्रुति युग चपला से कुन्डल झूमते थे।
नयन कर तमाशे मस्त ह्वै घूमते थे॥[2]

उक्त छद में 'रेखता' का प्रयोग छद विशेष के लिये किया गया है न कि भाषा के लिये। ग्रथ मे फारसी-भाषा के प्रचलित रोशनाई, जरद, गुलचमन, जुल्फें आदि शब्दों के ही प्रयोग हुए हैं।

---

१ हिंदी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४८६

२ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७३

प्रस्तुत दरबारी कवियों की रचनाओं में भी इस प्रकार खड़ी-बोली के प्रयोग यत्र-तत्र मिलते हैं।

रहीम की निम्नलिखित पक्तियों में खडी-बोली के शब्द प्रयुक्त हुए हैं :—

जिहि कारन बार न लाये कछू गहि संभु सरासन दोय किया।
गये गहेहि त्यागि के ताहि समै सुनि कै पिता बनवास दिया ॥[1]

इस प्रकार इन कवियों की/भाषा का मूल ढाँचा ब्रज-भाषा का ही है किन्तु उसमें अपनी मातृ-भाषा एव विशेष प्रसग, अवसर और सपर्क के अनुसार फारसी, सस्कृत भाषाओं तथा राजस्थानी, अवधी, खडी बोली आदि का मेल दिखाई देता है क्योंकि उस समय का आदर्श भाषा की पूर्ण शुद्धता न होकर भाषा के विविध प्रकारों का आवश्यकतानुसार चमत्कारपूर्ण समिश्रण था।

उपर्युक्त विवेचन भाषा को दृष्टि में रखकर किया गया है किन्तु कहा तक इन कवियों की भाषा काव्य सौष्ठव मे सहायक हुई है उसका भी विचार करना आवश्यक है। उनकी भाषा में शब्द-चयन विषय के अनुकूल ही हुआ है। वाक्य विन्यास सुव्यवस्थित है। काव्य में कोमला तथा उपनागरिका वृत्ति के प्रयोग बाहुल्य के साथ हुए हैं। तदनुसार उनकी भाषा मे माधुर्य और प्रसादगुण अधिकाश रूप में मिलते हैं। कुछ स्थलों पर वीर एव रौद्र भावाभिव्यक्ति में परुषावृत्ति का प्रयोग भाषा को ओजपूर्ण बना देता है। यह अवश्य है कि प्रत्येक कवि में सब वृत्तिया समान रूप में व्यवहृत नहीं हुई हैं। ब्रह्म और तानसेन की रचनाओं में परुषावृत्ति का अभाव है। इस सम्बन्ध के कुछ उदाहरण मनोरजक हैं।

नरहरि के काव्य में हिन्दी के प्राचीन रूप का अधिक प्रयोग है। कहीं-कहीं पर प्राकृताभास हिन्दी का ही प्रयोग उनकी रचनाओं की विशेषता है। किन्तु कवि की अन्य स्थलों की भाषा भावाभिव्यक्ति में किसी प्रकार पीछे नहीं रही है। निम्नलिखित छद इसका उदाहरण है :—

चरण कवल केलि की सी सील गति बाल फूली फिरै बेलि मानों कुंदन कनक की
नरहरि सुकवि सुगन्ध सुष सषिन के मधुर मधुर मधु बानक बनक की

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ७७

आजु बनमाला धरो माथे रघुनाथ जू के हाथनि सनाथ करो जाई तो जनक की
टूटत पिनाक पानि पान षान लागी सीता सुपनि धरक भई धाक ही धनुष की ॥[1]

वीर भावो के लिये कवि ने निम्नलिखित छद में ओजगुण का प्रदर्शन किया है :—

पूरब हद्द पछिम पहार दोउ षन किए विधि जानि अगाऊ
इत सुमेरु उत चढत लंक हय मारि तेग नरपति सब नाऊ
हिन्द ते पेदि पठान षग्ग वर दल दलमलि दरियाय बहाऊ
गज्जिहिं बहुरि जित्ति दिल्लीपति इमि हिडोल रच्यो साहि हुमाऊ ॥[2]

ब्रह्म ने 'स्वातः सुखाय' रचना की थी। इसलिए शांत और शृगार की ही अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में अधिकतर हुई है, वीर अथवा रौद्र की नहीं।

निम्नलिखित छद में भाषा का माधुर्य और प्रवाह अवलोकनीय है :—

जब ते नदलालु चितै चलिगे सग ही चलि चेटकु सो कछु कीनो
नेकु जो देखो दिखाई जु मोहि सु देखे हियो हरिजू हरि लीनो
ब्रह्म भने तलफै दो नैन बिसेखेहिं नीर ते न्यारे के मीनो
गए गडु आखिनि में सजनी बडबी आखियानि बडो दुख दीनो ॥[3]

तानसेन के पदों में भाषा का माधुर्य और प्रसाद गुण भली प्रकार सुरक्षित है :—

ओढे सारी प्यारी केसर की रग छिरकी छिरकी
चितवन मे वश कीन्ही मोहन को याते फिरत थिरकी थिरकी
अबीर गुलाल लिए भर झोरी रग की कमोरी शिर ठिरकी टिरकी
तानसेन सो फगुआ लीन्हों याते डोलत हिरकी हिरकी ॥[4]

निम्नलिखित पद अपनी माधुर्य-व्यजकता के उदाहरणस्वरूप रखा जा सकता है :—

माई री महा कठिन भई मिल बिछुरे की पीर
घड़ी घड़ी पल छिन जुग से बीतन लागे नैनन भर भर आवत नीर

---

१ देखिय, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ४६
२ " " छद सख्या ८
३ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ५०
४ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या ८९

जब से प्यारो भयो न्यारो कल ना परत मेरी वीर
तानसेन के प्रभु वेग आवन कीनो जियरा धरत नहीं धीर ॥[1]

तानसेन के केवल एक पद में अकबर की वीरता-वर्णन में ओज गुण की थोडी सी झलक मिलती है :—

ए आयो आयो बलवत शाह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप औ अष्ट दिशा नर नरेन्द्र घर घर थर थर डर
निस दिन कर एक छिन पावे वरन न पावे लका नगर
जहाँ तहाँ जीतत फिरत है सुनीयत है जलालदीन महम्मद को लसकर
शाह हुमायू को नन्दन चन्दन एक तेग जोधा तकवर
तानसेन को निहाल कीजै दीजो कोटिन जरजरी नजर कमर ॥[2]

गग की रचनाओं में पदों की उत्तमता सराहनीय है। प्रसाद, माधुर्य और ओज गुणों का कवि के काव्य मे सम्यक् निर्वाह हुआ है।

निम्नलिखित छद कवि के प्रसाद-गुण का परिचायक है :—

बाधिबे को अजलि बिलोकिबे को काल ढिग राखिबे के पास जिय मारिबे को रोस है
जारिबे को तन मन भरिबे को हियो आखे धरिबो को पगमग गनिबे को कोस है
खाइबे को सौंहैं भौंहैं चढिबे उतारिबे को सुनिबे को तान ध्यान किए अपसोस है
बैरम के खानखाना तेरे डर वैरी वधू लीबे को उसास मुख दीबे ही को दोस है॥[3]

कवि ने माधुर्य-गुण का उदाहरण निम्नलिखित छद द्वारा प्रस्तुत किया है :—

केस पर शेष दृग चलन पर खजनी भौंह पर धनुष धरि सुरति सारों
दसन पर दामिनी कठ पर कोकिला अधर पर बिम्ब रहि रहि सम्हारा
जघ पर कदलि कटि छीन पर केहरी कुचन पर मेघ महा-मड टारों
जोति पर जोति छवि अगर पर गग श्री राधिका नखन पर चन्द्र वारो ॥[4]

वीर-रसोद्रेक में कवि गग ने ओज-गुण का परिचय दिया है :—

---

१ देखिय, तानसेन क ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १८१
२ ” ” छद सख्या १४६
३ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १८०
४ ” ” छद सख्या १८२

प्रबल प्रचड बली बेरम के खानखाना तेरी धाक दापन दिसान दह दहकी
कहै कवि गग तहा भारी सूर बीरिन के उमडि अखड दल प्रलै पौन लहकी
मच्यो घमसान तहा तोप तीर बान चले भडि बलवान किरिवान कोपि गहकी
तुड काटि मुड काटि जोसन जिरह काटि नीमा जामा जीन काटि जिमी आन ठहकी॥[1]

शात, शृगार की रसाभिव्यक्ति मे शब्द-सौष्ठव का प्रदर्शन सहज है किन्तु वीर, भयानक मे पद की उत्तमता को स्थिर रहना प्रत्येक कवि के लिये सभव नहीं है। गग की इसी उपर्युक्त विशिष्टता को लक्ष्य कर निम्नलिखित उक्ति प्रचलित हो गई है--

उत्तम पद कवि गग के उपमा मे बलबीर।
केशव अर्थ गम्भीरता सूर तीन गुन धीर॥

रहीम ने अपने दोहों, बरवो, सोरठों में भाषा के प्रसाद और माधुर्य-गुणों का ही प्रदर्शन किया है। ओज-गुण का कवि की रचनाओं मे अभाव है।

प्रस्तुत कवियों ने मुहावरा और लोकोक्तियों के प्रयोग से भी अपनी भाषा को सजीव बनाया है। यहाँ उनके कुछ प्रयोग दिये जाते हैं।

नरहरि

पछिताइ बहुरि कर मिडिबै, एक पथ दुइ काज, जरेउ पर जस लोन, सर्प मुख अगुलि मेल्लहि, मट्टिहि मिले, पान दे विदा करिय आदि।

ब्रह्म

गड़ गए आँखिन में, दाहिनो नयन फरकि उठ्यो, वामन ज्यों यह रैनि बढ़ी है, अपने घर को पनिओ पहिचानत बाहर डारत दूध फुही है, धूर धतूरे को पात भयो हौं, जीभ गहौ, उर आनतु नाहिन, अपनो करि के नहि राखतु, चित्त आइ परे आदि।

तानसेन

सिन्दूर माँग दीजिए, पावडे बिछाउगी नयन पलन, जो लौं जमुन गग पानी, ताके पायन शीश टेकौंगी, जादू सो कीनो, जो लौं ध्रुव मेरु तारो, गावत है सब गारी, गिनत बीते मोहे सब निसि तारे, सौहे खात आदि।

गग

भए दोउ नैन जहाज को पच्छी, दोउ भये राजी तो काजी कहाकर है, मीठो पर

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १६८

जोइ खए सोई सब मीठा लागे, छीर छाडि छाछ पिये सोइ खाटा खाइगो, मौसिया सों ननसार की बातें, खर गुर जहाँ पटतरौ, अन्धे आगे आरसी, पानी मे मिलायगो लोन सो, दियो घाइनि में नोन है, एक हय की बटाउनी, गाहक तें गयो सो गुसाईं हीं सो गयो, पीठ दिखाये आदि ।

रहीम

बरसत मेघ मूसरधार, रहै प्रान परि पलकनि, पीर पराई जानै, बौरी बाझ न जानै ब्यावर पीर, परथौ उडावन मोकौ सब दिन काग, भरयो हिय सासन आंसुन नैन, पलक न टारै बदन तें, मन हाथ दे, पलक न मारे चित्त आदि ।

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं मे लाक्षणिक प्रयोगों के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं । इनके द्वारा इन कवियों ने निर्जीव पदार्थों को मूर्तिमत्ता प्रदान की है । जैसे फटि-फूटि पठान दल, बाल फूली फिरे आदि (नरहरि) , गात जरै चिनगारी, मन तोहि अजीरन नाही, सुन्दरता बरपै बरपा सी, बिलोकि बिलोकि हसै परछाही, जोन्ह जु सीस चढी है कमला अब नाची आदि (ब्रह्म), झूमि झूमि चहु ओर बरसत मेह आदि (रहीम) ।

इस प्रकार इन दरबारी कवियों की भाषा उनके काव्य के बाह्य-पक्ष को पुष्ट करती है । उसमें शब्दों के ऐसे तोड-मरोड नहीं मिलते जिनसे शब्द का अर्थ ग्रहण न किया जा सके । प्रसग-वश कुछ शब्दों के रूप अवश्य विकृत हैं किन्तु बिना विशेष प्रयास के ही उनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है । अधिकाश शब्द सरल और व्याकरणसम्मत ही हैं । जैसे गग द्वारा प्रयुक्त 'गेहरा' (गृह) के सादृश्य पर बना हुआ 'नेहरा' (स्नेह) शब्द । दोनों शब्दों में प्राप्त 'रा' अक्षर लघुतावाचक है ।

छन्द-योजना

काव्य और सगीत का घनिष्ट सम्बन्ध है । काव्य की छदोबद्ध रचना सगीतगत नाद सौंदर्य पर आश्रित रहती है । कविता में जब तक लय, तुक आदि का सम्यक् आयोजन नहीं रहता उसका समुचित प्रभाव नहीं पड़ता । अलग अलग छन्दों मे विशेष ध्वनियों का आगम होता है जिसके कारण भावाभिव्यक्ति के लिये छन्द-विशेष का प्रयोग किया जाता है । कभी-कभी बिना किसी प्रकार के छन्द ज्ञान के ही हृदय में कविता को सुनते ही करुणा, विषाद, क्रोध, वीर आदि भाव जाग्रत हो उठते हैं । इससे भी भावाभिव्यक्ति के लिये छन्द-विशेष का महत्व स्पष्ट होता है । शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' नाटक का पात्र 'कैलीबन' मानवोचित गुणों से शून्य होते हुए भी 'एरियल' की सगीत-ध्वनि से प्रभावित

हो सुख-निद्रा में निमग्न हो जाता है। 'मसिया' के सुनने पर शोक की अनुभूति होती है। 'आल्हा' के छन्द मनुष्य मे वीर भाव का सचार कर देते हैं। इसीलिये विशेष भावों को व्यक्त करने के लिये भिन्न-भिन्न छन्दों का आश्रय कवि लोग लेते हैं। वीर-भाव की व्यजना जितनी सुन्दरता के साथ छप्पय, घनाक्षरी छन्दो मे होती है उतनी ही उत्कृष्टता के साथ भक्ति, शृगार, नीति आदि विषय दोहा, सवैया चौपाई आदि छन्दों मे प्रतिपादित किये जा सकते हैं। सस्कृत कवियों की रचनाओं म भी भावाभिव्यक्ति के लिये विशेष छन्दो के प्रयोग मिलते हैं। वीर-रस के वर्णन मे अनुष्टुप, वशस्थ, स्तुति के लिये शिखरिणी, स्रग्धरा, भुजगप्रयात आदि छन्दों के प्रयोग किये गये हैं।

छन्दों में लय और तुक प्रधान तत्त्व होते हैं। लय छन्दों के वर्णों और मात्राओं पर निर्भर करता है और इसी आधार पर हिन्दी मे मात्रिक और वर्णिक छन्दो का विभाजन हुआ है। आधुनिक-हिन्दी-काव्य मे अगरेजी के प्रभाव से अतुकांत कविता की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है किन्तु इनमें भी लय और स्वर का पूरा आयोजन रहता है। हिन्दी की प्राचीन कविता मात्रिक और वर्णिक छन्दों में ही लिखी मिलती है। व्रज-भाषा काव्य मे कवित्त, सवैया और अवधी मे दोहे, चौपाई, बरवै छन्दों के विशेष प्रयोग मिलते हैं।

प्रस्तुत दरबारी कवियों ने अपनी रचनाओं मे उक्त प्रकार से ही छन्दों का आश्रय लिया है। नरहरि, ब्रह्म, तानसेन आदि सभी कवियों ने छन्दोबद्ध तुकात रचना की है। तानसेन की रचनाओं के कुछ पदों में अवश्य थोड़ी स्वच्छन्दता देखने को मिलती है। यह उनके सगीतात्मक स्वरविस्तार के कारण है। उनके ताल और स्वरों के आयोजन में यह स्वच्छदता स्वाभाविक लालित्य का समावेश करती है। इसमें आधुनिक काव्य के छन्दों की स्वच्छन्दता का मूल-संकेत मिलता है। किन्तु तानसेन के इस प्रकार के छन्द अतुकात नहीं हैं।

नरहरि ने छप्पय, सवैया, कुडलिया, कवित्त, दोहा छदों के प्रयोग अपनी रचनाओं में किये हैं किन्तु इन सब में छप्पय छद ही कवि को विशेष प्रिय है। इसी म कवि की अधिकाश रचना उपलब्ध होती हैं। कवि द्वारा वर्णित अनेक सवाद, नीति, उपदेश भक्ति तथा कुछ स्थलों पर ऐतिहासिक तथ्यों के निरूपण 'छप्पय' में ही हुए हैं। वीरभाव की व्यजना सवैयों में मिलती है। इससे स्पष्ट होता है कि कवि अपने पूर्व की विशेष रूप से चन्द कवि की रचनाओं की ओर आकर्षित नहीं हुआ था अन्यथा छप्पय छद के विशेष

गिय रहने पर भी वह सवैयां में वीर भाव व्यक्त न करता। शृगार, ऋतुवर्णन आदि के लिये कवि ने सवैया छद के सफल प्रयोग किये हैं। नीति, उपदेश की अभिव्यक्ति दोहों और कुडलियों मे भी हुई है। रूप-सौंदर्य-वर्णन मे कवित्त को अपनाने की प्रवृत्ति कवि मे दृष्टिगत होती है।

कवि के कई छदों मे वर्णो और मात्राओं की घटाबढी झलकती है किन्तु यह कवि का दोष न होकर लिपिकारो का दोष कहा जा सकता है। यहाँ एक इस प्रकार का उदाहरण दिया जाता है :—

षोज मोनदी पीर सुनहु विनती करे नरहरि
नरहरि विनती क्या करे हिंदु तुरक समेत पाय पयादे जगत
गुर जानत हो केहि हेत चेति उत्तम जस लिज्जै
उचित पुत्र फलु वेगि साहि अकब्बर कह दिज्जै
चिरजीव पितु सहित पुहुमि रापै करतरहरि ॥[1]

यह वास्तव में कुडलिया छन्द है जिसका शुद्ध रूप इस प्रकार है :—

खोज मोनदी पीर सुनहु विनती करै नरहरि
नरहरि विनती क्या करे हिन्दू तुरक समेत
पाय पयादे जगत गुरु जानत हौ केहि हेत
जानत हो केहि हेत चेति उत्तम जस लिज्जै
उचित पुत्र फल बेगि सहि अकबर कहँ दिज्जै
चिरजीव पितु सहित पुहुमि राखै करतरहरि
खोज मोनदी पीर सुनहु विनती करै नरहरि ॥

ब्रह्म की उपलब्ध रचना में सवैयों का ही अधिक प्रयोग मिलता है। कुछ स्थलों पर प्रकृति और शृगार से चित्रण में कवित्तो का प्रयोग हुआ है। कवि के दो सौ छदों में केवल सात कवित्त ही उपलब्ध हुए हैं। भक्ति, नीति, उपदेश, शृगार आदि विषय सवैयों में ही वर्णित हैं। कवि के तीन दोहे बीरबल के नाम से उपलब्ध होते हैं जिनमें पहेली का बुझौवल दिया गया है :—

राधी तो गलती नहीं बिन राधी गल जाहि, कही पहेली बीरबल सुनिये अकबर साहि।
कर बोलै कर ही सुने स्रवन सुने नहिं ताहि, कही पहेली बीरबल सुनिये अकबर साहि ॥[2]

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९

२ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ८५

तानसेन की रचनाएँ पद्यबद्ध ही हैं। ये सब पद तुकान्त और लय स्वर में बँधे हुए हैं, किन्तु कुछ पदों में छन्द की स्वच्छन्दता भी उपलब्ध होती है जिसका पहले संकेत किया जा चुका है। यहाँ पर उसके कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं —

शुभ नखत तखत बैठो राजत
छाजत है सब मूलक खलकेज बिरचना किए
सब छत्र धरे ते लागे सब सेवा करन
धन धन चक्रवर्ती नरेश अकबर
दुख हरण तानसेन ऐसो सुरपुरी नर नरेन्द्र नरन ॥[1]

अन्य—

जे गुणीजन गुरु पावै गावै नीकी तान गुण सो रिझावै
जब बजावै बीन अच्छी नीकी परमाण सौन्ज समझ तान लेत
ध्यान धरत जिय मे जब सुर सगल पावै
दुरन मुरन सो वाको समझ आवै
सात तीन इकईस बाइसी लाग ठाट खुली मुदी दरसावै
सप्त ध्याय सगीत मत करके तब तानसेन प्रभु को रिझावै ॥[2]

गग ने कवित्त, सवैयों तथा कुछ छप्पय और दोहों मे अपने भाव व्यक्त किये हैं। भक्ति, शृगार नीति उपदेश के अधिकाश वर्णन सवैया तथा वीर भाव कवित्त और छप्पय में ही विशेष रूप से आये हैं।

रासो-पद्धति पर विरचित वीरभाव का एक छप्पय देखिये :—

गुज्जरेश गभीर नीर नीझर निझ्झरियो
अति अथाह दाऊद बुन्द बुन्दन उब्बरियो
धाम घूट रघुराय जाम जलधर हरि लिन्निव
हिन्दू तुरक तलाब कोन कर्दम बस किन्निव
कवि गग अकब्बर अक्कि भनि नृप मियान सब बस करिय
राणा प्रताप रयणांक मझ छग्ग डुब्बत छण उच्छरिय ॥[3]

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १३३

२ ,, ,, , पद सख्या १४०

३ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १५८

किन्तु केवल एक दो छप्पयों मे ही उक्त पद्धति का निर्वाह मिलता है। अधिकाश स्थलों पर छप्पय मे वर्णित वीरभाव स्वाभाविक रूप मे ही मिलता है। कवि के कवित्त, सवैया, दोहा आदि छदो म गति-भग दोष नहीं मिलता यह उसकी विशेषता है। छदों और पदों की उत्तमता सर्वत्र बनी रहती है।

रहीम की रचनाओं मे छदों का वैविध्य द्रष्टव्य है। कवि ने दोहा, सोरठा, बरवै, कवित्त, सवैया तथा सस्कृत के मालिनी छदों के प्रयोग अपनी रचनाओं में किये हैं। कवि के नीति, उपदेश तथा नगर शोभा रचना दोहों मे, नायिका-भेद बरवै में, शृगारिक रचना सवैया और सोरठा में, 'मदनाष्टक' रचना सस्कृत के मालिनी छद मे मिलती हैं। समस्त रचनाओं मे दोहा और बरवों के ही अधिक प्रयोग मिलते हैं। रहीम को दोहा छद का चमत्कार भी अच्छी तरह से विदित था —

> दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आहि ।
> ज्यों रहीम नट कुडली सिमिटि कुदि चढि जाहिं ॥[1]

कवि ने उक्त गुण को अपने दोहों में प्रमाणित भी किया है। दोहों के बाद बरवै ही कवि का विशेष प्रिय छद ज्ञात होता है। नवीन-नवीन छदों का आयोजन कवि का लक्ष्य था और इसका पर्याप्त सकेत 'नायिका-भेद' के आरभ में दिये गये कवि के निम्नलिखित छदों से लग जाता है —

> कवित्त कह्यो दोहा कह्यो तुलै न छप्पय छद ।
> विरच्यो यहै विचारि कै यह बरवा रस कन्द ॥[2]

'बरवै' छद की प्रशसा भी कवि ने की है :—

> बेधक अनियारो बड़ो समुझै चतुर सुजान ।
> सुनत जात चित्त चाव पै यह बरवै के बान ॥[3]

बरवै छद की प्रेरणा कवि को अपने दरबार के किसी सामंत से मिली थी जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इससे ज्ञात होता है कि रहीम के पूर्व बरवै लिखने की परपरा थी। रहीम की प्रेरणा से ही सभवतः तुलसी ने अपनी 'बरवै-रामायण' की रचना की थी जिसका संकेत पीछे किया जा चुका है। रहीम ने उपर्युक्त छद में छप्पय

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १०

२ ,, पृष्ठ ८०

३ ,, पृष्ठ ४०

रचना का भी उल्लेख किया है किन्तु कवि की रचनाओं मे छप्पय के उदाहरण अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। कवित्त, दोहा, सोरठा, सवैया तथा पदों में ब्रज भाषा और बरवै के लिये अवधी का आश्रय कवि ने लिया है, जिस पद्धति का अनुसरण उसके परवर्ती कवियों मे मिलता है। वर्ण्य विषय का भी विभाजन छदों के अनुकूल हुआ है। बरवै जैसे छोटे छद में भावों की विशद व्यजना, अर्थ-गम्भीरता तथा विषय का सम्यक् निर्वाह कवि की उत्कृष्ट काव्यकला का परिचायक है। अपनी छदोबद्ध कविता मे रहीम ने लयस्वर-सधान तथा तुकादि का पूरा ध्यान रखा है।

इस प्रकार प्रस्तुत दरबारी कवियों की रचनाएँ छदोबद्ध काव्य की सुन्दर उदाहरण हैं। इन कवियों ने परपरागत रूप म ही छप्पय, दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त, सोरठा, कुडलिया आदि छदों के ही अधिक प्रयोग किये हैं। छन्दो के प्रयोग मे शब्दों की तोड-मरोड में इन्होंने पूरी स्वच्छन्दता ग्रहण की है।

अलकार-प्रयोग

आचार्य दडी के मतानुसार काव्य की शोभा को बढाने वाले गुणों को अलकार कहते हैं—'काव्यशोभाकरान् धर्मानलकारान् प्रचक्षते।'[1] इसीलिये भाव, वस्तु, रूप, गुण तथा क्रिया की तीव्रता का अनुभव कराने वाली युक्ति को अलकार के नाम से कहा जा सकता है। अलकारों को ही काव्य का सर्वस्व तथा 'भूषण बिन न बिराजई कविता बनिता मित्त' की उक्ति मानने वाले आचार्य केशव ने भी एक स्थान पर किसी कामिनी की कमनीयता के वर्णन में यह स्वीकार करते हुए कि यदि वास्तविक सौंदर्य हो तो बहिरग अलकार अनावश्यक है, कहा है:—

भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करेउ होहिं आजी ऐसी आखे केसवराय हिय हारे हैं
काहे को सिगारि कै बिगारति है मेरी आली तेरे अग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं ॥[2]

आभूषणों का यह तिरस्कार आचार्य केशव के मुख से निकलकर यही सिद्ध करता है कि आभूषण निश्चित सीमा में परिबद्ध होकर ही सौंदर्योद्दीपन में सहकारी हो सकते हैं। यदि वे सीमा-उल्लघन कर डाले तो लावण्य-वृद्धि के स्थान पर सौंदर्य-ह्रास होने लगेगा। यद्यपि केशव ने स्वय कविता-कामिनी के प्रत्येक-अग को अलकाराच्छादित कर उसके स्वाभाविक सौंदर्य का लोप कर दिया। हिन्दी के अधिकाश भक्तिकालीन कवियों की रचनाओं में अलकार योजना, भाव-सौंदर्य तथा

---

१ काव्यादर्श, परिच्छेद २, सूत्र सख्या २२०

२ कवि-प्रिया, छद सख्या १२

रूप, गुण, वस्तु आदि का सरलतर बोध कराने के लिये ही हुई है। अलकारों का सीधा सम्बन्ध भावों की अभिव्यजना से रहता है। किन्तु वे माधुर्य सयोजक भी होते हैं।

प्रस्तुत दरबारी कवियों की रचनाओं मे नरहरि की अलकार-योजना स्वाभाविक रूप मे हुई है। इनमे किसी प्रकार के चमत्कार प्रदर्शन का लक्ष्य ज्ञात नहीं होता। प्राय. इनके उपमान जीवन के स्वाभाविक चित्रों से सम्बध रखते हैं। 'ब्रह्म' अवश्य अलकार-वर्णन द्वारा कहीं-कहीं पर भावों को क्लिष्ट बना देते हैं और उनसे वस्तुओं का स्वाभाविक बोध नहीं हो पाता। इसलिये कहीं कहीं पर उनका ध्येय अलकारों द्वारा चमत्कार-सृष्टि करना प्रमुख ही हो जाता है। तानसेन के पदों में अलकार-छटा मधुर रूप में दिखाई पडती है। इन्होंने भावों के स्पष्टीकरण के लिये ही इस युक्ति का आश्रय लिया है। गग इस दिशा में मध्यम मार्ग का अनुसरण करते हुए दिखाई देते हैं। अलकारों के प्रयोग से कहीं-कहीं पर भावों की व्यजना सरल हो गई है और कहीं पर भाव दब गये हैं। इनमे केवल रहीम एक ऐसे कवि हैं जिनमें अलकार प्रयोग बहुत ही स्वाभाविक ढग पर हुआ है। इन सभी कवियो ने परपरागत अलकारों को ही अधिकतर अपनाया है। शब्दों मे चमत्कार लाने के प्रयास मे इन्होंने कुछ स्थलों पर कई शब्दालकारों के आश्रय भी ग्रहण किये हैं।

सर्वप्रथम यहाँ पर नरहरि की रचनाओं मे प्रयुक्त अलकारों पर दृष्टिपात किया जायगा।

नरहरि ने अर्थालकार के अन्तर्गत सादृश्यमूलक अलकारों का विशेष आश्रय लिया है। इनमे भी उत्प्रेक्षा, उपमा, रूपक प्रधान हैं।

निम्नलिखित छप्पय में कवि ने जग-जलनिधि 'रूपक' का सम्यक् निर्वाह किया है:—

जगु जलनिधि जल मोह महा त्रस्ना तरग धर
तट दुहु दिसि मदमान लोभ अज्ञान भवँर भर
काम क्रोध अति जतु गहि करवर छल बोरहि
मन विलास बह पवन कलुष बवडर झकझोरहि
लै विषम सत्रु तेहि माँझ पर कहि नरहरि केहि सभरइ
पुरुषोत्तम परम कृपाल बिन एहि अवस्थ को उद्धरइ ॥[1]

---

१ देखिये, नरहरि क विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९१

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा अलकारा का प्रयोग कवि ने एक ही स्थल पर रूप-सौंदर्य की तीव्रता का बोध कराने के लिए किया है :—

चरण कमल केलि की सी शील गति बाल फूली फिरे बेलि मानो कुदन कनक की
नरहरि सुकवि सुगध सग सखिन के मधुर मधुर मृदु बानक बनक की ॥[1]

अकबर की सेना के गमन करने पर चारों ओर इतनी अधिक धूल छा जाती है कि उसकी व्यापकता मे सूर्य का प्रकाश भी मन्द पड जाता है। इस भाव के स्पष्टीकरण के लिये कवि ने 'भ्रम' अलकार का प्रयोग किया है :—

फनपति गय परभरहि जलधि उच्छलहिं छुडि कुमु
उडिराज परिहरिअ भुअन भए ते सुर सकल समु समु
निसु दिन बिछुरहि चक्क कवॅल सकुचहि राति भपहि
धूम समुझि अरि नृपति भभरि भजिहिं तन कपहि
नच्चहि मऊर नरहरि निरषि सो दुरग अनबन बरन
दलु चलत अकबर साहि को सो गिरि बन धन असरन सरन ॥[2]

रात में तो चकवा-चकवी एक दूसरे से विलग रहे ही, दिन में मिले भी किन्तु सूर्य के प्रकाश के मन्द होने से रात के भ्रम में फिर उनका विछोह हो गया। कमल की भी यही दशा हुई।

कवि ने शब्दालंकारों के प्रयोग भी भाषा को श्रुति-मधुर बनाने के लिये किये हैं। निम्नलिखित पक्तियों में अनुप्रास और यमक की छटा देखने को मिलती है :—

चोटी गहि द्रौपदी निभोरिबे को ठाढी कीन्ही कोपि कह्यो सुमिरि सहाय कौन करिहै
ऐसे में अनाथन की और कौन सुध लेहै मोर पच्छ धरिहै सो मोर पच्छ धरिहै ॥[3]

निम्नलिखित छद में 'वृत्यनुप्रास' का प्रयोग हुआ है :—

कुटिल कुरूप कुजाति कुवदसि कस दासि दासिहु ते सुबरि
देखत मन अति विकृत चकृत रहे गति काहू ते न उबरि

---

१ देखिये, नरहरि क विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भा, छद सख्या ८६

२ देखिये, नरहरि क विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ३८

३ " छद सख्या १२९

नरहरि जानि जानि सो मानि तिविक्रम जानिब प्रभु दयाल इह दुवरि
तब बनि ठनि आइ सकल जु अति त्रिभुअन गर्व गवावति कुवरि ॥[1]

छेकानुप्रास का भी कवि ने उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

नरहरि सुकवि सुग ध सग सखिन के मधुर मधुर मृदु बानिक बनक की ॥[2]

प्रस्तुत कवियों में ब्रह्म ने अलकारों के प्रयोग मे अपनी विशिष्टता प्रदर्शित की है। सकेतित वस्तुओं के लिये नवीन उपमानों के दिग्दर्शन मे कवि ने अपनी सूझ का परिचय दिया है।

निम्नलिखित छन्दों में कवि ने 'उत्प्रेक्षा' अलकार का सुन्दर प्रयोग किया है .—

सेज ते ठाढी भई उठि बाल लई उलटी अगराय जभाई
रोम की राजी विराजी विसाल मिटी त्रिवली अरु पीठ खिलाई
बेनी परी पग ऊपर पाछे ते ब्रह्म यहै उपमा उर आई
लोक त्रिलोक के जीतिबे कारन सोने की काम कमान चढाई ॥[3]

उक्त छद में नायिका के स्वर्ण सदृश देह को कमान और वेणी को प्रत्यचा दिखाकर कवि ने कमनीय-कल्पना का निदर्शन कराया है।

देह के लिये 'दीपशिखा' की उपमा मे भी कवि ने अद्भुत कल्पना दिखाई है :—

बैठी अन्हाय बनाइ विरचि की सुदरता वरपै वरषा सी
कज से आनन खजन लोचन कोऊ कहै कटि आहि मृषा सी
ब्रह्म भनै नदलाल बिलोकति लागि रही लट लागि त्रिषा सी
झीनै दुकूल में झाई झलामलै देह दिपै दुति दीपसिषा सी ॥[4]

उत्प्रेक्षा अलकार में कवि ने अप्रस्तुत-योजना का सुदर उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

सीय स्वयवर श्री रघुनाथ जू चाप चढावन को पगुधारे
ताहि विलोकन को बनिता कवि ब्रह्म भनै सब रूप उज्यारे

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १५
२ ,, ,, छद सख्या ४६
३ दखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या २९
४ ,, ,, छद सख्या ४३

यों उझके झुकि झाकि झरोखन ठाढी तहा मुख जोति अपारे
सोहत मानो जराय के मन्दिर सों बँधी चन्द की बन्दन वारे ॥[१]

कवि की निम्नलिखित पक्तियों में भी उत्प्रेक्षा का मौलिक उदाहरण आया है :—

ब्रह्म सुवेसरि को मुक्ता पिय लोचन के ढिग यों छवि पावै
मनो सरदिंदु अमी लिये विंदु चकोर की चोंच में चारो चुगावै ॥[२]

नीचे के छद मे हेतूत्प्रेक्षा और वृत्यनुप्रास की सुन्दर छटा देखने को मिलती है :–

सीतलता सुत अग पियूष पियूष में अग समुज्जवल कातो
राधिका कान्ह वियोग अगिन्नि गगन्न वर्‌यो सुभयो रग रातो
ब्रह्म भनै जु जलन्निध जात सु जुगे न होतो तो नतो वरि जातो
तो तनु तेज तप्यो तरुनी ताते लागतु तोहि तमीपति तातो ॥[३]

'प्रतीप' अलकार द्वारा कवि ने कृष्ण की बाल-रूप-माधुरी की तीव्रता का बोध कराया है :—

नद अनदित ह्वै जलपे कलपे अति ही गति गातन की
पद पानि मिले दग आनद सो छवि छीन लई जल जातन की
ब्रह्म भनै चुचकारि कहै मोहि लागति है तुतरातन की
छगना मगना अगना विहरो बलि जाइ बबा इन बातन की ॥[४]

'सदेहालकार' का प्रयोग विप्रलभ-भाव का तीव्र अनुभव कराने के लिये किया गया है :—

काल के कान्ह गये मथुरा मनौ बीत गये जुग वासर सै
विरहागिन काम लगाइ दई है दसो दिस देखि यही दरसै

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ८७
२ „ „ „ छद सख्या ४६
३ „ „ „ छद सख्या ५५
४ „ „ „ छद सख्या ९७

कवि ब्रह्म भने मोहि जान पतै सखि स्याम घटानल सो परसे

बिरही वर बारही बार उठे दृग नीर किधों घन धों बरसै ॥[१]

रूप सौंदर्य-वर्णन मे कवि ने 'उपमा' के साथ 'अनन्वय' का भी आश्रय लिया है :—

चदन सी चद सी है सीरा घनसार सी है सुमन सुवासहू ते भई भोन भान सी

ब्रह्म भने पेखत पियूष सी हो परसत प्रान सो पावत सब सुख की निधान सी

कहाँ लगि कहौं हुती आपनि ही आप ही सी बिछुरे ते विपरीत भई आपु आन सी

मे तो जान्यो बनि के मदन बान वारि है पै याही का बनाइ हीए लागी हिये बान सी ॥[२]

'शब्दालकारों' द्वारा भी कवि ने काव्यछटा बढाई है। इनमे अनुप्रास, यमक के विशेष प्रयोग हुए हैं।

निम्नलिखित छन्द में वृत्य् तथा छेकानुप्रास की छटा द्रष्टव्य है :—

जोहित ज्यान्यो नहीं जगदीस कह्यो चहे तोरी नहीं जम जेलहिं

ब्रह्म भने मनि दूर के कुर तू धूरि क्यारिन धार सकेलहि

दूसरो पेडो न ह्वै है न आहि रे पेडे को पाइ पहारन पेलहि

खेलत खेलत खेलहिगो अब खेल सुखेलु जु खेलन खेलहिं ॥[३]

निम्नलिखित पक्तियों मे 'यमक' के प्रयोग द्वारा कवि ने काव्य को माधुर्य व्यजक बना दिया है :—

परिचाह करेगी तो चाह न पावैगी चाहैगी तू कि नहीं चहिहै

कवि ब्रह्म कहै कवि वै जु सिधारत हौ न कहौ तोसों को कहिहै ॥[४]

अन्य,

हे गय जीरन हू गए हेरे ते हारि न मानी बहारि पराहीं

बनिता बनिता रसु जीरनु में तू तऊ बनि के निरखे परछाहीं

पायो सो जीरन ब्रह्म भयो पहिरे पट जीरन ह्वै फट जाहीं

जीरनु के तनु जीरनु तू है अजो मन तोहि अजीरन नाहीं ॥[५]

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ५१

२ ,, ,, छद सख्या ४५

३ ,, ,, छद सख्या २९

४ ,, ,, छद सख्या ५२

५ ,, ,, छद सख्या ६०

निम्नलिखित वात्सल्य वर्णन में कवि ने 'करताल' शब्द में यमक का उदाहरण प्रस्तुत किया है :—

> ब्रह्म भने मुनि मोन ही के मन मारत नेक मनो न मनायो
> कितो बडो भाग जसोमति को करतार ने दे करताल नचायो ॥[1]

कवि ने कुछ अन्य स्थलों पर भी अनुप्रास तथा यमक की छटा प्रदर्शित की है।

तानसेन की रचनाओं में भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिये ही अलकारों के प्रयोग हुए हैं। अलकारों द्वारा चमत्कार प्रदर्शन कवि का लक्ष्य नहीं है। काव्य के कुछ स्थल अनुप्रास-प्रयोग से श्रुति-मधुर और माधुर्यव्यजक अवश्य हो गये हैं।

नायिका के रूप की तीव्रता का बोध कराने के लिये कवि ने 'प्रतीप' का आश्रय लिया है :—

> एरी तू अग अग रानी अति ही सयानी री तू पिय मन मानी री तू
> सोलह कला समानी बोलत अमृत बानी तेरो मुख देखे चन्द जोतहु लजानी री तू
> करि केहर कदली जघा नासिका पर कीर वारों, श्रीफल उरोजन की छवि आनी री तू
> तानसेन कहे प्रभु दोऊ चिरजीवी रहो तेरो नेह रहे जो लों गग जमुना पानी री तू ॥[2]

कवि ने वैसे तो कई स्थलों पर 'व्यतिरेक' द्वारा भावोत्कर्ष किया है परन्तु निम्नलिखित पद में हेतूत्प्रेक्षा के साथ इसकी योजना सुन्दर है :—

> तुअ मुख और चन्द्रमा विरचि तुलाकारी तोल्यो ओछो
> आकाश गयो धुकि धरनी रही निकाई को भारो भरा री पला
> याही ते ससी घटत बढत है देखि देखि तेरो बदन निर्मला
> तो सम नाहिन पूजीये सब मिलि कलकी नाम
> धरयो निसि भ्रमत फिरत न रहे अचला
> तानसेन प्रभु सरस बस कर लीयो रूप आगरी रूप कला ॥[3]

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ८८

२ देखिये तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या ८७

३ ,, ,, ,, ,, पद सख्या ८१

निम्नलिखित पद मे 'प्रतीप' के साथ 'अनन्वय' अलकार का भी आश्रय रूप की तीव्रता का बोध कराने के लिये किया गया है :—

मन मोहन मन मानी याते तू प्रवीण सयानी
सुन्दर वदन चन्द्रकला लजानी तोसी तुही तिया औ नाही त्रिहू लोक सानी
तानसेन चिर चिरजीवो ऐसी प्रीत रही जो लो जमुन गग पानी ॥[1]

अन्य पदों में भी 'तोसो तुही और दूजो नाही,' 'तुमहि सो तुम' आदि शब्दों द्वारा 'अनन्वये' का आश्रय कवि ने लिया है।

रूप सौंदर्य के वर्णन में उत्प्रेक्षा का कवि ने कई स्थलों पर प्रयोग किया है। निम्नलिखित पक्तियों मे कवि ने नवीन उपमान के साथ उत्प्रेक्षा अलकार का दिग्दर्शन कराया है :—

एरी हो रीझ देख भोर ही उठके प्यारी कजरा दृग दोउ कर सों लागे मलन
पुन या छवि सों ऐंडात जभात नीर बही मानो कमल मध ते अलक सुत छुट लागे चलन॥[2]

निम्नलिखित पक्तियों में 'निदर्शना' अलकार द्रष्टव्य है '—

तेरो आली रूप पिय के तन को खिलौनो निश दिन लिए रहत सग
तानसेन प्रभु प्रवीण के चित्त चढी एसो जैसे ईश शीप बसत गग ॥[3]

शब्दालकारों में अनुप्रास की छटा ही कवि ने प्रदर्शित की है। यमक, श्लेष, वक्रोक्ति के उदाहरण तानसेन की उपलब्ध रचनाओं में नहीं मिलते।

निम्नलिखित छन्दों में कवि ने वृत्यनुप्रास की मधुरता व्यजित की है :—

री या तन को मत कर मान मन में नहीं चाहे मन मन करत हो मान
मानो मेरी मति मोहनी माननी मो मति मति मन में मानी मत करो मोहनसों मान
मुर मुर चितवत मन ही मन भावन को माधो मुकुन्द वै है मथुरापति मुरारि नन्ददान
मान री मान मेनका सी माधुर्यता तानसेन प्रभु मन मोहन को मान ॥[4]

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या ७९
२ „ „ „ पद सख्या ७१
३ „ „ „ पद सख्या ६२
४ „ „ „ पद सख्या ९६

गग ने अधिकाश स्थलों पर अलकारो को चमत्कार-विधायक रूप मे ही प्रस्तुत किया है। भाव, वस्तु, रूप आदि की तीव्रता का बोध कराने के लिये अलकार प्रयोग कुछ ही स्थलों पर हुए हैं।

कवि के उत्प्रेक्षा के कुछ उदाहरण स्वाभाविक हैं .—

मनि मनमोहन के कठ मे यो झलकत जानिये जुन्हैया जमुना म फल गई है ॥[1]

श्वेत मणि की माला कृष्ण के गले में यमुना पर चन्द्र-ज्योत्स्ना के सदृश भास होती है। वस्तूत्प्रेक्षा का यह सुन्दर उदाहरण है।

उत्प्रेक्षा का कवि ने इसी प्रकार और कई स्थलों पर सहारा लिया है। उपमा और रूपक के प्रयोग एक ही स्थल पर देखिये .—

लाज महा बडवानल सी सखि प्रेम समुद्र न बाढन पावै ॥[2]

वस्तु विशेष के गुण का अनुभव कराने के लिये निम्नलिखित पक्ति म 'व्याघात' अलकार का प्रयोग किया गया है .—

दाख बडो फल है सुखदायक, काग भखे तो महादुख पावै ॥[3]

किसी नायिका की निम्नलिखित कल्पनापूर्ण उक्ति 'सदेहालकार' की पुष्टि करती है .—

लीलैहि लेत निशाचर से मुख प्राची दिशा कि पिशाच कि दारा
पीय पयान कि प्राण पयान पिकी पिक रार कृपान कि धारा
गग बसत कि अतक शीत समीर कि तीर तरन्य कि तारा
जोन्ह कि जाल मृडाल कि व्याल सखी घनसार कि सार कि आरा ॥[4]

विप्रलभ-भावना की तीव्रता दिखाने के लिये अत्युक्ति का प्रयोग हुआ है :—

'गग कवि वृन्दावन चन्द्र बिना चंदमुखी चदहि निहारैगी तो चद जरि जायगो।'

निम्नलिखित पक्ति में 'उदाहरण' का प्रयोग मिलता है .—

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या २९
२ „ , „ „ छद सख्या ३२
३ „ „ „ , छद सख्या १७६
४ „ „ , „ छद सख्या १७७

हा हा नेकु जाइ लेहु, कह्यो है तिहारो नेह
कहू ह्वै दिखाइ देह डोरी ज्यों जरति है ॥[1]

निम्नलिखित छंद में 'परिसंख्या' अलंकार का संकेत मिलता है :—

बांधिबे को अंजलि बिलोकिबे कौ काल ढिग राखिवै को पास जिय मारिबे को रोस है
जारिवे को तन मन भरिबौ को हियो आखें धारिवै को पग मग गनिबै का कोस है
खाइवै को सोंहे भौंहे चढ़िबे उतारिबे को सुनिबै को तान ध्यान किए अफसोस है
बैरम के खानखाना तेरे डर बैरी वधू लीवे को उसास मुख दीवे ही को दोस है ॥[2]

उक्त छंद में वैरी-नारियों के पास यदि कुछ बांधने को है तो केवल अंजलि, जलाने के लिये है तो अपना तन-मन, गिनने को है तो केवल कोसों की दूरी, खाने के लिये है तो सौंहे आदि भावों में परिसंख्या का आश्रय लिया गया है।

शब्दालंकार के अंतर्गत वृत्यनुप्रास की छटा भी द्रष्टव्य है :—

(१) छार भरे छरहरे छगन छरग बारे छाये हैं छविनु छय्यनु छाइयत है ॥[3]

(२) विरह की वेलि बेरी बो गयो ॥[4]

कुछ स्थलों पर 'यमक' द्वारा भी शब्दगत चमत्कार आ गया है :—

जल ढारि सनीचर पंथ वधू बिनवै कर जोरि सु पी परसों
तरु देव गुसाई बड़े तुम हो यह मागत दीन है सु पीपर सों
आवन के दिन बीस कहै बिन ओधि की गति तची परसों
भूलि गए हरि दूरि विदेस किधौं अटके कहूं पी पर सों ॥[5]

रहीम की रचनाओं में अलंकारों का सुष्ठु प्रयोग हुआ है। कवि ने गूढ़ भावों को इनके द्वारा सरल बना दिया है। उनको अलंकारों के प्रयोग में किसी प्रकार का प्रयास नहीं करना पड़ा है, वे स्वाभाविक रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं।

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ६०
२ ,, ,, ,, ,, छंद संख्या १४०
३ ,, ,, ,, ,, छंद संख्या १८३
४ ,, ,, ,, ,, छंद संख्या ३६
५ ,, ,, ,, ,, छंद संख्या ६४

निज-अनुभूति के निरूपण के लिये रहीम ने अर्थान्तरन्यास अलंकार का विशेष आश्रय लिया है :—

विपति भए धन ना रहे रहे जो लाख करोर।
नभ तारे छिपि जात हैं ज्यों रहीम भय भोर ॥[१]
रहिमन निज सम्पत्ति बिना कोउ न विपति सहाय।
बिनु पानी ज्यों जलज को नहिं रवि सकै बचाय ॥[२]

कुछ स्थलों पर नीति उपदेश के तथ्य-निरूपण में भी विरोधाभास के साथ श्लेष अलंकार का प्रयोग किया गया है :—

जो रहीम गति दीप की कुलकपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगे बढ़े अंधेरो होय ॥[३]

'पियाव' शब्द में श्लेष का सुन्दर प्रयोग हुआ है—

पथिक आय पनघटवा कहत पियाव
पैया परों ननदिया फेरि कहाव ॥[४]

निम्नलिखित दोहों में 'दीपक' अलंकार द्वारा कवि ने अपनी लौकिक अनुभूतियों का सुन्दर प्रकाशन किया है :—

यह रहीम निज संग ले जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास जस होत होत ही होय ॥[५]
अरज गरज माने नहीं रहिमन ए जन चारि।
रिनिया राजा मांगता काम आतुरी नारि ॥[६]

विरह-भाव की तीव्रता का बोध कराने के लिए भी 'दीपक' का प्रयोग हुआ :—

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ट १३
२ ,, ,, पृष्ठ २०
३ रहिमन-विलास, दोहावली, पृष्ट ८९
४ ,, ,, बरवै, पृष्ठ ६४
५ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ १५
६ ,, ,, पृष्ठ ७

जब ते बिछुरे मितवा कहु कस चैन।
रहत भरयो हिय साँसन आँसुन नैन ॥[१]

कृष्ण रूप की माधुरी को व्यक्त करने में 'पद०' अलंकार की योजना रहीम ने की है :—

भुजग जुग किधौं है काम कमनैत सौंहैं।
नटवर तव सोहैं बाँकुरी मान भौंहैं ॥[२]

रूप-माधुर्य की तीव्रता का अनुभव कराने के लिये रूपक और उपमा अलंकारों का निम्नलिखित दोहों में आश्रय लिया गया है :—

सजल नैन वाके निरखि चलत प्रेम सर छूट।
लोक लाज उर धाक ते जात ससक सी छूट ॥[३]

कहि रहीम इक दीप ते प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै दृग दीपक जरु दोय ॥[४]

निम्नलिखित छंद में निदर्शना का प्रयोग सुन्दर है :—

भलो भयो घर ते छुट्यो हँस्यो सीस परिखेत।
काके काके नवत हम अपन पेट के हेत ॥

नली लिवाइ नवेलि अलि सखि सब संग।
जस हुलसत गो गोदवा मत्त मतंग ॥[५]

प्रस्तुत के लिये अप्रस्तुत की योजना में उत्प्रेक्षा अलंकार का कवि ने कई स्थलों पर परिचय दिया है। भाव-विशेष की तीव्रता का बोध कवि ने उत्प्रेक्षा द्वारा कराया है :—

जाति हुती सखि गोहन मे मन मोहन को लखि कै ललचानो
नागरि नारि नई ब्रज की उनहूँ नन्दलाल को रीझिबो जानो
जाति भई फिरि कै चितई तब भाव रहीम यहै उर आनो
जनु कमनैत दमानक में फिरि तीर सो मारि लै जात निसानो ॥[६]

---

१ रहीम-रत्नावली पृष्ठ ६७
२ „ „ पृष्ठ ७४
३ „ पृष्ठ ३२
४ „ पृष्ठ ३
५ „ पृष्ठ ५४
६ „ पृष्ठ ७७

कृष्ण के रूप माधुर्य के वर्णन में भी उत्प्रेक्षा का प्रयोग हुआ है :—

वक्र तिलक केसर को कीनो दुति मानो विधु बाल की।

शब्दालंकारों के द्वारा रहीम ने अपने काव्य के कुछ स्थलों को श्रुति-मधुर भी बनाया है। अनुप्रासों का ही इनमें विशेष परिचय मिलता है। छेकानुप्रास के एक दो उदाहरण भी देखिये :—

लहरत लहर लहरिया लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया बिथुरे बार ॥[1]

ससि सकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है घटत घटत घटि सीम ॥[2]

'यमक' का भी कुछ स्थलों पर प्रयोग हुआ है :—

पानी पीरी अति बनी चन्दन न्यारे गात।
परसत पीरी अधर की पीरी कै ह्वै जात ॥[3]

रहिमन अपने पेट सों बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाए रहे तोसों को अनखाय ॥[4]

निम्नलिखित छंद 'श्लेष' का उदाहरण है :—

भरै कुपी कुचपीन को कंचुक में न समाइ।
नव सनेह असनेह भरि नैन कूपा ढरि जाइ ॥[5]

इस प्रकार उपर्युक्त कवियों की रचनाओं में अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग ही हुए हैं, उनमें चमत्कार-प्रदर्शन का उद्देश्य नहीं है।

---

१ रहीम-रत्नावली, पृष्ठ ४१
२ „ पृष्ठ २६
३ „ पृष्ठ २९
४ „ पृष्ठ १६
५ „ पृष्ठ ३६

पाँचवाँ अध्याय

सामाजिक जीवन एवं ऐतिहासिक तथ्य

सामाजिक जीवन और विश्वास

भारतवर्ष मे मुसलमानों के राज्य-संस्थापन के अनन्तर शासक की विचार-धारा का प्रभाव यहाँ की भारतीय जनता पर पड़ा परन्तु परपरागत विश्वास, चितन-प्रणाली, रीति-नीति आदि के व्यवहार मे कोई विशेष परिवर्तन नही हुए। अकबरी दरबार के हिन्दी कवियो की रचनाओं मे तत्कालीन भारतीय जीवन का थोड़ा सा परिचय मिलता है।

सामाजिक जीवन के अन्तर्गत समाज और परिवार के विभिन्न वर्गों और व्यक्तियो के पारस्परिक सम्बध और कार्य-कलाप का वर्णन होना चाहिये किन्तु ऐसे वर्णनों का अवकाश प्रबध-काव्यों मे ही सभव है। इन कवियों ने प्रबध-काव्य नही लिखे। अत. सामाजिक जीवन का अध्ययन उनकी कृतियों मे प्राप्त विश्वासों, वेश-भूषा, आभूषण, उत्सव आदि के वर्णनों के आधार पर किया जायगा।

नरहरि, ब्रह्म, तानसेन और गग तो जन्मजात हिन्दू थे। अतः उनमे भारतीय जीवन सम्बन्धी विश्वासादि की भावना स्वाभाविक ही थी किन्तु रहीम जन्म से मुसलमान थे फिर भी इनके हृदय पर भारतीय जीवन की इतनी गहरी छाप पड़ी थी कि उनकी हिन्दी रचनाओं को देखकर कोई भी भावुक उन्हे मुसलमान नहीं कह सकता। रहीम मुसलमान अवश्य थे परन्तु वे भारत की पुनीत भूमि पर उत्पन्न हुए थे। हिन्दुओं के सदृश ही उन्होंने पतित-पावनी गगा की निर्मल छटा का अवलोकन किया था। हिमगिरि की उत्तुग शृगों का दर्शन भी उन्होंने उसी दृष्टि से किया था जिससे यहाँ के हिन्दू करते हैं। गायों के प्रति उनकी वही आस्था और श्रद्धा थी जो यहाँ के आर्यों की थी। इस प्रकार भारतीय वातावरण में उत्पन्न होने, पलने और रहने के कारण उनके हृदय मे उन्हीं विश्वासों का विकास और परिवर्धन हुआ जिनका यहाँ के अन्य निवासियों में होता आया है। खानखाना का हृदय कवि का हृदय था। भारतीय संस्कृति का इन पर जैसा प्रभाव

पड़ा उसे ये सीधे शब्दों मे व्यक्त कर देना धर्म विरुद्ध नहीं समझते थे। रहीम के सस्कृत-भाषा-ज्ञान से उनमे भारतीयता की भावना और भी पुष्ट हो जाती है। रहीम के हृदय-पटल पर भारत की प्रत्येक वस्तु और भावना अंकित हो गई थी। उनकी यह निजी विशेषता है।

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं मे गोरक्षा, सरिता-पूजन, तीर्थाटन, एकात्मवाद तथा अवतारवाद, ईश्वरोपासना, प्रतिमा-पूजन, उत्सव, शुभ-अशुभ शकुन, षड्रिपु, नीति, वेश-भूषा, रहन सहन आदि विषयों का पर्याप्त परिचय मिलता है, जो भारतीय जीवन और विश्वास के द्योतक हैं।

'गो रक्षा' भारतीय सस्कृति का एक चिरतन प्रमुख अग है। दिलीप ने नन्दिनी के बदले अपने आपको सिंह के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया था। महाकवि कालिदास ने 'रघुवश' महाकाव्य मे गाय और पृथ्वी के तादात्म्य का वर्णन किया है।[१] भारत कृषि-प्रधान देश है और दूध-दही का खाद्य पदार्थों में विशेष महत्व है क्योंकि यह सात्विक वृत्ति का परिपोषक भी होता है। इसीलिये गो-दान, गोवध निषेध की ओर लोगा का ध्यान आदि काल से रहा है। आज भी गो-रक्षा भारतीयता का एक अग है और इस सम्बन्ध मे लोगों का प्रयास निरन्तर होता रहता है। मुसलमानों के लिये गोवध-निषेध नहीं था। जनश्रुति के रूप में, यह प्रचलित है कि अकबर के शासनकाल में गोवध-निषेध का आदोलन दरबार के कवि नरहरि ने खडा किया था जिसका परिचय कवि के छदों में मिलता है।[२] कहा जाता है, आन्दोलन की इस भावना को अकबर तक पहुचाने के लिये नरहरि ने एक उपाय सोचा। उन्होंने फरियाद स्थल पर एक गाय को मगवाकर खडा कर दिया। जब अकबर ने गाय के आने का कारण पूछा तो कवि ने गाय के मूक सदेश को अपनी वाणी में कह सुनाया :—

---

१ पयोधरीभूत चतुस्समुद्राम् जुगोप गोरूप धराम् धरित्रीम्।

रघुवश, सर्ग २, छद सख्या ३

२ गउन को गनव हनत फन्नपति मुरख पवन्न ठेल्लत जहाजहिं
इंदुर डर विलार जस भाजत स्यार तमक्कि घात मृगराजहिं
स्वान चरष जस मारि विडाल तकय तुरत धावै विन साजहि
नरहरि कृपा करै रघुनदन मारै तमक्कि गरगिया बाजहिं॥

नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग छद सख्या १२२

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहिं मारि सकत कोइ
हम संतत तिनु चरहिं बचन उच्चरहिं दीन होइ
अमरित पय नित स्रवहिं बच्छ महि थंभन जावहिं
हिंदुहिं मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं
कह कवि नरहरि अकबर सुनौ बिनवति गउ जोरे करन
अपराध कौन मोहि मारियत मुएहु चाम सेवइ चरन ॥[1]

कवि के हृदय में गो-वत्सलता की मधुर धारा इस रूप में प्रवाहित थी कि उसने सम्राट से गोवध-निषेध के लिये मार्मिक अभ्यर्थना की थी। संभव है, ऐसी घटना तथा अन्य कारणों से प्रेरित होकर ही अकबर ने गोहत्या निवारण के लिये उचित मार्ग का अवलम्बन किया था।[2]

भारतीय विश्वास का एक अंग सरिता-पूजन भी है। गंगा और यमुना में अत्यन्त प्राचीन काल से पुनीतता और माहात्म्य का आरोप होता आया है। इनके प्रति श्रद्धा भरे उद्गार अकबरी दरबार के इन कवियों में भी मिलते हैं। प्रकृति में परम शक्ति की व्यापक सत्ता का अवलोकन कर भारतीय मानव ने उसके विभिन्न अंगों को आदि-काल से पूज्य दृष्टि से देखा है। मनुष्य समाज में पर्वत, समुद्र, नदी, आकाश, वृक्षादि की विशिष्ट शक्ति के अधिष्ठाता रूप में पूजा भारतीय परम्परा का एक अंग है। भारत की सरिताओं में गंगा और यमुना का विशिष्ट स्थान है। यों तो गंगा की उपादेयता ही उसकी विशेष स्थिति और उसके प्रति विशेष आकर्षण के लिये पर्याप्त है और संभवतः इसी से प्रेरित होकर आर्य ऋषियों ने इसमें देवत्व-भाव की प्रतिष्ठा कर दी थी। भारतीय विश्वास के अनुसार गंगा केवल इसलिये पूज्य नहीं है कि उसका जल निर्मल तथा स्वास्थ्यवर्धक है वरन् वह इस-लिये भी पवित्र है कि उसकी धारा ब्रह्मा के कमंडल से निकलकर शिव के मस्तक पर गिरती और फिर आर्यावर्त को पवित्र करने के लिये पृथ्वी पर अवतरित होती है। पुराणों में गंगा की महिमा का विशद वर्णन है। रामायण तथा महाभारत में भी गंगा का महत्त्व वर्णित है। यमुना इसलिये भी पूज्य है कि कृष्ण ने उसके कछारों में, पार्श्ववर्ती कुंजों में विविध क्रीड़ाएँ की थीं। श्रीमद्भागवत में यमुना को विशेष महत्त्व दिया गया

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १२७

२ आइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ १९३

है। कृष्ण-भक्ति के अन्तर्गत यमुना का विशेष माहात्म्य माना जाता है जिसका गान हिन्दी के भक्त कवियों ने मुक्त कंठ से किया है।

प्रस्तुत कवियों में ब्रह्म, तानसेन, गंग, रहीम ने गंगा और यमुना दोनों की महिमा के वर्णन अपने छंदों में किये हैं। निम्नलिखित छंद में ब्रह्म ने गंगा का माहात्म्य वर्णन किया है :—

जानी मुकुन्द सदा महिमा उपमा कहँ आपु समान करी है
पारहू लो दसहूँ दिसहूँ जगहूँ नभहूँ तिहु लोक भरी है
ब्रह्म भने हौ नहाइ कहा करु गंग बड़े पै बड़ी परी है
और को जानिबे जागु तुमै हरु जानतु है तिहु लोक तरी है ॥[1]

तानसेन ने निम्नलिखित पंक्तियों में गंगा की स्तुति करते हुए कहा है, तीनों लोकों, पशुपक्षी, मनुष्यों को पवित्र करने वाली तथा भक्तों को मोक्ष का वरदान देने वाली गंगा शिवजी की जटा के मध्य में विराजमान है :—

ईस सीस मध विराजत अइ लोक पावन किए गंगा जंतु खग मृग सुर नर मुनि मानी
तानसेन प्रभु तेरी अस्तुति करता दाता भक्त जनन की मुक्ति की वरदानी ॥[2]

गंग ने भी नीति-उपदेश के प्रसंग में गंग-तरंग की महिमा का बखान किया है :—

गंग तरंग प्रवाह चले तहँ कूप को नीर पियो न पियो।
आइ हृदै रघुनाथ बस तब और को नाम लियो न लियो ॥[3]

विशाल हृदय रहीम ने गंगा की प्रशंसा की है और उसके पौराणिक महत्व को नीचे लिखे दोहे में स्पष्ट किया है :—

अच्युत चरन तरंगिनी शिव सिर मालति माल।
हरि न बनायो सुरसरी कीजौ इंदव भाल ॥[4]

यमुना माहात्म्य का वर्णन कवि गंग ने नीचे लिखे छन्द में किया है जिसमें कवि ने प्रकट किया है कि यमुना स्नान करने वालों को नरक नहीं जाना पड़ता वरन् वह स्वर्ग प्राप्त करता है :—

---

१ देखिये, ब्रह्म के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या २५
२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १५
३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९
४ देखिये, रहीम-रत्नावली, दोहावली, दोहा-संख्या १

जैसे नीकी औषधि ते रोग न रहत तन दारिद रहत नाहि पारस के पाये ते
तम न रहत जैसे अरुन के उदय होत पाप न रहत जैसे हरि गुन गाये ते
पितृ मिलै ब्रह्म म न कबहूँ नरक परै कहै कवि गग एक साधु पूत जाये ते
नन्द नन्द दर्श होत चित अति हर्ष होत देखिए न यमलोक यमुना के नहाये ते ॥[१]

इस प्रकार गगा और यमुना के माहात्म्य का वर्णन कर इन कवियों ने अपनी उज्वल भारतीयता का परिचय दिया है।

तीर्थ स्थानों की महत्ता विश्व की सभी जातियों ने स्वीकार की है क्योंकि तीर्थों म ईश्वर की सर्वव्यापकता का आभास तो मिलता ही है, साथ ही विद्वानो तथा सन्तों के दर्शन भी वहाँ होते हैं। इस्लाम-धर्म के विश्वासानुसार मुसल्मान मक्का-मदीने जाकर अपने सब कुकृत्यों से छुटकारा पा जाते हैं। ईसाई येरुशलम जाकर शैतान से सदा के लिये अपना पिंड छुडा लेते है, बौद्ध भिक्षु लुम्बिनि बन, बोधगया, सारनाथ, राजगृह, कुशीनगर (कसिया) और जैन-भिक्षु वैशाली के दर्शन कर अपने आपको धर्मान्वित करते हैं। 'तीर्थ' शब्द की व्युत्पत्ति ही इस आशय की पुष्टि करती है 'तरन्ति जनाः येभ्यः तानि तीर्थानि'। तीर्थाटन की यह भावना भारतीय विश्वास के अन्तर्गत ही है। प्रयाग तीर्थराज कहलाता है, ग्रहण पर काशी-स्नान अनूठा प्रभाव रखता है, मकर-सक्राति और कुम्भ के अवसर पर हरिद्वार में असख्य तीर्थ यात्रियों की भीड लगती है। प्रति वर्ष न जाने कितने लोग जगन्नाथपुरी और बदरिकाश्रम की यात्रा कर अपने जीवन को कृतकृत्य समझते हैं। इन भारतीय तीर्थों की महिमा अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों ने भी गाई है। तीर्थ-यात्रा तानसेन के जीवन की सर्वोत्कृष्ट साधना थी। उनके विचार से तीर्थाटन की प्रवृत्ति उन्ही लोगों में जाग्रत होती है जिन पर ईश्वर को असीम कृपा रहती है। वे भगवान से विनीत शब्दों में प्रार्थना करते हैं :—

ब्रह्मगत अपरम्पार न पाऊँ
पृथ्वी पार पताल धरा औ गगन लौं धाऊँ
जो लौं न होय सुदृष्टि तुम्हारी मन इच्छा फल ही पाऊ
तीरथ प्रयाग सरस्वती त्रवेणी सब तीरथ होकर गुरू द्वार आऊँ
भागीरथी गौतमी श्री ग गा तानसेन गावे हरिद्वार चाऊँ॥[२]

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९१

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १७८

तानसेन ने कई हिन्दू-तीर्थों की यात्रा की थी जिसका परिचय उक्त पद से मिल जाता है। भारतीय सस्कारों के अनुरूप ही उनके हृदय मे अपने गुरु के प्रति असीम भक्ति का पता चलता है।

कवि ब्रह्म ने 'प्रयागराज' की महत्ता का निम्नलिखित छद में वर्णन किया है :—

ए मेरे तीरथ ए मेरे देव सु ए मेरे मात पिता मेरे एई
श्रुति है मुख के मुख जाने नहीं तपु जानु पनों नहिं जानन देई
बावन के पद पावन धाते हैं ताते मे दिव्य तरग निसेई
ब्रह्म भनै अपनो अपुनावत आपही पार लगावत ही लेई ॥[1]

गग ने 'त्रिवेणी' का माहात्म्य वर्णन कई स्थलों पर किया है। एक स्थान पर रहीम के व्यक्तित्व को गौरव प्रदान करने के लिये त्रिवेणी से उसका रूपक बांधा है। दूसरे स्थल पर नखशिख प्रसग में प्रयागराज की महत्ता दी गई है।

रहीम को भी भारत के तीर्थ-स्थानों की महिमा ज्ञात थी और वे यह भी अच्छी तरह जानते थे कि इन स्थानों में ईश्वरीय सत्ता की आभा का प्रकाश भी रहता है। इसे उन्होंने अपने दोहों में इगित किया है। 'चित्रकूट' की महत्ता रहीम ने निम्नलिखित दोहे में वर्णित की है :—

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध नरेस
जा पर विपदा पड़त है सो आवत येहि देस ॥[2]

नरहरि ने कुछ छदों में काशी, जगन्नाथपुरी की महत्ता को दिखाते हुए इगित किया है कि इन तीर्थ-स्थानों में ईश्वरीय सत्ता का आभास तो मिलता ही है, साथ ही कई महापुरुषों और सन्यासियों के वहाँ दर्शन भी होते हैं। अतएव तीर्थाटन की यही महत्ता भारतीय विश्वास की परिचायक है। वस्तुतः तीर्थों का सर्वकालीन और सार्वभौमिक महत्त्व इस ओर भी सकेत करता है कि सिद्ध महात्माओं का प्रभाव अक्षुण्ण तथा शाश्वत होने के साथ पवित्र स्थानों के ससर्ग से सर्वदा बना रहता है। अकबर के पूर्व कुछ मुसल्मान शासकों ने तीर्थ यात्रा पर कर द्वारा नियन्त्रण कर रखा था। परन्तु परिस्थितिया बदली और जैसा पीछे कहा जा चुका है अकबर के उदार शासन में

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या २४

२ देखिये, रहीम-रत्नावली, दोहा सख्या ५४

इस अनुचित प्रथा का अंत कर दिया गया और सबको धार्मिक अनुष्ठानों मे पूरी स्वतन्त्रता प्रदान की गई। इस स्थिति मे प्रस्तुत दरबारी कवि मुक्त-कण्ठ से तीर्थाटन के माहात्म्य का वर्णन क्यों न करते।

वेदों मे इन्द्र, वरुण, मित्र, अग्नि आदि अनेक देवों की स्तुति विद्यमान है। वैदिक काल से ही आर्य इन पृथक् पृथक नामो मे एक ही ईश्वरीय सत्ता का आभास पाते रहे हैं। ईश्वर में अनन्त गुण होने के कारण ही उसके अनन्त नाम भी व्यक्त किये गये हैं। प्रस्तुत कवियों ने इस 'एकात्मवाद' को अपनाया है। उन्होंने निष्पक्ष-भाव से सूर्य, विष्णु, दुर्गा, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि अनन्त देवों की समान स्तुति की है।

ब्रह्म की सर्वव्यापकता का निर्देश तानसेन ने निम्नलिखित पद मे किया है :—

प्यारे तू ही ब्रह्मा तू ही विष्णु तू ही रुद्र तू ही शक्ति तू ही गणेश तू ही सौरा।
तू ही जल तू ही थल तू ही पवन तू ही अकास तू ही अधूरा तू ही पूरा॥[1]

अन्य कवियों ने भी ईश्वर के विविध रूपों के गान किये हैं। तानसेन ने देवताओं की व्यक्तिगत रूप से भी स्तुति कर अपने भारतीय-हृदय का परिचय दिया है। उसके इन वर्णनों मे तन्मयता है। उसकी इन पंक्तियों मे जैसी सरसता मिलती है वह उसकी वास्तविक अनुभूति और समवेदना की द्योतक है।

भगवान शिव के समक्ष तानसेन ने नाद-विद्या की याचना करते हुए शिव की दया, दाक्षिण्य, उदारता तथा उनके स्थूल स्वरूप का जैसा भावांकन किया है वह परंपरागत भारतीय-जीवन का ही उदाहरण है :—

महादेव आदि देव देवादि देव महेश्वर ईश्वर हर
नीलकंठ गिरिजापति कैलाशवासी शिवशंकर भोलानाथ गंगाधर
रूप बहुरूप भयानक बाघांबर अंबर खप्पर त्रिशूल कर
तानसेन के प्रभु दीजै नाद विद्या सगत सो बजाऊ बीना कर धर॥[2]

एक दूसरे पद में गणेश की स्तुति करते हुए कवि अपनी संगीत-कला की संवृद्धि की कामना करता है :—

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ३८
२ " " " " पद संख्या १६

ए गण राजा महाराजा गजानन जे विद्या जगदीश
सप्त स्वर सों गाऊ बजाऊ सब राग रागिनी पुत्र वधून सहित छतीश
बाईस सुरत इकईस मूरछना उनचास कोट तान आवे जगदीश
तानसेन को दीजे छ राग छतीश रागिनी ताल लय सो होय कठ प्रवेश ॥[1]

अकबरी-दरबार के हिन्दी कवियों की रचनाओं मे काव्य-गुणों के साथ-साथ सगीत सरसता का भी गुण पाया जाता है। इन कवियों के समय में वल्लभ-सप्रदाय, निंबार्क-सप्रदाय आदि अनेक माधुर्य-प्रेमोपासक भक्ति पथ प्रचलित थे जिनमें मन निग्रह की की आध्यात्मिक साधना में सगीत को अपनाया गया था। इन सप्रदायों के कवियों ने गेय पदों के रूप में कीर्तन लिखे थे और वे ताल और स्वर के साथ गाये जाते थे। इन सप्रदायों का तत्कालीन प्रभाव इन कवियों पर भी पडा। दूसरे स्वय अकबर ने अपने दरबार में उच्चकटि के सगीतिज्ञों को सम्मानित किया था जिनकी कला का प्रभाव इन कवियों की रचनाओं पर पडे बिना न रह सका।

प्रस्तुत कवियों में सगीत की दृष्टि से तानसेन का सर्वोच्च स्थान था। तानसेन इस कला के केवल कलाकार ही न थे वरन् आचार्य भी थे। उनके द्वारा विरचित 'सगीत-सार' नामक पुस्तक से जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है उनके सगीत-कला के शास्त्रीय ज्ञान तथा पांडित्य का परिचय मिलता है। संगीत सम्बन्धी ज्ञान के विषय में कवि स्वय अपने मुख से कहता है '—

खरज साधे गाऊ मैं श्रवणन सुनहु सुनाऊ
वेद पढाऊ जोइ कहे सोइ उचराऊ
भैरव मालकोश हिन्दोल दीपक श्री राग मेघ सुर ही ले आऊ
तानसेन कहे सुनो हो सुघर नर यह विद्या पार नहिं पाऊ ॥[2]

उपर्युक्त भैरव, मालकोश, हिंदोल, दीपक, श्री, मेघ इन छः रागों के अतिरिक्त सभी रागनियों को भी वे विधिपूर्वक अपने मौखिक गान द्वारा प्रदर्शित कर सकते थे। 'दीपक' राग का तो कवि ने विशेष रूप से गान किया था जिसका उल्लेख आज भी किंवदती रूप में होता है। तानसेन ने स्वय कई रागों का आविष्कार किया था।

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या ११
२ ,, ,, ,, ,, पद सख्या १५७

'अवतारवाद' भारतीय धार्मिक विश्वास की एक बड़ी विशेषता है। प्रस्तुत ग्रंथ के प्रायः सभी कवियों की इस अवतारवाद में आस्था थी। तदनुरूप यह विचार-धारा उनकी रचनाओं में भी व्यक्त हुई है। नरहरि ने परब्रह्म के विविध अवतारों-राम, कृष्ण, नृसिंह, बावन आदि के स्वरूपों का गुणगान एक ही छंद में कर उनके प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की है :—

> माधव केसव कस्न बिस्नु बयकुंठ दमोदर
> हरि मुकुन्द गोविंद अमर अविगच्छ अगोचर
> नारायन नरसिंह सुत बिट्ठल बलि गंजन
> प्रभु मुरारि बनमालि गोपि जीवनि जुग रंजन
> सारंग सष गद्द चक्र बन पठ [गुन तसकर हनन
> जै राम राम भगवतहिं तकहि नरहरि तक्क बसनन ॥[1]

तानसेन का वल्लभ-सम्प्रदाय से विशेष संपर्क था जिसका उल्लेख उनकी जीवनी में किया जा चुका है किन्तु तानसेन ने जहाँ कृष्ण का गुणगान कई छंदों में किया है वहाँ राम के अवतार का भी वर्णन उनकी रचनाओं में आया है। वे भगवान राम में अपनी भक्ति की प्रगाढ़ता का परिचय निम्नलिखित पद से कराते हैं :—

> अब मैं राम राम कहि टेरौं
> मेरे मन लागी उनही सो सीतापति पद हेरौं
> चरन सरोज श्रवन मन मेरो धुज अंकुश मुख चेरौं
> तानसेन प्रभु तुम बहोनायक इन तरवन पर फेरौं ॥[2]

कवि गंग के एक सवैये में ईश्वर के बावनावतार का समस्यापूर्ति के प्रसंग में वर्णन मिलता है :—

> एक समय प्रभु भावन बावन सत उपावन देह धरी
> बलि को छल के प्रभु राज लियो तिहुँ लोक कि तीनहि पैंड करी

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११७

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या ३ ६

तिनके कर दड हूतो सो बढ़्यो भुवदान दियो लियो माँग हरी
कवि गग कहै ये अचभ लखो बिन पल्लन पेड बढी लकरी ॥[1]

उपर्युक्त छद कवि ने सभवत 'बिन पल्लव पेड बढी लकरी' की समस्या पूर्ति म उच्चरित किया था और वावनावतार की चिरसचित विचारधारा ने यहाँ पर उसकी सहायता की थी।

रहीम ने राम, कृष्ण का तो गुण-गान किया ही है। अपने एक बरवै में मनोपदेश देते हुए उन्होंने ईश्वर के 'नृसिंह' अवतार का भी वर्णन किया है —

भजि नर, हर नारायन तजि बकवाद
प्रगट खभ ते राख्यो जिन प्रह्लाद ॥[2]

इस प्रकार ईश्वर के विभिन्न अवतारों के वर्णन करके इन कवियो ने सगुण और साकार ब्रह्मवाद का समर्थन किया है। ईश्वर के साकार और निराकार दोनों रूप इन कवियों को मान्य थे। नरहरि ने अपनी रचनाओं मे भगवान के साकार रूप का गान हृदयग्राही रूप में किया है। 'ब्रह्म' ने निराकार ईश्वर की साधना को कठिन बताया है। वे उसके साकार स्वरूप की उपासना ही श्रेयस्कर मानते हैं, वैसे उनकी आस्था निराकार रूप मे भी थी —

प्राण चढाय कै जोग करो काहै करो व्रत पुज विशाला
देह तपाय तपाय पचागिन काहै सहो बन बैठि कसाला
ब्रह्म विचारत जो हिय में सोइ रूप धरै नर को यहि काला
जाय लखो किन वा नदराय के आगने खेलत नद को लाला ॥[3]

उन्होंने निम्नलिखित सवैये में ईश्वर के निराकार और सर्वव्यापक रूप का वर्णन किया है :—

तुम ही करता तुम ही भरता तुम ही नभ ऊपर तेज तपै हो
ब्रह्म भनै जु जहान की जीभ जहाँ सुत दास भलो गज पै

---

१ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १८८

२ रहीम-रत्नावली, बरवे, छद सख्या ९२

३ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १४

कौनऊ भाति कनूरू न काऊ के मोसो कहो ऐते काहि चपै हो
एसी कहा तुम कीनो है नाथ जु ऐसे बडे तुम ऐसे छिपे हो॥[१]

तानसेन की साकारोपासना का वर्णन पहले के दिये गये राग और कृष्ण के भक्ति-गान सम्बधी पदो मे ग्रा चुका है। तानसेन ने कई पदों म ईश्वर के साकार और निराकार दोनों रूपों की उपासना की है :—

रूप निरजन अजन रहत ताहि बरनबे को उदित भए छहो शास्त्र अठारहों पुरान
ताको भेद नहि पावत शिव सनकादिक ब्रह्मा नारद शेष रटत केउ ब्रह्मा शिव
धर व्यापक कोट कोट ब्रह्माड रचत देख लेहो बुधवान
ग्रादि मध्य अत के ही नइ लोक चराचर वाही को इच्छा ते करत विनान
तानसेन के प्रभु सब जग व्याप रहो पूरन ब्रह्म अविनाशी निरकारु अविनाशी भगवान ॥[२]

'अनहद' नाद का गान भी कवि ने ईश्वर की 'निराकार' भावना से प्रेरित होकर किया है :—

अनहद शब्द उपजो मो घट मे ताको ध्यान धरूँ अष्टयाम
खरज रिषभ गान्धार मध्यम पचम धैवत निषाद पावै ज्योति अभिराम
धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदारथ पाए जब प्रगटी नाद ब्रह्म सहस रूप आनन्द धाम
धन धन ज्योति स्वरूप अचरज कर औ परसै तानसेन कंठ ठाम ॥

राग के भक्ति काव्य में कृष्ण का गुणगान ही प्रधान है जिसे पहले दिखाया जा चुका है।

रहीम के छदों मे भी ईश्वर के साकार स्वरूप का वर्णन हुआ है जिनका उल्लेख पहले 'अवतारवाद' के प्रसग में हो चुका है। रहीम के बरवों मे नद-नदन कृष्ण का गुणगान हुआ है :—

भज रे मन नद नदन विपति विदार।
गोपी जन मन रजन परम उदार॥[४]

---

१ देखिये, ब्रह्म के छद प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ३
२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या ४८
३ ,, ,, ,, ,, पद सख्या ३७
४ देखिये, रहीम-रत्नावली, बरवै, छद सख्या ३३

इस प्रकार इन सभी कवियों की रचनाओं में साकार तथा निराकार दोनों प्रकार की उपासना के परिचय मिलते हैं। इनमें से ब्रह्म और तानसेन का तो वल्लभ संप्रदाय से विशेष संपर्क था जिसे उनके जीवन चरित में दिखाया जा चुका है। उन्होंने इस उपासना-पद्धति द्वारा हिन्दू-धर्म में अपने विश्वास का पूरा परिचय दिया है।

वैदिक, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्म सनातन आर्य-धर्म के ही पूरक हैं और इन सब में एक आर्य-संस्कृति की ही धारा प्रवाहित है। वैदिक काल में प्रतिमा पूजन की पद्धति भारतवर्ष में प्रचलित थी अथवा नहीं यह विवादग्रस्त प्रश्न है किन्तु यह अधिकांश लोग मानते हैं कि रामायण तथा महाभारत के रचनाकाल में प्रतिमा-पूजन भारतीय परंपरा का अंग बन चुकी थी। हिन्दू-धार्मिक निष्ठा के अन्तर्गत प्रतिमा-पूजन तथा पूजा की अनेक विधियाँ प्राचीन काल से प्रचलित रही हैं। प्रस्तुत कवियों में से कुछ के काव्य में धार्मिक निष्ठा के इन अंशों का भी वर्णन मिलता है।

धौलागढ़ की रानी की उपासना के वर्णन में तानसेन ने प्रतिमा-पूजन की समर्थन करते हुए पूजा की विधि का निम्नलिखित प्रकार से वर्णन किया है :—

जै जे कर पूजो धौलागढ की रानी ने
पान सोपारी ध्वजा नारियल पहले भेंट भवानी ने
तेल फुलेल अरगजा अंबर ले चढावत वाकू वानी ने
तानसेन यह प्रसाद मांगत दीजै बुधि औ वानी ने ॥[1]

देवतादि की पूजा का रहीम ने सांकेतिक निर्देश किया है —

पुरुष पूजैं देवरा तिय पूजैं रघुनाथ
कह रहीम दोउन बनै पडो बैल को साथ ॥[2]

शुभ-अशुभ शकुन आदि का पुराणों में सविस्तार वर्णन है। 'मुहुर्त-चिंतामणि' आदि फलित ज्योतिष-ग्रन्थों में इस विषय का महत्वपूर्ण ढंग से उल्लेख आया है। शकुन-अपशुकुन का विचार अति प्राचीन न होने पर भी भारतीय विश्वासों में विशेष रूप से घर कर गया है। प्रस्तुत कवियों में नरहरि मुगल शासक हुमायूं के दरबार में उपस्थित थे

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७९

२ देखिये, रहीम-रत्नावली, दोहावली, दोहा संख्या ११४

जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। हुमायू को ज्योतिष-विद्या से अत्यधिक रुचि थी। सभव है उन्ही के सपर्क से नरहरि में इसके प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई हो। नरहरि ने शुभ-अशुभ शकुनों पर विचार किया है। दो-तीन स्थलों पर उनके ये उदाहरण मिलते हैं :—

चौरासी चौसट्ठि चौबीस षोडस गुनि
पुनि बारह पुनि रुद्र दसम नव अट्ठ सत्त पुनि
षर पचम पुनि चारि तीनि दुइ एक सत षिनु
सत्रह दड प्रमान होहि दुपहर असाढ दिनु
घड़ी चढी जब ही तब तन नर छाया गुनि लिजिये
महि मध्य देस नरहरि निरख सोचहि विधि देव सग निजिये ॥[1]

किसी प्रदेश के विजय के अवसर पर शुभ शकुन का विधान कवि ने इस प्रकार किया था :—

सख भेरि मृदग सुभु गीत वेद धुनि
गो सब छवन विप्र जु अति सुत पेषि पुनि
धौत वस्त्र लिए रजक वेस विहसित सिगार तन
फल अछत दधि पुहुप मह नृप देषि सुद्ध मन
पूरन घट छत्र तुरग गज सिद्ध अलगो भय कहिय
सुभ सगुन निरषि नरहरि कहिय सो विजउ करत नव निधि लहिय ॥[2]

रहीम की भी फलित-ज्योतिष मे पूर्ण आस्था थी और उन्होंने अपनी इस श्रद्धा का प्रदर्शन 'खेटकौतुक जातकम्' नामक ज्योतिष ग्रथ लिख कर किया है। ग्रथ मे ग्रह, नक्षत्र आदि के फलों पर विचार बिल्कुल भारतीय दृष्टि से हुए हैं। यह रचना भारतीय जीवन में उनकी आस्था की पोषक है।

पर्व तथा जनोत्सव का सम्बन्ध धार्मिक विश्वासों, ऐतिहासिक महापुरुषों की पुन्य स्मृति तथा ऋतु-कालानुसार विशेष अवसरों से रहता है और इस रूप में इनको भारतीय जीवन के अतर्गत विशेष स्थान प्रदान किया गया है। राम, कृष्ण आदि सभी ऐतिहासिक महापुरुष थे किन्तु इनमें ईश्वरीय अश विशेष रूप मे वर्तमान था और

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ४८

२ " " " छद सख्या ८९

जनता ने उन्हें अवतार की कोटि में माना। यह ठीक ही है कि महापुरुषों मे ईश्वर के विशिष्ट गुणों का समावेश रहता है और उन्ही से प्रेरित होकर वे आदर्श का सस्थापन करते हैं। राम, कृष्ण को भक्तों ने ईश्वर का अवतार माना, निर्गुण सतों ने उनमें एक विशेष व्यक्तित्व का आभास पाया। कवि और अन्य लोग उन्हें महापुरुष के रूप में प्रस्तुत करने का अब भी प्रयास करते रहते हैं जिनमें साधारण मनुष्य के लिये उन महापुरुषों के आदर्श तक पहुँचने के लिये एक आशा निहित रहती है। बहुत से पर्व तथा उत्सव इन्ही महापुरुषों के व्यक्तित्व तथा कार्यों के स्मरण-हेतु एव नवीन हृदयों में आशा तथा नवीन स्फूर्ति के सचार की दृष्टि से मनाये जाते हैं। प्रस्तुत कवियों की रचनाओं मे कई पर्वों तथा जनोत्सवों के परिचय मिलते हैं।

नरहरि ने 'बारहमासा' के प्रसग मे फाग पर्व का वर्णन किया है —

राग विलास बसु सुर पूरित षेलत फिरत नृपति प्रजटागुन
बाजहिं पच सद्द बहु भांतिन सज्जन समीप सुधि न सुपतागुन
नरहरि निरषि होलिका पूजहि सब जग मुदित मोर परमागुन
वे जदुनदन भेग सषा सब पिय बिन बृथा फागु भई फागुन ॥[1]

विजय दशमी अथवा दुर्गा-पूजा सारे भारत की जनता के आनन्दोल्लास का पर्व माना जाता है। तानसेन ने निम्नलिखित पद मे इसी पर्व का प्रभावपूर्ण ढग से वर्णन किया है :—

आनद भयो आज आयो विजय घर घर मगल चार
अनेक गज तुरग साजे नौबत नगारे बाजे गज तुरग साजे सवार
तन बीतन धन शिखर नाना विधि बाजत सुरपति के द्वार
ब्रह्मा वेद पढे नारद मुनि गावे राजा रामचन्द्र जी के द्वार
तानसेन कहै सुनो साह अकबर दशहरा सुफल भई तिथि वार ॥[2]

तानसेन के निम्नलिखित पद मे 'होली' पर्व के उल्लास का वर्णन है :—

चलो तुमहू देखो कैसी मची होरी गावत रग महल म नारी
एक गावत एक मृदग बजावत एक नाचत दै दै करतारी

---

१ देखिये, नरहरि के विविध का बारहमासा छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १११
२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या ११५

अबीर गुलाल केशर पिचकारी तक तक मारत गावत है सब गारी
तानसेन प्रभु खेल रच्यो है फगुवा लीन्हों है भारी ॥[1]

'मदन महोत्सव' का वर्णन वात्स्यायन के 'कामसूत्र' मे विस्तारपूर्वक मिलता है। श्रीमदभागवत् मे भी इसका वर्णन है। कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' के छठे अंक तथा हर्ष ने 'रत्नावली' के पहले अंक मे इसकी चर्चा की है। इसी मदनमहोत्सव के उल्लास का सजीव चित्र तानसेन ने अपने निम्नलिखित पद मे प्रस्तुत किया है :—

घर घर ते ब्रज बनिता जो बन निकली आज कंचन थार भर भर नग नोछावर करत लाल की
सप्त सुर ले गावत कंठ कोकला लाजत उपजत अति रसाल गमक तान ताल की
मदन महोत्सव साज समाज गोपीन वृन्द मिल चहत चाल मराल को
तानसेन प्रभु रस बस कर लीने तिरछी चितवन मदन गोपाल की ॥[2]

उस काल के उत्सवों की एक झलक तानसेन के एक अन्य पद में मिलती है :—

सब समूह करिहै तू नर नारी रहसन ले चले करन लाड़ले के मगन की
सहनाइए कर लिए औ टकोरन बीण रवान गारन की झाझ झनकारन की
बाजत ए धूमधाम धावत थाके अनेक दल गज दल पयदल अश्व दल सगन की
तानसेन सब नगर नर नारी प्रफुलित भए गुणी जन गावत छिरकत अतर गुलाब
सुवास आवत सुगधन की ॥[3]

तत्कालीन रहन सहन और सामाजिक व्यवहार की भावना के अनुरूप ही तानसेन ने 'ईद' के अवसर पर मुबारकबाद का भी गान किया है :—

ईद मुबारक हावै जुग जुग नित तुम को महरबान
सकल विद्या गुण निधान अति ही आनद देत गुणीन को आदर मान
युग युग जीवो कोटि वरष लों देवो करो नित दान
तानसेन कहै सुनो शाह अकबर चहु चक राज करो मरदन मरदान ॥[3]

'श्रावणी' पर्व विशेप महत्त्व का होता है। इस अवसर पर बहन भाई को राखी बॉधकर अपनी रक्षा का भार उस पर दे देती है। मूल में रक्षा का भाव ही इसमें निहित

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १५२
२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १५६
३ „ „ „ पद सख्या १५८

है। गग के एक कवित्त में इस राखी-पर्व की महत्ता का उल्लेख हुआ है जिसमें एक वीर-बाला ने बूंदीपति जुझारसिंह को राखी भेजकर अपनी रक्षा की याचना की है :—

बैठे दरीखाने बीच साह के समूह दल दोनों दीन बीच आन दई एक राखी है
रोस कर वचन कहे हैं सुव पालन ते आवन को बधन बधे न सत्य भाखी है
भने कवि गग भट्ट सोर महि मडल में हाडावस वीर ने कृपान खोल राखी है
ठोकि भुजदड पे प्रचड सो जुझारसिह बूंदीपति राखी सो तुम्हारे हाथ राखी है ॥[1]

रहीम ने उद्दीपन रूप मे होली-पूजन तथा समारोह का निम्नलिखित दोहे में सकेत किया है :—

होरी पूजत सजनी जुर नर नारी
हरि बिन जानहु जिय में दई दवारी ॥[2]

सावन-तीज स्त्री समाज का महत्वपूर्ण पर्व है। इस अवसर पर आनदोल्लास में झूले आदि का विशेष आयोजन रहता है। रहीम ने एक बरवै मे इसी तीज का वर्णन विरह के उद्दीपन रूप मे किया है :—

घन घुमडे चहु ओरन चमकत बीच
पिय प्यारी मिलि झूलत सावन तीज ॥[3]

इस प्रकार इन कवियों ने पर्वों तथा जनोत्सवों के वर्णन कर तत्कालीन भारतीय जीवन का सम्यक् परिचय कराया है। आइने-अकबरी तथा अन्य ऐतिहासिक सूत्रों से पता चलता है कि अकबर हिन्दू तथा मुसल्मान पर्वों को दरबार मे विधि-पूर्वक मनाता था और वह स्वय उसमें सक्रिय भाग लेता था। एक अवसर पर अपनी प्रिय माँ 'मरियम-मकानी' की मृत्यु का शोक होते हुए भी दशहरा-पर्व के समुपस्थित होने पर उसने स्वय और सब दरबारियों से शोक का परिहार करने का आदेश देकर उनका शोक-पहनावा उतरवा दिया था और इस आनन्दोत्सव पर सब को नये कपडे बांटे थे।[4] ऐसे शासक को पाकर दरबारी कवियों द्वारा पर्वों का मुक्तकठ से गान स्वाभाविक ही था।

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १४२

२ रहीम-रत्नावली, बरवै, छद सख्या ६४

३ ,, ,, छद सख्या ११

४ अकबरनामा, भाग ३, पृष्ठ १२४५, १२४६

भारतीय आस्था के अन्तर्गत दान की प्रथा बहुत प्राचीन है। विश्व के सभी प्रदेशों मे इस प्रथा का प्रचलन है किन्तु यहाँ की दान-विधि अपने ढग की अनुपम है। विशेष-विशेष अवसरों पर विशेष प्रकार की वस्तुओं के दान अब भी प्रचलित हैं। महाराजा हरिश्चन्द्र, कर्ण, दधीचि आदि भारत के अद्वितीय दानी माने जाते हैं। 'धनात् धर्मम्' कह कर भी धन की वास्तविक उपयोगिता दान ही बताई गई है।

नरहरि ने गजपति मुकुद देव के तुलादान का मनोरम वर्णन किया है। स्वर्ण, मणि, मोती आदि के समूह, सहस्रों गाय, अश्व, गज, रथ, ग्राम, वस्त्र आदि के दान देकर राजा लोग अपने पुरुषार्थ-चतुष्ठय का परिचय देते थे :—

कनक तुला मनि मोत्ति दान दिन कहि जो अथ गन
सत्त सहस गो लच्छि देत विधि सहित सुद्ध मन
अस्व रथ गज वसन ग्राम गनि कहउ कौन कवि
बहुरि प्रगट कलि करन सत्त हरिचंद प्रात रवि
जस हत्थ भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित सभारिय
गजपति मुकुन्द दिव देव कह कहउ कवितु केहि विधि करिय ॥[1]

गग, तानसेन आदि ने दान-वर्णन द्वारा उसकी महत्ता प्रदर्शित की है। रहीम के दान सम्बन्धी दोहे बहुत प्रचलित हैं :—

देनहार कोउ और है भेजत सो दिन रैन
लोग भरम हम पै करैं याते नीचे नैन ॥[2]
नाद रीझि तन देत मृग नर धन हेत समेत
ते रहीम पशु से अधिक रीझेहु कछू न देत॥[3]

उक्त दोहों मे दानियों के विनम्र तथा मृदुस्वभाव के भी सकेत मिलते हैं जो भारतीय जीवन की विशेषता है। वस्तुतः अदृश्य दयालुता की भावना का प्रत्यक्ष रूप दान ही है। यह ठीक है कि कभी-कभी ख्याति और मान-प्राप्ति के लिये लोग दान रत

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९५

२ रहीम रत्नावली, दोहावली, दोहा सख्या १००

३ " " " ११०

होते हैं। परन्तु बहुत से व्यक्तियों की प्रवृत्ति इस ओर सहानुभूति,दया तथा त्याग के भाव से ही प्रेरित होती है। भारतीय जीवन में दान का इसीलिये विशेष महत्व है।

संस्कृत-आचार्यों ने 'आचारः परमोधर्मः' कह कर रीति आदि के पालन पर जोर दिया है। किसी शुभ अवसर पर मंगलाचार के आयोजन का वर्णन तानसेन ने निम्नलिखित पद में किया है —

> ए री आली आज शुभ दिन गावहु मंगलचार
> चौक पुरावो बजाओ रिझावो बधावो बंधनवार
> गुणी गन्धर्व अपसरा किन्नर वीणरबाब बजे करतार
> धन घड़ी धन पल महूरत तानसेन प्रभु पर बलिहार ॥[1]

आचारों के कुछ संकेत इस वर्ग के अन्य कवियों के छंदों में भी मिलते हैं जिनसे भारतीय परम्परा में उनके विश्वास का पता चलता है।

अतिथि-सत्कार प्राचीन काल से ही भारतीय आस्था का एक अंग रहा है। जब सारे देश का सम्राट् ही अतिथि बन कर आ जाये तो फिर प्रसन्नता का क्या ठिकाना। तानसेन ने निम्नलिखित पद में अपनी इसी प्रसन्नता का वर्णन किया है :—

> ए आयो मेरे ग्रह छत्रपति अकबर मन भायो करम जगायो
> पाछलो पुण्य मेरो प्रकट भयो याते अर्थ धर्म काम मोक्ष मन चायो चारों फल पायो
> काहू की न इच्छा रही तेरे दरस देखे पाप तज धर्मराज अचल कर पठायो
> तानसेन कहे यह सुनो छत्रपति अकबर जीवन जनम सुफल कर पायो ॥[2]

प्रस्तुत कवियों की रचनाओं में तत्कालीन रहन-सहन तथा वेश-भूषा के भी कुछ वर्णन मिलते हैं। अकबर के समय का पहनावा था—सिर पर लटपटी पाग, तन पर घुटने तक या उससे कुछ नीचे जामा और पैरों में पाजामा, कमर में पटुका और कभी-कभी दुपट्टा भी रहता था जिसके छोर बाये कन्धे से आगे पीछे लटकते रहते थे। प्राचीन चित्रों के आधार पर अन्वेषकों ने अकबरकालीन उक्त पहनावे का उल्लेख किया है और इस पहनावे के स्वरूप और उद्गम को भारतीय ही बताया है। चाकदार या घेरदार जामा हिन्दू पहनावा था। इसी का नाम 'चोल' भी था जिसका उल्लेख चोल या चोलना

---

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १७६

२ " " " पद संख्या १४६

के रूप में सूरदास और नंददास की रचनाओं में मिलता है। इस चोले पर जो पटुका या कमर-बंधका बांधा जाता था वह भी यहीं का रिवाज था। इसका पटुका 'पट्टक' नाम भारतीय ही है। पाजामा भी कोई बाहरी चीज नहीं कही जा सकती। इसका पुराना नाम 'सूथना' था जिस नाम का प्रयोग आज भी बड़े बूढ़े पाजामा के लिये करते हैं। सूथना 'सूत्र-नद्ध' शब्द का ही एक विकसित रूप है। स्त्रियों के पहनावे के लिये भी इसका प्रचार था जिसका उल्लेख सूरदास के एक पद में हुआ है। 'लटपटी पाग' भी भारतीय ही है यद्यपि समय-समय पर इसका स्वरूप परिष्कृत होता रहा है। राजपूत शैली के कई चित्रों से इसका पता चलता है।[1]

प्रस्तुत कवियों में तानसेन ने लटपटी पाग का वर्णन किया है :—

लटपटि पाग खुल रही।पेन्चन सों . ॥[2]

स्त्रियों में लहगा, चुनरी, पचरंगी तथा गोटी-जरी किनारी की धोती पहनने का रिवाज था। आभूषणों में हार, हमेल, बीरी, बेसरि आदि भारतीय आभूषणों के उल्लेख इन कवियों ने किये हैं। हाथों में ताबीज, गले में छरा आदि पहनने की प्रथा सम्भवतः विदेशी भावना के प्रभावस्वरूप भारतीय वेश भूषा की अंग बन गई थी।

भारतीय विश्वास और आचरण के अन्तर्गत षड्रिपु-काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर और लोभ के निवारण का बहुत बड़ा महत्त्व है। पुरुषार्थ चतुष्ठय की सिद्धि में में इनका निराकरण आवश्यक है। ये षड्रिपु मानव के सिद्धि पथ में घोर विघ्न डालते हैं।

नरहरि ने उपर्युक्त षड्-रिपुओं के परित्याग का उल्लेख निम्नलिखित छप्पय में एक रूपक द्वारा किया है :—

जगु जलनिधि जल मोह त्रस्ना तरंग भर
तट दुहु दिसि मद मान लोभ अज्ञान भवर भर
काम क्रोध अति जलु गहिय कर वर छलि बोरहिं
मन विलास वह पवन कलुष बवन्डर झकझोरहिं

---

१ अकबरी काल का पहनावा, रायकृष्णदास

२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, पद संख्या १२२

लै विषय सत्रु तेहि माक्त पग कहि नरहरि केहि सभरइ
पुरुषोत्तम परम कृपाल विन एहि अवत्थ को उद्धरइ ॥[1]

ब्रह्म ने इन्हीं मानसिक-विकारों की निवृत्ति का उपाय रूपक द्वारा निम्नलिखित ढग से व्यक्त किया है —

काम कबूतर तामस तीतर ज्ञान गुलेलन मार गिराये
पाखड के पर दूर किये अरु मोह के अस्थि निकासि ढराये
सजम काटि मसालो विचार कै साधु समाज ते ताहि हिलाये
ब्रह्म हुतासन सेकि के बावरे वैष्णव होत कवाब के खाये ॥[2]

रहीम ने भी इन षड्रिपुओं मे क्रोध, अहकार, गर्व आदि के परित्याग के वर्णन निम्नलिखित दोहों मे किये हैं :—

रहिमन कबहुँ बड़ेन को नाहि गर्व को लेस
भार धरै ससार को तउ कहावत सेस ॥[3]
रहिमन गली है साकरी दूजो न ठहराहि
आपु अहै तो हरि नहीं हरि तो आपु न आहि ॥[4]

रहीम ने क्रोध-निवारण के साथ मिष्ठ-भाषण के सुन्दर परिणाम की ओर इगित किया है :—

रहिमन रिस को छाडि कै करौ गरीबी भेस
मीठो बोलो नै चलो सबै तुम्हारो देस ॥[5]

भारतीय आस्था के अतर्गत नैतिक उच्चता का भी विशिष्ट स्थान है। भारतीय साहित्य की वास्तविक उपादेयता लोक-कल्याण एव आत्म-निर्माण में ही निहित है और इस रूप मे यह भारतीय विश्वास का एक अग है। प्रस्तुत सभी कवियों

---

१ देखिये, नरहरि क विविध विषयक फुटकर छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९१

२ देखिये, ब्रह्म के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ९३

३ रहीम-रत्नावली, दोहा सख्या १७१

४ ,, ,, दोहा सख्या १११

५ ,, ,, दोहा सख्या २२६

ने नीति उपदेश सम्बधी विषय को अपने काव्य का मुख्य विषय रक्खा है, जिनका परिचय इनके काव्य-विवेचन के प्रसग मे पहले दिया जा चुका है ।

इस प्रकार इन कवियों की रचना-पद्धति मे भारतीय सामाजिक जीवन और विश्वासा की झलक स्पष्ट रूप मे मिलती है । अकबर, रहीम जैसे व्यक्तियों ने भी अपनी आस्था को भारतीय जीवन और विश्वासों के रूप मे ही देखा । अकबर ने भारतीय जीवन को प्रमुख रखते हुए उसमे फारस, मध्य-एशिया के जीवन सम्बधी बातों का सम्मिश्रण कर दिया था । सीकरी का स्थापत्य, तानसेन का सगीत, दरबार की चित्रकला, दीने इलाही, उसके आचार-विचार, रहन सहन, उक्त पहनावे के परिवर्तन मे यही विशेषता दिखाई पडती है । किन्तु उस समय के हिन्दू अथवा स्वय अकबर के उत्तराधिकारी ही उसके दृष्टिकोण को न समझ सके और वह उसी के साथ समाप्त हो गई ।

ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेख

राज्याश्रित कवियों की उपयोगिता के सम्बध मे यहा कुछ विचार कर लेना अप्रासगिक न होगा । शासकों के व्यस्त और क्रान्तिमय जीवन मे सरसता एव मधुरता के सचारार्थ अनेक दरबारी कवि उनके समीप बने रहते थे । सरस और मनोरम उक्तियों द्वारा आश्रयदाता का मन-बहलाव इनका लक्ष्य होता था किन्तु इसके अतिरिक्त समय मिलने पर स्वतत्र रूप मे सुन्दर भावों की अभिव्यक्ति उनका लक्ष्य रहता था । सस्कृत-साहित्य मे ऐसे अनेक दरबारी कवियों का उल्लेख मिलता है जिनकी रचनाओं मे काव्य-कलापूर्णता से प्रस्फुटित हुई है । हिन्दी के महाकवि चन्द बरदायी का पृथ्वीराज के दरबार मे उपस्थित रहना प्रसिद्ध ही है । राजा के कष्टों मे दुःखानुभूति और उसके सुखों में आनन्दानुभूति इनका प्रधान उद्देश्य था । चद ने अनेक ऐतिहासिक-घटनाओं के उल्लेख भी अपनी रचनाओ मे किये हैं । ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जब ये कवि राजा के साथ 'युद्ध-क्षेत्र' में अवसर पडने पर तलवार उठाकर अपने शौर्य का परिचय भी देते थे । साथ ही कभी 'युद्ध-स्थल' पर अपनी वीरोत्तेजक कविताओं द्वारा योद्धाओं को प्रोत्साहित करते देखे जाते थे और शासक की विजय पर उसका यशगान और पराजय मे उसके प्रति समवेदना, सहानुभूति और आशा का सचार करते थे । किन्तु इस सब के अतिरिक्त भी दरबारी कवियों का कोई गुरुतर महत्व था । शासक के राजकीय-जीवन में कभी-कभी ऐसी समस्याएँ भी आ जाती थीं जिसका सुलझाना सब के लिये सभव नहीं होता, वह कार्य सुकवियों द्वारा जितनी सुचारुता और समुचित रूप में सपन्न हो पाता है

उतना किसी अन्य द्वारा नही। ओरछा-नरेश इन्द्रजीत सिंह ने महाकवि केशवदास को आवश्यक कार्य निमित्त राजा बीरबल के पास भेजा था। कवि नरहरि की जीवनी म पहले निर्देश किया जा चुका है कि सम्राट अकबर ने उनको जगन्नाथपुरी के राज मुकुंददेव के पास हसनखा खजाची के साथ अवसर विशेष पर सन्धि-प्रस्ताव के सम्बन्ध मे भेजा था। अकबर ने नरहरि को उनकी नीति तथा सभा-चातुरी के कारण ही यह गुरुतर भार सौंपा था। अपनी स्वच्छन्द गति के कारण कवियों की विभिन्न स्थान मे पहुँच रहती है। इस प्रकार वे अनेक लोगों से परिचित रहते हैं और उनके इस परिचय का लाभ उनका आश्रयदाता अवसर-विशेष पर उठाता था।

किन्तु कवियों का सारा कार्य-व्यापार केवल दरबार तक ही सीमित नहीं रहता। वे अपने बाहर के समाज के भी प्रमुख अग होते हैं। इनका समाज के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध रहता है और स्थान विशेष मे पहुँचने पर अथवा आमन्त्रित होने पर वहाँ इन्हे उचित मान मिलता है। जब साधारण कवि का समाज मे मान रहता है तो फिर वे लोग तो राजकीय कवि ठहरे। इस सम्मिलन से उनके द्वारा सामाजिक विशेषताओं का प्रभाव राजकीय सत्ता पर और उन्ही के द्वारा राजकीय कार्यो की पुष्टि समाज मे होती है। राज्य और समाज के मध्य वे एक सुसम्बन्ध का सस्थापन करते हैं और इसी कारण उनकी रचनाओं मे राजनीतिक तथा सामजिक घटनाओं का चित्रण हो जाना स्वाभाविक ही है। अतएव अपने आश्रयदाता का यशगान, अनेक सामन्तो द्वारा सम्मान पाने पर उनके गौरव का बखान, अवसर विशेष पर राजनीतिक घटनाओं के उल्लेख तथा सामाजिक विशेषताओं के वर्णन उनके काव्य की प्रमुख विशेषता रहती है।

अबुलफजल, बदाउनी, निजामुद्दीन आदि अकबरकालीन इतिहासकारों ने अपने पूर्व की और समकालीन घटनाओं के रोचक ढग से वर्णन किये हैं। सभव है दरबार से सम्बन्ध रहने के कारण उनके कथन में कहीं-कहीं पर कुछ तथ्यों के सत्य-असत्य का निरूपण न हुआ हो फिर भी उनसे वास्तविक घटना का सकेत तो मिलता ही है। इन घटनाओं के तथ्यातथ्य का निर्णय तत्कालीन कवियों द्वारा अपनी रचनाओं में वर्णित घटनाओं तथा चित्रकारों के विभिन्न चित्रों के सूक्ष्म निरीक्षण से बहुत कुछ सरल हो जाता है और उन ऐतिहासिक घटनाओं की सपुष्टि भी हो जाती है। दरबार के इतिहासकार अबुलफजल के वर्णनों से स्पष्ट है कि कवि, चित्रकार, सगीतज्ञ सभी राजलश्कर के साथ

चलत थे। जब अवकाश रहता तो उदासी का समा दूर करने के लिये तानपूरे के तार खुल जाते, उसकी झंकार लोगों के हृदयों को आह्लादित करती, भावों का स्वर-सयोजन आवश्यकतानुसार उसमे तीव्रता लाता और चित्रकारों की तूलिका अवसर विशेष के सौंदर्य-सघटन मे अपने को कृतकृत्य समझती। कवियों की वाणी वीरपुगवो को उत्साहित और उत्तेजित करती और फिर वह विजय अथवा पराजय कवियो की वाणी मे लिपिबद्ध होती। अतएव इतिहास-निर्माण मे इन कवियों, चित्रकारों तथा सगीतज्ञों की परोक्षवाणी विशेष सहायक है। अकबरी दरबार में हिन्दी-कवियों द्वारा ज्ञात ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि होती है तथा कुछ इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर नया प्रकाश पड़ता है जो अभी तक इतिहासकारों की दृष्टि से ओझल है।

नरहरि

अकबरी दरबार के हिन्दी कवियों में कवि नरहरि ही एक ऐसे कवि थे जिनकी पहुच कई दरबारों में थी और जहाँ से उन्हे उचित सम्मान प्राप्त हुआ था। उन्होंने कई शासकों का युग देखा था। उनके वर्णनों से स्पष्ट है कि वे दिल्ली-नरेश हुमायूं, अकबर, रींवा-नरेश वीरभान, उनके पुत्र राजा रामचन्द्र, दिल्ली-शासक शेरशाह, जगन्नाथपुरी के राजा मुकुद देव आदि के दरबारों मे उपस्थित रहे थे। उनके ये वर्णन ऐतिहासिक घटनाओं के सजीव चित्र सामने प्रस्तुत कर देते हैं।

बाबर और राणा सांगा का युद्ध इतिहासप्रसिद्ध घटना है। सांगा पराजित हुआ। गुजरात,[1] गोर,[2] काबुल[3] आदि प्रदेशों पर हुमायू की विजय हुई इतिहाससम्मत इन घटनाओं के उल्लेख नरहरि ने निम्नलिखित सवैये में दिये हैं :—

> मे अपु बल गजि विराहि भुइत सांगा दल दिध अगाउ
> बहुरि गजि गुजरात बहादुर इत काबिल उत गोर लोयाउ
> नरहरि जुरत पठान जहाँ लगु जो निज सोर सुनो ए कहाउ
> इमि धाउ जिमि सिंघन गनि पर अस जपत मन माझ हुमाउ ॥[4]

---

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इडिया, भाग ४, पृष्ठ २३
२ „ „ पृष्ठ ३०
३ „ „ पृष्ठ ४०
४ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ५

उपर्युक्त सवैये मे हुमायू का मानसिक दशा के भावपूर्ण वर्णन के साथ साथ कवि ने ऐतिहासिक तथ्यों का निरूपण कर दिया है ।

निम्नलिखित सवैये म गुजरात के बादशाह बहादुरशाह के आतक तथा उस पर हुमाय की विजय का वर्णन आया है[1] :—

जेइ मालव मेवात लिएउ बागर खिचि करि
जेइ वेदर निग्गएउ दुवन पडेउ सो पग्ग अरि
वीर नगर गुण गरुअ दड भडहि गढ छुडहि
जेहिं निरन्तर नरग सग नूमी भरु भडहि
नरहरि निरख्खि देस तरह सो जेहिं उर सिंधल पलभलै
बहादुर भुजगम साहि भौ गरुर हुमाउ निग्गलै।।[2]

हुमायू अपनी राजनीतिक परिस्थितियों को सुदृढ भी न कर पाया था कि शासन की बागडोर उसके हाथ से छिन गई। शेरशाह से १७ मई, सन् १५४०, कन्नौज म उसे हार खानी पडी थी। सभवतः हुमायू की उसी डावाडोल परिस्थिति का दिग्दर्शन कवि नरहरि ने निम्नलिखित सवैये से कराया है[3] :—

जिति जगत्तु सव कियो अप्पु बस हुतो समोसन सुष जब ताउ
सोइ छत्रपत्ति बब्बर सुव नन्दन इह अघ हम सुना अगाउ
नरहरि वान धनुष सोइ अस जु न गोव्वि निरषि सकै इक ठाउ
विधि विरुध कछु सूझि परत नहिं कहा करै बरिबड हुमाउ ।।[4]

जहाँ इतिहास में हुमायू की पराजय का वर्णन है वहाँ अफगान-वश के अतिम बादशाह सिकदर शाह सूर पर उसकी विजय का भी वर्णन हुआ है। नरहरि ने हुमायू की वीरता का वर्णन करते हुए इस घटना का उल्लेख किया है[5] :—

---

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इडिया, भाग ४, पृष्ठ २३

२ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ११

३ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इडिया, भाग ४, पृष्ठ ३५

४ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्य

५ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इडिया, भाग ४, पृष्ठ ६७, ६८

पूरब हद्द पछिम पहार दोउ पन किए विधि जानि अगाउ
इत सुमेरु उत चढत लक हय मारि तेग नरपति सब नाउ
हिन्द ते बेदि पठान षगावर दल दलमलि दरियाथ बहाउ
गजिहिं बहुरि जित्त दिल्लापति इमि हिडाल रच्यो साहि हुमाउ ॥[1]

ऐसा ज्ञात होता है कि कवि हुमायूँ की विपन्नावस्था मे साथ छूट जाने पर राजाश्रय से हीन होकर कही और चला गया था और हुमायूँ की इस विजय को सुनकर फिर दिल्लीपति के पास पहुँच गया था।

शेख सलीम[2] तथा मुइनुद्दीन[3] चिश्ती अपने काल के प्रभावशाली सत थे। अकबर उनके दर्शनार्थ फतेहपुर सीकरी तथा अजमेर गया था। नरहरि ने उन शेखो के उल्लेख निम्नलिखित छन्द मे किये हैं :—

या सेष सकलेम कुतुरखानी हाजिर
अबू महम्मद सफा कर मुना अब्दुलकादिर
या कादिर हाजा तिहु कुम हाकिम सदानि
सेष मुइदी पीर वली इलाइ गिलानि
हसनी हुसनी हुकुम तुव गोथद सुमादरु दकस
सब दस्तगीर नरहरि निरषि गोसालम फिरियादिरस ॥[4]

बहुत काल तक अकबर निःसतान रहा था। इस कारण वह प्राय. चिन्तित रहा करता था। सूफियों से विशेष प्रभावित रहने के कारण वह पुत्रेच्छा हेतु सूफी सत शेख चिस्ती के दरगाह पर सन् १५७० मे अजमेर गया था।[5] नरहरि ने भी शेख से अकबर के लिये प्रार्थना की थी :—

पोज मोनदी पीर सुनहु विनती करे नरहरि
नरहरि विनती क्या करे हिंदु तुरक समेत
पाय पयादे जगतगुर जानत हो केहि हेत

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ८
२ अकबरनामा, भाग १, पृष्ठ ५३९
३ ,, ,, पृष्ठ ५४०
४ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ३७
५ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इडिया, भाग ४, पृष्ठ १०१

जानत हो केहि हेत चेति उत्तम जस लिज्जे
उचित पुत्र फलु वेगि साहि अकब्बर कह दिज्जै
चिरजीव पितु सहित पुहुमि राप करतरहरिं ॥१

कवि की उपर्युक्त प्रार्थना सम्राट अकबर के प्रति उसकी अगाध प्रेम-भावना की द्योतक है। अकबर की भारतीयता ने ही कवि को ऐसा करने के लिये बाध्य कर दिया था।

चित्तौर-गढ की विजय अकबरकालीन इतिहास की एक प्रमुख विशेषता थी।[२] अबुल्फज़ल ने इस अनुपम किले की दुर्गमता और विशालता का चित्ताकर्षक वर्णन किया है। अन्य इतिहासकारों ने भी इस दुर्ग की अजेयता की प्रशंसा की है। चित्तौरगढ-विजय के समारोह के अवसर पर नरहरि लश्कर के साथ थे क्योंकि इतिहास से ज्ञात होता है कि अकबर इस विजय के पश्चात् सीधे शेख चिश्ती के दर्शनार्थ अजमेर पैदल ही गया था और नरहरि ने भी उसके साथ जाकर उक्त शेख से अकबर के लिये प्रार्थना की थी जिसको पहले बताया जा चुका है। अतएव नरहरि का चित्तौरगढ-विजय के अवसर पर उपस्थित रहना उचित ही जान पडता है।

निम्नलिखित छप्पय मे नरहरि ने इस गढ के विजय का सजीव वर्णन किया है :-

सोरह सय पचिस सवत् कुज द्वादसी चइत बदि
सन् नव सय पचहत्तरि तेरीश सावन जदि
उत हिन्दू गढपत्ति भिरौ प्रभु छाडि पड पन
इत काबिलपत्ति कोपि बढेउ दल सज्जि पग्गबन
नव रस अपुधन नरहरि निरपि बहुरि भुवन भारथ किएउ
सक बध अकबर साहि कि चपि जोर चित्तौर लिएउ ॥[३]

नरहरि की रचनाओं से स्पष्ट होता है कि वे जगन्नाथपुरी मे बहुत काल तक रहे थे। उनके जीवन चरित में पहले कहा जा चुका है कि हुमायू की पराजय के अनतर वे भगवद्भजन मे अपने दिवस बिताने के लिये तीर्थ-स्थानों में चले गये थे। यही काल उनके जगन्नाथपुरी-वास का भी माना जा सकता है। क्योंकि निम्नलिखित छप्पय में उन्होंने अकबर के समकालीन जगन्नाथपुरी के राजा मुकुददेव के जन्म का वर्णन किया है

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विपयक छद, प्रस्तुत प्रबन्धग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद ९

२ दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इडिया, भाग ४, पृष्ठ ९८

३ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १३

और इन्हीं मुकुंददेव के पास अकबर का सन्धि-प्रस्ताव लेकर नरहरि अकबर के कहने पर जगन्नाथपुरी गये थे। इससे भी निश्चित होता है कि अकबर के सिंहासनारूढ होने के पूर्व ही से जगन्नाथपुरी के राजा से इनका परिचय था।

राजा मुकुंददेव के जन्म का वर्णन नरहरि ने निम्नलिखित छप्पय में किया है :—

> धन्य धरनि धन देस नगर कुल धनि सो जाति वर
> धन्यसर्व भूपाल जननी धनि धनि जो गर्भ धर
> धनि जुग मह कलिजुग्ग धनि सो संवत् समत्थ धनि
> धनि सो वर्षु रितु मास पाषु स्वै सेल पाषु धनि
> धनि तिथि वन षतु स्वै दिवस धनि कहि नरहरि विधि निर्मएउ
> धनि पहरु लगन स्वै महतु धनि सो जेइ मुकुंद गजपति भएउ ॥[1]

उपर्युक्त छप्पय से ऐसा ज्ञात होता है कि जगन्नाथपुरी के राजा से ये अत्यधिक प्रभावित थे और अपनी सहृदयता प्रकट करने के लिये उन्होंने मुकुंददेव की जन्मतिथि के शुभफल पर विचार किया था।

नरहरि शेरशाह के पुत्र सलीम शाह[2] के राज्य-शासन के अन्तिम काल तक दरबार में उपस्थित रहे थे किन्तु उसकी मृत्यु के अनन्तर ये अपने जीवन का शेष काल बिताने के लिये तीर्थादि स्थानों में चले गये थे किन्तु उनकी राज-भक्ति का स्मरण कर हुमायूं ने उनका आवाहन किया था। उसी दशा और अपनी ग्लानि का वर्णन कवि ने एक छप्पय में किया है :—

> जेहि सरन मोहि थप्पि भानु धनु षिति पितावु दिय
> तिनहु ते अधिक सलेम साहि सब विध संतोष किय
> तिनके मरत नहि मुएउ नहि न ग्रह ताजि तपु किन्हेउ
> फेरि परवस परेउ बहुरि अदामिहि चितु दिन्हेउ
> बहुरि कि वहि संग विछुरत नरहरि मनु कतहु न रहत
> पुरुषोत्तम परम क्रिपाल बिन लाज दर दर फिरत ॥[3]

---

१ देखिये, नरहरि के विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १७

२ दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग ४, पृष्ठ ५८

३ देखिये, नरहरि के विविध विषयक फुटकर छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ९६

इस छप्पय से स्पष्ट है कि कवि को शासकों की ओर से काफी मान, धन, पृथ्वी तथा खिताब आदि प्राप्त हुए थे, किन्तु उसके जीवन में ऐसा भी समय आया कि उनके अभाव में उसे दर-दर की ठोकर खानी पड़ी।

कवि के उपर्युक्त छप्पयों से अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ आदि मुगल बादशाहों की सहृदयता और दानशीलता का सुस्पष्ट परिचय मिल जाता है।

गौस मुहम्मद अकबरकालीन प्रसिद्ध सूफी संत थे[1] जिसकी कीर्ति काफी दूर-दूर तक फैली हुई थी। गौस-मुहम्मद के इसी व्यक्तित्व का निर्देश कवि नरहरि ने अपने निम्न-लिखित छप्पय में किया है :—

नग पंनग सुर असुर सिद्ध मुनि गन अनन्त गनि
नर नृपति गढ पत्ति तुरक हिंदू समत्थ भनि
न कोइ सुधिर पेष्षिअै अवनि अस रसो पच दिन
कहि नरहरि सबु तज्जि गधु नहि करिअ अद्ध षिन
गुरु गौस महम्मद सिष्षवै पेम्मु जो पर भष्षर हिलै
जलि गलि जगतु मस मतु भौ सो सिमिटि सिमिटि मझिहि मिलै ॥[2]

अब्दुर्रहीम खानखाना के गुणों का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया है :—

बाबर हुमाउं गाजी सी पति करत दोउ मन बच करम अटल स्वामि तकवरु
एकनं उत्थपि एकत्थ पत जगत हित अनष जरत रिपु फिर चहु चकवरु
गुनि निरगुनी हिंदू तुरक सेवत दलन हरि अबहिं तहि एक टकवरु
परम प्रवीन षानिषाना सो उजीर जाके न्याहि बसुइ बिलसत साहि अकबरु ॥[3]

कवि नरहरि ने अपनी रचनाओं में बीरबल, दौलतखाँ, वाजिदखाँ, सैयद मुबारक आदि के भी उल्लेख किये हैं।

कवि अपने आश्रयदाता के गुणों का विवेचन संवादों द्वारा भी करते थे जिनमें वाद-विवाद की प्रधानता है और फिर विशिष्ट व्यक्तियों से उसका निर्णय करा कर उनकी श्रेष्ठता स्थापित की जाती थी। केशव कृत 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' तथा 'वीरसिंह-देव-चरित' में भी यही शैली वर्णित है। नरहरि ने उसी शैली पर वादों में अपने चरित-

---

१ आइने-अकबरी, भाग १, पृष्ठ ५३९, ४५७

२ देखिये, नरहरि क विविध विषयक छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या २७

नायकों की दानशीलता, न्यायकारिता और सदाचारिता का परिचय दिया है। इनमे जगन्नाथपुरी के राजा मुकुन्द गजपति का भी उल्लेख हुआ है।[1]

तानसेन

सम्राट् अकबर गुणियों का पारखी था। गुणी तानसेन को उसने 'नवरत्न' म उचित स्थान दिया था। तानसेन ने उसी के फलस्वरूप इतिहास मे वर्णित अकबर की वीरता, उदारता और कला-प्रेम का निम्नलिखित पद मे सजीव चित्र खींचा है :—

तू असमान को दूजो रच्या नाहिन गुन समर्थ आयो है धर्मराज गरीब निवाज
तुम सम और कला कौन महागान गुन निधान दाता विधाता रच पच विरच ज्ञान समाज
मरन पोषन दुःख दरिद्र हरण षट् दर्शन निवास सकल साज
तानसेन कहे प्रभु हिंदु सुल्तान भक्त उधारन भगवान प्रकट कियो सकल गुन साज ॥[2]

अकबर के राज्य की सर्वव्यापकता तथा उसके आतंक का प्रभाव-वर्णन तानसेन के निम्नलिखित छन्द मे हुआ है —

ए आयो आयो रे बलवत शाह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप औ अष्ट दिस नर नरेंद्र घर घर थर थर डर
निश दिन कर एक छिन पावे वरण न पावे लगा नगर
जहा तहा जीतत फिरत सुनियत है जलालदीन महम्मद को लश्कर
शाह हुमायू को नन्दन चन्दन एक तेग जाधा तकवर
तानसेन को निहाल कीजै दीजो कोटिन जरजरी नजर कमर ॥[3]

सम्राट अकबर अपने सामतों तथा नवरत्नों के घर जाने मे अपनी मान-हानि नहीं समझता था। इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि तानसेन के 'ए आयो आयो मेरे ग्रह छत्रपति अकबर मन भायो करम जगायो' पद से होती है।[4]

तानसेन ने अकबर के राज्य की सीमा[5] का सकेत निम्नलिखित पद मे किया है .—

काशी कश्मीर कामरु करनाटक बूदी बुदेलखड
मालवा मुलतान मेवाड खुरासान बल्ख बुखार गोलकुड

---

१ देखिए, नरहरि के वादु, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या ८०
२ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १८१
३ ,, ,, पद सख्या १८६
४ ,, ,, ,, पद सख्या १८५
५ ए शार्ट हिस्ट्री आव् मुस्लिम रूल इन् इडिया, पृष्ठ ३६०

बीजापुर बग दस दक्मान सम श्याम भरत सम इड
कहत तानसेन सुनो हुमायू के नदन जलालदीन अकबर जाके डर डरात ब्रह्मड ॥[१]

तानसेन ने दशहरा, ईद, मदनमहोत्सव, होली आदि के भी वर्णन किये हैं जो कवियों के सामाजिक जीवन और विश्वास की सामग्री के अतर्गत दिये जा चुके हैं। इन वर्णनों से स्पष्ट है कि अकबरी दरबार का इन त्योहरों को सुचारु रूप से मानने में काफी योग रहता था।

गग

कवि गग ने अब्दुर्रहीम खानखाना के दक्षिण-भारत के आक्रमण के प्रसग वर्णन में कई स्थानों के विजय के उल्लेख किये हैं —

धमक निसान सुनि धमक तुरान चित चमक किरान मुलतान थहराना जू
मारु मरदान कामरु के करवान आदि मेवार के राम हिंदुवान आनमाना जू
पूर भगाज पछमाध पलटान उतरान गुजरात देस दछन दबाना जू
ओरवान हबसान हेहलान रूम साम खेल मेल खुरासान चढे खानखाना जू ॥[२]

उपर्युक्त छद में मुलतान, आसाम, गुजरात, खुरासान आदि प्रदेशों की विजय का वर्णन हुआ है।

कवि गंग ने खानखाना की दक्षिण चढाई का उल्लेख 'कलमलि सकल दखिखन मुलक पट्टन पट्टन पट्ट किय' आदि शब्दों में भी किया है। खानखाना अकबर और जहांगीर दोनों के शासनकाल मे रहे थे। उन्होंने कई युद्ध किये थे और उपर्युक्त सभी प्रदेशों को जीत कर राज्य की सीमा को बढाया था। अतएव कवि गग के छद इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि में पूर्ण योग देते हैं।

दानशाह अकबर का तीसरा पुत्र था। २२ वर्ष की अवस्था मे अकबर ने इसे अब्दुर्रहीम खानखाना और बीकानेर के राजा रामसिंह की देखरेख में दक्षिण-प्रदेश का प्रधान सेनापति बना कर भेजा था। कवियों तथा इतिहासकारों ने दानशाह की अनुपम वीरता की प्रशसा मुक्तकठ से की है इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि अकबर ने दक्षिण का सेनापति दानशाह को न रखकर, प्रधान सेनापति के पद पर खानखाना को

१ देखिये, तानसेन के ध्रुपद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, पद सख्या १४९

२ देखिये, गग के छद, प्रस्तुत ग्रथ का परिशिष्ट भाग, छद सख्या १५२

नियुक्त किया और मुराद भी उसके साथ गया किन्तु इन लोगों को सुल्ताना चाँद-बीबी द्वारा जो बीजापुर नरेश की उपाधि और सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी थी, युद्ध में पीछे हटना पड़ा। सन् १५९८ में मुराद की मृत्यु पर अकबर ने दानियाल को पुनः उसी मोर्चे पर खानखाना के साथ नियुक्त किया। फलस्वरूप चाँद सुलताना की पराजय हुई और उसे आत्महत्या करनी पड़ी।[1] कवि गंग ने दानियाल की वीरता और चाँद बीबी की इसी मानसिक अवस्था का निर्देश निम्नलिखित छंद में किया है।

अकब्बरसाह जू के महाबली दानसाह काहू पर तेग नाधी तेग भौंहे तक्कै
सिंहल के दीप कहूँ दीप न लगतु गंग दहे रिपु घर ही प्रताप ही के अक्कै
सोने सी सदन छाड़ि लौने सी वदन गोरी रावन की मंदोदरी बन बन बक्कवै
दक्खिन की ओर तेरी चादर की चाह सुनी चाहि भाजी चाँद बीबी चौंकि भाजै चक्कवै ॥[2]

'चाँदबीबी चौंकि भाजै चक्कवै' की उक्ति से कवि ने चाँदबीबी की मानसिक स्थिति के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा उस समय की वस्तु-स्थिति की ओर भी संकेत किया है।

इतिहास में राणाप्रताप की राजकीय-परिस्थिति का पूरा परिचय मिलता है उनके पास कभी राज्य-वैभव का अपार सुख वर्तमान रहता तो दूसरे ही क्षण उन्हें वन वन की धूल छाननी पड़ती थी।[3] कवि गंग ने उनकी उस परिस्थिति का वर्णन निम्नलिखित छप्पय में किया है।

गुज्जरेश गम्भीर नीर नीझर निभ्भरियो
अति अथाह दाऊद बुन्द, बुन्दन उच्चरियो
धाम घूट रघुराय, जाम जलभर हर लिखिय
हिन्दू तुरक तलाब को न कर्दम बस किखिय
कवि गंग अक्कबर अक्कि भनि सूर मियान सब बस करिय
राणा प्रताप रयणाकर मम्भ छण डुब्बत छण उच्छरिय ॥[4]

---

१ दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव् इंडिया, भाग ४, पृष्ठ १४५, १४७

२ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या ११५

३ ए शार्ट हिस्ट्री आव् मुस्लिम रूल इन् इंडिया, पृष्ठ ३४४, ३४५

४ देखियें, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १५८

अपने पूर्वजों की भांति शाहजहां ने भी कवियों के प्रति अपनी उदारता का परिचय दिया था। खुर्रम को 'शाहजहां' की उपाधि उसे जहांगीर के शासन-काल में ही मिल गई थी, जिसे गंग की जीवनी के प्रसंग में पहले कहा जा चुका है और कवियों ने इस अवसर पर उसके गुणों की प्रशंसा की थी। गंग ने भी ऐसे ही अवसर पर शाहजहां की प्रशंसा निम्नलिखित छंद में की है :—

नाउ लिए घर ते निकस्यो कवि गंग कहै साहजहान तिहारो
आइ के देख्यो है कल्पतरु अरु कामदुधा मनि चिंतति भारो
आज हमारी भई परिपूरन आस सबै कबहू नहि वारो
लोभ गयो सिगरो चित ते अब थे भयो दारिद छेदन वारो ॥[1]

अकबर के सेनापति रामदास कछवाहा[2] का परिचय कवि गंग ने कई छंदों में दिया है। निम्नलिखित छंद उनकी वीरतासम्मत ही है —

ऐसे राहे काहे कीने कछवाहे रामदास स्यारन की टारैं होत बैरिन के रावरनि
गुज्जर गुंजसिंह गज्जन के कुम्भ नेठे छोटे छौना छेके फिरैं छरहरे छावरनि
उरभि उरभि गिरि भाग रहे भाखरनि बेलिन मे बाल मृग बावे निउ बावरनि
कहै कवि गंग बन बीथिन बगनि परे सूने के के छाडे दूनी जगली जनावरनि ॥[3]

एक दूसरे कवित्त में कवि गंग ने 'कूरम कुलान कुल ऊदावत राम से कौन गुन गुनी धौं विमल जस गाए हैं' आदि शब्दों में उनकी सहृदयता तथा दान-शीलता का भी उल्लेख किया है।

बूंदीपति जुझारसिंह[4] को एक वीरबाला ने हाडावंश के वीर द्वारा अपनी रक्षा करने के लिये राखी भेजी थी। इस ऐतिहासिक घटना का उल्लेख कवि गंग ने एक छंद में किया है जिसे कवियों की सामाजिक-जीवन और विश्वास की सामग्री के अन्तर्गत दिया जा चुका है।

कीरत सिंह कुमार[5], राजा जगन्नाथ आमेर[6] आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के उल्लेख भी कवि गंग के छंदों में आये हैं।

---

१ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग, छंद संख्या १३०
२ मआसिरुल उमरा, भाग १, पृष्ठ ३३५-३३८
३ देखिये, गंग के छंद, प्रस्तुत ग्रंथ का परिशिष्ट भाग छंद संख्या १८८
४ मआसिरुल-उमरा, भाग १, पृष्ठ १८४-१८७
५ ,, ,, ,, पृष्ठ १०२-१०४
६ ,, ,, ,, पृष्ठ १४९-१५

परिशिष्ट

नरहरि की रचनाएँ

प्रथम जपि जगदीश कह करउ कवित रचि नेमु
जस निर्मल थिर चिर जिये छत्रपति साहि सलेमु ॥१॥

एक्क समय मन मुदित उदित हौं पुरुष बुद्धि वर
एकु कचन अरु लोह त्रिप रिझहिं ते अमर नर
तरनि तेज जगमगाहि मेघ सज्जहि विचित्र तह
कनिय गुनि कहहि झुकित झगरहि अप्पु मह
बहु बिधि विनोद बढ्ढेउ बयुह सो नरहरि निरषित नयन
पति लागि परसपर प्रगट ह्वौ सो जुगति उकुति बोल्लहि बयन ॥२॥

लोह तमकि तब कहइ कनक सुन सुनहि बुझि मन
मोहि बसु सब मुझि डरहि अमर नर नाग लोक गन
कहन दुरग्ग तोहि परिश्र कहन दुरि मुरि भय भजेउ
कहन पेम परिहरेउ त्रिपति नगर तिहू तजेउ
मुल्लहि ते मुद्धर सग्ग मँह तिन्हके सम नहिं उघरहि
पछितांहि बहुरि कर मिडवै मो वन मयै दव कत झगरहि ॥३॥

चपलु होइ झगरइ मो ह्य गुर गनहि तिन्निपुर
प्रान प्रियानि जु कहहिं नर त्रिपति अथिथ सुर
गुन सुरूप रति रग सग सुभ कर्म धर्म तह

---

१ नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के हस्तलिखित सग्रह ग्रन्थ सख्या १२९।६२ से उद्धृत। ये 'वाबु' सवादो के रूप म व्यक्त हुए हैं, जिनमे दो पात्रो के मध्य विवाद उपस्थित कर एक दूसरे के महत्व का दिखाया गया है।

सोइ सब विधि रहि रही रही रमि रयनि सघ गह
सुनि गुढ्ढ लोह लगरं निलज हीव, अप्पु उत्तम वरन
रहु छार दूरि केहि काज लगि सो गग छुड्डि निस्तहि चरन ॥४॥

हौं अपुबल तोहि गहउँ सरन रक्खौत रयनि दिन
भजन गढन समरथ न कोई सरहि औ सार बिन
तु होहि जाहि दिन पच्चकर हिन्दुत्रु सुनहि सुद्ध मति
जेहि छंडो स्वै स्यार जेहि आउ सौ छत्रपति
इमि कहइ लोह कंचन सुनहि कनौ श्रवनि उदिम भवन
रहु भरम भजि नरहरि निरषि सो मोहि सनमुख बोले कवन ॥५॥

हौ सब विधि सुभ करन हरन मनु मोहिते सब रस
जाति जिवन धन धर्म कनौ जग जुगुति अप्पुबल
मोहि बिछुरत बन बसेउ सूर पंडित जे पडु सुत
कहु उद्दिम किन्ह किएउ तब जो तुम्ह तिन्ह के हत्थ हुत
सो मन सुवर्न निजु नाउँ मोहि लोह न सखिरि किज्जऔ
सरहि न अपुन नरहरि निरषि मोहि कारन सबु दिज्जऔ ॥६॥

कहै लोह सुन कनक बचन पइवनि गहेउ धनु
मोहि न समय संभो न भभरि भज्जेउ जिरजोधनु
तोहि विछ नर धुवत्ति हौ जा हत्थह अरि दावन
गुन सरूप जे कहे उर हैं उरप्पेहु किन रावन
लघु जेहि न देउ जय पतु हठि कट्टि कुट्ट ताहि विस्थरउ
रहु भरम मांझि तेहि धरनि तर सो हौं समत्थु कहु केहि डरउ ॥७॥

तुव भरोस जिय ठएउ गएउ रावन जिरजोधन
मोहिं न समय सभरेइ सेइ पौरुष गनत गन
हौं सो तेजु हरि अस निमिषि परिहरउ पार्थ जब
गोप्पि रष्पि नहि सकेउ अनुजन के हत्थ तब
गुरुवत दत्तवर बुद्धि गुन हौ जइ तइ कइ सब्ब रस
कहि कनक लोह देषहि प्रगट सो बिन धरम पुरुष पतग जस ॥८॥

जो करिवर सतु रहेउ ततौ हरिचंद सुप छिएउ
तुन मदध जहु प्रबल सकल मैत्रिन उठेउ
गढ पधान छिति पान दुहुके जस कज्ज लोह हित
हौ अन्यत्र पुत जउ कोउ व कुछ कहइ चिते अपु चित
मदु मोह लाभु अविवेक तिह तु कनक अप्पन किएउ
कृतघ्न सो कहि नरहरि निरपि नैदिक सघ न निर्वहेउ ॥९॥

मै हरिचदु नृप लिएउ दिएउ पुनि प्रगट उच्च पदु
दुख दरिद्र सरव मत्य हरन कह हौं प्रसिद्ध जदु
मोहि लागि भौ भारत्थु रहे निरदोष सुद्ध नव
तुग करतर दिज साप गएउ जदुवश मूह सव
उप्पजहि जेहिते तेहि पनाहे कृतनि निदरहु लज्जि मन
कहि कनक लोह मुख जिम्भ रस सो हौं अनिंद निंदरहिं जन ॥१०॥

मोहि जो सुद्रिढ करि गहइ तेहि वनिज चहउ चित्त मह
तै देहि कलुप दुख देइ मै त सुख सुजस मित्त कह
मोहि जोडिये सो सूर तोहिं रष्पै सो कृपिन भनि
तोहि छडै समरत्थु मोहिन छडै सो तुछि गनि

. .. .

हौ अजहु लोह रपउ सरन सो वादि वकत बोलहि कनक ॥११॥
वादि बकत मोहि कहइ लहइ लघु मोल लेउ तोहि
कुकज कज्ज करि सहित विनय सतोषि नवहि मोहि
तु जेहिके कठ पग परहि तहिव वहु विपत्ति दुष्प मन
हौ सिगार सुचि सुखद मोहिव पहिरहि तरुन्नपन
सेवक जो स्वामि कह निदरइ अनप कनक इमि उच्चरै
षट पोट सो मोहि तोहि जानिअै जो दहन दुक्ख दै निवकरै ॥१२॥

प्रगट स्वैअ मन सूर सकल सपति समत्थ स्वै
दाहन दुप तह कहिअ जह न साहिबु नसाहि चै
चलहि न्याअ तिह निकट त्रिविध वरवीर धीर जह
विधि दिहेउ जय पतु रिमिक रहे रहे देषि अपु मह

कस पथ सार कचनउ चित कहि नरहरि जग जसु भरिअ
फुरमान साहि असलेम की होइ हुकुम सो सिर धरिअ ॥१३॥

(२) वादु तेल तबोल का

अपु सरूप साल झगरहि ऐकु तबोल अरु तेल्लु
छत्रपति अकबर साहि सुनु सो कवि कौतुक छिति पेलु ॥१॥

प्रथम तेलु इमि कहइ निपट नी.फल तबोल सुनु
जनम समय मोहि चहहि नृपति जन जुवति जानि गुनु
करौं वरकेस सुदेस लेस राखौं न व्याधि कर
राग जो सब परिहरउ भोग मोहि कहहि सु सुखकर
तोहि गनउ न त्रिन नर अब सुनहि सो कत बोलहि अब सुदढ़ सहि
मोहि चहही नृपति भुअपति सब सो कत तबोल बुल्लन चहहि ॥२॥

तब तमोल इमि कहइ मुढ किन रहसि अप्पु रग
मै समत्थ भरो सत्थ करौ नरपति अप्पु बस
गुन बिहून तते कहिय करहि सरिवरि जो मोरि तुअ
देव पितर नर काज मोहि गिन जन्म कौन हुअ
सहजहुं तबोल निज नाउ मोहिं कहि नरहरि मन सम्मरसि
लघुपति सत्थ कुछ त्वै न सो यह समुझि कत झगरसि ॥३॥

तब सनेह इमि कहै नेहु किज्जिअ न तोर अस
दसन सग कारि रगु सगु नहि करत अपु रस
हौ सब विधि समरत्थ मोरि कत करहि सरब्बर
असुर देव नर चहहि दीप जगमगउ घर घर
सहजहि सनेहु निज नाउ मोहि कहि नरहरि देखहि नयन
पुज्जियै आनि बरुयइ कह प्रथम तेलु बोल्लिअ बयन ॥४॥

तब तबोल इमि कहइ सहज सिगार सुद्ध दलु
खिति खिताब मन मान सकल सपत्ति समुझि फलु
गुन अनेक रस रंग त्रिदस जानहि विचित्र वर
सुरतहु समय पवित्र गहइ सुख सुखइर मारि नर

करओ पडि मोहि लोहि साहि सबन हितहि ते मनहि मन
कोल्हु पेराइ पितानि करि सो सनेह कहियत कवन ।।५।।

तरकि तेलु तब कहइ गहहि दोष सुद्दु कत
ऊष चपि रसु लिओ स्वादमान बन ते लोकहित
नप पुट तजि मरहि बिना बसना सो फेरि बस
हौ अगिनि परत गुन करत धरत बिजन विचित्र बस
बर व्याह काज सब पर चढौ तन रोस न निजु नाउ मोहि
गनि कहइ कौन नरहरि निरषि सो जाति भेद दल नाऊ ताहि ।।६।।

जाति भेद छल नाऊ तेल निदरहि नत्थि अब
सिसु कुमार जुआ विरध चढत चढ्ढेउ पिताब सब
अगिनि परत केहु कलुष रहो बसि बसन सचि सुष
अरु मेटौ बचन भरम्मु सुपद सुम्भो सो साहि सुष
सुभ सगुन चहहि नर नृपति मोहि तेलु नाउ असगुन कहत
जानहि न निपट हारौ जितौं सो बादि बादु केहि गुन गुनत ।।७।।

इहि विधि तेलु तमोलु कुकित झगरेउ बहुत दिन
कवि विनोद सम माहि करहि त्रिन वज्र अद्ध विन
दोउ प्रसिद्ध बर भेष इहै उजकि थकि ससकि तन
केहिते न्याउ निबरइ कौन समरत्थ सुद्ध मन
सर्बग्य नाम नरहरि निरषि दुवउ द्वार प्रति सवरहि
साहिन मनि अकबरसाहि सुनै सो होइ हुकुमु सिर पर धरहि ।।८।।

(तेल तबोल का बादु समाप्त)

बादु मगन दानि का

सुनु मगन हौं कहउ दानि सहजहिं दयाल होइ
देषि विचारि चहु जुगह निठुर भिछुक ते नत्थि कोइ
हरि मागत लघु भएउ दानु दीएउ तो बध्यौ
बधेउ ।कोई अपराध राषि भूतल गहि गध्यौ
सिवि पलहि तुचा दिदेउ करन जीवभूत बाहन दिएउ
भिछछुक क लोभ जमहुते कठिन सो लेत नहिन धरकत हिएउ ।।७२।।

उठि चलहि तित्थ पथ गंग तट इह सदेहु निबरे जह
तपु करहि जप्प द्विज परम गुर सो कहिगए केसव भट्ट पह ॥ ७७ ॥

कहि सगन मलि बात निरषि नरहरि जप तजेहि
भट्ट ध्यान लवलीन कहव कहि विवाद बुझाइ तेहि
चलु कासिहि झगरइ जहाँ सिव सदा निरंजनरु
सोइ भीछुक सार लागि दुहि के रस रंगिकु दिगंबरु
करि सुक्लि सकल सुर तोषि यहि होइ सतुष्ठ सिव देह वरु
निवरहिं झगरु है हारि जिति सो कहिहि सहज सरवज्ञहरु ॥ ७८ ॥

कहेउ जो कासिहि चलन न्याउ बुझौ सो सत्र ताहि
है निस्चय सर्वज्ञ ऐकु कुसमउ जो जउ माहि
सोइ भिछुक गाइ दानि कहेउ अपुहित सो समु रह
केहक सीलु छाडिहै न्याउ निविरिहि नत्थि तह
हो कहौं सुनहि तह झगरिय प्रभु समान सन घट रहित
चलु जगनाथ दर न्याय कह सो महापात्र नरहरि सहित ॥ ७९ ॥

नाउ सुनत सुष भएउ कहेउ उठ उठहि चग तह
एक पथु दुइ काज न्याउ औ देत अन्न कह
मिलिहहि बहु सुरपति नृपति गजपति पुनि देष्षब
यह सतु दुह जिय रष्षियउ आनि मिलेउ सुष सग जह
चलु गुपत बेगि नरहरि निरषि जग जावनि जगनाथ पह ॥८०॥

चला चहहिं जगदीस दर प्रगट भए यहु काम
दानि सगनहि पान दै विदा करिय नृप राम
विदा करिय नृप राम नामु सुमिरत सुष लहहिं
तजि ससार समुद्र परम पुरषारथु सहहिं
बेगि रजाइसि होइ जाइ तह न्याउ निवरहि
कहि नरहरि मोहि साथ मिले दोउ चला चहहि ॥८१॥

(वादु समाप्त सगन दानि का)

वादु नैन कान का

कोउ कहै स्रवन सेअति सुबर कोउ कहै नैनु सुनाम
कहि नरहरि दोउ झगरहि सुन छत्रपति राम ॥१॥

कमल नयन हरि कहि खल हिय वछित विचित्र वर
रूप लाइसव नयन गग विष्पियइ पाट पर
विष्पि तप्प सुरलोक चरन चितहि विन्विभ मह
नयनहीन पितराष्ट्र मुएउ सुनि दीघ सुष्प तह
जग जीति नयन नरहरि निरषि कतनक रहि सरिवर स्रवन
जगु अधुधधु केहि विधि तरइ होइ परबस भोजन गवन ॥२॥

स्रवन सुनिय हरि भगति सुनत समुझि यसु धर्म अति
सुनत मुकुति पद लहिय सुनत ह्वै सुद्रिढ सुद्रमति
सुनत परिछित तरेउ सुनत उपजत अनत सुष
सुनि सुनि वेद पुरान केहु न परिहरेउ विध दुष
एहि अरथ स्रवन पहिरिय कव अजहु स्याम किज्जिय नयन
दिषि देषित पहि परघनु धनिय निज्जु नरहरि बोल्लहि बयन ॥३॥

काम कुटिल बहु छिद्र लोभ कचन करि किन्हेउ
विचि सरोष ऐहि दोष सेस कहँस्रवन न दिन्हेउ
रामचद जसु सुनत रीझि तब सीसु डोलाइहि
होइ बीतहि महि प्रलउ तब जो त्रिभुवन पछिताइहि
किमि होहि स्रवन लोयन सरिस हिंग्र दहहि सुनि दोउ वयन
रुचि क्रस्न स्याम सुदर तनह अजहु स्याम उचित नयन ॥ ४ ॥

प्रगट फनपति लहेउ स्रवन रापे उत धर्म पर
बिन स्रवनन सब झुठ गनिय पाहन कुकठ पर
जो पइ स्रवन नहि होत सुनत किमि रग मनमय
इहि अति तीन सुजान हरिनु ससि सपुधिष्टि सय
कलि कलुप सुनत मूदि स्रवन दुष समान पिष्पि नयन
नरहरि निरष्पि अतर हतेउ कवि बिचारि बोल्लहिं वयन ॥ ५ ॥

स्रवन नयन सम दुवउ कहेउ नृपरामचंद सुष
तेहि न अधिक झगरेउ न्याउ निबरेउ समुझि सुष
कवि कौतुक पशु भिन्न सुनहु समझहु हो पच जन
वज्र ते तिनु तिनु वज्र भवै कुछु कहै अप्पु मन
हठि लरेउ लोह कंचन तबहि मगन दानि प्रसिद्ध पुनि
कोउ कहउन कुछु नरहरि निरषि करउ कवितु हरि हेतु गुनि ॥ ६ ॥

लज्जा और भूख

लज्या कहै न मगिगऐ भूप कहे तू मगू
इह झगरो अति कठिन हे नरहरि बने न सगू
नरहरि बने न सगू नगु नाही ऐहि भीतन
लाज रहे चुप न्याइ भूष आतुर अतिइ तन
जहाँ गयो इह न्याउ सुनत सो भूपति भज्या
कवल नैन जगदीस करो जैसे रहै लज्या ॥ ७ ॥

बारह-मासा

आवहि पथिक पेषि घन आगम राग मलार सुणत मन बाढ
अग्रा नृपति पूजा मह सचित जपित प्रेम परसपर गाढ
नरहरि बुद बिंदु गिनोद वसु धर हरि बिनु सषि बिरहानल डाढ
पशु जीवहि जिय जाति जितहिं तित सन कह मिलतु अवधु आसाढ ॥ १०४ ॥

विज्जु तरक्कि चक्कि पपीहा चहक्कित स्याम सुहर्ष सुहावन
भुम्मि हरित्त सरित्त भरित्त दिगत्त रहित्त जित्त तित्त आवन
नरहरि स्वामि समीप जहा लगि रचहि हिंडोल सषी सुष गावन
बेआदर बिलपत्तिइ न कह बिन बिठ्ठल बिलपति है सावन ॥ १०५ ॥

जल जगल महिम गान सूझत दादुर मोर रोर घन सादव
जदपि मघो मेन झरि मडि बुझि विरह विरह विकल बिन कादव
नरहरि निरषि जरत जोवन वन प्रगटित प्रेम वृथा बिन जादव
अवलकि धरती विकल ब्रज सुदरि दुम्भर नयन भरति भरि भादव ॥१०६॥

सोभित कास अकास दसौ दिसि चद को मोद सरोवर सार
जग्गि जप्पन्न प्रप्पन्न राजा सब साध समुद्र बिबिद्धि बिचार

नरहरि प्यास जनाति दुहू कर पक्षि पिक पिउ पीउ पुकार
मोनहू ते नरिंद मनोरथ उअो भागवत अगस्ति कुवार ॥१०७॥

उत्तम पान धान दिगअम्बर फूल्लिय कज गज वग चातिक
षेलहि जूअ अनूप जुआ जन सर्वरि समीप राति दिन पालक
नरहरि हसतु होउ हठि ताचति हो ठगी दै तम कुद रस घालिक
इह मन मुधा जपति जदुपत्ति गात्र गिनत अत करि कातिक ॥१०८॥

उदित त भीत भरि जोवन मन मदध चद चढि न गहन
सवनि समीप सुचित मधुर धुनि चोच चहाति चितु चढि नगरन
नरहरि हानु दुसह उर अतर तिनवन गिरि कदरप हरित गहन
इहै सोच सषि पोच मन्न मह डरो अनाथ नाथ बिन अगहन ॥१०९॥

जे दिन षीन रे तिहूँ ते बढित ते सब सुष्षत नभ न तूस
भूषन भोग भवन्त कुतूहल तेरे तरुन्नि अनेग जसूस
नरहरि पक्क विहून बिट्ठल बिन एव विष तुल्य राति कह ऊस
सोच समुद्र परति पद पद दुख पावइ पशु न पदुम्मिनि पूस ॥११०॥

रास बिलास वेसु सुर पूरित षेलत फिरत नृपति प्रजठागुन
बाजहिं पँच सद्द बहु भातिन सज्जन समीप सुपिन सुपतागुन
नरहरि निरषि होलिका पूजहि सब जग मुदित मोर परमागुन
वै जदुनदन भेग सषा सब पिया बिनु वृथा पागु भइ फागुन ॥१११॥

सज्जिय सपक्ष प्रपक्ष रथ नव पल्लव ढाल दल केत
पिक चातिक अलि मोर सब्द धुनि फुलित विपिनि मिळ वानेत
नरहरि लाल गुलाल कुसुम सरि सत बसत सच्च राव खेत
आयो रितुपति विरह बधुन बधि लाग पुकारि चतुर्भुज चेत ॥११२॥

मलय कपूर अगर वर कुंकुम मृगमद तिलक अनुपम राष
सब विपरीति भीति घर अगन सुनु राखि एकह कतक अभिलाष
नरहरि इमि मन्मथु सज्जि दलु घेरित विधन जोरि कवन राष
मिलु जदुनाथ अनाथ नाथ कउ विरह विरुद्ध मुध वैसाष ॥ ११३ ॥

विरह उदड प्रचड मड रवि तपत पवन्न दिग दिग टेढ
छीजत धीर सरीर सरोदक प्रजुलि सिषिर भभरि पढेढ

नरहरि हिदय हरष उडुन चहे नहि छूटात प्रभु प्रम लसेढ
सद्दति परति करति अति आरति आवन कहे ह्ो जदुपति जेठ ।। ११४ ।।

विविध विषयक फुटकर छन्द

ऋषि अतक तकि सरन बघेले की आयो पार समुद्र सकल सुत सथ्थें
तुव समत्थ चितेउ सा चित मह जस मुह चढु सुरत्त रहथ्थें
नरहरि अमाथ वचन बस किन्हउ विपु छगा कोप मथ्य तेहिं अत्थें
देषि विभाग अनुराग दयो विधि भागु तो रामनरिंद के मत्थे ।। १ ।।

गुर तजन कहि तजननि विषम बधन मोहि अति
छुप सतोष गुन दस दुपुत परवस विरुव मति
जनमु तनरु उरु कालु रिपुन कलि कोप दिष गनि
हानि अवसरन किअ लाभ सत सघ सुद्ध मनि
सोइ सुद्ध जो इद्रिन जित रह प्रभु गोविन्द उप्पम कियउ
जस विमल दानि नरहरि निरषि सो गजपति एक्कय दुद दियउ ।। २ ।।

सहि कुअवनि व्यापकत व्योम निर्भयत धर्म पथ
सुष सुतत्र मिति जलधि परम पातक असत्य कथ
तह वजीदषा जानु अदिन जाच्च कुल धुजानिय
अजित कामु अतकु असील अछर थिर मानिय
अलि रसिक ।अवनि मोहन कहिय नरहरि इमि करि उच्चवइ
गुन दान धर्म कइ एक्क तह साहिब गोविंद उपन कयइ ।। ३ ।।

त्रिविध ठक्क चौदत विहरिहिं आइहि अब सिरहीन उहाउ
कहि नरहरि दहि लाज समकीउ तह सिंघ हत को न सहाउ
पटकि पूछि गरराइ गुजरिहि धरिह सरोस सेर सिर दाउ
मेरे जान उलटि परिहिं फडनि पटह अजहूँ दलमल न टुँमाउ ।। ४ ।।

मे अपु बल गजि विराहि भुइत सागा दल दिध अगाउ
बहुरि गनि गुजरात बहादुर इत काबिल उत गोर लोथाउ
नरहरि जुरत पठान जहाँ लगु जो निज सोर सुनो ए कहाउ
इमि धाउ जिमि सिघम गनि पर अस जपत मन माझ हुमाउ ।। ५ ।।

जे हथ रिनहि केहरि गल गज्जत ते हथरि मृग्ग कुदत कुदाउ
जो लगि बाज्ञु भरष्पि न झुक्कत के लगि पछि डर उड़ाउ
कहि नरहरि असपत्ति गजपत्ति हिलि मिलि वर बोल्लनि तब ताउ
जब लगि नहि चंचल चढि धावत सबल सग्गहि वरिबंड हुमाउ ॥ ६ ॥

जित्ति जगतु सब कियो अप्पु वस हुतो समोसन मुष जब ताउ
सोइ छत्रपति बब्बर सुवनदन इह अघ हम सुना अगाउ
नरहरि बान धनुष सोइ अस जू न गोप्पि निरषि सके इक ठाउ
विधि विरुध कुछु सुझि परत नहिं कहा करे वरिबंड हुमाउ ॥ ७ ॥

पूरब हद्द पछिम ।पहार दोउ षन किए विधि जानि अगाउ
इत सुमेरु उत चढत लक्र हय मारि तग नरपति सब नाउ
हिंद ते पेडि पठान षग्ग वर दल दलमलि दरियाय बहाउ
गज्जिहि बहुरि जिति दिल्लीपति इमि हिडोल रच्यो साहि हुमाउ ॥ ८ ॥

षोज मोनदी पीर सुनहु विनती करे नरहरि
नरहरि विनती क्या करे हिंदु तुरक्र समेत
पाय पयादे जगतु गुर जानत हो केहि हेत
जानत हो केहि हेत चेति उत्तम जस लिज्जै
उचित पुत्र फलु वेगि साहि अकब्बर कह दिज्जै
चिरजीव पितु साहित पुहुमि राषै करतरहरि
षोज मोनदी पीर सुनहु विनती करै नरहरि ॥ ६ ॥

छत्रपति अकबर साहि सुनहु विनती करै नरहरि
नरहरि विनती क्या करै जो जलनि सुतहिं विषु देइ
वारि जो खेति हठि चरे साधू परधनु लेइ
साधू पर धनु लेइ नाउ करिया गहिबोरै
रवै पहरु रवै चोर प्रीति प्रीतम हठि तोरै
रच्छक भच्छक होय कोन समरथ करै धरहरि ॥ १० ॥

जैंइ मालव मेवात लिएउ बागर विचि करि
जैइ बेदर निरगहेउ दुवन षडेउ सो षग्ग अरि

वीर नगर गुण गरुव दंड भडहि घढ छडहि
जेहि भिरत रनरङ्ग सग भूर्मा भरु भडहि
नरहरि निरंग्पि देस तरह सा नेहि डर सिघल पलभल
बहादुर भुजगम साहि भो गरुरहु हुमाउ निगलै ॥११॥

बाबर हुमाउ गाजी सा पति करत दाउ मन बच करम अटल स्वामि तकबरु
एकन उत्थपि एकथपत जगत हित अनप जरत रिपु फिर चहु चक्कवरु
गुन निरगुना हिंदू तुरक सेवत दलन हरि अर्थाह तहि एक टकवरु
परम पवान पानिपाना सा उजीर चाक न्याहि वसुह तिलमत साहि अकबरु ॥१२॥

असपति नर गजपति भुअपति सबहि चरन परिहरि सुअ अकबरु
रूठे जिन्ह नर ते फिरत हैं सघन बन सहे दुपु कहत नि होत ढक अगरु
नरहरि सो का जो रिझावे छत्रपति कहं परम प्रवीन जिमि सघउ सुअकबरु
सो धनि वनिक गुनी सुकवि समत्थ सोइ क्रिपा की कटाछ जाहि परे साहि अकबरु ॥१३॥

जीतो हय चढत मलग्गड भुजनग अब बहु बाहित विविधि दल सज्जित
जलनिधि गाधै हेत तनि आँसरिल गही प्रबल हुमाउ साहि देपो इमि रज्जित
नरहरि जमुन कपति चलकप सिसि इह हुपु देपि में प्रथम पेम तज्जित
अति डर सो निर्द्दी दनावन चली है जनु नहिन अपुब्ब लकपति भज्जित ॥१४॥

कुटिल कुरूप कुजाति कुबदासि कसदासि दासिहु ते सुवरि
देखत मन अति रिझित नक्रित रहे गति देखत काहु ते न उघरि
नरहरि जानि जानि सो मानि तिविक्रम जानव प्रभु दयाल इह दुवरि
तन बनि ठनि आइ सकल जुअति अन त्रिभुवन गर्बु गवावति कुवरि ॥१५॥

बर बघेल निरलोभ्भ धम्म रत सेवत चरन साहि सुप रत्ती
यह सो लोभ अगरन्न सरन्न किय मारि सुअरि लेत मुह अत्ती
नरहरि एक बात सकुचत हों परसत पुरसोतम पगमत्ती
हो अपने नृप रामचन्द्र पर वारों मे कोटि कोटि गजपत्ती ॥१६॥

धन्य धरनि धरनि देसु नगर कुल धनि सो जाति वर
धन्य सर्व भूपाल जननि धनि जा गर्भ धर
धनि जुग मह कलिजुग्ग धनि सो सवत् समत्थ भनि
धनि सो वर्पु रितु मास पापु स्वै सेल पापु धनि

धनि तिथि वनपतु रवै दिवस धनि वहि नरहरि विधि निर्मएउ
धनि पहरू लगन रवै महतु धनि सो जेह मनु द गजपति भएऊ ॥१७॥

गर्भ परत अवतरत करत बालक विनोद रसै पुनि जावन
मद मत्त तन्न इन्द्रिन्ह अनग वस भएउ न आपन
विषय हेत जनु फिरत बहुरि चपेउ विधायवै जएउ
जन्म गुन गुनत अन्त कुछु थिर रहेउ न कोउ
नरपति नवलु रहिहि एवक चहुँ जुग जसु
सो अजर अमर नरहरि निरपि जो पिअत भक्ति भगवन्त रसु ॥१८॥

अघ जघ कहियहि धुरंधियहि मनि घर
विप्र जनि रटियहि चोर रखियहि जोरि कर
साधु लोग कह धका चुगुल कह आदर थिज्जअ
बहुत प्रीति मरपहि दानु निरवा कह दिज्जअ
ज्योतियहि सासुसारे ससुर भाता पितु शुपैन मरै
कुटिये वियाही दासि घर सो कलि विनोद नरहरि करै ॥१९॥

पशु अमग्ग नहि धरिय टरिय नहि चलत धम्म पथ
नहि सपति मनु करिय निरपि हय अस्व गयद रथ
प्रेम नेम नहि टरिय अमृतु बोल्लिअ न जिम्भ रस
नहि हरिहि न निदरिय परिअ नहि पर प्रपञ्च बस
गुन दान सग्ग स्वामित्त रत नरहरि समय न चुक्किए
गुरुजनु हरपि इमि सिष्पवै सो तिअ लगि जसु नहि मुक्किए ॥२०॥

सकति सनेहु जे थरहि मानु वेचहि जे लोभ कह
पिय वियोग सुख चहहि तजहि सकर स्वामि कह
नृपति मित्र करि गर्नहि पेल दुज्जन सग पेल्लहि
मनु बधहि पर स्वनि सगुन अगुरि गेल्लहि
चुक्कहि ते समय नरहरि निरपि जउ आगे गुन बिसरहि
पछितहि ते नरहरि भगति बिन सो दलपति दोसति पानयहि ॥२१॥

नारि सो धिकु जेहि पुरुष न रिझै पुत्र सो धिकु जिवन अपकारी
बचन सो धिकु जो बोलि पलटिटय दान सो धिक जो करकस भारी

प्रभु सो निकु नोकुा गुन मेटन नथा सकति वालना कहि गारी
नर सो निकु कुजानन निकु नरहरि जिन्ह केवल हरिभक्ति बिसारी ॥२२॥

सिवहि सगुन न चद बल नहि चाहत धन सिद्धि
बधन पट मुट सारत जह गाहसु तह सिद्धि
जह साहसु तह सिद्धि सुनत तब विक्रम पाहीं
आई वरमत लिपत तेहु भरि नाहीं
यह अचिरिजु सक नव कहत नरहरि सिचि रिघहिं
केहि पटतर अत्र देउ साहि अकबर नृप सिवहिं ॥२३॥

तरिवर अब गसुम्मिगन कत भूलहि सुन अध
तुअ पाउस रितु जानि केसेइ रहै अलि सब
केसेइ रहै अलि सब जब तु फल फलेह रग मह
तिन परहि परवेहु किरहि दिसि विदिस दुरप मह
नरहरि कबहु न दोष कात सीत रस चरवर
तु विवेक परिहरहि कहहि किन अब के तरिवर ॥२४॥

नग पाग सुर असुर सिद्ध मुनिगन अनल गनि
नर नृपनि गडपति तुरक हिंदू समरथ भनि
न कोइ सुथिर पाणिये अवनि अस रमा पच दिन
कहि नरहरि सब तजि न गयु नहि रहिये अद्ध पिन
गुरु गोम सरमद निष्पनै पेगु जो परम्पर हिले
जलि गलि जगतु भसमतु भो सो सिमिट सिमिट सद्धिहि मिले ॥२७॥

उरग बनि जुमुल गरुड भएउ नहि पुहुमि अनफल
प्रजा दुखित दलमलित गएउ फटि फूट पठान दल
दत्त सत्त गरु वस रहेउ धन धर्म किति निति
मउर सोर चहु ओर नहुरि सवरेउ मुगुलपति
जगदोम देवानहि रिपु के कहि नरहरि निसु दिनु पुहक
सेरन निन साहि सलेम जिन सो अकल विकल हिंदू तुरक ॥२८॥

नरहरि दानि दरिद्र नस तऊ सो भगत जाग
जो सलिता जल सूखि गा कुआ खने सब लाग ॥२९॥

नरहरि कृपिन न मागिऐ जेपै दुखित तन होन
देहै दानु कुबोलु कहि जगै उगर जस लोन ॥३०॥

कोटिन कादहि कोटि कोटि देत बोलो नही
कोटि लागि चित छोरी पै हियो न धरक्को रामया ॥३१॥

असपत्ति नर गजपत्ति हुतेउ भुअपति अनेग तब
ते त्वै समर सधरेउ भरेउ जसु जगत जित्ति अब
तोहि जाचहि गुनि सकल कोउ न उधरउ भुम्मि मह
नपत प्रात सम तकत जियत जलु जलधि ग्रात कह
बोहित रूप भुजिमि पिथ्थिअै मगन गति नरहरि भने
अस समुझि साहि सेरन प्रगट अैसो अ। अन दिन्हेहि बनै ॥३२॥

कबहुक काजु साजु सुप सपति कबहुक बिपति बिषम दुष पैऐ
लिष ललाट पट्ट विधि अग्गट मिटही न काटे जतन घाि वेऐ
नरहरि नर नरपति सुणहु अन बिन हरिभक्ति अत पछितैऐ
वित के घटे घटतु नहि नरु साहसु सत्य घटे नटि जेऐ ॥३३॥

फनपत्ति गय परभरहि जलधि उछूछलहि छडि कुसु
उडिरज परिहरि भुअन भऐ ते सुर सकल सभु सग
निसु दिन बिछुरहि चकि कवल सकुचहि रवि झपहि
धूम समुझि अरि त्रिनति भगरि मज्जहिं तन कपहि
नचहि मऊर नरहरि निरषि सो द्वरग अनबन बरन
दलु चलत अकब्बर साहि कौ को गिरिबन बन असरन सरन ॥३४॥

गोवा गिरि गढु लिऐउ वीर विरसिह अप्पुवर
पुनि भो उधरन वीर वीर गनपति उनत कर
पुनि भौ डुगुर साहि साहि कीरति तिसुनन्दन
पुनि बसहि कल्यान मान छत्रपति जगबदन
तेहि तनय साहि विक्रम भएउ नरहरि नहि दुज्जउ सरिसु
भगिवत थप्पि तो वर तिलक सेरन साहि नव निधि बरसु ॥३५॥

सलिता सध सागर समूह भरि पूरित सकल सरोवर सध
ते सब छडि हरि जपन पिउ पिउ तुव पयसा सर हित गुन गध

नरहरि तेहि पोष्यहि न पेम करि प्रगटिहि पातु विसुन कहु गध
कह घन रह चातिक वर वारिधि पर पारिद बरसहु किन अध ॥३६॥
या मेघ सलेम कुतुब्बानी हाजिर
अबूमहम्मद गाधी कर मुना अब्दुल्ल कादिर
या कादिर हाजा तिहु कुम हाकिम सम दानि
सद मोइदी पीर वली इलाह गिलानि
हसनो हुसेनी हुकुम तुव गायब सु मादरु नकस
सब दस्तगीर नरहरि निरषि गोसालम फिरिया दिरस ॥३७॥
तरिवर चहु पथ मभूभ के कत उपजेहि घन छांह
जो घन छाहत फलेउ कल मुफल निकट बहु ताह
सुफल निकट बहु ताह पथिक नाचक भकभोरहि
पुहुप पत्रफल सास आपु स्वारथ तकि तोरहि
इहि आपन कृत समुझि सहहु उर पर सब करवर
कहि नरहरि गुन विदित भएहु चहु पत्थ के तरिवर ॥३८॥

कबहुँ घामु हिमु कबहु कबहु जलु चलि सुपत्थ कह छडि सदनह
तजि सुपट्ट पहिरति तरु वक्कल पग कटक कुछु सोच हृदनह
नरहरि फिरति निकुज साम सग जिनके रूप अचिरज्ज मदनह
तदिन दुष नहि गनति सीय मन जब देषति रघुनन्द बदनह ॥ ४० ॥

करत विनोदु स्याम स्यामा सग दोउ मन मुदित रूप गुन भाजन
अग अग प्रति रङ्ग रङ्ग मह छवि उपम घन विद्यु विराजन
नरहरि यह विपरीति सुरत रत राधे के चरन उचत अति लाजन
उछरि उछरि वेनी परति पिछि पर मारत मनहुँ मनमत्थ ताजन ॥४१॥

सत सतगुन सचेरेउ पुहुमि धन धर्मु विरच्चौ
जसु त्रिभुवन जगमगेउ पुन्य पोरुष सुपु सज्जौ
कीन्हेउ कुलनि कलक कानि कीरति गुन बढौ
पाय परसि पति लागि दरसि दुजन दुष उढौ
महिमा रौजु सुभ काम जह कहि नरहरि सब दुष्ष गौ
जगदीश उचित फल फल पुत्र दिय सो जेंह धरपुत्त सुपुत्त भौ ॥ ४२ ॥

पर प्रपञ्च पर दर्व पर स्त्री निसु दिन फिरत रहत निशु नशे
अष्टि पाग लपटि नात निष्टि अवसि करत निज नशे
नरहरि हसत फुकत वर बोलत गावत जोबन अधर धरि दसे
तब ते समुझि सकुचि विरधप्पन किऐ ते काज जोबन मद मसे ॥४५॥

चरण कवल केलि कू सील गति बाल फूली फिरे बोलि मानो कुंदन कनक की
नरहरि सुकवि सुगध सुष सषिन के मधुर मधुर मधु बानक बनक की
आजु जैमाल धरो माथे रघुनाथ जू के हाथ जिगनाथ करो जाई ता जनक की
टूटत पनाक पानि पान पान लागी सीता सुषनि धरक मई वाक ही धनुष की ॥४६॥

तनु धनु जीवन जोबन चो चपल अति आपुहि बकि न चित बहु सुचि दप्पन
जेंहि लति जपु तपु करत सकल तगु ते कत अनून करत कत जप्पन
नरहरि हरि भजु मन रमि बचसि क्रम भ्रमन भ्रमगि औरै भाई जगु सप्पन
यह सुल नित बहु निरिनि विपय रग आपो मा च देरहु नग्गिन कछु अप्पन ॥४७॥

चौरासी चौसठि चरन चोबीस षोडश गुनि
पुनि बारह पुनि रुद्र दसम नव अष्ठ सप्त पुनि
षट पच पुनि चारि तीनि दुइ एक सान गिनु
सत्रह दड प्रमान होहि दुगहर अषाढ दिनु
धरा चढी जबही तब तन नर छाया गुनि लिज्जिये
महि मध्य देस नरहरि निरषि सो यहि निरि देव राग निज्जिये ॥ ४८ ॥

चैत तीनि बैसाषि चरन दुइ जेठ एकु है सुन्न आषाढ
सावन एकु कहुरि भादों दुइ तीनि कुवार क्रमहि क्रमि बाढ
कातिक चारि पाच पुनि अगहन है षटु पूस सुपन्री छाह
नरहरि चारि चरन पुनि फागुन पच कहुरि षट पेषि माँह ॥ ४९ ॥

सेरन साहि सलेम पुहुमि एक छत राजु किअ
तिन मोहि कह करि कृपा मातु धनु पित्ति पिताजु दिअ
तिन्ह के मरत नहि मुएउ लाज गहि नगन सिधाएउ
तिन्हकि सुनन परि विपति तहाँ नेहु काम न आएउ
एहि लाज गहेउ जगदीस दृढ नरहरे चल तन चित सुप
फिरि फेरि ओलावहि साह माहि सो आनि दिखावउ कौन सुप ॥ ५० ॥

तब विचारि कवि कहै पिण्ड पर बज्ज दुग्ध सहि
देह जोर है उग्न प्रान मृत कहौ मम सो सत्य नहि
तुमहि जो देहि कुछ दकु देउ सुरपुर सुकर्म जसु
जियतु मृतक जहु हुतेउ ज्याय लिअ प्यय पेम रसु
नृप हौ हिते जानि कोउ नहि बिन कवित चितइ सुमरु
वैहु दीनि न कवि कोउ अमर किअ सो कविन दानि किहौ अमरु ॥ ७१ ॥[1]

रहति गौरि अरधग गग जट मुकुट मध्यतम
ससि लिलाट जगमगत भगत भय हरत भिपु अस
तिन्नि नयन मुख पच सच सगत गीत रस
डमरसुल्ल लिऐ हत्थ तत्थ तिहु पुर प्रसिद्ध हस
तिहु लोक त्रिगुन नरहरि निरषि भेद रहित बदौ चरन
हरहर जे सिव ज सभु जै सो जे जे सिव सकर सरन ॥ ८२ ॥

जो पय दिगबर भएहु धरेहु कत धनुप सूलकर
जो पय भसम लय अग ,सग सुदरि वल यहु कत
जो पै सुदरिय सग कामु जारिहु तो कउन मत
सर्वग्य नाम नरहरि निरषि ह्ठि मसान सज्जहु सयन
इह अनप सभु केहि सन कहौ सो सब विरुद्ध पोष्यिय नयन ॥८३॥

दानौ दल छल प्रबल सुपेषि करि भाजे सुर सकल भ्रमित भय भरहरि
अब सब मिलि तेहि जपत जालपा माइ तुही आजु सकल सबके गुन तरहरि
दीनन अभय पद रतपति जगत महि जय जय प्रगटित गुन फरहरि
सोइ देवी हमको रापति जहा तहाँ मिलि आयो जन सरन चरन तकि नरहरि ॥८४॥

सेर साहि सुअ जोर प्रग बर मे गलघटा मारि मुह मोरी
न हविसु कवि जोगिन गुन गावत नाचत भूत सार मन होरी
फूल्यो फर्यो अकास नपत तह इहु किसान करै मति चोरी
एक ओत छै गीव उडै ले झपत मनहु पर ॥८५॥

तन सिगार सुर रवनि अवनि अद्भुत नरिद मन
रौद्र सकल सूरि बन क्रसन ढपत्ति बधु जन

---

१ सख्या ७२-८१ तक के छदो मे उल्लिखित मगनि बादु' को पीछे दिया जा चुका है।

उचित मुगल दल हास च्चर चिचित यौ विभत्स जह
मय भुली भुवपत्ति सात इसलाम सध कह
दुपरा न अमन पुर रिपुन कह कहि नरहरि जपतु लिय
नव रस निभिज्जय इक इक्क कह वीर अकबर साहि दिय ॥८६॥

टेसु इमि किमि पुज जिवनु सकल लगे केहि काम
फूलत ही मन गव्र भो किया अपु मुप स्याम
कियो अपु मुप स्याम काम बूझै कछु वातन
निपटन निर्गुन जानि न्याय परि करेउ सो पातन
नरहरि ते द्रुम आन फूले जे नवहि सुदेसु
तू ही जाहि जग हम अजहु बूझहि ने टेसु ॥८५॥

नरहरि तजहि विषादु उर कार न पुत्र नेहा
पछितेहो दिन छिन सुगुरि पाछे ले सनेहा ॥८६॥

नरहरि सुगमगा परे जो नृप म चीन्हि
सांनो सज्जन कसन को विपरा कसोटा कीन्हि ॥८७॥

पर.. अनु स्वान चील्ह जवुक उल्लूक मानि
स्यामा तीतर भरद भरूरि मुरगा मयूर गनि
चलत वाय लिज्जिय हिस सुनत वहि प्रसन्न मन
पुर प्रवेस दाहिनेउ होत सुभ काज भर्म भर
देपिए लाल लो वाद रस म्रगु सतत दाहिन चहिय
सुभ सगुन निरपि नरहरि कहिय विजो करत नव निधि लहिय ॥८८॥

सख भेरि वीना मृदग सुसु गीत वेद धुनि
गा सब छनन विप्र जुग्रति सुत राहिल देपि पुनि
धोत वस्त्र लिए रजक वरा विहसित सिगार तन
फल अछत दधि पुहुप मन्द नृप देपि सुद्ध मन
पूरन घट छत्र तुरग गज सिद्ध अचल गो गय कहिय
सुभ सगुन निरपि नरहरि कहिय सा विजउ करत नवनिधि लहिय ॥८९॥

पसु बघेउ आवत अगिनि प्रज्वलित कनक मनि
आइ लेउ कोउ कहइ सुनिइ समुदित रोदतनि
पान पकवान मलय माटी सुगध सब
रस गोर सजत माल मुकुट देखियै दरस जब
बह मधुर पवन लै सब चल मित्र उदय सुनि केहु कहिय
सुभ सगुन निरपि नरहरि कहिय विजौ करत नवनिधि लहिय ॥६०॥

प्रात पहर बल्ले करार सुभ कहिय पुर्व गनि
अगिनि कोन रिपु मरन पथिक आवइ दहिन मनि
चित सतोप नैरित्य मेघ वरपै पच्छिम पर
वेह कृपति सरोप नसै धन रहै जो उत्तर
जग्ग जलनिधि जल मोह तरल त्रस्ना तरग घर
तटदुहु दिसि मद मान लाभ अज्ञान भँवर भर
काम क्रोध अति जतु गहिय करवर छलि वारहि
मन बिलास बह पवन कलुप बवडर झकझोरहि
लै विषय सत्तु तेहि माझ पर कहि नरहरि केहि अकरइ
पुरसोतम परम कृपाल बिनऐहि अवस्य को उद्धरइ
पुत्र कलत्र भाइ सज्जन धन जेहि लागि दुप्प सहे नर जत्थ
तजि डवर सवर आडबर चल्यो अकेल बजावत हत्थ
हरि पद विमुष देस दिसि चितित सचित कोटि भए गुन गथ्थ
नरहरि पान प्रयान करतह गोनत कोन पच पग्ग सथ्थ ॥६१॥

नरहरि जप तप नेम व्रत सबु सनही ते होइ
प्रीति निवाहन एक रस नहि समरथ कलि कोइ ॥६२॥

आहि करत नहि प्रान गै इह अचिरज नइ आहि
तब सो सत्त अप अछ मे बिछुर सेरन साहि ॥६३॥

नरहरि दानि दलिद्र वष तउ सो मंगन जोग
जो सलिता जलु सूषिगो कुवा षने सब लोग
कुवा खनै सब लोग सकल तन नृपति बुझावे
सो दम भारत तनै निरषि मगन जसु गावे

सीतल परम सुगन्ध सत्त् राखै करतर हरि
हम जादिल दरियाय मिटै न छहुँ रितु नरहरि ॥६४॥[1]

कनक तुला मनि मोत्ति दान दिन कहिं जो ग्रथ गन
सप्त सहस गो लछि देत विधि सहित सुद्ध भन
अस्व रथ गजरथ बसन ग्राम गनि कहउ कौन कवि
बहुरि प्रगट कलि करन सत हरिचद प्रात रवि
जस हथ्थ भुगुति अउ मुकुति दोउ कहि नरहरि नित सभरिय
गजपति मुकुन्द दिनदेव कह कहउ कुपितु केहि विध करिय ॥६५॥

जेहि सरण मोहि थप्पि मानु धनु खिति पितावु दिय
तिनहु ते अधिक सलेम साहि सब विधि सतोष दिय
तिनके मरत नहि मुएउ नहि न ग्रह तजि तपु किन्हेउ
फेरि परबस परेउ बहुरि अदामिहि चित दिन्हेउ
बहुरि कि वहि सग बिछुरत नरहरि मनु कतहु न रहत
पुरुसोतम परम कृपाल बिन लाज मरत दर दर फिरत ॥६६॥

सोरह सय पचिस सबत कुज द्वादसी चइत बदि
सन नवसय पचहतरि पच्चीस तेरीष सावान जदि
उत हिंदू गढपति भिरो प्रभु छडि षड पन
इत काबिल पत्ति कोपि बढेउ दल सज्जि पग्ग बन
नवरस अपुधन नरहरि निरखि बहुरि भुवन भारथ किएउ
सक बध अकब्बर साहि कि चपि जोरि चितोर लिएउ ॥१०२॥

कोट की ओट सबाति राति दिन एहि अगम न रहि आपु सभार
उमत्ति हीन याकी मति ओछी ना उठि गयो न आइ हकार

---

१ इस छप्पय की अन्तिम चार पक्तियो का पाठ-भेद उक्त प्रति म ही मिलता है—

कुवा खनै सब लोग निपटनि करैं जल आव
ऊसरि पनि पनि भनै कहो को तृष्णा बुझावै
इहे कृपिन की रीति देखि गगन छपे नरहरि
दाता सहज सुसील देब दीननि नरहरि ॥

भुर से साहि कहे नरहरि कवि वह झगरा जगदीस निवार
तरिवर टूट विहगम फस गयउ धिक वधिक जिन जार पमार ॥११५॥

तुश्र दरसन तम दलित तलित पकज सुहर
अति प्रगास बहु चक्कु चक चक्किय अनद कर
विप्र करत धरक राम सचरतु सर्व पन
सुरनर मुनि गर नाग अश जस जपत एक मन
.. .. ॥११६॥

माधव केसव कृस्न विस्नु बयकुठ दमोदर
हरि मकुद गोविद अमर अविगछ अगोचर
नारायन नरसिह सुत्त विठ्ठल बलि गजन
प्रभु मुरारि वनमालि गोपि जीवनि जुग रजन
सारग सष गद्र चक्र धन पढ गुन तस कट हनन
जै राम नाम भगवतहि तकहि नरहरि तक्क वसनन ॥११७॥

यश लगि बलि बावनहि लोक तीनिहु समप्प दिय
जेहि यश कारन करन कनक कर कछु न लोम्भ किय
यश कारन हरिन्चद नीच घर नीर समप्पेहु
यश कारन जयदेव शीश ककालहि अरप्पेहु
यश अमर सदा नरहरि चलत यशहि परम पद पाइये
भुवनाइ अकबर शाह कहु रिस करि यश न गवाइये ॥११८॥

जह सुधर्म सुत नृपत्ति हत्थ जेहि गदा वृकोदर
बकु नकुल सहदेव सत्थ अरुजुन सौ धनुंधर
सानथि सहित गोविद तबहिं परि विपति पच दिन
वन बघेल इह जानि कै रहु निदियन अहु षिन
लैहै सुदेस परदेस जस कहि नरहरि चितहु चरन
नृप रामचद बिलसिहि बसहु सो पुनि साहिन रष्षिहि सरन ॥१२०॥

बसुह माल देउ नत्थि देत नाना बिलब कछु
नगन कोट गिरि अगम मारु नहि सहहिं भूप तुछु

उदसखि सविधान गनु गोन गुजरात बुन्द नित
जपे उगठा सुप साहि दानि नृप नाम विप्र चित
ऐहि सोच विप्र व्याकुल फिरहि कहि नरहरि चारिउ वरन
पौग्पै मुकुन्द दिव देव कह सौ समभ्रिफ कलिजुग करन ॥१२१॥

गउन को गनबु हनत फनपति मुरस पन्न्न टिल्लत जहाजहि
इदुर डर विलार जस भाजत स्यार तमकि पात मृगराजहिं
स्वान चरय जस मारि निडाल तकय तुरन धावै बिन साजहि
नरहरि कृगा करे रघुनदन मारै तमकि गरगिया बाजहिं ॥ १२२ ॥

दोउ हाथ जाम घास रेपा निर्मल जसु गग जनु पानी
विधि इव हानु दयो साइत को नरहरि गोरि निरतर जानी
जाग जनय जगतु जेहि सरहतु गेया गाय गोप की रानी
पूने को कुवरय निपत्तर राम सिराय नछत्र भवानी ॥ १२३ ॥

कनक तुला मन मुदित दान दिन कहि जा प्रग गन
सत सहस्र गो लच्छि देत विधि सहित सुद्ध मन
अस्व रथ गज रथ वसन ग्राम गनि कहइ कौन कवि
बहुरि प्रगटि कलि करन कत्थ हरिचद प्रात रवि
तेहि अर्थ्य मुकुति अरु भुगुति द्यौ कहि नरहरि तह सच्चरिय
दुग्ग वति म त समथ्थ कौ कहु केहि विधि पटतर करिय ॥ १२४ ॥

सर सर हंस न होत बाज गजराज न घर घर
तर तर सुफल न होत नारि पतिव्रता न नर नर
तन तन सुमत्ति न होत मलयगिरि होत न वन वन
फनि फनि मन नहि होत मुक्त जल होत न घन घन
रन रन सूर न होत है जन जन होत न भक्ति हरि
नरहर निरखि कवित्त कहि सब नर होइ न इक सरि ॥ १२५ ॥

को सिषवत कुल वधू अलज्ज गहि कज रग रितु
हसनि को सिषवत चुगत मुक्ता सरवर चितु
सिंघन को सिषवत हनत गजकुभ तित छिन
सज्जन को सिषवत दत अरु सील सुलछिन

लिष्यौ सिष्यौ नरहरि निरषि कुल सुभाव कोउ पिष्यवै
ग्यान धरम अकबर साहि कै कहो तौ कौन नर सिष्यवै ॥ १२६ ॥

अरिहु दंत तिनु धरै ताहि नहिं मारि सक्त कोइ
हम सतत तिनु चरहिं वचन उच्चरहि दीन होइ
अमरित पय नित स्रवहिं वच्छ महि थमन जावहिं
हिंदुहि मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं
कह कवि नरहरि अकबर सुनो विनवति गउ जोरे करन
अपराध कौन मोहि मारियत मुएहु चाम सेवइ चरन ॥ १२७ ॥

नेक बख्त दिल पाक सखी जवा मर्द शेर नर
अव्वल अली खुदाय दिया विसिआर मुल्क जर
खालिक बहुवेश हुकुम आलिया जो आलिब
दौलत बख्त बुलंद जग दुश्मन पर गालिब
अवसाफ तुरा गोयद सकल कवि नरहरि गुफतम चुनी
बाबर बरोबर बादशाह दिगर न दीद्रम दर दुनी ॥ १२८ ॥

चोटी गहि द्रोपदी निझोरिबे को ठाढी कीन्ही कोपि कह्यो सुमिरि सहाय कौन करिहै
लैन पावै उससि उसास न दुसासन पै दीन ह्वै पुकारी कहूँ दीनबंधु हरि है
गुरजन पुरजन देखत तमासो सब नरहरि कोउ न करत धरहरिहै
ऐसे में अनाथन की ओर कौन सुध लेहै मोर पच्छ धरिहै सो मोर पच्छ धरिहै ॥१२९॥[1]

नरहरि सम्बन्धी फुटकर छंद

नरहरि कवि मों गऊ की विनती सुनि साची गुन लखन पै कै मति अकससी
अकबर जारी परवाने किये मारिबे को चारिहुँ महीपन मसानी बात हकसी
व्यापि गयो हुकुम दिल्लीपति को हिंद भरि वाजिबी विचारि मन आनिकै करकसी
जीवन कसाइन को गाइन को देख भयो गाइन की मौत ले कसाइन को नकसी॥१३०॥[1]

---

१ उक्त छंद संख्या १२५-१३० तक पं० गंगाप्रसाद भट्ट द्वारा पं० शिवादीन भट्ट के सौजन्य से प्राप्त 'नरहरि के छप्पय और कवित्त' नामक अप्रकाशित ग्रन्थ की प्रतिलिपि से उद्धृत किये गये है ।

श्री गणेशाय नमः[1]

प्रथमहि लीजै नाम परम शिद्धि पाइऐ।
गनपति गौरि मनाइऐ मगल गाइऐ।
लै शरद को नाम शो विधिहि मनाइऐ।
शुर नर मुनिगन देव तो जगपति पाइऐ।
भूपति भीषम राउ शो कुदनपुर बसै।
ताको कन्या रुकिमनी गोहे तिरदशे।
भइ है विश्राहन जोग तो रुकुम हकारिया।
लोग कुटुब बैठाइ तो मत्र विचारिश्रा।
घर वर कुल शबध जहाँ जश पाइऐ।
तेहि वर श्रह श्रश कन्या अवश विश्राइऐ।
भीयरानी वौ शाधुन श्राश मत कीजिऐ।

•

श्रश कहि रुकुम रिशानेउ निंदरि गोपाल ही।
बहुरि नाम जन लेहु देहु शिशुपाल ही।
दैत्य वश शिशुपाल जाति कुल श्रागरा।
तिन्हहि छाडि कत देहु श्रहिर नट नागरा।
वश हित जमुन तीर शो धेनु चरावही।
घर घर माखन खाही शो वैनु नजावही।
श्रश कहि लगन लिखाहि शो विप्र पठाएउ।
दल समेत शिशुपाल ही वेगि बोलाएउ।
लिखि पातिहि वो हाथ शो कछु न विचारिश्रा।
राजन सहित बरात इहां पगु धारिश्रा।
तिलक को शात पठाइ तो मडप छाइश्रा।
मातु पिता वो साधुन श्रति दुख पाइश्रा।

छद

दुख पाइया पितु मातु शाधुन रुकुम मुढन बुझाइऐ
मनि देह मरकट हाथ मुरुख श्राग पाछु न सुझाइऐ

---

१ काशीराजपुस्तकालय की प्राचीन हस्तलिखित प्रति नरहरि कृत 'रुक्मिणी मगल' से उद्धृत

गुन छ्य कन्या रतन रुक्मिणी असुव कह कत दीजिऐ
ऐहि जोग जादव नाथ नरहरि रुकुम वैर न कीजिऐ
पाती लगन लिखाए सो विप्र पग धेउ
गऐ चदेरीहि शाजि बरात बनाऐउ
देखि शाज दल धाख शो अति शुख कीन्हेउ
पाती नेवत शदेश न्रीपन्ह कह दीन्हेउ
लेहि नेवत अति हेतु शो सऐन बनावही
शब देशन के भूप चदेरी आवही
जराशधु दे आदि न्रीपति दल गाजही
हिलि मिलि करहि अनंद शो बशी दल बल शाजही
हरि शो मानहि वैर अशुर कुल घात की
मनो दुलह शिशुपाल शो भुपु बरात की
चले निशान बजाए तो धावन धाइआ
आइ निकट बरात रुकुम शुख पाइआ ॥

छंद

शुख कीन्ह रुकुम बरात आवत हाट बाट बनाइआ
दल शाजि न आपन भाइ चारिउ आगे लेन पठाइआ
मिलि मेटि कहेउ की पाव धारिअ आगे होइ न्रीप लीन्हेऊ
जेहि जोग जश जन वश नरहरि आनि तश तेहि दीन्हेऊ ॥

रुकुम नृपन के हेतु शुशाशर जोवइ
एह शुनि रुकुमनि विफल जनमि सुख जोवइ
राजु कुअरि शुकुमारि शो दुरि दुरि रोवइ
लाज न काहुनि कहे शो जन वीगोवइ
कित कीन्हेउ व्रत नेम शो शीतन शाधेउ
पारवती वो शकर कित अवराधेउ
वर मागेउ जदुनाथ शो वंदन विदइ
देव गढत कपि भऐउ विधातहि निदइ
भरइ की लाख उपाइ मनहि मन कल्पइ
जश आवा के आगि ह्रदे अति तलफइ

कर मीजे पछिताइ बहुत दुख पावइ
विपति मोरि इह जाइ को प्रभुहि सुनावइ

छद

विपति इह को काहि सुनावै ताप दुख जो मैं सहौ
है निकट लगन निदेश प्रीतम दुरा कठिन कासों कहौ
तजि लाज एक उपाइ अजहु करो जो विधि बनि आवई
लिखि देए तासु सदेश नरहरि प्रभुहि जाइ सुनावई

बैठि एकातहि रुकुमिनि विप्र बोलएेउ
देव न मान निहोर सदेश बुझाएेउ
जदुपति कह कर सुदरी पाती दीन्हेउ
सजल नएेन पगु लागि सा विनती कीन्हेउ
चले विप्र वर वा सगुन सुभ पाएेउ
हीदै धरेउ हरि ध्यान द्वारिका आएेउ
कनक रतन मनि मदिर विप्र सुलानेउ
आपन जीवन जन्म सुफल करि मानेउ
आएेउ सीह दुआर तो प्रभुहि जनाएेउ
कुदनपुर सो विप्र लिखा ले आएउ
सुनि पाती तब जदुपति निकट बुलाएेउ
बुझि कुसल दम धोख सो नित बेठाएेउ
तबहि ज पाती दीन सो बात जनाएेउ ॥

छद

हरत कमल हरि तिआइ भेद केउ न जानइ
वान्हे लीसी पाती पति छाती हरि हिदे अनुमानइ
जहाँ जहाँ श्रीप भेख कीन्हो तहाँ तहाँ हो याग रही
अब हरत असुर के नाम नरहरि बात वेस साची कहो ॥

सो सती की जदुनाथ स्वामी जदुनदना
लिखति दासि पर नाम सो असुर निकदना

नाथ तुम्हारे कुशल कुशल अब लेखिहिं
इहो कुशल तब हो इब रन जब देखिहिं
शुनि गुन रूप चरित्र अब लगि दीन्हेउ
तुम्ह कारन ब्रत नेम आगु लगि कीन्हेउ
अब शो मिथ्या होत है अति दुख पाएउ
लाज छाडि एहि शकट लिखि पठाएउ
लागहु वेगे गोहानि शाजि दल धावहु
गाइ गहत है बाघ शो आनि छुड़ावहु
बहुत जुरे हैं जम्बुक विलग मन लावहु
इगलि सिंह बलि आपन लेइ शिधावहु
भाइ रुकुम हठ परेउ देन मोहि चाहइ
तुम्ह आछत जदुनाथ असुर मोहि ब्याहइ ॥

छन्द

ब्याहै असुर मोह रुकुम के हित मातु पितु दुख पावई
इह बात शुनि शब नगर रोवै असुर काहु न भावई
नर नारि दो।दिज शजन परिजन जइ शोत इश बहावई
कर जोरि करहि भरोश नरहरि स्याम शकट मोहई ॥

शुदि आठे वैशाख शो लगन लिखाइहै
तिशरे दिन मोहि ब्याहि असुर ले जाइहै
बाहर नगर गौरि को पूजन जाइहौं
नाथ तुम्हारे चरन कमल मन लाइहौं
तहाँ शो हरि ले जाहू शाजि दल धावहु
गाइ गहत है बाघ शो आनि छुड़ावहु
छन छन मगन होत है ऐहि दुख शागरा
कर गहि आइ उबारु अहो ब्रीज नागरा
मै जो ढिठाइ कीन्ह शो विलग न मानवा
हरि थोरे में लिखा बहुत करि जानवा
पाती बाँधि गोविंद शत्थ करि जानेउ
राम रूप वै शीघ्र समुझि मुशकानेउ ॥

छंद

मुशुकान ग्यान प्रवीन सुन्दरि प्रीति उर मह आइआ
भरो शजल शुन्दर कमल लोचन ते बहुत दुख पाइआ
अब असुर मारि प्रहारि व्याहो बहुरि विरहन देखई
भनि देउ भाग शोहाग नरहरि शुफल जीवन लेखई ॥
ऐहि जीवन जदुनाथ विलब न कीन्हेउ
पवन वेग रथ साजिहु आऐशु दीन्हेउ
बलि शो कहा बुझाई कि शब ही जनावहु
तुम्ह दल लेह पाछे शो कुदनपुर आवहु
चली शैन जदुनाथ विलब न लाऐउ
ऐहि विधि जगत क्रीपाल नगर निअरानेउ
इहा रुक्मिनी कलपे नाथ न आऐउ
की प्रभु कीन्ह विलब की दिज न सिधाएउ
बाईं आख शो फरकित सगुन जनाएउ
प्रभु के शग दिज होत शो तेहि आएउ
चीते रही दिज को मुख पुछन न पारही
कहाँ रहे जदुनाथ शो ह्रदै विचारही ॥

छन्द

हिय विचारे मुख निहारे शकुचि मन ही मे रहै
दुख शुख जो मिलन विओग अब दहु विप्र मोशो का कहै
दिज कहा शैन बुझाथ सुन्दर पाइ पति शुख पाइआ
जनु रग पाऐउ रतन रुकुमनि प्रगट जदुपति आइआ ॥

सुनि रुकमिनि कै विपती क्रीपानिधि आइआ
पाइ लागि जनु रक परम निधि पाइआ
नगर लोग नर नारि सोहे खन आइआ
देखि रूप बलि जाहि परम शुख पाइआ
हरि रुकुमिनी के व्याह सो विधिहि मनाइआ
नृप भीखम तब शुनैउ की जदुपति आइआ

आऐउ भीष्षम निकट शो माथ नवाइआ
रहेउ दोउ कर जोरि चरन चित दीन्हेउ
मोर जन्म हरि आहू कीतारथ कीन्हेउ
रुकुमहि दुख न लाइ सो हरि परितोखउ
कहेउ मरम सब भेद गोविन्दहि तोखेउ
हरि पुनि कीन्ह शतोख बहुत शुख मानेउ
जराशिंधु शिशुपाल काल बश जानेउ ॥

छन्द

जानेउ कि दानव दलन आऐउ तत मत न शुझाई
ऐहि श्याम को छल छन्द चेटक रुकुम मुढन बुझाई
जानि है तब मुड परि है जराशीधु जनाइआ
ग्रीह भेद काहु कीन्ह नरहरि प्रगट जदुपति आइआ ॥

नींद न परेउ अशुर दल थरहर डोलेउ
भोर होत शिशुपाल रुकुम शो बोलेउ
मिलि बैठे भूपति लगे विचारना
बिनु नेवते इह स्याम आऐ केहि कारना
जरासीधु अश कहेउ रुकुम दुख पाइहै
अश जानित है जदुपति तुम्हहि शताइहै
घर तेहि आवा होत तो पकरि मगावता

....

तब अस उतर रुकुम दै तुम्हहि देखाइहौ
जुझि जीत जादव कह बाँधि लै आइहौ
जराशींधु अश कहेउ रुकुम हठ छाडहु
शब राजन घर आनि शो कहि माडहु
शावधान पै होहु बहुत जनि माखहु
जनु तुम रुकुमिनि जीतेहु रुकुमिनि राखहु
बाह उठाइ कहत हौं जनि अनुरागहु
रुकुमिनि हरन होत है जागहु जागहु

रेरा राचि कहत हौ हरि ले जाइहै
तब जानब बेवशार स्याम मुख लाइहै ॥

छन्द

लाइहै जब स्याम मात वहि आपुहि राखिहौ
करि कोपत की उतारि दीन्हे भलेहि बहु विधि भाखिहौ
रुकुम जौ तुम्ह बाधि ल्यावहु मतो निशि दिन हर्खही
जो आजु ब्रत शिशइ नरहरि कालि कइ कित राखही ॥

मगल

उठे रुकुम बल बोलि शो मन्दिर आऐउ
लाग कुटुम्ब दल परिजन निकट बोलाऐउ
कान लागि मन्त्री शा अशमत कीन्हेउ
दल चतुरग शवारहु आऐसु दीन्हेउ
बाहर नगर गौरि को मडप घेरहु
हाट बाट चहु बोर दोहाइ फेरहु
होइ न पवन शचार शो जुगुति बनानहु
रुकुमिनि गौरि पुजाइ वेगि ले आनहु
शुनि आऐशु दल जोरि जा ग्रनान भातिन
नरहरि आइ ठाठ भऐ पातिन पातिन
हाट बाट मगुपथ घेरि दल शाजेउ
चली रुकुमिनी पूजन बाज न बाजेउ ॥

छन्द

बाजेउ जो बाजन शर्व विधि शग रग बहुत विशेखई
तइ प्रगट शुर मुनि शिर नरहरि पुष्प ब्रीष्टि जो लेखई
केसर कपुर मिलाइ कुमकुम अगर परमल लाइआ
हरि हेतु राजकुमारि नरहरि गौरि पूजन आइआ ॥

लै शिशुपाल को नाम शखी ऐक गाऐउ
मोह चढ़ाइ रिशाइ शा धरि बहराऐउ
शखिन के बीच रुकुमिनी त्रिभुवन मोहइ
छीर शींधु ते निशरि लछिमी शोहइ

आइ गौरि के मडप जुगुति बनाऐउ
करि पूजा शोडश बिधि वचन सुनाऐउ
मै तुम शेवा कीन्ह रात दिन जागेउ
अर्थ धर्म अरु मोक्ष कर नहि मागेउ
जीअ भीतर जदुनाथ आजु लगि राखेउ
अब शो सकट परेउ प्रगट करि भाखेउ
करहु शुफल मम काज शो गौरि मनाऐउ
वर मागौ जदुनाथ कीपा करि पावउ ॥

छन्द

पावा कीपा करि श्याम सुदर जेहि पर न चित दे रही
हठ परेउ पापी रुकुम मोशो शवै शकट मे शही
जेहि लागि जप तप नेम कीन्हो दरश बिनु तन छीजही
वर वेगि मै जदुनाथ पावौ गौरि गहर न कीजही

मगल

गौरि विहशि कै कहेउ की तै वर पाऐउ
आऐउ व्याह शोहाग तिहु पुर गाऐउ
वैडो भाग सोहाग इहा प्रभु आइहै
शहित अशुर शिशुपाल रोइ घर जाइहै
ऐह शुनि पाऐन परी बहुत शुख पाऐउ
जै जै करहि शखी शब मगल गाऐउ
देहि अशीश नारि नर शब शमानिआ
वेगि गौरि वर मिले शो राजकुमारिआ
लै कै वारि शखी शब बाहेर आऐउ
त्रिभुवन नाथ रुकुमिनी देख न पाऐउ
चढी शो मदिर धार इनहि छन निरखइ
निथुरी जुथ म्रगी जनु चहु दिशि चितवइ ॥

छन्द

चितवै शो जह तह म्रीगी जनु तनु काम छवि बहु शोहई
मजीर नुपुर कलित ककन देखि मुनि मन मोहई

शब शखी लीहैं शो कनक थार विलोकि अति शुख पाइआ
वर बेख नरहरि रुकुमिना के मनहि मन अति भाइआ ।।

मगल

शोहै अलक वदन पर नह शुति ठारइ
नरहरि प्रान नाग को पथ निहारइ
लोग कहै चलु वेगि विलम्ब न लाइआ
इह गति देखि धुजा तव पट तर पाइआ
धुजहि के शाथ गयो मन तुरित शिधाऐउ
इत डाडी उत अबर फरकि जनाऐउ
रहै न पावै रुकमिनी चलै न पारही
कहा रहे करतार सो हीदे विचारही
तेहि छन शारगपानि सो आइ तुलानेउ
हरि पुनि देखी रुकिमिनी अति हरखानेउ
देखेउ तन की हैतु एक करि मानेउ
गहि रुकिमिनी की बाह शो रथहि बैठाऐउ
जनु त्रिभुवन की शोभा जदुपति पाऐउ ।।

छद

पायो जो शोभ शतोख मन माह अतिहि शब देखहि खरी
जनु जुथ जबुक मध्य नरहरि शिघ आपन बलि हरी
शशि दूरि तजै शे तिमिर पशरै अधु धुधन सुभई
लै चलै रथहि चढाइ रुकमिनी एक ऐकहि बुभई ।।

मगल

ठाढे असुर वीर शब कोउ न डोलइ
देहि गारिहि अहारि शो बान चलावइ
हरि शन्मुख कोउ वीर निकट नहि आवइ
तब हरि हाथ धनुक ले ये लिपटानेउ
हरि लै चलेउ रुकमिनिहि करुन शभारेउ
रुकुमिनि हरन होत है लोग पुकारेउ

पहिरि शजोए रूकुम तब पाछे धाएेउ
जराशींधु तब बांह धरी शमझाएेउ
मै जो कहा रह कुटिल लाज पति धोइहै
हमहि तुम्हहि शिशुपालहि सबहि विगोइहै
इह जादव तिहु लोक शोक वन विगोइहै
मानि ताशु शिशुपाल धाह दै रोइहै
लाखन मह अश कहि कै रुकुम नेबारउ
ग्रैशे शत्रह वैर जुझ मै हानेउ
रुकुम महा हठ परे न कहा नहि मानइ
ग्रैशे शुमति गोविदहि लघु करि जानइ ॥

छंद

जानै गोविदहि तुछ करि कै शाजि रथ तब धाएेऊ
देखेउ रूकमिनी रथहि बैठी पग हिय गति अरानेऊ
दुहु मोध जादव वोर ठाढे अनी बहु विधि देखई
करि कोप धावा तबहि शनमुख शकल बल तिन्ह लेखई ॥

मंगल

दीहिशि निग्रर होइ हाक कहा अब जाइशी
अरे आदि के चोर कि हेत छपाइशी
क्रोध भए तुमद अध आपुन शभारइ
रुकुम लाज पति लागि हरिहि परचारइ
अश कहि बान पवारेशि हरि रथ झापेउ
प्रगट जुध तब देखि रूकुमिनी कापेउ
शकुचि दइव शे जीय आपु कह मागइ
स्याम मनोहर गात बान जनि लागइ
हरि रुकुमिनि मुख देखि धीरज तब दीन्हेउ
नाग फाश शर शधि शो शन्मुख कीन्हेउ
नाग फाश शन लैके पाछे धाएेउ
रथ के खभ लगाइ रूकुम वो रमाएउ ॥

छन्द

बांधा जो रथहि लगाइ दाना ठाठ दोउ दल देखई
तह प्रगट शुर नर शिभ मुनिवर पुष्प बीरठो विशेखई
बल बोलि शामुख रुकुम भान आगे आइ बधाइआ
वर बेख नरहरि रुकुम के मन शवहि चेटक लाइआ

मंगल

गहि कर वर तब बेश जो लगे नेवारइ
हरि शनमुख तब रुकुमिनि पगु शिर धारइ
भाइ भाइ के रुकुमिनि प्रभु पद लागेउ
देखि भीमासु भगतु वश आगि अनुरागेउ
हरि रुकुमिनी मुख देखि छाडि तब दीन्हेउ
मोछ गोछ शिर मुडि विरूपी कीन्हेउ
जादव के शग चले प्रभु चेटक लाएउ
हरि रुकमिनि लै शग दवारिका आएउ
कीन्हो गभप व्याह शुजश जग छाएउ
महापातु कवि नरहरि मङ्गल गाएउ
जो यह मगल गावै गाइ सुनावइ
व्याह काज कल्यान परम पद पावइ
रुकुमिनि हरन शुने जो ह्रदे बिचारइ
आप तरै भव शागर कुल निस्तारइ ॥

छन्द

तारै जो कुल शब भांति अपने कहै सुनै जो गावई
कल्यान काज विवाह मगल शर्वदा सुख पावई
इह कथा परम पुनीत समुझ तरत नर करि चित लाइआ
नरहरि महा जो पात शब विधि परम पद शो पाइआ ॥

शुभमस्तु

इति श्री रुकुमीनी-मङ्गल नरहरि भाट विरचित शमाप्त शुभमस्तु इति ।

ब्रह्म की रचनाएँ

भक्ति

जो तुम छत्र की छाह चलावत तो न कहूँ कछु मे शिव पाई
जो नृ धरावर भीख मगावत तो न कहूँ कछु आप दयाई
ब्रह्म भनै विनती इतनी छोरू नहीं हरि तो, मरनाई
दीनदयाल दया करि माधव मोहि कहाँ सब तोहि बडाई ॥१॥

जो हरि न्यारो तो न्यारो नहीं जो हरि न्यारो तो बोलत को है
जो सपनान्तर मे वह सोवत सोवत मे वह डोलत को है
ब्रह्म भने जो पै दूर रहै या लगी अखियाँ पल खोलन को है
जो हरि नाहि दुरे घट मे तो दुरी बतिया कहो छोलत को है ॥२॥

तुम ही करता तुम ही भरता तुम ही नभ ऊपर तेज तपे हो
ब्रह्म भने जु जहान कि जीभ जहा सुत दास भलो गज पैहो
कौनउ भांति कनेउ न काज के मोसों कहा ऐंत काहि चपै हो
ऐसो कहा कीनो है नाथ जु ऐसे बडे तुम ऐसे छिपे हो ॥३॥

प्राण चढाय के भोग कर्यो कहा काहे करो व्रत पूज विसाला
देह तपाय तपाय पचागिन काहे सहो वन बैठि कसाला
ब्रह्म विचारत जो हिय में सोइ रूप धरे नर को इहि काला
जाय लखो किन वा नन्दराय के आगने खेलत नन्द को लाला ॥४॥

ए तो बडो प्रभु आगे ही आवतु काहे रे तू उर आनतु नाहिन
ब्रह्म भने पहिचाने महासुखु काहे रे तू पहिचानतु नाहिन
केतिक बेर कह्यो तो कहा भयो जो पै कहे कह्यो मानतु नाहिन
बारहि बार बलाइ सिखावत जानहि गो जो पै जानत नाहिन ॥५॥

कोने गहे हो हुतो कहि कोन को माधो कहाँ पर पीरक प्यारे
को समरत्थ अनाथ के नाथ अनाथ को किहि पास पुकारे
ब्रह्म को नाऊ धर्यो सोइ लै उभरो जेमे है तुम और उधारे
बिदु त एतो बडोट कियो अब बोलत क्यो नहीं बोलन हारे ॥६॥

---

१ याज्ञिक-सग्रहालय तथा काकरोली के हस्तलिखित सग्रह-ग्रथो से प्राप्त। इनमें छदाभग दूर करने के लिये वर्णा मे कहीं-कहीं पर परिवर्तन कर दिया गया है।

गेह सो भागे बने भनि ब्रह्म सु क्यो निबहै मन सों तनु भागत
गाठी के गांठ दई सब अगनि नीद परै न महादुख जागत
जिती रिस ही होइ ती अब नाहि दयानिधि देखत हौं अनुरागत
जानत हों अब छोरहुगे हरि बधन मोकहु ढीले हैं लागत ॥७॥

चतुरानन हू चतुरानन है परि पायो न भेदु न वेदन गायो
हारि हिए हरु तो पटके करु हारि रहै हरि हीऐ न आयो
ब्रह्म भनै मुनि मौन के मन मारत नेक मनो न मनायो
कितो बड़ो भाग जसोमति को करतारु दे दे करतारु नचायो ॥८॥

जबते जनम्यो खनीहि रम्यो तु रह्यो रति से हरि सो नहि चीन्हो
लोभहि लोभ दियो मन दाम सो दामहु को दुखु देह को दीन्हो
ब्रह्म भनै बितए दिन पाछै के नाथ को नाउ न लीन्हो
रोवैई को भयो खालहि गात कितोइ गा अन्नु अपावन कीन्हो ॥९॥

जो जपु के तपु के बपु खोयो पै तो तनु एठि के पैठि मढी मों
दानु दियो अभिमानु कियो जहु लीन भयो मन मध्य इठी मों
ब्रह्म भने बिनु नारिक राह वई हठु के सठ पाउ कढ़ी मों
काम सुधासु सुवायु सुपूत सों रामु न जान्यो तो छार छठी मों ॥१०॥

दूरि रहै सब ही सब कोऊ नही परसे एसो भेखु बनायो
जलहूँ थलहूँ तलहूँ नभहूँ तुम एक हो एक भलो घर छायो
एतो बडो सु कहाइ के नाथ शु है सु कहां जहां आपु छपायो
देख्यो सबै सब देखे तुम्हे नहि ब्रह्म लुके जनु है कित पायो ॥११॥

दूसरो आहि न दूसरो देखिए दूसरो मानिए एक बिसारे
गहै अवलोकै सोई पर काम ये ब्रह्म विवेक विचारे विचारे
ऐसे ही नाथ निरंतर साथ रहे तन मे मन मे गनु मारे
ज्यों पानी में पावक को प्रतिबिंबु न आगि जरे न बुझे जलु जारे ॥१२॥

निगम कहत नाथ निपट निकट आहि खोजै खोजे पाइए न कालो भागे जाहुगे
ब्रह्म भने जठर रहट घट घट फिरे फेर फार कौन कैसो को लोयो अघाहुगे

जो पै जन जान्यै हाद तुम न जनैवे जोग मोसो क्या कहत नाथ तुमही जनाहुगे
म न जाने जगदीस तुम न जनायो मोहि होहूँ पछितानो जान तुम पछताहुगे ॥१३॥

पुत्र कलत्र की फाँसि गरें पुनि पाइन मोह जंजीर जर्‌यो हौं
लोभ के हाथ हथेरि रची जुग जोरि वहीं तहीं जाइ अर्‌यो हौं
ब्रह्म भने रखवारे दुखौ सुख दे ग्रिह कूपनि रुद्ध कर्‌यो हौं
क्रिपा करि मोहि छुटाइये नाथ जी कर्म नरिंद की फंद पर्‌यो हौं ॥१४॥

जुवती मुख जोइबो सोइबो साभु ही खाइ पर्‌यो अरु भोग ही खेहै
ब्रह्म भनै अति बागो बनाइ बनै तन त्यों तरुनीहू बनैहै
योहीं घरी घर ही बितई घर गाया त नेकु गोविन्द न गेहै
कालि को द्योस गो राति गई अरु आजु को द्योस गो रातिउ जेहै ॥१५॥

जो जग को करता हरिता गिरि सागर ताहि करै अनतोषे
आपु रहै रहिहैं पुनि आप भरे सुतो सागर मातक सोखे
ब्रह्म कहाँ है सु कोधों है कैसो है काहूँ न जान्यो न काहू कै धोपै
तुचा पट झीने की ओट दए पै सोइ दरसावतु नैन झरोपै ॥१६॥

निधि दीनी सुनी सो तुम स्रीस सुदामह को समुझी सोउ साँची
पोथिनु के लिखि देखे बिना जड जाने न कीरति ज्यों जग मांची
ब्रह्म वहै प्रति द्वार नच्यो तिह के दर क्यों कमला अब नाची
दीन के नाथ दयाल भली करि रेख में लोगनि मे हुती खाची ॥१७॥

बालपन बेरी जिह ख्याल ही खिलाए खेल इह ब्रह्म भूल रहे तीनो तात मात हो
जोवन के आए जुअतीनि सगु जुट्‌यो देख्यो मन मे कहतु दिन एइ हो बहात हो
ब्रह्म भनै कच तुच पलित गलित अति अब पछितानै कहा हेत पछतात हो
बहुत बुरी है होति सुनि सब ही के नाथ यहै दुख मोहि तोहि अनजानै जात हो ॥१८॥

बिभीषन भाई तें मीत भयो बनु भाजि सरन गही रनधीर की
लंका के अंक लगाय निसंक तोहै मनों मीन गही ढिग नीर की
ब्रह्म भनै एसो होहूँ हन्यो पग रावन रोर कहाँ कहु पीर की
मोहू कहा गहु दीनो न जा गढ दावै की टेव अजों रघुवीर की ॥१९॥

मागे ते मांगन मास कहूँ को न जाइ गही फिरि कै अनपाए
मागत मांगत मागनई रह्यो पायो कहा हरि गोहि गगाए
दाम नचीहा हौं रामतिहारी सा चाहौं घेराई गली मेरे भाए
ब्रह्म भनै अब दीजै दयाल कहा गुन है कबु सतु गताए ।।२०।।

मैं तो सुन्यो है तु मांगे ते देतु है देहि कहा अब भाप
अबहू ते कह्यो सुलह्यो निबह्यो पुर एपनि लागन ही अभिलापे,
ब्रह्म सने रस चाखे है नेकु जा ते पद पकज को रसु चापे
सोइ है आपुनि ऐ परमेसुर जो अपनो करिके नहि रापे ।।२१।।

है गय हरि हिरन्य हितू नन कौ जननी जन जातक जाया
केसी निकदन कसो न जान्यो तो कीनी कलेसमई सब काया
ब्रह्म भने घनस्याम बिना तऊ धामु है जो र धनी घरु छाया
साची है सांचो है साची कहीं गह झूठी है झूठी है झूठी है माया ।।२२।।

गंगा-स्तुति

ए मेरे तीरथ ए मेरे देव सु ए मेरे मात पिता मेरे एई
श्रुति है सुख के मुप जाने नही तपु जानु पनों नहि जानन देई
बावन के पद पावन धाते हैं ताते मे दिव्य तरग निसेई
ब्रह्म भने अपनो अपुनावत 'आपहि पार लगाइ हो देई ।।२४।।

जानी मुकुद महा महिमा उपमा कह आपु समान करी है
पारहु लौं दसहूँ दिसहूँ जराहूँ रसहुँ तिहुँ लोक भरी है
ब्रह्म भनै हो बडाई कहा करू भग वेऊ ते बची ए धरी है
और को जानिबे जोगु तुमे हरु जानतु है जिहिं सीस धरी है ।।२५।।

रूप-सौंदर्य

आजि एक ऐसो अचरज को तमासो देख्यौ पन्नग के माथे उयो पूरन पून्यो की ससि
सारग है मीन कीर कोकिला के कलरव सुपक सुग्ग बिब सुन्दर सरस असि
तिन पर बिंब सभु कनक की आभा धरे तिन पर बिन्दला बने हैं यों भने हैं मसि
गिरजा को वाहन सो कदली बिरख पर कदली कमल पर ब्रह्म कवि यह कसि ।।२६।।

एक समै हरि सो रति मानि के प्रात गई सरिता मधि खोरनि
मजन लाइ अन्हाइ फुलैल सो तीर खरी कच लागि निचोरनि

यों कवि ब्रह्म बनी उपमा जल के कनुका चुवें बार के छोरनि
मानहु चन्दहि चूसत नाग अमी निकस्यो नहि पूछ की ओरनि ॥२७॥

काहू के आऊ न जाऊ सखी अपने घर बैठिये लाख लहां री
मो पति मोहन न कछु नाहि है काहे को यह उपहास सहां री
ब्रह्म भने कोऊ केतो कही कहते को कहा कछु जीभ गहों री
जो चितए चित आइ परे तो कहा इन नैननि मूंदि रहां री ॥२८॥

सेज ते ठाढी भई उठि बाल लई उलटी अगराय जम्हाई
रोम की राजी विराजी विसाल मिटी त्रिबली अरु पीठ दिखाई
तनी परी पग ऊपर पाछे ते ब्रह्म यहै उपमा उर आई
लोक त्रिलोक के जीतिवे कारन सोने की काम कमान चढाई ॥२६॥

रूप की रासि विलासिनि स्याम की सागर ते गुन की गहिरी है
काम की कामनी काहै जु कामिनी कामहूं ते छवि वाम हरी है
ब्रह्म भने कहिबे को भली सुनिबे कहु सारदहू बहिरी है
लोग कहैं गहनो पहिरे अलि हो कहू तू कहने पहरी है ॥३०॥

आई अन्हैव को आगन मध्य लसी मिलि छोरनि बैनी कछोरनि
ब्रह्म भने चिकनी अलकै उपमान बने तिनु एक सपोरनि
बूंद परे जु ढरे मुख ते छवि को वरने कवि वारि निचोरनि
भोगी के नद ज्यों चूसत इन्दु अमी निकस्यो वहि पूछ की ओरनि ॥३१॥

एक समय बृषभान सुता परभात हो काम की केलि बनाई
नैनन की लखि आरति कीरति कीरति मोतिन माल सुहाई
बेंदी जराव लिलाट दिये गहि डोरी दोऊ पटिया पहिराई
ब्रह्म भनै रिपु जानि गह्यो रवि कों मुसकै जनु राहु चढाई ॥३२॥

एक समय वृषभान सुता सुख सेजहुं ते उठि बाहर आई
कचुकी हारु उतारि धर्यो निरखे हिय मध्य की कोमलताई
तिहिं औसर लालन आइ गए उपमा कवि ब्रह्म कही नहि जाई
कञ्चन कुंभ के झपन को झुकि झपत चद झलक्कत झाई ॥३३॥

कनएन सुरा बितुली दिये भाल सो नेक न मो मन ते टहलै
मनु इदु के बीच रो कीच ग्रमी ग्रलि बालक ग्राय परयो बहलै
कवि ब्रह्म भनै घुघरी ग्रलकै ग्रपने बल काढन को कहलै
जुरि बेठे मयक के कूल दुहूँ दिसि कोऊ न पेटि सकै पहलै ॥३४॥

गोरे से गात फुलेल चुचात भरी गगिया रग केसरि बोरे
बेनी बडी ग्ररु छोटी री गापु छई छवि सो गुदना मुख गोरे
नैननि की ग्ररुनाई ।कहा कहा ग्रजन दे द्रिग खजन जोरे
ब्रह्म भनै यह को ही तिया जु चली गई 'ग्रागन ग्राग मरोरे ॥३५॥

बेनी फुलेल चुचात खरी पट भीजत सीस ते रूप ग्रन्हैयत
ग्रानन बीरि गरे लरवौत सो या छवि की ललसो ललन्हैयत
ब्रह्म कहै सब छोडि के काहे न प्यारी के रूप को देखन जैयत
कानन से तो कटाच्छ लगे कलधौत कटोरन दूध ग्रचैयत ॥३६॥

मेरी सि ग्राखिन मेरौ सो ज्यो करि जो तु विलोके हियो गहि गाढौ
ग्रायौ री ग्रायो चिते किन देखे वहै नित न्वार चितौत है ठाढौ
ब्रह्म भनै मन लाल को भो घर बाहिर बेरि को वारिध बाढौ
यहो सुख देखि कहै घरिहाई री लाज करी ग्ररु घू घट काढौ ॥३७॥

वै चलिगे न चलो री ग्रली ग्रो डगे पे डगी चितु तौ न डग्यो री
हौ परि पीय के प्रेम पगी सु कहा पल ब्रह्म मो प्रेम पग्यौ री
कित गौ कित जाऊ रहौ कित री तित ही गेरे लोचन लाल लग्यौ री
गो ठगु पे न ठगोरी गई ठगु हौही ठगी ठगु मैं न ठग्यौ री ॥३८॥

ग्राजु मदन नदन विराजत जोन्ह कला सरद रासी
निज ग्रग निरखिज निरबिनि नैन सुन्याइ ।किए नद लाल बसी
मोती को माल हिए भनि ब्रह्म रोमावलि सगभ सोभा ग्रसी
सुह मानों मयक मयूख के म ग्रध को ग्रधियारे की धार धसी ॥३९॥

जहाँ सुनै कान्हहि धावै तहाँ ग्रनुराग रहे नहि रोकत ही
उड़ि जाहि जिते तित माय रहै सखि हाथ न ग्रावत मो कत ही
क्यों रहै धीरजु ब्रह्म भनै हरि लोचन बान बिलोकत ही
ग्ररी मार की मूरति नदकुमार सुमार करी ग्रवलोकत ही ॥४०॥

मात पिता पति पेखत हैं, अहो को प्रति लोम नहो पुलका
नदलला यहि मेन मलाकनि कोने वो काम कला तुलक।
ब्रह्म भने कहि काही न लागी ठगोरी हो मूरति मजुल की
सखी मोही न मोहन क मुख देखि सु ऐसी वो गोकुल को कुल की ॥४१॥

जैसे न सीस चले न पलौ सुलै त्यों रुचि रूप सुधा रसु पीजे
ब्रह्म कहै सुख सो मुख को रुख ले सुख ही दुख ही दुख दीजे
अरी डर डारि ये लाज विडारि ये आपु ही टारिये लालन लीजे
यह जिय आवत मोहन आगेहि बैठयो रहै अरु देखिबा कीजे ॥४२॥

बेठी अन्हाय बनाइ विरचि गु सुदरता वरषै वरषा सी
कज से आनन खजन लाचन कोऊ कहै कटि आहि मृषा सी
ब्रह्म भनै नदलाल विलोकति लागि रही लट लागि त्रिषा सी
झीनै दुकूल में झाई झलामलै देह दिपे दुति दीपसिषा सी ॥४३॥

एक समे मन मोहन जू सजि बीन बजावत बैन रसालहि
चित्त गयो चलि मोहन को ब्रिषभानसुता उर मोतिन मालहि
सो छवि ब्रह्म लपेटत यो कर ले कर सो कर कंजसिनालहि
ईस के सीस कुसुम के पुज मनो पहिरावत व्यालनी व्यालहि ॥४४॥

चदन सी चद सी ही सीरी घनसार सी ही सुमन सी भई मौन भान सी
ब्रह्म भने पेषत पियूष सी ही सारी परसत प्रानन सो पावत सब सुख को निधान सी
कहा लगि कहो हुती आप ही जु आपु ही सी विछुरे ते भई विपरीति आहि आनु सी
हौं तो जान्यो बनि के मदन बान वारि है मै याही को बनाई हिये लगी बनि बान सी ॥४५॥

नन्द के लालन सो विपरीति करै ललना पिय रग रिझावै
काम कलोल त लोल कपोलनि चूमत स्याम महा सचु पावै
ब्रह्म सुवेसरि को मुक्ता पिय लोचन के ढिग यों छवि पावै
मनो सरदिदु अमी लिये बिंदु चकोर की चोंच में चारो चुगावै ॥४६॥

लखि भूलत ना वह भाति अजो कर लागि गयौ उर हरन को
मुकता फल टूट परै भुव में तिय नैन नये जु निहारन को
कर के विनती कटि सी निहुरी उपमा कवि ब्रह्म विचारन को
सुर पेजु सुमेरु के अग धरयो निहुरयो सभि लेत है तारन को ॥४७॥

नैनु अन्हाय कै चौकी लसै पे सो मनके मन मोहन चितु चलाए
ब्रह्म भने बिनु भूसन अजन आनन छाजति छाह बिछाए
मानौ सरोज सिवार सवारत राखे है लालन जु मन भाए
वारिद से वर वारिज बेरी जबे पट बार जब सिवार बराए ।।४८।।

पठइ सब सखि सिखाइ सखी खिझई रति राधिके नन्द लला
ब्रह्म भने बदने दुति यों मिटि अजनु गोजनु नेन पला
कर की करकी नलया नल से सित सेज परी परिके अचला
सु गिरी मानौं अग ते गग के सगम सकि सराकि कलक कला ।।४९।।

विप्रलभ-शृङ्गार

ज्यों नदलालु चिते चलिगे सगही चलि चेटकु सा कछु कीनो
नेकु जो देखौं दिखाई जु मोहि सुदेखे हियो हरि जु हरि लीनो
ब्रह्म भने तलफे दोउ नन विसेखहि नीर ते न्यारे के मीनो
गइ गडि आखिनि मे राजनी बडडी अखियान नटो दुख दीनो ।।५०।।

काल्हि के कान्ह गये मथुरा मनो बीत गये जुग वासर रो
विरहागिन काम लगाइ दई है दसो दिस देखि वही दरस
कवि ब्रह्म भने मोहि जानि पडे सखि स्याम घटानल सा परसे
विरही वर नार ही बार उठे दृग नीर किधौ घन धा बरसे ।।५१।।

अरी ए छतिया तोहि पूछौ मतो पिय के बिछुरे बिछुर्यो रहिहै
घटिहै तो नही फटिहै तो नही लटिहै तो नही तन ही दहिहै
परिचाह करैगी तो चाह न पावैगी चाहैगी तू कि नही चहिहै
कवि ब्रह्म कहै कवि ये जु सिधारत हौ न कहौ तोहि को कहिहै ।।५२।।

मोहन नद कुमार वियोग ते ऐसे उपाइ करै ते भली भन
ब्रह्म भनें ते सियानी सखी जे कहावती ही है हिय हम जीधन
कर मोर पजौवन के निजना बरजे का लगै ते सब पर नाभन
चदन चद सरोज समीर अही इहि आगि के एई हैं ईंधन ।।५३।।

सब ही कहिये सब ही सुनिये सब देखि सबै कछु कीजतु है
कवि ब्रह्म भने रहै प्रान पिया बिनु प्रानन कौनु पतीजतु है

इतने दुखते न फटी छतियाँ अलि पाहनहू तो जु पसीजतु है
जिन रूसत रूसत ही जिय सो तिन के बिछुरे अब जीजतु है ।।५४।।

सीतलता सुत अग पियूष पियूष में अग समुज्जल कातो
राधिका कान्ह वियोग अगिन्न गगन्न बर्यो सुभयो रग रातो
ब्रह्म भने यों जलनिधि जात जु पै नहिं होतो ततो बरि जातो
तो तनु तेज तप्यो तरुनी तातै लागतु तोहि तमीपति तातो ।।५५।।

कामहू कुमुद बद कल हस कोकिला कुलाहल करत कोक केकी छेकि लयो हों
ब्रह्म भनै सीतल समीर धीर तीर वार धीरो न धरत देत छाती ही में छयो हों
एते सब चेरे मेरे तबहूँ ते तेरे साथ तिनहि बिछुरि अब चेरो करि दयो हों
कैसे नीके रहो नीके रहै नीके लागतु हो जा पे एसे रूप को वियोग विधि ठयो हों ।।५६।।

तन मे न सुधि विधु बदनी विरहमई मानों मन भावन बिछुरि दिन ह्वै गयो
अगन की आगि ते अगीठी डीठी मीठी भई मानों रवि किरनि करेननि ते छ्वै गयो
ननद के डर गई गोरस चढाइबे को बिनु बारै चूल्हे बारि इधनु सबै गयो
जो लों दूध करते कराही मे करन लागी तो लों सब दोहनी में ओठि खोवा ह्वै गयो ।।५७।।

मानवती व्रिषभानसुता मुख मोन न मानै मनावै हरी
ब्रह्म भनै मनमोहन को मनु मोहति यों मनो चित्त धरी
गल हाथ दए सिर नाइ निरखति द्रिष्ट चकोर ज्यों कान्ह करी
अरविंद बिछाय विरुध्धहि निंदत मानहु इदुहि निंद परी ।।५८।।

उपदेश और शिक्षा

पेट ते आयो तु पेट को धावत हार्यो न हेरत घामरु छाहीं
पेट दियो जिहि पेट भरै सोइ ब्रह्म भनै तिहिं ओरु न जाहीं
पेट पर्यो सिख देतहि देत रे पापिउ पेटहि पेट समाहीं
पेट के काज फिरै दिन राति सु पेटहु से परमेसुर नाहीं ।।५९।।

हे गय जीरनहूँ गए हेरे ते हारि न मानी बहारि पराहीं
बनिता बनिता रसु जीरनु में तू तऊ बनि के निरखे परछाहीं
पायो सो जीरन ब्रह्म भयो पहिरे पट जीरन ह्वै फट जाहीं
जीरनु के तनु जीरनु तू है अजों मन तोहि अजीरन नाहीं ।।६०।।

या घर में हरि सो बिसरे सु तू बारि दे बाघरु बार ते बोरे
छानि बरेडि औ पाट पछीति मयारि कहा किहि काम के कोरे
दाम के काम फिरै दिन राति न सूझे कही सब स्वारथु दोरे
ब्रह्म भनै सग ही रहै मीत सुमीत न जान्यो कहा तोहि भोरे ॥६१॥

बीच ही मिल्यो है साथ हाथ ही भयो अराथ दारा सुत मीत बधु दीन भलो भाखिए
हाटकरु हाथी कौन के भए हैं साथी लाख बेर लाप पाए तऊ अभिलाखिए
ब्रह्म भनै नाथ ही को नीको नातो नीकी विधि विपया विरचि के पियूष रस चाखिए
साथ ही रहत साथ छाडे न छुटत साथ साथ आवै साथि जाइ सोइ साथ राखिए ॥६२॥

खायबो सोयबो बारहि बार चमार के चामहु ते जल पीबो
दाम के काम को लीबो दिवान सों काहु को लै करि काहू को दीबो
ब्रह्म भनै जगदीसु न जान्यो सु ऐसहिं भाति बिना सुख जीबो
भोर ते साझ लो साझ ते भोर लों काल्हि कियो सोई आजहुँ कीबो ॥६३॥

इक छत्र की छाह विनोद करै इक घान के काज फिरै सु दुखारी
एक त्रिया बहु पुत्र रमैं एक छोटी सों कत बझी बड़ो नारी
एक चचल तेज तुरग चढ़ैं इक मागत भीख फिरै सु दुखारी
ब्रह्म भनै गिर मेरु टरै पर कर्म की रेख टरे नहिं टारी ॥६४॥

जब दात न थे तब दूध दियो अब दात भए कहा अन्न न देहै
जीव बसेहि जल में औ थल में तिनकी सुधि लेइ सो तेरिहु लैहै
जान को देत अजान को देत जहान को देत सो तोहूँ कूँ देहै
काहे को सोच करै मन मूरख सोच करै कछु हाथ न ऐहै ॥६५॥

नमै तुरी बहु तेज नमै दाता धन देतो
नमै अब बहु फरयौ नमै जलधर बरसेतो
नमै सुकवि जन सुद्ध नमै कुलवती नारी
नमै सिंह गज हनत नमै गज बैल सम्हारी
कुदन इमि कसियो नमै वचन ब्रह्म सच्चा भनै
पर सूखा काठ अजान नर टूट पडै पर नाहिं नमै ॥६६॥

गाढे के किवार देइ सूनो घरु भानि लेइ दीपक बुझाइ ओरु ठट्ठ ठानियतु है
पर दारा पर देखि पर द्रोह पर रुचि अपनो परायो नाहि पहिचानिअतु है

ब्रह्म भने जानि बूझि जानत है जाने नहीं जान तुहै जिह जाने जग जानिअतु है
देखे सब सुनै सब ताही सों दुरावे सबु एसे बावरे को नाथ बुरो मानियतु है ||६७||

छानि बरेडो रुपाछप छीत मयारि कहा कहि काज कि कोरे
जामहि साथी न सूझे पनो तरुनी सुख स्वारथ को दिन दोरे
ब्रह्म भने सग ही रहै मीति सुमीत न खाने कहा तोहि मोरे
जामे रहै हरितो विसरे ऐसे वारिद वा घर वारहि बोरे ||६८||

जो कहो जीवे के है दिन और तो काहू देयो लिखि कै लिखि देहै
जीओ तो साचो नही करिबो सच साची कहो यह यहै है
ब्रह्म भने मरिगो अरु जीबो जु मेटि है ताहि जमो पछितैहै
आजहू केसों न केसे रहूँ कहो काल सो कालि कलेवरु जैहै ||६९||

ग्यान सो डुलावै बाउ मुकति पलौटे पाउ यहै है सुभाउ आउ मेरे कहै लागिए
सुम्रिति सुपेती सेली गर सूनी गर लागि पलग पुराने पर पौढे अनुरागिए
ब्रह्म दास ब्रह्म माया सपनो सो देखत है बूझेहूँ समुझि देखि भ्रमहू सो भागिए
घरी इक सोई जागि जागे ते जग जजार सोई नींद सोइए न सोइए न जागिए ||७०||

पेट पर्‌यो परि सूप पर्‌यो पलना परिपाल कबहूँ परिहै
काम जर्‌यो अरु क्रोध जर्‌यो मद लोभ जर्‌यो तनहू जरिहै
मूओ हुतो मरिबे को ही आयो हैं ब्रह्म भनै बहुरो मरिहै
करुनामय सो कर जोरें नहीं ततो कीनी कहा ते कहा करिहै ||७१||

ग्रीष्म-ऋतु

उछरि उछरि भेकी छरटे उरग पर उरग पै केकिन के लपटे लहकि है
केकिन के सुरति हिये की न कछू है भये एकी करी केहरि न बोलत बहकि है
कहै कवि ब्रह्म बारि हेरत हरिन फिरै बेहर बहत बढे जोर सों जहकि है
तरनि के तावनि तवा सी भई भूमि रही दसहु दिसान में दवारि सी दहकि है।|७२||

खडिता-नायिका

भली भई भोरहूँ आए हो मेरे भलो हो जानी भली है भलाई
ब्रह्म भने चलि देखो धों चालिये है हरिजू उहि चालि चलाई
याही ते फूलत फूल गिरै सिर फूलिये डार हलाई
को ललना जिहि लाल किए द्रिग लाल कहाँ गई ओठ ललाई ||७३||

समस्या-पूर्ति

मूरति जासु बसी मन में सुकुमारी अहै जु सती शुचि नारी
जाकर सील बिगारन को हठ कैसे सहै विधि रूप तमारी
सीसि नवावत ही भये रुष्ट क्यों दुष्ट दियो नह पातक भारी
ब्रह्म भने जु उठाकर द्वै यहि कारन गात जरे चिनगारी ॥७४॥

सूर छिपे अदरी बदरी अरु चद छिपे है अमावस आये
पानी की बूद पतग छिपे अरु मीन छिपै इच्छा जल पाये
भोर भये पर चोर छिपे अरु मोर छिपै रितु फागुन आये
ओट करो सत घूघट की पर चचल नैन छिपे न छिपाये ॥७५॥

दूत दया मनो मूरख ब्राह्मन नारि निरकुश कायथ भोरो
स्वार कुसीर कुलच्छन पोहियो आकरो बानियों चाकर खोरो
वैद्य प्रसिद्ध अनाथ सभासद कुद कलावत काटनो घोरो
ब्रह्म भनै सुन शाह अकब्बर बारहौ बांधि समुद्र मे बोरो ॥७६॥

एक समै पति लक को रावन आनि हरी सिय राम की रानी
कोपि चढै दशरत्थ के नंदन अजनि पूत भयो अगवानी
बाधि लगोट कगूर चढयो अरु लक जरी धरती अकुलानी
जाय समुद्र मे पूछ बुझी इहि कारन प्रात भभात है पानी ॥७७॥

टूटे पर हँस ताकी मिस्री गुड़ कद करो ताको ले प्रभाव देव देविन चढाइये
फूटि के कपास पत राखत है आलम की ताके होत वस्त्र कहां ला गिनाइये
सडे जब सन ताके स्वेत वर्न कागज कै तापर कुरान औ पुरानहू लिखाइये
कहै कवि ब्रह्म सुनो अकबर बादसाह टूटे फूटे सडे ताको या विधि सराहिये ॥७८॥

विविध

देह तलप्पि रहौं लगि चित डरौं मकरध्वज रोगनि ते
ब्रह्म भनै एइ लाज जरौं जिह बीच परे हरि भोगनि तें
पल मापतु न्योसु घटे जुग सौं लख रैनि परे जु सजोगनि ते
कबहुँ यक चित न लाल रम्यो दुचिती न मिटे इन लोगनि तें ॥७९॥

जा मुख को सुरपत्ति फनप्पति स्वर्ग पताल रसातल झूमै
जा मुख कौ सिव साधि समाधि अराधि हुतासन धूम मे धूमै

जा मुख को चतुराननहू भजि ब्रह्म घटे घटहू घट घूमै
सो मुख नंद की नारि जसोमति चापि कपोल दुहूकर चूमै ॥८०॥

यह रसिय छतिय वत्ति रहति गई गति मत्ति सुरत्ति टरी
बिन सपत्ति पत्ति नहीं बिलपति सगप्पपत्ति गोपनि मति हरी
कवि ब्रह्म भढ़ति गिरत्ति परति जरति अगिन्न के पुंज परी
ब्रजपति बिना रति पत्ति रितू पति रत्ति कै पत्ति बिपत्ति करी ॥८१॥

या दिन मे कछु यादि न आवतु वा दिन को कछु खबर हेरे
तू अपनी गति नीकेहि जानतु है जग चीर अडबर हेरे
ब्रह्म भनै कहू तो तोहि पठावतु काधे धरे जर कबर हेरे
गात सुहात पटंबर अबर अंत की बेर दिगंबर हेरे ॥८२॥

रैनि दिना दम सो कामु है काहू सो लै करि काहू को दीबो
ब्रह्म भनै जगदीसु न जान्यो न जानियो जी करि जो लगि जीबो
भोर ते राति लों राति ते भोर लों कालि कियो सु तो आज ही कीबो
खाइबो सोइबो बारही बार चमार के चामहि ज्यों जल पीबो ॥८३॥

पति कोऊ कहै पित कोऊ कहै सुत कोऊ कहै तिहूँ ताप तयो हौं
प्रभु कोऊ कहै जन कोऊ कहै सु कहो तुम ही तुम काहि दयो हौं
ब्रह्म भनै जित ही कित ही तित ही तित हाथ की गेंद भयो हौं
पालौ तिहारो कियो तुम ही इन बीच के लोगनि बाटि लयो हौं ॥८४॥

कर बोले करही सुने स्रवन सुने नहिं ताहि
कही पहेली बीरबल सुनिये अकबर साहि ॥८५॥

राधी तो गलती नहीं बिन राधी गल जाहि
कही पहेली ,बीरबल सुनिये अकबर साहि ।॥८६॥

सीय स्वयबर स्री रघुनाथजू चाप चढावन को पगु धारे
ताहि बिलोकन को बनिता कवि ब्रह्म भने सब रूप उज्यारे
यो उझके झुकि झाकि झरोखन बाढी तहा मुख जोति अपारे
सोहत मानौ जराय के मन्दिर सों बधी चद की बदन वारे ॥८७॥

पेट में पोढि के पोढे मही पर पालन पोढि के बाल कहाए
आई जबै तरुनाई तिया सग सेज पे पौढ़ के रग मचाए
छीर समुद्र के पौढनहार को ब्रह्म कबो चित ते नहिं ध्याए
पौढत पौढत पोढत ही सो चिता पर पौढन के दिन आए ॥८८॥

गर्भ चढे पुनि सूप चढे पलना पै चढे चढे गोद धना के
हाथी चढे फिर अस्व चढे चढे जोग धना के
बैरी औ मित्र के चित चढे कवि ब्रह्म भनै दिन बीते पना के
ईस क्रिपालु को जान्यो नही अब कावे चले चढि जना के ॥८९॥

ऐ लागे सबै हों न लागतु काहू को लोगनि आनि लगाइ लयो हों
ब्रह्म भनै सुत दारा विषै मोहिं दीन कियो इन ही को दयो हों
जैसे ही तैसे न जानत हों जुग केके कै खोजि निहारि लयो हों
जात चल्यो टहरात न नेकु घूर बघूरे को पातु भयो हों ॥९०॥

पांय पनहिंनि बांधि गोडनि इजार बांधि कटि पटुका ले बाध्यों हरष हठ्यो हिया
बारनि यों बार बाधि सीस ही सो पागि बांधि पेट पीठ कसि बाधो गाढो कैर के बिया
कानन को मुद्रा गठि मुद्रिका अगूरी बांधि ब्रह्म भनै मन बाध्यो कन कन सौं तिया
एते पर मनु मान्यो जान्यो न जगतपति अध कूप औंधो पर्‌यो हाथ लिए है दिया ॥९१

मेरे हये व्रतु सत सो सगु सु आनहिं भूलिहु मगन लाइल्यों
तुमहूँ पुनि क्यों न करो मेरे नाथ कि एकि यहै अपराधी रलाइल्यों
षोटो खरो जन चैरनि मैं जनु ब्रह्म चले न तऊ तो चलाइ ल्यों
आपुनी ओर चलाइ लै मोहिं अरे वरवीर हों तेरी बलाइल्यों ॥९२॥

काम कबूतर तामस तीतर ग्यान गुलेलन मार गिराये
पाखड के पर दूर किये अरु मोह के अस्थि निकासि ढराये
सजम काटि मसालो बिचार को साधु समाज ते ताहि हिलाये
ब्रह्म हुतासन सेकि के बावरे वैष्नव होत कबाब के खाये ॥९३॥

जोहित ज्यान्यो नहीं जगदीश कह्यो चहे तोरी नहीं जम जेलहि
ब्रह्म भने मनि दूर के क्रूर तू घूरि कै क्यारिन वार सकेलहि
दूसरो पेड़ो न ह्वै है न आहि रे पेडे को पाइ पहारन पेलहि
खेलत खेलत खेलहिगो अब खेल सुखेलु जु खेल न खेलहि ॥९४॥

खेलत सग कुमारिन के सुकुमारि कछू सकुची मन माहा
काम कला प्रगटी अग अग बिलोकि बिलोकि हसे परछाहीं
ब्रह्म भनै न रहै उर अचल लै छिन ही छिन चपति बाहीं
डारति है शिव के सिर अम्बर मानी दिगम्बर राखत नाहीं ||६५||

जब मेरो दाहिनो नयन फरकि उठ्यो उठि अकुलाई करि तब ही ते नूकि सी
बात के सुनत गात अति राते भये तातो भयो तनु मानो आगि दीनी फू कि सी
ब्रज भयो वारिधि सो वास भयो बडवा सो ब्रह्म के वियोग ते विदी सी उठी हूकि सी
हाय हाय हाय रे बलाय कहूँ कहाँ हूँ कूर अक्रूर ते तो छाती दीनी छोकि सी ||६६||

नंद नद अनदित है जलपे कलपे अति ही गति गातन की
पद पानि मिले द्रिग आनद सों छबि छीन लई जल जातन की
ब्रह्म भने चुचकारि कहे मोहि लागति है तुतरानन की
छगना मगना अगना बिहरो बलि जाइ बबा इन बातनि की ||६७||

नवनीति लिए निरखे कर सों नव नीरज सी अखियाँ जुगराती
नव पल्लव से करके अधरा नव कुद कली सुख में मृदु दाती
नूतन श्याम तमाल सखी सुलखें छबि होति हिए ते नहाती
मोहन मूरति नन्द लाला की बलाई लगो द्विज ब्रह्म की छाती ||६८||

सेजहिं ते उठि नारि चली मन मोहन जू हसि चीर गह्यो
प्रगट्यो रवि कान्ह विहान भयो मुख मोरि के यों मृगनैनी कह्यो
बैनी दुहू कुच बीच रही उपमा कवि ब्रह्म यहै निबह्यो
जनमेजय के मनो जग्य समै दुरि तच्छिक मेरु की संधि रह्यो ||६९||

राति अराति भई सजनी सुनि पावक ज्यों विधि बूढ बढी है
कान्हि बिना करुना बिनु माई री जानति जोन्ह जु सीस चढी है
ब्रह्म भनै निघटै न घटीक यहो किधों ऊधो सो जोग पढी है
जीवन ज्यों जसु ज्यों बलि को अलि बामन ज्यों यह रैनि बढी है ||१००||

तानसेन की रचनाएँ

तानसेन कृत संगीत सार[1]

सुर मुनि को परनाम कर सुगम कियो संगीत
तानसेन रस रहित हित जाने गायन प्रीत ॥ १ ॥

गीत वाद्य अरु निरत को कहो नाम संगीत
तानसेन मन सहस भनि भरत मतहि मन भीत ॥ २ ॥

द्वै प्रकार संगीत है मारग देशी जान
मारग ब्रह्मादिक के कहो देशी देशि समान ॥ ३ ॥

गीत वाद्य अरु नृत्य के रस स्वेस गुन सोय
तानसेन उपजत नहीं सो संगीत न होय ॥ ४ ॥

अथ नाद लक्षण

द्वै प्रकार को नाद है राते सुर नर मुनि जान
तानसेन सो कहत है बहु विधि तिनहि बखान ॥ ५ ॥

येक नाद जो मुक्ति दउ दूजा रजक जानि
तानसेन मन गुन कहै सुदर नादि बखानि ॥ ६ ॥

अनहद बाजत आपु ही आहत दीयो बजाय
तानसेन संगीत मत इनको कहो सुभाय ॥ ७ ॥

नाद अनाहत को सदा सुर मुनि करे जो ध्यान
गुरु प्रसाद सों मुक्ति दे वह जानों परमान ॥ ८ ॥

पवन अग्नि संयोग ते प्रगट अनाहत आदि
तानसेन संगीत मत कह्यो सुरन ब्रह्म नादि ॥ ९ ॥

जिव टारत है चित्त के चित टारत है अग्नि
टारत अग्नि सो वाय को ब्रह्मन ग्रथि है मग्नि ॥ १० ॥

ता छिन ऊरध चलत है ब्रह्म ग्रथि की वाय
सूछम धुनि हिय नाभ धू गरे मध्यम कहु याइ ॥ ११ ॥

---

१ रीवा-दरबार पुस्तकालय की प्राचीन हस्तलिखित प्रति से उद्धृत। इसमें जहाँ तहाँ साधारण छंदोभंग सम्बन्धी त्रुटियों को दूर कर के दिया गया है।

होत अपुष्ट जो सीस मे विक्रान्तिहि मुख आय
पञ्च स्थान जो फिरत हैं तानसेन सो भाय ॥ १२ ॥
कही जो उत्पत्ति नाद को सास्त्र कहै परमान
तानसेन सगीत मत जानहु चतुर सुजान ॥ १३ ॥
गीत वाद्य अरु निरत को कह्यो ज्यों आतम नाद
तानसेन सगीत मत जामें उपजत स्वाद ॥ १४ ॥
तीनो मत सिव नाद को कह्यो जो मुनिन प्रमान
ताहि हिये मह जानि लै तानसेन सुभ ग्यान ॥ १५ ॥

तानसेन बस गान है और कहत है वाद ॥ १६ ॥[1]
नाद सुविद्या वर लहै सुरस्वति को परसाद
काव्य लास तरु नाद है फलित भयो सो नाद ॥ १७ ॥
सुर नर खग म्रिग मुदित ह्वै सुनै सब्द जो नाद
तानसेन सब नाद कहि केहि न भरत मरजाद ॥ १८ ॥
नाद उदधि के पार को केतिक करी उपाय
मजन के भय सरस्वती तूंबी उर गहि लाय ॥ १९ ॥
वीन विदित सुर ताल मे निपुन पुरुष है सोय
बिना परिस्रम जात है मोच्छ पथ को सोय ॥ २० ॥
इडा पिंगला सुखमना तीनों नारी नाम
तानसेन सगीत मत जानो आवे काम ॥ २१ ॥
इडा वाम कहि पिंगला दच्छिन मन मे जान
ह्रिदय रहत है सुखमना ब्रह्म ग्रथ ज्यों मान ॥ २२ ॥

इति नाद लछन

अथ इडादि लछन

ता ऊपर जिन प्रान जो चढो रहत है नित्त
अर्द्ध उर्द्ध को चित है जो नट वारहि चित्त ॥ २३ ॥

इति इडा पिंगला सुषुमना

---

१ इस दोहे की प्रथम पक्ति उक्त प्रति मे नही है।

अथ ब्रह्म ग्रंथि

द्वै अंगुल आधार पर द्वै अंगुल लिंग नीच
पढ़ै सुने वर जो कोऊ अंगुल तेहि तेहि बीच ॥ २४ ॥

सूछम सिखा जो अग्नि की ताहि रहत जो जान
ता ऊपर नव अंग ले चतुर रहै तेहि मान ॥ २५ ॥

ब्रह्म ग्रंथि को कह्यो सब सुर मुनि कहो निरध
तामे अंगुल चारि जो तरी रहत है कध ॥ २६ ॥

अथ शुद्ध तान विवक

खाडव वोडव भेद जब सुद्ध मुर्छना होय
उपजत षरज कि मूर्छना सुद्ध तान कहि सोय ॥२७॥

सकल सुरन तो जो छुटै जोरि प ध नि स्वर चारि
षर्ज ग्राम की मूर्छना ताको लेहु विचारि ॥२८॥

षाडव अरु गंधार जो मध्यम पंचम जानि
धैवत और निखाद को तानसेन सु बखानि ॥२९॥

अर्चिक कहिये एक स्वर गथिक द्वै स्वर जानि
सागिक कहो सु त्रै स्वरै मद्र सुर अंत बखानि ॥३०॥

मध्यम हृदय में होत है गरे होत डी आइ
मुष ते निकसत तार को व्योरो सरिगम पाइ ॥३२॥

सोरठा

स रि ग म प ध नी नाम द्वितिय भेद याते कहत
सुर तीनी को काम तानसेन यह मत सुने ॥३३॥

अथ ग्राम लछन

स्वर समूह को ग्राम कहि तानसेन परवीन
जाके आये मूर्छना रहत सदा लवलीन ॥३४॥

एक मूरछना सो मिले खाडव येकइस तान
सप्त स्वरन स रि ग म छटे या खाडव परिमान ॥३५॥

अथ सुरतान

सुद्ध तान उनचास है खाडव की यह बान
कहया मते सगीत को तानसेन सुषवान ॥३६॥

अथ वोडव लछन

सप्त स्रुति द्वै रिद्धि सम येऊ उपजे ग्यान
षर्ज ग्राम ओडव वहै इकइस वह परमान ॥३७॥

मध्यम ग्राम कि मूर्छना तिय द्वै सठ प्रति हीन
वोडव चउदह तान है तानसेन परवीन ॥३८॥

तानै वोडव की कही येकइस चौदह जान
तानसेन जो कहत है कहि सगीत मत मान ॥३९॥

पाडव वोडव दुहन के होत ,चौरासी तान
तानसेन सगीत मत कहयो अनेक प्रमान ।४०॥

अथ कूटतान लछन

अस पूरन पूरन दोउ कह्यो करम ते हीन
कह्यो मूर्छना निकट जेहि तानसेन है लीन ॥ ४१ ॥

पूरन सुर आरोपि जह पूरन कूट पुजाहि
तानसेन सगीत मत सुरव्या कही सराहि ॥ ४२ ॥

पच हजार चालीस है सपूरन की तान
मत सगीत करि कै कहै सब सुर कोसा ग्यान ॥ ४३ ॥

येक एक जो तान मे छप्पन छप्पन मान
कह्यो मता सगीत यक मुक्तो करि कै ग्यान ॥ ४४ ॥

दोय लाप व्यासी सहस दोय सै अउ चालीस
त्राटि तान परिमान यह कह्यो सुरन सो ईस ॥ ४५ ॥

अथ खाडव सख्या दोहा

कही सात सो बीस है षाडव की जो तान
इन तानन में कह्यो है अरतालिस परिमान ॥ ४६ ॥

चौतिस हजार पॉच सै साठि षाड्व तान
सख्या कहि सगीत मत तानसेन सुर जान ॥ ४७ ॥

अथ ओडव भेद

ओडव एक से गोरा है तान फहा रा जान
तानसेन सगीत मत यह युक्ती कारे ग्यान ॥ ४९ ॥

नो हजार औ आठ रो सख्या जानो सोइ
आदिहि सुर मुनि भाख्यो मत यह सगीत ना होय ॥ ५० ॥

अथ स्वर अतर वर्णन दोहा

सुर अतर की तान क्यां नौबिरा कही बपान
नतिस बतिरा एक मैं रहे कूट तान ले जान ॥ ५१ ॥

ताको सख्या कहत हौं सात रो अड़तालिस
तानसेन सगीत मत कह्यो है सुर मुनि ईस ॥ ५० ॥

स्वामि उपजत तान पट एक एक चोबीस
ताकी सख्या या कही ऐक रो नोआलीस ॥ ५३ ॥

अथ अधिक

जाते जाते तान द्वै सुर है सोरह ताल
यक यक मे सख्या कही बत्तिस बत्तिस भान ॥ ५४ ॥

अर्चक अर्चक तान जो एक ताग कु साठ
तानसेन सख्या ते वे करि रापत गान ॥ ५५ ॥

अथ साधारण लछन दोहा

सुर साधारण चारि है जात साधारन दोय
तानसेन सगति मत कह्यो है पंडित लोय ॥५६॥

अथ स्वर साधारण

साधारन स्वर काकली अन्तर मध्यम जान
तानसेन सगीत मत चौथे षर्जहि मान ॥५७॥

अथ साधारण लछन

निषद दोय श्रुति पर्जकहु गहत काकली होय
तानसेन सगीत मत कह्यो है सुर मुनि लोय ॥५८॥

विविध सुर गहै गगाधर जब मध्यम का है गालि
तानसेन सगीत मत अतर अतर कालि ॥५९॥

लै निषाद सुति षर्ज की षत्र बचे ज्यों अंत
कह्यो परज साधारनहि तानसेन सुर जत ॥६०॥

साधारन मध्यम कछू सूछम सुति है जाहि
बहुरि ग्रहग्रह होत है तानसेन जो ताहि ॥६१॥

अथ स्वर साधारण दोहा

कह्यो जोतिस सधारनहि कह्यो राग सम ग्यान
तानसेन सगीत मत पडित करहि बषान ॥६२॥

अथ जात साधारण

वादी सवादी कह्यो और विवादी ग्यान
तानसेन सगीत मत अनुवादिहूँ बखान ॥६३॥

वादी अनुवादिहि कहि वैवादी रिपु होय
अनुवादी जो मित्र सम जानि लेहु नर लोय ॥६४॥

वाद करै ते कह्यो है वादी ताको नाम
वार वार कह्यो कहे जानो आवै काम ॥६५॥

अर्थिन कै गावै सुरन जस सपूरन होय
तानसेन सगीत मत विवि अस्थाई सोय ॥६६॥

अथ वादि चार वरन दोहा

अस्थाई आदिक कहो मिलि अवरोहि अरोहि
सवादि मत तानसेन इनको कहो गिरोहि ॥६७॥

गाये ते ये कठोर जल वर्न चारि जो होत
तानसेन सगीत मत इन चारिहु को गोत ॥६८॥

अथ अवरोहि अरोहि लछन

अवरोहि सुख बढत ही उतरत स्वर आरोहि
तानसेन सगीत मत कही है बहु विधि जोहि ॥६९॥

अथ ग्राम लछन

स्वर्ग लोक में ग्राम जो प्रगट भए है तीन
द्वै स्वर राख्यो भूमि में येक सुर राख्यो बीन ॥७०॥

गधारै नाम ताको कह्यो सुर मुनि राख्यो जाहि
पर्ज ग्राम मध्यम कह्यो भूप्ग गावतो ताहि ॥७१॥

अथ लछन दोहा

सुर समूह को ग्राम कहि मूर्छनादि जा राग
तानसेन सगीत मत जामे उपजत रग ॥७२॥

अथ राग लछन

जो धुनि सुनि सुर वरन कह वहनो होत विशेष
जन चित हरन सुनिय कहै तान राग सुन सेष ॥७३॥

अथ राग लछन चारि अंग दोहा

राग अग जो भाषई क्रिया अग जो जान
तानसेन सगीत मत बहरि ऊपजहि मान ॥७४॥

अथ राग अग

राग अग वाको कह्यो धा पा परै देराय
तानसेन सगीत मत सुनहि सु स्रवने गाय ॥७५॥

अथ भाषा अंग दोहा

भाषा अग वाको कह्यो जो गावे भाषाहि
तानसेन जो सम्र कह्यो है सगीत मत माहि ॥७६॥

अथ क्रिया अग

दे हुलास हर्षित कही येहै क्रिया ज्यों अग
तानसेन संगीत मत जा करि गावै सग ॥७७॥

अथ उपसग अग लछन

कछ कछ छप्पा जो करै कहिये वाहि उपग
तानसेन सगीत मत कह्यो जै इनके अग ॥७८॥

अथ स्रुति विवेक

तिव्रा अरु कामोदनी मद्रा जाहि निनारि
छाडोती कहि षर्ज स्रुत तानसेन स्रुति च्यारि ॥७९॥

दयावती अरु रजनी रति का स्रुति है तीनि
रिषभ लगे जे तिलक हैं तानसेन परवीनि ॥८०॥

रुद्रै क्रोधा है यहै सुति गधार की होय
तानसेन सगीत मत जानै गायेन लोय ॥८१॥

काह यो सुति जो वरलिका की प्रसारिनि जानि
प्रीति सुमर्जनि च रि अति मध्यम की यह मानि ॥८२॥

कहीं म द तीरोहिनी रभा सुति है तीनि
ये तो धैवत थी कही सुर मुनि राषो बीनि ॥८४॥

द्वै सुति उग्रा छात्रनी लगी निपाद सो जान
तानसेन सगीत मत सुति को यह परमान ॥८५॥

अथ श्रुति लछन

करत उचार जो होत है सुछम के अनुमान
तानसेन सगीत मत सुति को यह परमान ॥८६॥

अथ मूरछना विवेक दोहा

उत्तर मद्रा रजनिहु उत्तरा येता नाम
सुद्ध पर्ज में सक्रता जानो आवै काम ॥८७॥

कहिये यो रवि हर्षिका सप्त मूर्छना होय
येतो मध्यम ग्राम को जानै गायन लोय ॥८८॥

सो वीरी अरु हरन ति केवलो इता नाम
सुद्ध मध्य अरु मारुनी जानो आवै काम ॥८९॥

चक्रना अविरुता उता कही मूर्छना सात
पर्ज ग्राम सो ये रहै जानो धी र ग वात ॥९०॥

मदा कहौ विलास अस सुमुखी चित्रा जान
चित्रावति अरु सिष्य जो ताको हित ज्यो मान ॥९१॥

आलापै ज्यो मूर्छना ग्राम गधार कि लेष
तानसेन ज्यों कहि कह्यो मत सगीत को देप ॥९२॥

अथ तेरह लछन

तेरह लछन को कह्यो जामे होत प्रकार
तानसेन सगीत मत जानि लेहु यह सार ॥९३॥

ग्रह श्रो ग्रस सो न गहै म८ मध्य ग्रनतार
श्रलप बहुल मारग कह्यो ग्रतर है गह सार ।६.४।।

श्रघन्यास सन्यास है न्यास कहो॰ विनास
तानसेन सगीत मत कह्यो ए तेरह श्रास ।। ६५ ।।

अथ लछन विवेक

गावै को उचार ज्यों ग्रह सो कहिनो ताहि
ता उपर विस्तार है सोई श्रास जो श्रापाहि ।। ९६ ।।

श्रान्यासे सुर जानि पुनि वैनन्गाग सुर जाय
विन्यासे सुर जोरि वो तानसेन उपजाय ।। ६७ ।।

मध्य हृदय में होत है गरे होत है बुद्ध
दनिय षर्ज जो तार है तानरोन की सुद्र ।। ९८ ।।

करि विस्तार पूरन कह्यो भावत करि गानि
द्वै सुर मध्यांतर कह्यो मारग सगुनि ये जानि ।। ६६ ।।

करि विस्तार पूरन कह्यो न्गास लहत सुर जान
तानसेन सगीत मत जो जिय मे पहिचानि ।। १०० ।।

षरज रिषभ गधार सर मध्यम पञ्चम जानि
तानसेन धैवत कही बहुरि निपादहि मानि ।। १०१ ।।

अलकार प्रस्तार

सरि सरि गरि गरि गम गग गम पम पध पधनी निगा
अथ छता भेस सरि रि गम मपध धनी निसा ।। १०२ ।।

सुर उचार दोहा

जानो षर्ज मयुर ते चात्रिक रिष महिमान
तानसेन सगीत मत कह्यो जो जिय में जान ।। १०३ ।।

सप्त सुर नव उरो कह्यो सरिगम पधनि नाम
द्वितिय भेद ज्यों कह्यो है सुरवर्तिन को काम ।। १०७ ।।

अथ सप्त सुर दोहा

कठ स्थान ते षर्ज है रिषभ सीस ते जानि
नासिक ते गाधार है मध्यम उर ते मानि ।। १०८ ।।

पचम सुर है नाभि ते धैवत भाल स्थान
तानसेन सगीत मत जानो यह परमान ।। १०९ ।।

कहै है सुर अस्थान जे जेते निषाद अस्थान
तानसेन सगीत मत इहै तान सो जान ।। ११० ।।

अथ द्वितीय भेद लछन

षर्ज गधार जो सुर कह्यो तासु कठ अस्थान
कह्यो है मत व्याकरन ते तानसेन सुभ गान ।। १११ ।।

धैवत निषाद है दसन ते बाढै न मध्यम जान
पचमहू को कह्यो है मत व्याकरन को मान ।। ११२ ।।

रिषभ सीस ते जानिये करिकै देयो मान
तानसेन सगीत मत सो जानो परमान ।। ११३ ।।

अथ सुर जाति दोहा

षर्ज मध्यम पचम कह्यो विप्र परन जो होइ
तानसेन सगीत मत कह्यो है सुर मुनि लोइ ।। ११४ ।।

रिषभ धैवत छत्रि कह्यो है तानसेन सो भाति
कह्योहि निषाद गधार जब वै सुर है वैस्य जाति ।। ११५ ।।

काकली है जू अत सुर यह सुर है जो सुद्र
तानसेन होतो रहै मत सगीत समुद्र ।। ११६ ।।

छ प्रकार अलाप है राग रूप कहि जान
तानसेन जो कहत है यह सगीत मत मान ।। ११७ ।।

अथ राग अलाप

कटिता रूप कछपने अत सहित है चारि
अल्पन के अस्थान है तानसेन सो चारि ।। ११८ ।।

स्थानु पल छन परज मध्यम सुर थाई कहिये जाहि
अलापो सुर चालि सो थिर ह्वै कटिता आहि ।। ११९ ।।

चौथे सुर आलापि के चौथोहि पर आहि
द्वितिय भेद रूपक कह्यो तानसेन सो गाय ॥ १२० ॥

अथ द्रगन के मध्य सुर अर्थहि करत नेवास
तानसेन सगीत मत आलाप को छ्पन जासु ॥ १२१ ॥

द्वितिय पर्ज आलापि कै फिर अरथाइ होइ
तानसेन सगीत मत अंतर जानहु सोइ ॥ १२२ ॥

राग आलापहि रूपक आलि तही सो जानि
प्रीति ग्रहनिका भजनी दुइ अकार सो मानि ॥ १२३ ॥

अथ लछन

प्रति ग्रहनीकी यह कह्यो जा विधान को गान
तानसेन सगीत मत जानहु रथ सुजान ॥ १२४ ॥

द्व प्रकार हैं भजनी थाई रूपक मान
तानसेन सोसो कहो है सगीत मत मान ॥१२५॥

जैसो रूपक करि षत्र को तैसो गावै जानि
अस्थाई भजनि कहो तानसेन सु वषानि ॥१२६॥

अथ रूपक दोहा

यह जो मान वा वरन है सरन किय अस भाति
कह्यो जा रूपक भजन तानसेन वह जाति ॥१२७॥

गुप्त सरिप वस योग ते उपजे है सब राग
मोद वटे तिनके सुने उपजत है अनुराग ॥१२८॥

त्रिरय समे मुख पच ते उपजे पायौ राग
गिरिजा के मुख सो छटौ भयो राग बहु भाग ॥१२६॥

प्रथमहि सम्यो जाति मुख सी रागहि उपजाइ
वामदेव मुख दूसरे कह्यो भरात बनाइ ॥१३०॥

तीजै मुख सो अधर है सो भैरो को ठोर
चौथो मुष तत पुरुष है ताते पचम ओर ॥१३१॥

मेघ राग प्रगट्यो बहुर पचम मुख ईसान
नट नारायन छटे भयो गिरिजा मुखहि प्रमान ॥१३२॥

एक समै पूछन लगी पार्वती सुठ देव
रागनि को निधि सो कहो मोसों कछु यह भेव ॥१३३॥

समय कहो अरु रितु कहो और रूप अनुहार
होइ प्रसन्न मोसो कहो जिय मे दया विचार ॥१३४॥

तव सिव जू लागे कहन वक वक मुसुकाइ
सुभ स्री राम बस मुनि भेख को जो गनाइ ॥

पहिले कही विभास को भूपाली पुनि रोइ
करनाटी बड हसिका माल स्री अनि जोइ ॥

पट मजरी वर्नानि ते ये छह पचम तीय
नित्तहि ताके सग रहैं उपजावै सुष जीय ॥

बेलावल अरु भैरवी मलारी येही भाइ
स्याम गुर्जरी और है बगालीह गनाइ ॥१३६॥

मालसिरि धनासिरी मेघ रागनी अत
देस कार अरु पचमा भैरव ललित बसंत ॥

कोस कबहु रोगु न करी साचे री सुप भाइ
देखी अरु पट भजनी बहुरि गुन करी गाइ ॥

राम करी अरु सोरठी बहरि भैरवी होइ
एक प्रहर पर्य वैराटी अरु टोडिका होइ ॥

प्रहर मेजा कामोदी कुडाइ का नाग सब्दिक गान
देश सुधकर अभरन वहरो कहै सुजान ॥

अब सुनि तिय ये प्रहर को तिन का करों बखान
मालव अरु स्री राग पुनि सब रागन को ग्यान ॥

केदारी कर्नाटियो आभिरि एहि दाइ
बसारग पुनि उदस है की कामोद गनाइ ॥

चौथ पहर अर्ध रात्रि सोरठ कान्हर आइ
रभावति पुनि षरज को जैजैवति गाइ ॥
कलिंग सोहनी विदित निसा कौशिक अति सुषदाइ
तानसेन सगीत मत समुझि षुसी ह्वै जाइ ॥

अथ प्रबधाध्याय प्रकरण

ताल राग को मूल है वाद्य ताल को अग
वाद्य ताल दोऊ मिले न्रित्यत उठत तरग ॥

अथ वाद्य भेद नामानी

तत को पहिले कहत है वितत दूसरो ठान
तीजे घन चौथे सिखर तानसेन परमान ॥
तार लगे सब साज के सो ततही तुम मान
चरम मढ्यो जाको मुख रवि ततलु रू है बखान ॥
कस ताल के आदि दै घन जीय जानहु मीत
तानसेन सगीत रस बाजत सिखर सुनीत ॥

तत नाम दोहा

बीन योन करब बहै सुर मडल सारगी
च्यार तात तंबूर पुन तानसेन अगी ॥
अम्रित कुंडली चग औ अवझ ओर अनेक
तानसेन सगीत मत जाने बुद्धि विवेक ॥

अथ वितत नाम

मान मृदग ढोलकी दुदुभी दारा बजरि जान
चग लोहरे अनेक है तानसेन उर मान ॥

अथ घन नाम

कास ताल औ झांझ पुनि कहे गुनी कठ तार
बाजत नीके तानसेन यह घन समुझ विचार ॥

अथ शिखर नाम

वेनु बांसुरी नाद है सुर नाई करनाल
तुरही त्रिसिंघ सिखर है औ मुरचग रसाल ॥

अथ वाद्य नाम

वीना वेनु करतार सारगी रवाब आछो उपगहुतार सर मडली सोहाई है
अम्रित की कुडली तमूरा टोली म्रिदग दु दुभी यदारा डफ पजरी बनाई है
झाझ साज सिघर नरसिघा मुरचग तैसी तुरही नफीरी सुरवौ दे मन भाई है
ताल के तरगन सो कहै तानसेन काय नूर रग बहगुन वारे गाई है ॥

वाद्य भेद के नाम कहि सुन हो चतुर सुजान
सिव को भाषित है सबै मत सगीत प्रमान
वाद्य भेद सछेप ते बरनन किए विचार
ताल नाम वरनन करो जिय मे निस्चय धार ॥

इति वाद्य प्रकरण

अथ सगीत रत्नाकर मतानुसारेन तालाध्याय प्रारम्भ

सिव असक्ति सयोग ते प्रगट भये सब तार
मारग देस द्वै कही तानसेन उरधार ॥
नृत्य समै पॉच ते उपजे मारग तार
देसी गिरिजा ने कही तानसेन निरधार ॥
रत्नाकर सगीत मत अतिहि विकट मतिमान
तानसेन यह भरत मत और कहैं हनुमान ॥
सोमेस्वर बलिनाथ मत रागार्नव मन मान
और बहुत अनेक मत तानसेन परमान

अथ ताल अंग

प्रथम ताल अग कहत हों जानहु चतुर सुजान
तानसेन सगीत मत सुर गुनी खेवान ॥
सप्त अग सब तार के भिन्न तुम जान
तानसेन सगीत मत कह्यो जो जिय में जान ॥
प्रथम अनु छिति दुतिय त्रितीय कह्यौ दविराम
चौथे लघु विराम पच तानसेन अभिराम ॥
षष्टम् गुरु सप्तम् पुलित यह सब तार के अग
तानसेन सगीत मत गावत उचत तरग ॥

लघु को चौथो भागु है ताकी तुम अनुठान
तानसेन सगीत मत द्वै द्रुत लघु प्रमान ॥
छ लघु गुरु द्वै होत है गुरु लघु पुलितहि जान
तानसेन सगीत मत कह्यो जो ग्रथप्रमान ॥

अथ अणु

द्रुत द्रुत विराम लघु औ गुरु पुलित विचार
तानसेन सगीत मत कह्यो जो उर म धार ॥

अथ मात्रा उचार दोहा

तीतुर अनु को कहत है द्रुतहि नकुल उच्चार
वग्र जाल लघु को कहत इक कलधा सुविचार ॥
अथ उत्पन्न सब कहत हौ मत सगीत विचार
भिन्न भिन्न वरनन करो तानसेन परकार ॥
पवन ते अनु उत्पन्न भा द्रुत उत्पन्न भय नीर
तानसेन दविराम हौ प्रगटे सलिल समीर ॥
बडवानल ते लघु भयौ व्योम ते गुरु प्रगटाय
प्रिथी पुलित उत्पन्न कहि तानसेन गन भाय ॥
अब सब केर स्वामी कह्यो मत सगीतहि मान
तानसेन यह सरल मत जिय मे नीके जान ॥

अथ स्वामी

अनु कोसिसि है देवता द्रुत को महेस बषान
सिखी बहुत दविराम है तानसेन यह जान ॥
लघु की साखा प्रमान है दविरामै गुन ठान
गौरी सिव गुरु देवता तानसेन परमान ॥
गनपति पुलित को देव है जानहु चतुर सुजान
तानसेन सगीत मत ताको करत बखान ॥
अनु द्रुत सूछम धात कर परन लघु कर धात
हस्त भ्रमन गुरु धात है द्वै कर पुलित समात ॥

अथ स्वर रूप वर्णन

अर्द्ध चद्र अकार अनु विदु दुत ही लेख
लब कर लघु होत है मत सगीतहि देख ॥

अर्ध वक्र गुरु होत है पुलितहि सिगाकार
तानसेन सगीत मत कह्यो जो जिय मे धार ॥

अथ सगीत रत्नाकर मतानुसारण मागर देशी ताल नाम

पच ताल मा एक देसी व मुखते प्रगटाय
तानसेन सगीत मत सब ही कहो गिनाय ॥

चच्पुट पहले कहत है चाचपुटा ही पुन जान
तानसेन सगीत मत कह्यो ग्रथ परमान ॥

अथ देशी ताल नामादि

ताल द्विताल पुन त्रितीय चतुरथै होय
पचमनि सकलील सिंह विक्रम कहिये सोय ॥

रतिलीलहि सिंहलील है कदरप त्रिर विक्राम
रग स्री रग औ चर्चरी तानसेन सुख धाम ॥

प्रत्य गयति लग्न कहि ह सलील गजलील
वर्नो भिन्न भिन्न कहि तानसेन सुनु सील ॥

राज ताल स्वर्न ताल सिह विक्रिडीत मनु जान
दरपन भी सुत वर्नहि तानसेन परमान ॥

जय वनमाली ताल है हसनाद सिंहनाद
कुक तुर ग लिलताल है सरपा लील है स्वाद ॥

सिंह नदन त्रिभग पुनि रगा भर गाव मठ
मुदित तानसेन करु कठ ॥

कोकिल प्रीय निसार को राजविद्याधर जान
तानसेन जय मगला विजया नन्द बषान ॥

मल्लि कमोद क्रीडा विजय मकरद कीरत नाम
स्री कीर्ति अति ताल पुन तानसेन अभिराम ॥

विजय विंदुमाली गें नन्दन मढी काभठ
दीप कठ की विषम पुन तानसेन स्री कठ ॥

अभिनदन अनग पुनि नादी मल्ली ताल
तानसेन पुन रन कही पुनह रड ककाल ॥

विषम लघु सेखर कहै चतुर्धान काल
कद्धक राका कुमुद पुन तानसेन चतुरताल ॥

प्रतापसेखर झपताल लहि गजरूपा पुन होय
चतुर्मुखी रति तान है मदन ताल है सोय
प्रति मठ वा प्रति मठ है पारवती लोचन लोय
लीला करन यति ललित है तान्सेन है सोय ॥

राग वर्द्धन घट ताल हस अतर क्रीडा मान
उत्सव विलोकित वर्नपति तानसेन सिंह जान ॥

करन सार साच उहै चदू कला लाय जोय
रक धद्र ताल द्वन्द्व कल तानसेन यह होय ॥

कुमुद कुबिद कलध्वनि गोरी ताल समेत
राजम्रिगाक ताल है मग्न ताल पुन लेत
रामचद्र प्रसिद्ध है विपुला पूज मन मान
तानसेन सगीत मत कह्यो जो जीय में जान ॥

इद्र लोक कुडलि कहै पतल कुडली कार
तानसेन संगीत कह जिय में लेहु विचार ॥

विद्युति लवन तारिका रूपडे कामडो पाय
तानसेन ऊदव पुनि कनक मेरु चलताय ॥

कनक मेरु वा चक्र पुन चक्रमठ उल ताल
सक सयोग चतुरस्त्र है है तानसेन रससाल ॥

विद्यावग मठ त्रितिय है चतुरमठ स्री विष्नु
गव नारायन नतक तानसेन परखीष्नु ॥

मठ तालग पुनि सरस मठ प्रति मठ
कीने मठ रवि मठ कहि तानसेन हरि मठ ॥

जनक मठ जय मठ कहै गिय मठ स्री मठ विसो रज पवाना
रग पन गीर्वान कल्यान कमल रवि साल ग्रो वल्लभ मानो
कलाय विचित्र सुङ्गीत गभीर स्रोरग सुभिन नक वर्नहि जानो
सकीर्न कर्लाग विलोकीय राज पए सब मठ क नाम बखानो ॥

इद्र ताल कु रन पची कछप ताल बखान
तानसेन कहे सरस्वती कठाभरन प्रमान ॥

नारद सारद तु बर किन्नर ताल विचार
तानसेन यह तरन को काह न पावें पार ॥

इति श्री सगीत रत्नाकर मतानुसारेण देशी ताल नामादि

अथ कलावत द्वादश तालमाह

एक ताल द्वै ताल पुनि त्रितीय चतुर्थ होय
त्रेवट अठताली कहै सूफी कता लोय ॥

मठ ताली धमारी की भप मर्धा मान थान
शब्दसेन वरनन करे जानहु चतुर सुजान ॥

अथ गमक लछन

कह्यो गमक सुरकद को स्रवन चित्त सुख देत
मत सगीत को होत जब तानसेन करि लेत ॥

डमरू धनि सी कय होय द्रुत चोथाइ मान
तीरिय गमक सो कहो है तानसेन स्रुत जान ॥

त्रयो ग्रस द्रुति होत जब ताको लीजै जानि
कहो गमक ग्रसफुरित वह तानसेन विख्यानि ॥

ग्रधि द्रुत की सीघ्रता पीत गमक जो होय
द्रुत के वेग जो कंप हो नील गमक है सोय ॥

लघु के वेग ज्यों कंप हो गमक गमक अदोलित जान
तानसेन ज्यों कहत है मत सगीत को मान ॥

क्रम ते आगम सुर परन चिन्ति थहि आदि
तानसेन ज्यों कहो है कुलसित गमक सुगाय ॥

पुलत सभी जो कप है गलनिक सो नाम
तानसेन सगीत मत जानो आवै काम ।

हिद पे सुर उपज इको हिय हकार गभ र
हुकित गमक सो कहो है तानसेन सरवीर ॥

सुख मदे सुर होत जो मुदित गमकइ जान
तानसेन ज्यों कहत है यह सगीत मत मान ॥

सकल गमक कै भेद जो एक ठौर जब गाय
निस्चित गमक सो जानिय तानसेन उपजाय ॥

अथ सगीत रत्नाकर मतानुसारेण तालाध्याय प्रारभ

अथ मार्ग ताल उदाहरण

सीव के पायो बदन ते भी भिन्न भै ताल
तानसेन सगीत मत गावत अति ही रसाल ॥

अथ चच्चपुट ताल उदाहरण

प्रथम दोय गुरु पुन लघु पुलित गे जोय
तानसेन चच्चपुट कहे व बिरला कोय ॥ इति चच्चपुट ताल
प्रथम गुरु द्वै लघु पुनै अत गुरु जो होय
तानसेन सगीत मत चाचपुट है सोय ॥

पुलित लघु द्वै गुरु पुनै लघु पुलित पुन होय
षस्ट पिता पुत्र कही तानसेन मत जोय ॥ इति षट पिता पुत्र
प्रथम पुलित त्रिगुरु कहै अ पुलित को जान
सपकेष्टा कहत है तानसेन परमान ॥ इति सपकेष्टा

अथ देशी ताल उदाहरण

लघु दुत लघु दो दुत लघु पुन होय
तानसेन सगीत मत अद्या ताल हो सोय ॥ इति अद्या ताल

द्वै द्रुत लघु द्रुत लघु पुने द्वै द्रुत त्री लघु होय
अतरु मिलि के जहा पुन रुद्र ताल को जोय ॥ इति रुद्र ताल

द्रुत एक लघु द्वै द्रुतै लघु द्वै द्रुत जाय
विष्म ताल है तासो कहै बूझो विरला होय ॥ इति विष्य ताल

द्वै द्रुत द्व लघु द्रुत पुनि अत लघु पुनि कोय
तानसेन सगीत मत कछप तालहि जोय ॥ इति कछप ताल

दोय पुलित द्वै गुरु लघु निसरु ताल को जोय
तानसन सगीत मत बूझै विरला कोय ॥ इति निसक ताल

प्रथम दोय द्रुत होत है अत सगुरु ज्यो होय
तानसेन दर्पन कहै जानो बुद्धि विलोय ॥ इति दर्पण ताल

तीन गुरु लघु पुनि तहै लघु गुरु पुलित प्रमान
सिह विक्रम कहात है तानसेन मन मान ॥ इति सिंह विक्रम ताल

दोय द्रुत लघु द्वै द्वै गुरु ताल कदर्प जोय
तानसेन सगीत मत जाने कवि गन लोय ॥ इति कदर्प ताल

प्रथम लघु द्रुत द्वै पुलित अत गुरु को लेष
वीर विक्रम तानसेन जानहु बुद्धि विशेष ॥ इति वीरविक्रम ताल

प्रथम चारि द्रुत होत है गुरु एक है अत
रग ताल ताको कहै तानसेन बुधिमंत ॥ इति रग ताल

द्वै लघु पुन गुरु लघु पुलित ताल कहत श्रीरग
तानसेन वे चतुर नर गावहु उक्त तरग ॥ इति श्री रग ताल

षोडस द्रुत सब अत एक एक अब होय
तानसेन चर्चरी कहै जाने बुद्धि विलोय ॥ इति चर्चरी ताल

गुरु गुरु गुरु जह होत है एक लघु बहुरी जान
प्रत्यग ताल ताको कहै तानसेन परमान ॥ इति प्रत्यग ताल

पहिले द्रुत बरनन करै अत लघु पुन धार
पति लग्न ताके कहै तानसेन विचार ॥ इति पति लग्न ताल

लघु लघु लघु लघु होत है अरु लघु निसाम
गजलील ताको कहै तानसेन अभिराम ॥ इति गज लील ताल

द्वे गुरु पुन गुरु लघु और पुलतो है परसान
रग प्रदीप ताको कहै तानसेन परमान ॥ इति रग प्रदीप ताल

गुरु पुलित द्वे द्रुत गुरु लघु पुलिते अरधार
राज ताल तह होत है तानसेन के तार ॥ इति राज ताल

गुरु लघु द्वे द्रुत पुनि अग गुरु ज्या होय
चतुर सुवरनी कहत है तानसेन उर जोय ॥ इति चतुर स्वर्ण ताल

लघु गुरु द्वै द्रुतै अरु पुलित पुन जोय
तानसेन जय ताल कहिके कै विरला कोय ॥ इति जय ताल

च्यार द्रुत पुन रोक लघु द्वे द्रुत गुरु बखान
वनमाला ताको कहै तानसेन परमान ॥ इति वनमाली तान

लघु पुलित द्वे द्रुत कहै अग पुलीत ताही लेख
तानसेन सगीत मत हस नाद ही देख ॥ इति हस नाद ताल

एक लघु गुरु लघु पुन द्वे गुरु जान
सिंह नाद ताको कहै तानसेन परमान ॥ इति सिंह नाद ताल

प्रथम द्वे द्रुत द्वै लघु कुडुक ताल विचार
तानसेन बखान करै लो हिर्दे मे धार ॥ इति कुडुल ताल

प्रथम द्रुत द्रुत विराम पुन द्वे द्रुत अत ज्यों होय
.... ॥[1] इति तुरग लोल ताल

प्रथम दोय लघु चतुर्द्रुत द्वे लघु अत विचार
सरम लील ताको कहै तानसेन निरधार ॥ इति शरम लीला ताल

द्वै गुरु लघु पुलित लघु गुरु द्रुरित है देख
द्वै गुरु लघु पुलित पुनि सिंह नद तही लेख ॥ इति सिंह नंद ताल

---

१ इस दोहे की दूसरी पक्ति उक्त प्रति मे नही है ।

प्रथम दोय लघु द्वि गुरु त्रिभगी बतराय
तानसेन संगीत मत नीके गान कराय ॥

द्वै गुरु द्वै लघु पुलित पुन रगाभरन बखान
तानसेन मतमात्र है जानहु चतुर सुजान ॥ इति रगाभरण ताल

दोय लघु पुन गुरु कहे चतुर लघु विराम
तानसेन चामठ कहे सुनहु ग्रंथ प्रमान ॥ इति चामठ ताल

प्रथम गुरु द्वै लघु पुन तीन लघु विराम
मुद्रित मठा कहत है तानसेन अभिराम ॥ इति मुद्रीत मठ ताल

च्यारि लघु और गुरु कहै दोय लघु पुन तान
तानसेन मठा कह जानहु चतुर सुजान ॥ इति मठ ताल

प्रथम लघु गुरु है ताहे द्वै द्रुत पुनहि विचार
राज विद्याधर कहत है तानसेन निरधार ॥ इति राज विद्याधर ताल

दोय लघु पुन एक गुरु द्वै लघु एक गुरु होय
जप मगल ताको कहै तानसेन सर जोय ॥ इति जप मगल ताल

प्रथम दोय लघु च्यार द्रुत मल्लिकामोद बखान
तानसेन सगीत मत जानहु ग्रथ प्रमान ॥ इति मल्लिकामोद ताल

आदी गुरु लघु कहत है गुरु लघु गुरु पुन जोय
तानसेन जयश्री कहे महाबुद्धि विलाय ॥ इति जयश्री ताल

द्वै द्रुत द्वै लघु कह लेइ मकरद उरही धार
तानसेन सगीत मत जानौ बुद्धि विचार ॥ इति मकरद ताल

आदी लघु पुलित गुरु लघु पुलित उधार
तानसेन कीर्तन करै मन मे निरपि विचार ॥ इति कीर्तन ताल

दोय लघु द्वै गुरु पुनि कीर्ति स्त्री बखान
तानसेन उर धारि को करहु याको ध्यान ॥ इति श्री कीर्त ताल

प्रथम पुलित पुन गुरु कहे पुलित लघु ज्यों होय
विजय ताल ताको कहे तानसेन उर जोय ॥ इति विजय ताल

आदी गुरु द्रुत चतुर पुन अंत गुरु ही लेख
तानसेन संगीत मत बिंदु मालि तेहि देख ।। इति बिंदुमाली ताल

आदि द्वै लघु द्रुत कहो अंत द्रुत ही विराम
तानसेन मन मानो हो नाम कहत याही साम ।। इति साम ताल

आदि लघु द्वै द्रुत पुन अंत प्लुलित परमान
नंदन ताको कहत है तानसेन मन मान ।। इति नन्दन ताल

प्रथम दोय द्रुत द्वै लघु द्वै गुरु अंत ही होय
तानसेन दीपक कहे बूझे बिरला कोय ।। इति दीपक ताल

आदी गुरु लघु पुन अंत गुरु ज्यों होय
ठेकी ताल ताको कहे तानसेन है सोय ।। इति ठेकी ताल

आदी तीन द्रुत द्रुत विराम च्यार द्रुत अंतहि विराम
विषम ताल ताको कहे तानसेन अभिराम ।। इति विषम ताल

एक लघु पुनि कहे द्वै लघु प्लुलित ही होय
अनंग ताल यह कहत है तानसेन उर सोय ।। इति अनङ्ग ताल

आदी लघु द्वै द्रुत कहे गुरु अंत में जोय
नदी ताल सब कहत लेह तानसेन चेलोय ।। इति नदी ताल

च्यार लघु पुन द्रुत है अंत द्रुतहि विराम
मल्लताल संगीत मत तानसेन अभिराम ।। इति मल्लताल

आदि च्यार द्रुत गुरु लघु कहे पूर्न कंकाल
तानसेन रावनन करे अति ही रसिक रसाल ।। इति पूर्ण कंकाल ताल

द्वै द्रुत द्वै गुरु कहो ते कहियत खंड कंकाल
तानसेन सुभ जानहि अंतहि मह रसाल ।। इति खंड कंकाल ताल

द्वै गुरु एक लघु होत है सम कंकाल बखान
तानसेन संगीत मत जानहु ग्रंथ प्रमान ।। इति सम कंकाल ताल

एक लघु द्वै गुरु कह विषम कह कंकाल विचार
तानसेन संगीत मत अनंद सुनत विसाल ।। इति विषम कंकाल ताल

च्यार लघु एक गुरु कहे लघु कडुग्र तही ताल
तानसेन सगीत स। करन करत प्रतिपाल ॥ इति कुडुक ताल
आदी लघु द्वै द्रुत कहे लघु गुरु ज्यों होय
कुमुद ताल स होत हे तानसेन कहे साय ॥ इति कुमुद ताल
तीन लघु जहा होत हे तीन गुरु पुन लोप
कहत बसती ताल यह तानसेन उर देप ॥ इति बसत ताल
द्वै लघु लघु सेखर कहे तानसेन मन मान
अब प्राता यसोल कहो जानहु चतुर सुजान ॥ इति लघु शेखर ताल
आदी पुलित द्रुति विराम द्वै लघु अत विचार
॥[1] इति प्रताप शेखर ताल
आदि द्रुत पुनि द्रुत विराम अत लघु परमान
तानसेन झपताल कहे जानहु बुद्धि निधान ॥ इति झपताल
तीन गुरु औ एक लघु पुलिन गुरु द्वै होय
अत दोय द्रुत तानसेन पार्वती लोयन जोय ॥ इति पार्वती लोचन ताल
च्यार द्रुत करन पती ललित ही करो बखान
द्वि द्रुत लघु गुरु कहे तानसेन मन मान ॥ इति करणपति लीला ताल
द्वै लघु गुरु लघु गुरु ललित प्रीया को विचार
तानसेन सगीत मत जिय मे निस्चय धार ॥ इति ललित प्रीया ताल
चतुर लघु द्वि गुरु जहा छि लघु द्वि गुरु जोय
जनक ताल कहत तानसेन जाने विरला कोय ॥ इति जनक ताल
द्वि द्रुत लघु पुलित है स्री नदना हे जान
तानसेन सगीत मत कहि मत ग्रन्थ प्रमान ॥ इति स्री नदन ताल
होय द्रुत लघु पुलित हे वर्द्धन ताल बखान
तानसेन सगीत मत जानव चतुर सुजान ॥ इति वर्द्धन ताल
षट द्रुत खड ताल हे जी द्रुत अमर क्रीड
लघु विराम हे सो कहे तानसेन मन मीड ॥ इति खड ताल इति अबर क्रीडा ताल

---

१ इस दोहे की दूसरी पक्ति उक्त प्रति म नही है ।

आदो लघु नी द्रुत गहो द्वी लघु बहुरो देख
सारस ताल रस होत है तानसेन उर लेख ॥ इति सारस ताल

अथ चच्चपुट लक्षण दो

द्वै गुरु लघु चच्चपुट म कहे सब तात
षट कला षट सम हो शिख मुख सपो जात ॥

गुरु एक लघु जुग गुरु बहु वाम मुष होत
पीय वसन षट कलक है चाचपुट हो उद्योत ॥

तीन गुरु द्व द्रुत कहे तत्पुरुष होते होत
षट मात्रा पट स्याम कहो जिन जिय बुद्धि उद्योत ॥

लघु द्रुत लघु द्वै द्रुत लघु त्री द्रुत लघु पुन होय
ब्रह्म ताल गोपाल यह मात्रा सप्त स्वर कोय ॥ इति ब्रह्म ताल

द्वै द्रुत लघु द्रुत लघु पुन द्व द्रुत त्री लघु होय
गुरु अंत मे होत है रुद्र ताल है सोय ॥ इति रुद्र ताल

नो द्रुत एक लघु द्व द्रुत लघु एक द्रुत द्व होय
अंत लघु द्व द्रुत लघु एक द्रुत द्वै होय ॥

द्व द्रुत द्वै लघु लघु द्रुत लघु होय
कछप ताल कहाय साय ॥ इति कछप ताल

दोय लघु तीन द्रुत जहाँ देख
ताल मलोकामोद सुलेख ॥ इति मलीकामोद ताल

लघु जुग तीन गुरु जहा होय
विजयानन्द कहत सब कोय ॥

इति विजयानन्द ताल

गुरु लघु गुरु लघु पुन गुरु एक
विजय स्री यह ताल विवेक ॥

इति विजय श्री ताल

अथ विषम ताल दो

------ -तीने द्रुत- द्वविराम कहे सुनिये नायक गोपाल
और गुरु पुलित लघु महा विषम यह ताल ॥

अथ आनन्द ताल

दोय दुरत और लघु दुत तीन पुलित गुरु एक
महानन्द यह ताल को जानहु चतुर विवेक ॥

द्वे दुत म एक गुरु त इानि हार
कामोद ताल को तहा बिचार ॥ इति कामोद ताल

आदि गुरु पुन तीन दुत विराम
उझोवड ताल गहा अभिराम ॥ इति झोवड ताल

दुत लघु दुत लघु दुत लघु दीज्ये
द्वे लघु दुत लघु द्वे दुत लघु लीज्ये ॥
एक दुत द्वे लघु द्वे दुत लघु दुत लघु द्वै होय
जात शेखर ताल यह जानत विरला कोय ॥इति जात शेखर ताल

लघु गुरु द्वे लघु गुरु द्वय दुत द्वे गुरुपुन होय
सिंहनाद ताल यह बूझे विरला कोय ॥ इति सिंहनाद ताल

अथ राज नारायण ताल

दोय दुरत और लघु गुरु अत को मान
राज नारायन नायक ही सात मात्रा सब जान ॥

द्वे लघु गुरु लघु पुलित् अन्त ही नन्द
सत मात्रा पिंड है कहीं ए नन्द नन्द ॥

अथ चपक ताल

च्यार लघु पुन द्वै गुरु मात्रा छे लघु पुन ज्यों होय
दस मात्रा ताकी कही चपक ताल है सोय ॥
तालाध्यायी हों कहत हो ज्यों विचारि कै लेहु
मात्रा सब जिय समुझि के काल सोधि के देहु ॥

अथ भरत मतानुसारेण ताल

अथ ब्रह्म ताल

लघु दुरत लघु द्वि दुरत लघु पुन तीन दुरत लघु वीर
स सप्त मात्रा ब्रह्मन की बनी सुनी रसिक करन धीर ॥
इति ब्रह्म ताल

अथ कोकिला ताल

दोय लघु गुरु लघु अरु पुलत कोकिला ताल
आठ मात्रा यी उहै गावत जीत रसाल ॥

अथ राजविद्याधर ताल दो

द्वै लघु गुरु पुनि दुरत जु विद्याधर होई
पाँच मात्रा तिनकी गिनि बूझ लेहो सब कोई ॥

अथ जय श्री ताल

लघु गुरु गुरु लघु गुरु दुरत वीराम मे बोल
ताही कहत तम जयासिरी गुनो जन कहत अमोल ॥

अथ श्री कीरत ताल

द्वै लघु द्वै गुरु द्वै लघु स्री कर करत इह नाम
अष्ट मात्रा सगीत मत रसिकन को यह धाम ॥

अथ विंद माली ताल

आदि अन्त गुरु जानिए च्यार दुरत है मध्य
मात्रा पर निज सोधि के विंदमाली ए बध्य ॥

अथ नन्दन ताल

एक लघु द्वे दुरत पुन एक पुलत को सोत नदन जान
पच मात्रा पिड कहत सगीत मत परमान ॥

अथ मुसक ताल

द्वै लघु पाछे द्वै दुरत अन्त विराम
सवा तीन मात्रा कहि यह मुष्टक है नाम ॥

अथ उदि छन ताल

दुरत गुरुक गुरु अन्त देह उदीछन ताल
च्यार मात्रा जानिये और व यसोधो काल ॥

अथ चित्र मुख ताल दो

एक गुरु दो लघु पुनह पुलत ज्यों होय
ताको कवि जन कहत है चित्रमुख सब कोय ॥

अथ मदन ताल दोहा

दोय दुरत पुन गुरु धरो तीन मात्रा धार
कहत ताल मदन को भरत संगीत विचार ॥

अथ लीला ताल

दुरत लघु पाछे पुलत कहि यह लीला ताल बखानि
मात्रा साढ़े चार जो रसिकन मन में जानि ॥

अथ कर्ण ताल

च्यार दुरत यामे रहे कर्न ताल यह जानि
रसिक सभु सब देत है निस्चै मन में आनि ॥

अथ गारुडी ताल दोहा

च्यार दुरत एक विराम दुरत माथा साढे दोय
कहत मत सगीत जे गारुडी ताल सब लोय ॥

अथ राज नार यण

दोय दुरत लघु गुरु कह लघु गुरु कहो निदान
राज नारायन नाम कही सात मात्रा जान ॥

अथ ललित ताल

द्वे लघु गुरु लघु गुरु यधू ललित सु मात्रा आत
आनु रसिक इह सगीत मत कानन राग सुहंत ॥

अथ श्री नद ताल

एक गुरु द्वे लघु पुन लत एक स्री नन्द
सात मात्रा पिंड है कही राग अनद कद ॥

अथ वर्द्धन ताल

दोय दुरत इक पुलत कहि वरधन मात्रा च्यार
भरत प्रमगहि ते यह कहत है सब नर नार ॥

अथ अनंग ताल

एक गुरु अरु एक पुलत लघु एक गुरु पुन होय
अनग ताल ताको कहो चतुर कवि जन सोय ॥

अथ भीषम ताल

दोय लघु दुत सस है द्वि लघु पुन ज्यों होय
नाम भीषम ताल यह जानत विरला कोय ॥

अथ अभंग ताल

इक लघु इक पुलत जो होई जानो ताल रथ भग
च्यार मात्रा भरत मत गनिये याके सग ॥

अथ षट ताल

षट दुरत पुन दोय लघु एक गुरु तुम जान
षट ताल जाको कहे मात्रा सात बखान ॥

अथ चंद्रक ताल

प्रथम तीन गुरु धारी के तिन पुलत पुनि लेख
मात्रा याही जानिये चद कला की रेख ॥

अथ रछा ताल

चार दुत च्यार लघु पुलत पच यह जानीन
रच्छा ताल मन में धरे, रच्छक करे निधीन ॥

अथ सिंह ताल

लघु को पाछे देवे द्रुरत मात्रा कहिये दोय
सिंह ताल ताहि कहे जानत कवि बिरला कोय ।।

अथ सारस ताल

लघु के पाछे तीन द्रुरत पुन द्वै लघु ज्यों अत
मात्रा साढे चार है सारस ताल कहत ।।

अथ सुबध ताल

द्रुरत विराम आदि लघु मात्रा पौने दोय
चतुर सगीत कहत हो सुबधल ताल जो होय ।।

अथ विष्नु ताल

तीन लघु एक गुरु तीन लघु द्वै गुरु चतुर लघु जान
एक लघु पुलत पच मनि यो विष्नु ताल परमान ।।

अथ रुद्र ताल

लघु दुत गुरु पुन चार लघु तिन दुत एक लघु जान
एकादस ताल यह रुद्र बखानों चतुर सुजान ।।

इति श्री तालाध्याय भरत मते कथिता सपूर्ण शुभमस्तु
लिष्ये श्री लाल हटे सिंह सावन बदि बुधवार सवत् १८८८

तानसेन के पद[1]

वन्दना एवं स्तुति

जै सारदा भवानी विद्यादानी महा वाक्वानी तोहि ध्यावै
सुर नर मुनि मानी तोहि कु त्रिभुवन जानी जो जाकी मन इच्छा सोइ सो पुजावै
मगला बुध दानी ग्यान की निधानी वीना पुस्तक धारिनी प्रथम तोहि गावै
तानसेन तेरी अस्तुत कहाँ लौं बखाने सप्त स्वर तीन ग्राम राग रग लय अच्छर आवै ।।१।।

महावाग् वादिनी सनमुख हूजे अबहूजै हो
याही ते त्रिभुवन मानी याते तु भवानी जो जाके मन इच्छा सोई सो पूजे हो
रिद्ध सिद्ध तुवही पाइये मात जब तुव चरन छूजै हो
तानसेन यह प्रसाद मांगत जहां तहां जुरत फुरत तहा तहा रग रग को कर तूजै हो ।।२।।

सरस्वती सुप्रसन्न हो मोको वाक्वानी
षड्ज रिषभ गान्धार इनइन स्मरन साधे तब रागरग गुरुप्रसाद आवत तानसानी

१ राग सागरोद्भव सगीत-राग कल्पद्रुम भाग १,२ से उद्धृत ।

रूप की निधानी इन्द्रानी सिहलानी महिषा सुरमर्दिनी जगजननी गुन निधानी
तानसेन मांगे तान ताल स्वर स्री दुर्गे भवानी कीजिये दया मोहे दीन जानी ॥३॥

जो कोई ध्यावै सरस्वती चरन सरन को ताको देत विद्या वाक्‌बानी
अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों फल की दानी
वाक्य वादिनी तू ही माता आदि ज्योति रूप निधानी इन्द्रानी
सिवानी मंगला ग्यान रूपा सारदा वरदानी
तानसेन सेवक यह मांगे तान ताल रंग दे दयाकर मोहे दीन जानी ॥४॥

तेरे तो सरस्वती घट घट पूर रही नाम भरायो वाग्बानी
जल थल सब पात जालपा भवानी याते कहियत तोकों सर्व्वानी
कोट कटानी म्रिनानी सात द्वीप प्रमानी ऐसी नगन कोट रानी
वानि सेवक को प्रसाद दीजै भवानी दयानी कंठ पाठ ताल स्वर दे महारानी ॥५॥

ग्यानवन्त को रस अगम बुध देनी तू सब ही अगन मानी हंसवाहिनी
गिरा महा वाक्य बानी
जोइ तोहे ध्यावे मन इच्छा फल पावै साधत कंठ प्रान करत बखानी
तोसी तुही औ नाही विद्यादानी जे साधे अराधे त्रइलोक जग जानी
तानसेन को दीजै रागरंग वरबानी जोलों गंगा धरन ध्रुव पवन पानी ॥६॥

माता जालपा भवानी जाके नगर लोक नरलोक भुवलोक इन्द्रलोक त्रिभुवन
मानी सर्वानी सकल जगत जानी औ दरिद्र भय हरनी महारानी
ज मन वच करम कर तुमको ध्यावै तिनको बुध दानो ऐसी प्रसिद्ध महावाक् वानी
असुरन दल मलन अबे आदिसक्ति सुर नर रटत रहत गुनी ग्यानी
तानसेन सों मनमानी करम कर तू दयाकर दयानी तान ताल अच्छर दे सारदा भवानी ॥७॥

अथ गणेश-वन्दना-भैरव चौताल

लम्बोदर गजानन गिरिजा सुत गनेस एक रदन प्रसन्न वदन अरुन वेस
नर नारी गुनी गन्धर्व किन्नर यच्छ तुम्बर मिलि ब्रह्मा विष्णु आरत पुजावत महेस
अष्टसिद्धि नवसिद्धि मूषक वाहन विद्यापति तोहि सुमिरत तिनको नित सेस
तानसेन के प्रभु तुमहीकु ध्यावै अविघन रूप विनायक रूप स्वरूप आदेस ॥८॥

तुम हो गनपत देव बुध दाता सीस धरे गज सुंड
जेई जेई ध्यावै तेई तेई फल पावे चन्दन लेप किये भुजदंड

सिद्धेस्वरी नाम तुम्हारो कहियत जे विद्याधर तीन लोक मह सात दीप नवखंड
तानसेन तुमको नित सुमिरत सुर नर मुनि गुनी गन्धर्व पंडित ॥९॥

साधो विद्याधर गुननिधान गुनदाता सरस्वती माता को कर आदेस
नमो नमो रिद्धि सिद्धि के स्वामी सकल विद्या प्रवेस
जो इनको ध्यावै मन इच्छा फल पावै दूर होत सन ते कलेस
तानसेन प्रभु तुमहि को ध्यावै ब्रह्मा विस्नु महेस ॥१०॥

ए गन राजा महराजा गजानन जै विद्या जगदीस
सप्त स्वर सों गाऊ बताऊ सब राग रागिनी पुत्र बधून सहित छतीस
बाइस सुरत इकईस मूरछना उनचास कोट तान आवै जगदीस
तानसेन का दीजै छ राग छतीस रागिनी ताल लय संगीतमय सो
हाय कंठ प्रवस ॥११॥

एक दन्त वत लम्बोदर कीरत जाहि विराजै
गनेस गौरी सुत महामुनि महिमा सागर गुरु गननाथ अविघन राजै
हेरम्ब गनदीक बुद्धी महातुर उग्रता वट च दगा सास विनायक जगत के सिरताजै
तानसेन का प्रकास दाजे सकरा सुत नवनिध के सदा दायक नायक जगत के सारे
काजै ॥१२॥

एक दन्त गज बदन विनायक विघ्न विनासन है सुखदाई
लम्बोदर गजानन जग वन्दन सिवसुत ढुंढीराज सब बरदाई
गौरीसुत गनेस मूषिक वाहन फरसाधर सकरसुतन रिद्ध सिद्ध नवनिद्ध दाई
तानसेन तेरी अस्तुत करत काटे कलेस प्रथम वन्दन करत द्वंद्व मिट जाई ॥१३॥

महा गनेस कहत सुख चैन
भेटतहूँ न छाड़े भावै साह फिरान लागे निचकैन
नाम लेत कटत पाप अनधन लच्छमी देन
तानसेन सेवक पै क्रिपा करो ज्यों कल्पब्रिच्छ कामधेन ॥१४॥

अथ गंगा जी बन्दना, भैरव चौताल

ईस सीस मर विराजत अई लोक पावन किए जीव जन्तु खग मृग सुर नर मुनि मानो
तानसेन प्रभु तेरी अस्तुत करता दाता भक्त जनन की मुक्ति की वरदानी ॥१५॥

अथ महादेव वन्दना, भैरव चौताल

महादेव आदि देव देवादि देव महेश्वर ईश्वर हर
नीलकंठ गिरिजापति कैलाशबासी शिव शंकर भोलानाथ गंगाधर
रूप बहु रूप भयानक बाघाम्बर अम्बर खपर त्रिशूल कर
तानसेन के प्रभु दीजै नाद विद्या सगत सों गाऊ बजाऊ बीना कर धर ॥१६॥

हो ॐकार महादेव शंकर तुम सकल कला पूरन करत आस
निहचेही धरत ध्यान सुमरन रमन मान देखत दर्शन गई त्रास
हरे दुख दन्द सोहत जहा गग रुंड माल गले सोहे बाघाम्बर बास
हर हर करत हरे पाप मिटे सकल दुख सन्ताप लहै मन हुल्लास
तानसेन सेवा ध्यान कर मन इच्छा फल पावे होय कैलास निवास ॥१७॥

महादेव देव देवन प्रति सुर ईश्वर शंकर पार्वती पति दुख हरन
बामदेव आदि देव जटा जूट धुरजटी डमरू बाजत डिम डिम सब सुख करन
रूप बहु रूप भूतनाथ भुवनेश्वर भोलानाथ गौर वरन
तानसेन के प्रभु रीझत तुरत ही देत मन इच्छा करे काज असरन सरन ॥१८॥

महादेव आदि देव महेश्वर ईश्वर हर
सम्भु सितकंठ कपरदी ईस विरूप डमरू कर त्रिपुरारि त्रिलोचन गंगाधर
नील कंठ भस्म भूषन व्रिषभ वाहन पारवती वर
जटा जूट बहुरूप शिव जो गंड वर धर तानसेन को दीजै सुख सम्पत वर ॥१६॥

आदि देव महेश्वर गौरी ईश विरूप आछे गग जटा जूट
यह अनुचर वन्दन कर मांगत तेरे पाद प्रसाद ते पाऊ राग विस्तार तान उनचास कूट
तो समान औ नाही अविगत अविनाशी है रहे या भुव लोक मध अटूट
भोलानाथ भस्म भूषन गगा शिखर डिम डिम डमरू बाजै तानसेन सेवक को दीजै
अन धन दूध पूत अखूट ॥२०॥

कानन मुद्रा मुंडमाला गरे भस्म विराजे अंग
कर त्रिशूल चन्द्रमा लिलाट पारवती अरधंग
व्रिषभ वाहन सीस जटा सोहत जटाजूट गंग तरंग
त्रइलोचन त्रिशूल खपर डमरू लिए तानसेन तान गावत रंग ॥२१॥

महादेव देवन पति ईश सुरेश नील कंठ शिव पंचानन पारवती पति दुख हरन
वामदेव महादेव जटाजूट गंग शिखर डिम डिम डमरू बाजत पुनि रीझन सुख करन
ब्रिषभ वाहन जटाजूट गंग सिख बहुरूप द्रुम द्रुम डमरू बाजे त्रिशूल धरन
तानसेन शिवशंकर दया कीजे भोलानाथ जगत पोषन भरन ॥२२॥

नमो रुद्र शंकर देवा मने ब्रिषभ वाहन तपसी प्रबल ईश्वर महायोग ईसान
गंगाधर जटाजूट ललाट शशि सोहै हरिध्यान
नीलकंठ उर सेष कपाल माला विभूति भूषन गरल पान
गौरी अरधंग डमरू कर पिनाक पान
धन धन धन महादेव गुनसागर आगर गावत तानसेन विनान ॥२३॥

सोहत काम न उत्तम रूप पहरत सवार चीर ओप वदाय कुन्दन अंग
टिके को कियो अदोत ताते तिमिर फटो सरन परे पाछे सीस फूल युत असमान स्रवन
कुंडल कबरी अचक कटाच्छ आपजोत बन रहो दोऊ अनंग
द्रिग अंजन दिए अंजन बस कर लिए कर दर्पन हार सुख देत सुख पै ये अन निरखे उड़ जात
बरनन गुनी गावै मानिक हीरा कपोल मुक्त लर मुक्त माल भुज म्रिनाल कर कमल
बाजू बंद फुंदन लटकि लटकि अलि युग संग
रामकिरन उपज्यो नवल विचित्र कंचुकी मधु अतंग अधर सुन्दर त्रवली तेरे वा टरनन
झनन ठनन
अम्रित नाभ औरन लीप पीला रस लेत अपजात तानसेन के प्रभु साह अकबर सों बन रहे
जैसे पारवती महादेव अरधंग ॥२४॥

अथ सूरज वन्दना, रव चौताल

जै सूरज जगच्चच्छु जगवन्दन जगत्राता जगत् करता जगन्नाथ
आदित्य सवितर अरक खग पुषर गभस्तीमान् भानु दिवाकर जगकारज होय तेरे हाथ
ग्यान ध्यान जप तप तीरथ व्रत संयम नेम धर्म कर्म सब उदै होय सनाथ
तानसेन पै प्रभु क्रिपा कीजिए रागरंग स्वरन सों निसिदिन गाऊं तेरो गाथ ॥२५॥

अथ शिवा वर्णन

कराल वदनी काली त्रिशूल खपर सोहै चंडी असुर सिंघारन कारन
महिषासुरमर्दनी इन्द्रानी महेश्वरी मेनकात्मजा उमा कात्यायनी गौरी तारन

नारायनी निर ग्रन्था काश्मीर अस्थानी सिवा रुद्रानी अपरम्पारन
नगन कोट रानी महिमा तुम जग जननी तानसेन निसिदिन सुमरत सकट निवारन ॥२६॥

अथ अनन्त देवता, राग भैरव, ताल चौताल

प्रभाकर भास्कर दिनकर दिवाकर भानु प्रगटे बिहान
तेरे उदे ते पाप ताप छुटै कर्म्म धर्म्म प्रेम नेम होय गुरुग्यान औ ध्यान
जगमगात जगत पर जगच्चच्छु ज्योति रूप कस्यप सुत जगत के प्रान
तानसेन के प्रभु उदै जगत कपाट खुलत दीजिए विद्या क्रिपानिधान ॥२७॥

अथ त्रिवेणी-वर्णन

चन्द्रवदनी म्रिगनयनी तानधमार का राग पुतरी कालिन्दी इह विधि डोरे बनाय कीजै तिरवेनी
छुटी पोते कन्ठ दीपक मुख को जोत होत तामै गुत प्रगट सरस्वती मिलिए न नैनी
सुन्दर रूप अनूप सोभा त्रिभुवन पाप ताप हरनी करत सुख चैनी
तानसेन को करो निरमल तू दाता भक्त जनन को बेकुठ की नैसैनी ॥२८॥

अथ श्री भगवान-वर्णन

प्रथम उठ भोरही राधेक्रिस्न कहो मन जासों होवै सब सिद्ध काज
इह लोक परलोक के स्वामी ध्यान धरी ब्रजराज
पतित उद्धारन जन प्रति पालन दीन दयाल नाम लेत जाय दुख भाज
तानसेन प्रभु को सुमरो प्रातहिं जगमें रहै॰ तेरो लाज ॥२९॥

मोहन स्रिष्टि के आधार तन को अब राख लीजिए गोपाल
नैन प्रान सुख दीजै तनते दुख दूर कीजै इतनी विनती मेरी सुन लीजिए हाल
पतित पावन करुनासिन्धु दीन दुख भजन अनेक रूप लीलाधारी भक्त वत्सल
युग युग भये क्रिपाल
मदन मोहन मधुसूदन मुरारी गज सुदामा द्रोपदी सहायकारी तानसेन प्रभु भक्त प्रतिपाल ॥३०॥

गोविन्द गोपाल गरुडगामी गोपीनाथ गोवरधन धारी गोप मन रजन
वशीधारी गिरिधारी कुन्ज बिहारी बहु रूपधारी कसारि मुरारी गर्ब्बप्रहारी दुष्ट गजन
मधुसूदन माधव मथुरापति मुक्तेश्वर मत भावन दुस भजन
वासुदेव विट्ठल बनवारी बद्रीनाथ बौध रूप विस्नु तानसेन भक्त मन रजन ॥३१॥

ए ईश्वर मोही की जातत गत जो बीतत बिना देखे तुम्र दरस
एक निमिस पै नाहन निरखत मे सास अकुलात कछू न सोहात मन नैन दोऊ जात तरस

भवभंजन मनरंजन काटत दुख द्वन्द्व कन्द ऐसो जग में व्याप रहो सरस
तुही आदि तुही अन्त तारन तरन तानसेन तुही अरस परस ॥३२॥

पाक महम्मद अल्ला रसूल तेरो ही नूर जहूर
धन, धन परवर्दिगार गुन्हैगार तुवकन तुही जग रग रह्यो भरपूर
बेचुन बेच गुन वै शुवै वै नमुन अव्वल आखर तुही निकट तुही दूर
जित देखू तित तु ही व्याप रहो जल थल धरनी आकास तानसेन तुही हजूर ॥३३॥

हजरत अली की सुदिष्ट भली मोपर जो दुख जाय सब तनते भाज
हों सेवक तिहारो तुमजात पाक करीम करम कीजे राख लीजे यह जगत मे मेरी लाज
बैचुन बेंच गुन वै सुमेंनै नमुन पाक जगत रियाज न्याज
तानसेन रब रहमान करीम रहीम बिनती सुनिए आवाज ॥३४॥

महम्मद नववी हबीब अलह के साह मर्दान
अली वली मरद कुफर दारिद्र हरन हजरत हसन बुजरक इमाम
संसार के साहब हुसेन सेयद साहजादे जेन लावदीन दीन पर्न
महम्मद वाकर करतार कीने मन चिते करन काम
हजरत जाकर सादक साँची सीदक इमाम मुसि काजाम हजरत अली बिन
मुसी रजा जाको दरस देखे जाय दारिद्र दान
हजरत तकी अलीन की हजरत हसन असगरी इमाम महम्मद मेंदी साहब
जमान दे सुख सपत सतत राखो त्रिहुलोक भाम
ख्वाजा पीर निजामदीन औलिया तू सत्तार परवर दिगार
करीम रहीम दरीकई पीर रोसन गाजी धाम
हैदर रसूल गोस कुतुबदीन अल्लग फकीर तानसेन को दीजे राग रग
तीन ग्राम ॥३५॥

भक्ति-प्रसंग।

अब मैं राम राम कहि टेरों
मेरे मन लागी उनही सो सीय पति पद हेरों
चरन सरोज स्रवन मन मेरो धुज अकुश मुख केरो
तानसेन प्रभु तुम बहोनायक इन तरवन पर फेरों ॥३६॥

अनहद सब्द उपजो मो घट में ताको ध्यान धरू अष्टयाम
खरज रिषभ गान्धार मध्यम पचम धैवत निपाद पावै ज्यो अति अभिराम

अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदारथ जब तब पाए प्रगटी नाद ब्रह्म सहस रूप अनन्द धाम
धन धन ज्योति स्वरूप अचरज कर और परसे तानसेन कन्ठ ठाम ॥३७॥

प्यारे तुही ब्रह्मा तुही विस्नु तुही रुद्र तुही सक्ति तुही गनेस तुही सूरा
तुही जल तुही थल तुही पवन तुही अकास तुही अधुरा तुही पूरा
तुही छैल तुही अलबेला तुही रोवत तुही हसत तुही उठत बैठत चलत तुही दूरा
तानसेन के प्रभु एकहि अनेक होय जग मे व्याप रहो हजूरा ॥३८॥

प्रथम नाद सुरसुती गनपति बुधदाता
जाकी क्रिपा ते अन धन लछमी पालन करै सब जग त्राता
जोइ जोइ आवत नन फल पावत सब गुनीयन करे देत विधाता
तानसेन प्रभु युग युग जीवो चरन कमल रग राता ॥३९॥

वेदन दरद दरि करो हजरत मोरा अवर कहो सुवरन हजरत
इमाम काम मरसद साचे हो तुम पीर
जो फल माँगे सो फल पाऐ राज पाठ सुख तरीर
तानसेन के प्रभु रहीम करम कीजे पाप न रहत सरीर ॥४०॥

प्यारे तुही ब्रह्म तुही विस्नु तुही रुद्र तुही गुरु तुही चेला
तुही जल तुही थल तुही प्रबल तुही अबल तुही सैहा तुही अलबेला
तुही ऊच तुही नीच पाप पुन्य तुही बीच तुही सो मेला
तानसेन कहै प्रभु कहा लों बखानू तुही बहुत तुही अकेला ।४१॥

मोहन मैं वारी वार डारी नार जिन करो कपट की बातैं
रहत ग्यान ध्यान तिहारे नाम को सुमरन है दिन रातैं
घडी पल छिन रही न जात मोपै करत रहत तेरी बाते
तानसेन प्रभु क्रिपा करो मोपै नेक चितबो चहाते ॥४२॥

त्रिपुरारि गरीब निवाज निवारन समरथ पूरि रह्यो सब धाय धाय
जे तुम्हें ध्यावै मन इच्छा फल पावै तिहारो ही गुन गाय गाय
सुर नर मुनि ध्यान धरतु हैं तिनहूँ के मन पाय पाय
तानसेन के प्रभु तिहारी अस्तुति करू तिहारी ही मन भाय भाय ॥४३॥

मेरे मन माह हरि नाम जिन रच्यो
अखिल धाम काम क्रोध तज लोभ बच्यो जात ससार

जिन रच्यो स्वर्ग म्रित्यु औ पाताल निरंजन सोई साकार निस दिन जप ले री मुरार
दीनबन्धु दीनानाथ काटत दुख द्वद फन्द ताहि घरी पल छिन न बिसार
तानसेन कहे निरमल रहिए भजिए भगवान मनुष जनम नही बारम्बार ॥४४॥

तूही ब्रह्म तूही बिस्नु तूही महादेव तूही गुरु तूहो चेला
तूही सोना तूही सोनार तूही कसौटी कसनहार
तूही दीपक तूही मन्दिर तूही मेला तूही अकेला
तूही रैन तूही दिन तूही पर्वत तूही पाखान तूही जल
तूही बल तूही सौं गेला
तानसेन के प्रभु तूही सबन मे तूही छैला तूही अलबेला ॥४५॥

ऊकार ब्रह्मा उचारो चारहु आनन तार करन सप्त प्रमान
सप्त स्वर तीन ग्राम इकइस मूर्च्छना बाइस सुरत उनचास कोट तान
आरोही अवरोही अस्थायी सचायी अंस न्यास ग्रह जान
ओडव खाडव सुर सम्पूरन तानसेन गुरु ग्यान उर आन ॥४६॥

तूही। एक आदि निरंजन निराकार नावरूप तेरो ही पसारी पूरो सब संसार
अलख अव्यक्त जग निस्तारन कर तूही एक पाक परवर अपरम्पार
जल थल धरनी धवल तूही पूरन सकल मही मंडल तेरो ही अधार
तानसेन को दुख दारिद्र दूर करो कर्ता हरता तू करतार ॥४७॥

रूप निरंजन अंजन रहत ताहि बरनबे को उदित भए छहो सास्त्र अठारहो पुरान
ताको भेद नहिं पावत सिव सनकादिक ब्रह्मा नारद सेस रटत केउ ब्रह्मा सिव
घट व्यापक कोट कोट ब्रह्मांड रचत देख ले हों बुधवान
आदि मध्य अन्त वोही त्रइ लोक चराचर वाही को इच्छा से करत विनान
तानसेन को प्रभु सब जग व्याप रहो पूरन ब्रह्म अविनासी निरकार अविनासी भगवान॥४८॥

उपदेश

धीरे धीरे धीरे मन धीरे ही सब कुछ होय
धीरे राज धीरे काज धीरे योग धीरे ध्यान धीरे सुख समाज जोय
धीरे तीरथ धीरे व्रत संयम धीरे ही करे सतसंग साध कै बैठ मन को धीरे राखोय
तानसेन कहै सुनो साह अकबर एती बड़ी राज एती बड़ी बादसाही धीरे ही ते पाई सोय ॥४९॥

ए मन तू जो अपनो सुख चाहत है घरी घरी पल पल छिन छिन सुमर ले स्री राम नाम
जो जग जप तप नेम धर्म्म व्रत सजम ग्यान ध्यान गहै इट हरि चरनन विस्राम
और उपाव नाहीं कलियुग मे क्रिस्न क्रिस्न कहत होय आराम
तानसेन प्रभु को चरन सरन गह ले जासों पावे बैकुन्ठ धाम ॥५०॥

ए मन जब लग नैन प्रान तब लग जीवत सब काहू को दिदार
जब लग जीजिए तब लग कीजिए राग रग घरी घरी पल छिन छिन जात न लागे बार
साच ही बोलत साच ही तोलत सॉच ही कीजिए बनज विहार
तानसेन के प्रभु साच ही में रम रहे याते समझ बूझ देखिए जग सपनो ससार ॥५१॥

रे मन जब लग पिन्ड प्रान तब लग जग नातो सब हीन सो व्यवहार
जब लग जिए तब लग हरि नाम लीजिए राग रग कीजिए यह
तन मन नैन प्रान जात न लागै बार
बालापन तरुनापन औ व्रिद्ध अवस्था पुनि पुनि जनम मरन होत ससार
तानसेन कर ले ध्यान विस्वम्भर को यही पू जी यही जमा यही है सार ॥५२॥

यक ग्यान भक्तन की सेवा कर रे जब तेरी भक्ताई सुमरन कर हरि को
कौन भरम भूलो भटकत फिरत अष्टयाम याद रख राम राम क्रिस्न को परब्रह्म परमेसुर को
निरजन औ निराकार अलख जोति भक्त वत्सल गिरिवरधर को
तानसेन के प्रभु को ध्यान धर निस दिन घडी घडी छिन छिन वा विस्वम्भर को ॥५३॥

मुरली गान

ए आज बॉसरी बजाई बन मध कौन ढग कौन रग फुकि फुकि
सुनत स्रवन सुधि रही नहीं तन की भइ हो बावरी ब्रिन्दावन दिसि हेरि फुकि फुकि
ब्रह्मा वेद पढत भूले सिव समाध माह डोले सुर नर मुनि मोहे देवांगना देखे लुकि लुकि
सप्त स्वर तीन ग्राम इकइस मूरछना ले तानसेन प्रभु मुरली बजावत बोलत मौर कोकला
कुहुकि कुहुकि ॥५४॥

मुरली बजावे आप न गावे नैन न्यारे नचावे तियन के मन को रिझावै
दुर दुर आवे पनघट काहुके घटन दुरावै रसना प्रेम जनावे
मोहनी मूरत सावरी सूरत देखत ही मन ललचावै
तानसेन के प्रभु तुम बहु नायक सबहिन के मन भावे ॥५५॥

कान्हा ते अब धर झगरो पसारो कैसे होय निरवारी
यह सब घेरो करत हैं तेरी रम अनरस कौन मन्त्र पढ डारो
मुरली बजाय कीनी बोरि लाज दई तज अपने में गिसारो
तानसेन के प्रभु कहत तुमहि सो तुम जितो हम हारो ।।५६।।

भोर भए भैरव गावत भर मुरली में सो ब्रिन्दावन मध बनवारी
सप्त स्वर तीन ग्राम अकइस मूर्छना लाग डाट उरपति रसधारी
मधु माधवी गैरवी बगाली बरारी सैन्धवी यह गैरव की सगनारी
तानसेन के प्रभु तानन मानन मोह लीनो ब्रज नारी ।।५७।।

ए आजु भोर ही आए हैं कान्ह रे गुर्जरी के धाम
सप्त सुर सो गावत तानत मुरली में गुर्जरी नाम
उरपति रप लाग डाट आतक खातक स्वरान्तक
ओढव खाडव सो रिझावत बाग
तानसेन प्रभु नित प्रति आनन्द देत घर घर गोकुल नाम ।।५८।।

आज वन वन मुरली बजावत सूधी सूधी सुध तान के लिवेया
कान्धे कमरिया हाथ लकुटिया टेढे ही टेढे आवत नन्द को कुवर कन्हैया
सावरी सूरत माधुरी मूरत ब्रिन्दावन के बसैया
तानसेन प्रभु बनवारी गिरधारी ब्रजविहारी बलजू के गैया ।।५९।।

आज बजाई मुरली मनोहर सुध न रही कछु मो तन गे
हों यमुना जल भरन जात ही कान्हा ठाढो री ब्रिन्दावन मे
सुध न रही कछु ठगन की अगन में भूली काम काज सब धरग मे
तानसेन के प्रभु तुम बहुनायक मेरो मन मोह्यो आली मदन गें ।।६०।।

दीजिए जी हमें ब्रज बसबो बासरी न बजे बासरी बजाय कान्ह हमे विदा दीजिए
बासरी की टेर सुनत रही न परत मोपै कान सुन सुन बन बसेरो कीजिए
जैते उन सुर गाए तेते हम भेद लीने जहाँ राग तहा दाग रोम रोम छीजिए
तानसेन के प्रभु मया कीनी मो पर अग अग चीर चीर सिन्दूर माग दीजिए ।।६१।।

आज कान्ह ब्रिन्दावन मुरली बजाई सुखदाई है
स्वर्ग लोक नरलोक पताल लोक सब सुन धुन सुध बिसराई है

सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मुरछना बाईस सुरत उनचास कोटि साम रचन में छाई है
तानसेन के प्रभु रस बस कर लीने ब्रज बधु घर छोड स्याम जू पै आई है ।।६२।।

मुरलिया केसे बाजे रस सानी नरजि धों करै अम्रित बानी
अति ही नाद प्रवाह ताल मूल जिय धारे एसोरस कहा ते उपजत एसी स्यानी
सप्त स्वर तिन ग्राम इकईस मूर्च्छना यह गावत सब जानी
तानसेन के प्रभु मुरली अधर धरे जाकी भई लोक राजधानी ।।६३।।

मुरली बजावो रिझावो मन मोहन मधुर मधुर स्वर तान
सप्त तीन इकईस बाईस लाग डाट और मान
ठाह भेद विलम्पत आतक खातक स्वरान्तक ओढव खाढव पूर्न आन
तानसेन प्रभु सगीत गत ले त्रितत करत हो सुगान ।।६४।।

मुरली की धुन सुन चकित भई सब ब्रज की नारी सुध नर ही कछु आपन तन मन घर की
छक छक कर रीझ रीझ कर लेत बलाई कान्हर हरि की
एसें सुर ते बजावत जामें नीके सात सप्तक तान विरह भरी सुर की
जिनही सुन्यो तिनहू सुख पायो तानसेन प्रभु तान राधावर की ।।६५।।

रूप माधुरी

तै कहूँ देखोरी वनमाली आली वशी बजाय मन ले गयो
धुनि सुन कल न परत निस दिन उन बिन नैन तरसत चेटक से के गयो
जब नहीं देखत छिन न सुहावत भावत नहि गेह मेरे नैनन मे अटक गयो
तानसेन मैनन की सूरत कोटि बार डारौ सावरी सूरत जिय बस गयो ।।६६।।

बागे बनाए आए हो पिय लटक पाग की चटक अटवन मन
लटक लटक चलत चाल मटक मटक मुसक्यात अलसाने सरसाने नैनरी
नैंना नींद न आवै निपट सौत नेक छवि छत्रतन
तानसेन के प्रभु तुम बहु नायक रस बस कर लीनी तन मन धन ।।६७।।

ते कहूँ देखोरी नन्द को नन्दन कान्ह मटकी पटक के सटक गयो
माखन चोर चोर मन लीनो कीन्हो नेकु न डर नट ज्यों उलट के सटक गयो
मारग रोक रहत खोरन में सावरी सूरत माधुरी मूरत नैन दै अटक गयो
तानसेन के प्रभु तुम सब ही के नायक रस गोरस ले गटक गयो ।।६८।।

कहो जी तु कौन हो कहां ते आए कहा कित हो जावोगे सबेरे
हम तुमको पहचानत नाहीं न मेरे घर आवत दरेरे
लाल पाग पीताम्बर सोहत ओ वनमाल गरेरे
तानसेन के प्रभु नेक जो ठाढे रहे सब सखियन मिल हेरे ॥६९॥

प्रथम मजन अजन कर कर पहर चीरचार
आली मे दिल लेले कमल बहु लेहु आभूषन रूप सुधार कंठ माल रतन मुक्तन के हार
आही अति भायो दादरुद कटाच्छ सलामुन अलकेकन नाहत सेपिय प्यार
तानसेन गर तन जटित सोरहसिंगार बिए नर लोक इन्द्र लोकहूँ नहीं नार॥७०॥

एरो हो रीझ देख मोर ही उठके प्यारी कजरा द्रिगदोउ कर सा लागे मलन
पुन या छवि सी एँडात जभात नीर बही मानो कफुल मधते अलक सुत लागे चलन
चन्द्रवदनी म्रिगनेनी बिन देखे घरी पल कल न
तानसेन देखे रीझ मगन भए सुन्दर नार अबलन ॥७१॥

बाजे नीकी घघरिया ठुमकत चाल सहेली
अनुपम चाल चलत मतंग गत मानों पग परत पचेली
ज्यों जल में प्रतिबिम्ब देखियत चन्दकिरन तेरी जेहर बेली
ते रस बस कियो तानसेन प्रभु खानखाना पिय पाक अकेली ॥७२॥

कटाच्छ वार देत सर पल्लव वरतर लाए अजन सुधार
अजन किए चाहत एक कर दर्पन लिए वदन निहार
कटि केहरि कदली जघ सुक नासा पे वार
तानसेन के प्रभु एसी प्यारी सुन्दर निरख बलिहार ॥७३॥

जाकी पचरग किनारी सोई मेरे जान धनक भई बून्द खगजन को औ बोलत कोकला बेन
पोहपन के हार छूट रम रहे सोई बगपथ एसी लागी मेरे नेन सेन
यह छवि देख रीझे तानसेन के प्रभु एसी लागत मानो मूरत मैन ॥७४॥

सोहत भीने नार चन्द्र वदन धनक सी बनी ठगी स्रवन कुड सीस फूल कपोल लोचन रतनारे
नेत्रकमल नासिका सुन्दर अधर विदुम दर्सन दारुम चिवुक सुन्दर सुधार कट कोकला के सब्द सों प्यारे
भुज भाय एसे उतारे कुच कचन के बनाए साचे में ढारे
उदर अलप लक छीन कटिकेहरि कदली जघ तानसेन एसी प्यारी पर सर्वस वार डारे ॥७५॥

सोहत बनी बाल भाल चन्द्र भुव धनुप नेत्र कमल स्रवन कुंडल सुंदर कपोल विलोकत रभा रे
नासिका कीर विद्रुम अधर दाडम दसन चमक सुंदर जिरी सी चांदन स्वरन मानों कठ
कोकला रे
ग्रीव कपोत कुच स्रीफल नाभ कटि केहरि कदली खम्भ जाघ रचके धरे रे
तानसेन निरखि मेन रति लजित भई आवत गज मत चाल मन को हरे रे ॥७६॥

एक कर दर्पन एक कर कजरा अचरा गहै सुधारत
ललना एक काजल मे दूर करन उठत भोर मुखकमल पर सीसफूल अति विराजत
नगन जडत की उपमा जीय भइ पै मेरे जान बेऊ दूर रहे सकुचन लाजत
जे कहियत है मानो फुन दुरत हो तानसेन देखत दुख भाजत ॥७७॥

इन्दु से बदन नैन खजन से कठ कोकल बचन सुहाई
नास कीर अधर विद्रुम दाडिम दसन दमकाई
स्री फल उरोज ग्रीव कपोत बैनी नागन सी झुकी सुखदाई
कट केहरि कदली जघ पद सरोज पद्म सी तानसेन एसी तें बल बल जाई ॥७८॥

मन मोहन मनमानी याते तू प्रवीन सयानी
सुन्दर बदन चन्द्रकला लजानी तोसी तुहीं तिया और नहीं त्रिहूँ लोक सानी
तानसेन चिर चिर जीवो एसी प्रीति रही जों लों जमुन गग पानी ॥७९॥

झम झुम भर आए री नैना तिहारे
विथुरी सी अलकै स्याम घन सी लागत
अरुन बरुन नैना तेरे तामे लाल डोरे ताप
कहै मिया तानसेन सुनो साह अकबर उपमा कहा लों दीजै बिन अञ्जन कजरारे ॥८०॥

तुअ मुख औ चन्द्रमा विरचि तुलाकारी तोल्यो ओछो अकास गयो झुकि
धरनी रह्यो निकाई को भारो भरोरी पला
याही ते ससी घटत बढत है देखि देखि तेरो बदन निर्मला
तो सम नाहिन पूजिये सब मिलि कलकी नाम धरयो निसि भ्रमत फिरत न रहै अचला
तानसेन प्रभु सरस बस कर लीयो रूप आगरी रूप कला ॥८१॥

तेरे आली रूप पियके तन को खिलौनो निस दिन लिए रहत सग
कबहुँ वागो बनाय कबहुँ बीरो खवाय कबहुँ निरख रीझ दिन दिन बढत तरग

तुही तान तुही मान तुही कर रहो पाय मन अरपण
तानसेन प्रभु प्रवीन के चित चढ़ी ऐसो जैसे हीरा सीस लसत नग ॥८२॥

दीदार पुर नूर ऐसो जाके दरस को परसत नैना मेरा
लुभाय रहे ऐसे जैसे चन्द किरन पर चकोर
एक पल अन्तर रहत न सकि रहो तब भावत समाय
तन मन धन जोबन वाको कोर
जाकी अम्रित वचन स्रवन सुन हाल मेरे प्रान लेत झकोर
ऐसा जोहै तानसेन प्रभु सो दिन दिन सो तन मो चकोर ॥८३॥

हारि हमेल सों नीकी लागत और गोरे हाथन चुरी हरी
कंठ पोति बदन जोति कानन बीरी और बेसर केसरकी
खोर तापर लटपटात लटकत लट सुथरी
भुज म्रिनाल स्रीफल से कुच कटि केहरी जंघ कजरी
चन्द्र बदनी म्रिग नयनी बोलत अम्रित बैन मजरी
तानसेन प्रभु रिझाय लागी सोलह सिंगार बत्तीस आभरन सजरी ॥८४॥

भोरी भ्रमर पायरी काजर कहैं कहै टेरे
मोर मुकुट सीस स्रवन कुन्डल कटि मे पीताम्बर पहिरे
ग्वाल बाल गैया मन्डल मे आवत ब्रज नेरे
तानसेन प्रभु मुख रज लपटानी जसुमति निरख मुख हेरे ॥८५॥

नैन सलोने री तेरे नैनन हो हरि बस कियो हरि
दीरघ जमाल विसल विलोल...... . .. ..
भौहैं धनुष औ चन्द सो बदन कंचन को तन तेरो कमल कलिसो उठो हियो
तानसेन प्रभु जान बूझ कर बोलबे को नेम लियो ॥८६॥

ऐरी तू अग अग रानी अलिही सयानी री तू पिय मनमानी री तू
सोलह कला समानी बोलत अम्रित बानी तेरो मुख देखे चन्द जोत हू लजानी री तू
कटि केहर कदली जंघा नासका पर कीर वारों स्रीफल उरोजन की छवि आनी री तू
तानसेन कहै प्रभु दोऊ चिरजीवी रहो तेरो नेह नेह रहै जो लौं गंग जमुन पानी री तू ॥८७॥

तेरे नयन सलोने री जिन मोहे स्याम सलोने
अति ही दीर्घ विसाल विलोल कारे मारे पिय रस रिझये कोने

वदन ज्योति चन्द्र हुते निर्मल कुच कठोर अति हो। मान
तानसेन प्रभु सो रति मानो कचन कसौटी कसाने ॥८८॥

ओढे सारी प्यारी केसर की रंग छिरकी छिरकी
चितवन मे रंग कीन्हा मोहन को याते फिरत थिरकी थिरकी
अबीर गुलाल लिए कर भरी रंग की कमोरी सिर ढिरकी ढिरकी
तानसेन फगुवा लाहा याते डालत हिरका हिरका ॥८६॥

अहो टेढी पागरि नागरि नारि सीस धरे जैसे टेढी पाग को राखे रहतु कि चिकनिया
दुरि दुरि मुरि मुरि नतिया करति अगली पछिलान सो दोउ करतारो मागति एकनि
सो नैन से नव नेनिया
लाही को लहगा पचरंग चूनरि कठ छरा औ ताबीच मनिया
तानसेन प्रभु रीझि चकित भए तुहीं सबनि मे बनि बनिया ॥६०॥

मान-प्रसंग

तो कों प्यारे पठई किधौं तू आपते आई मनावन
प्रानेसुर के सुख की बतियाँ ए न होवे री हो नीके जानत जैसी तू मोसा री चातुरी बनावन
या मुख को अनकान न करही अनमिल पिय से कहो न परत तेरी भी हेत नावन
कहा कहो राजा राम सों तोसों री पठावे हमरे गृह बनावन
तानसेन कहै आवत आपनी औरन के चित लावत मुह की बात कहलावन ॥६१॥

जिन करो मोसे झूठि बतिया तिहारी प्रतीत मोहि नेकु नहि आवत
वै तो लगर कान्ह नहि छाडे अपनी बान वहै सौतिन के ग्रिह जावत
मेरे प्रतच्छ आय लाखन सोहैं खवावत पग परस परस निज चूक छमा करावत
बार बार को रिसावन तानसेन ए मोहिं नाहीं सोहावत ॥६२॥

मारग के वागे राति के जागे छूटे बन्दन अरसात
जम्भात बहिया गहन आगे आवत सकुचन लागत
छियो छाडो अचरा मोरी कुकिए में आनि मुकावत
लाख जो जतन करो तऊ न बोलिहों लाल ए तुम बातें कब के लावत
तानसेन प्रभु रव निरवन तुम महि रिजाए कहा पावत ॥६३॥

जो जो बचन कहत हौ री तोसों तेइ तेइ बचन तू मान ले सयान
मेरे कहे तू उठ चल री ललना धरे ही रहैंगे तेरे जिय को गुमान

कल न लगे और तै तेरी तेरो है जीवन प्रान
तानसेन तेरी कहा लौं अस्तुति करे क्यों तू जान हो रही अजान ॥९४॥

मन ही मन मे तू रार रही भर आप आप अंग करके
सबन ते दुराय बिराय कर रही सो अरघट परघट नैन बताय देत
प्रानेसुर की प्रीति अति गुपत कियो चाहे तरी तेरे अगपाल ते गव जान जान लेत
जो लौं न सीखाई तो लौं आई नेह नजर जगम जगम हित संगेत
तानसेन प्रभु के रंग रंगे जे अरन बरन सेत अरोत ॥९५॥

री या तन को मत कर मान गे नहीं चाहे मन मन करत हो मान
मानो मेरी मति मोहिनी सो मति मन में मानी मत करो मोहन सो मान
नुर मुर चितवत मनही मन मनभावन को माधो मुकुंद वै है मथुरापति मुरारि नर दान
मान री मान मेनका सी माधुर्यता तानसेन प्रभु मनमोहन को मान ॥९६॥

है यह माननी कों अति ही हुलास जिय मनहू न माने पिय कैसेक मनाइये
बहोत ही सीख दई पठ चल फिर प्यारी ताके पाय पर धरी शीस नवाइये
माने न मनायो नेकु रन पच हारी कैसे कर ताको समझाइए
तानसेन प्रभु प्यारे आप नेकु चलिए नल पायन में सिर नाय बिनती कराइए ॥९७॥

आज कहा तज बैठी है भूषन ए से अंग कछु अरसीले
बोलत बोल रुखाई लिए तुम काहे कुठंग किए अहसीले
क्यों न कहो दुख प्रान पिया सों अँसुअन रहे भर नैन लजीले
तानसेन सुख होवै जिनके तिनके मन भावन छैल छबीले ॥९८॥

ए री अब लुक भज जावे सनमुख होवे पियारे सों सुरंग भरी कीजिये बतिया
मान सीख मेरी काहू की कुमत न लीजिए छाड यह हठ चल लिपट लाग पर गुलाल की छतियां
देख तू एसी फुलवारी सी हो रही कर अपवस सुन्दर मे मनाय रही सखियां
कब के जोवत वार प्रानेसुर प्यारी जान बूझ के काहे को करत है तानसेन प्रभु सों घतियां ॥९९॥

जोवन के जोर तोर कैसे समझाय रास्यू मेरो कह्यो मान प्यारी आज तेरो दावरी
तन मन धन नोछावर करहूँ बीत गई रैन तासों छूट गयो चाव री
लाल यह मनावत तू नही मानत उठ री मनाए नार घने समझाव री
तानसेन कहे प्रभु सो तजो मान हाल से गवाय लाल फेर पछताव री ॥१०७॥

समझ समझ आली प्रान जात प्यारे मोहन बिन
बहोर न यह रंग बहोर न यह रूप बहोर न रहे आली यह दिन
मजुगन चल टरत छिन छिन तेरो री मान बढ़े जोबन
तानसेन के प्रभु तुम बहु नायक मान न कीजे आली किन किन ॥१०१॥

विरह-वर्णन

नींद न आवत पिय बिन देखे मोरी आली कैसे परे अब चैन
घरी घरी पल छिन याही बीतत जात रहत मारग जोहत नैन
बिन देखे कल न परत है मानो मन मोहत है मैन
अब कब धों मिलहैं प्रान प्यारी यह प्रभु तानसेन ॥१०२॥

कठिन माई पिय को री नेहरा गेहरा नहीं भावे रहो नित उदास
सबन समान मेरे जान आली अरब ऊरब दोऊ सास
मोहे जगत रैन चैन नहीं नैनन ताते सुपनेहूँ में कहा सो भई सुपन नहीं आस
तानसेन प्रभु समझ समझ कियो भोग विलास ॥१०३॥

आज हरि लिए और अन हिली गइया एक ही लकुट सो हाँकी
क्यों क्यों रीझी मोहन तुम सोई रया अनुराग हम पर देखत मुसाकी
हम जो मनावत कहुं तुम मानत बतीया गढ बाकी
बिन नहीं चरत बछरा नहीं चोखत हम कहा जाने को है कहाँ की
तानसेन प्रभु वेग दरस दीजे सब अन्तर पट झाकी ॥१०४॥

माइरी महा कठिन मित बिछुरे की पीर
घड़ी घड़ी पल छिन जुग से बीतन लागै नैनन भर भर आवत नीर
जब से प्यारो भयो न्यारो कल ना परत मेरी वीर
तानसेन के प्रभु वेग आवन कीनो जियरा धरत नहीं धीर ॥१०५॥

मेरे मन बौराव राखो इन गोविन्द नैनन
हों पाछे पाछे पछताय रही वे तो स्वामी कहियत है मन बस कीनो मैनन
सूरत ठगोरी मोहे ठग जों चले सो पीर हरन चितए मो तन सूधे इन नैनन
तानसेन को प्रभु सुख सागर सुनो वे देखे ही निहचे चनन ॥ १०६॥

तनकी तपत तब ही मिटेगी मेरी जब प्यारे को द्रिष्टि भर देखोंगी
जब दरस पाऊ प्रान पीतम को जनम जीतब सुफल अपनो लेखोंगी

अष्टयाम मोहि को ध्यान रहत ताको आली को ला भेटागी
तानसेन प्रभु कोउ आन मिलावे ताके पावन सीस देऊंगी ॥१०७॥

ए सखी नन्द कुमार बालापन में मेरो मन हर लीनो
जिय अकुलात औ नैनन सो नीर जात मेरे हिय को दुख कीनो
सांवरो सलोनो स्याम नाहरोस ठाढो भयो मोको लाग पास माधरन को रस लीनो
नैन सों नैन मिलाय हिरदय सो हिदय लगाय तानसेन नटी नजाग जादू सो कीनों ॥१०८॥

कौन दिसा है अजहूँ न आए सखी री हरि न आए
औ जो जान जिय ध्यान मेरे रसना नाम लियो री उनही सो मिलाए
म्रिग मद घनसार कुछ चन्दन नहीं ले लाए
एसी को क्रिपा करो कारन के प्रभु तुम हमहू मगल गाए
बल था चन्दन छिरकन्दि की इन्हो से लिलाए
तानसेन प्रभु वेग दरस दीजै हमही मगल गाए ॥१०९॥

बादर आए री लाल पिया बिन लागे डरपावन
एक तो अंधेरी कारी बिजुरी चमकत उमड़ घुमड़ बरसावन
जा दिन ते पिया परदेस गवन कीनो तब ते बिरह भयो मेरे तन तापन
सावन आय अति झर लावत तानसेन न आए मन भावन ॥११०॥

इन अखियन मन मे बिरह की बेल नई
सींच सींच जल असु अन पानी री दिन दिन होत नाह नई
उलहन पातन नए सो बून्द पताल गई
तानसेन प्रभु तुमरे दरस बिन सब तन छीन भई ॥१११॥

आइए जु कैसे आवन पाए भलो हो आए मेरे नवल लाल
तुम हो चतुर सुजान बूझत सब गुन निधान महा जान गूरत हो अत रसाल
हमसो अवध बद अनत बिरम रहै ऐसी न कीजै दीन दयाल
तानसेन के प्रभु तुम बहुनायक दीजिए दरस कीजिए निहाल ॥११२॥

सपनेहू न बिछुरिये हो हरि सो मन यों बाछे
स्यामसुन्दर बहुनायक सुखदायक सबहिन को मोहि कबहूँ न पूछे री आछे
नन्दनन्दन जु अनत रस कीन्हो काम अराधत री मोरा साल दूजे ताछे
तानसेन प्रभु के बिछुड़े नरद भई मोहि निहोरन आवे री जा काऊ पाछे ॥११३॥

बादर उनइ आए सो पिय बिन लागे डरपाए
ऐसी अंधियारी कारी डरपावनी लागत जिय को भा.
ते समै अवध बन्न गए हरि न पाए
दादुर पिक मोर सोर करन लागे विरहा तन लागे दुराए
तानसेन के प्रभु तुम नाके जानो भली लीना सुध सो अजहू न आए ॥११४॥

नायिका

ए मेरे भाग जागे प्रिय भोर ही सुध लई
मै इतनो भलो मनावत हूँ बलमा ही तुम पर बल गई
अधरन अंजन महावर भाल मति गति औरे भई
तानसेन के प्रभु ठाढे रहो बलैया लेहौ कह गई तिय नई ॥११५॥

मोसों ज्यो अवध बद गए साझ को यह आए भोर भए
एसो को चतुर सुघर नार जिन तुम बिरमाए ऐसे सुख दए
अधरन अंजन कहुँ पीक पलक लीक औ न सोचित हित बहु भाँतिन लए
तानसेन के प्रभु वहाँ ही पाँव धारो ए जहाँ किए नेह नए ॥११६॥

सु नजर भई अपने प्यारे को काहे कु चिन्ह दुरावत मोते तबही जानी चतुराई
रैन जागि पगि पीतम संग मोसो छिपावत गात नैन उनीदे तेरे लेत जभाई
सुन्दर म्रिगनैनी बोलत पिक बेनी प्यारी रंग भरी मूरत मन समाई
तानसेन पिय बस कर लीनी धन धन महारानी सुखदाई ॥११७॥

मोसों जो अवध बद गए साँझ के भोरहि आए
ऐसी कौन चतुर नार जहाँ तुम रस बस किए ऐसे नेह नए
अधरन अंजन भाल महावर तिन तिलक ठए
तानसेन प्रभु जावो जी जावो नई नार रंगए ॥११८॥

कौन सों रित मानी साँची कहो मन भावन
निसि के जागे अनुरागे आए हो झुकन लागी
तब झूम झूम आए हो मोहि रिझावन
बचन बनावत बन नहि आवत कहैं देत नैन बैन दरसावन
तानसेन के प्रभु वहीं सिधारो जहाँ सारी रैन रहै रति रन जगावन ॥११९॥

अनत रिझुमान आए पिय मोरेहि घर
मोहि तो गुन भूल गई री मोहन मूरत देर
जिय की ओर गो गूढ़ की हमला केत है टेर
तानसेन प्रभु ताहि पे सिधारिए तुम मन रहो जिन तन नर ॥१२०॥

लाल गरमाने भोर ही आए
कौन नाम हित चित सों चाहे रसमा रैन जगाए
ढिग ढिग काजर फैल रहो है जावक अधिक सुहाए
तानसेन के प्रभु वहाँ ही सिधारो लाल तिया मन भाए ॥१२१॥

धन धन मेरो भाग मोर भए आए लालन सब निस कहा जागे प्यारे
आलसवत जभात जात मलीन गात साँची कहो बात नन्द दुलारे
लटपट पाग खुल रही पेचन सों अधरन पीक लीक धारे
तानसेन के प्रभु तुम हो नागक साँचे लाल साफ के तिहारे ॥१२२॥

वा दिन नेवल लाल जानूँगी जा दिन पीतम तो होय मिलन
तन मन धन नोछावर करहूँ चरन कमल पावड़े बिछाऊँगी नयन पलन
अनेक दिनन में प्यारे मोहि मिलिहै लेऊँगी बलिया दोऊ करन
तानसेन के प्रभु सुधा की दृष्ट करि मोर भृकुटी हलन ॥१२३॥

सोंह खात लोलरात बाल कहत अरसात आए भए प्रात डगमगात गात
ऐंड़ात जभात बकधकात मुरछात घरधरात गरभरात
तहा ही जानो जहा नवल तिया संग जागे रात
याही ते मुसकात मेरो मन भनात बात कहत हँसात
मोहे न सोहात तहाँ ही सिधारिए जाको मन ललचात
तानसेन के प्रभु मीठे वचनन बतरात झूठी झूठी सौंह खात
तेरो सो मैं तेरो सों मैं अब नहिं जात ॥१२४॥

परस्पर दम्पत मिल करत सिंगार एक अगोछा ले मुख पोंछत एक सुधारत पेंच पाग
सब निस जागे प्रेम रस रूप मधु छके ताते झुक झुक परे लाग लाग
ले दर्पन आपस में निरखत प्यारी प्यारी ले बीन बजावत गावत राग
तानसेन प्रभु दोनों चिर जीव रहो देत दरस भक्तन को धन धन धन धन भाग ॥१२५॥

अति अलसाने में जाने पिय अनत रगे जू रगे हो रग राग के
रिझ हित काहू पे रीझक से वाद जानत रस के बरखाई आज भमर काहू बाग के
दोष तिहारो नाहीं दोष काहू तिया को तुमें सिखाई सीख अनुराग के
तानसेन प्रभु तुम बहुनायक बात कहा बनावो सुधारो पेच पाग के ॥१२६॥

मोसों अब वदि गए गुसाई रहे कवन भाति
रैन दिना मग जोवत जात एसी कौन तीय जिहि रिझाय कीनो मात
अजन घर माल महावर नवल तिया ललचात
तानसेन प्रभु वहीं सिधारो जहा जागे सारी रात ॥१२७॥

सोवत उठि रैन रस लेत अति सुन्दर सोहत बदन प्यारी को
लै दर्पन मुख देखत अपने मन में सोच सकुच वही नैन होत लजी है नारी को
सुकमल बदनो मन हरनो मोहिनी मूरत पिय रस रस कर काम आतुर चित हारी को
तानसेन प्रभु सग रग रात जागी पायी आलस जात गभात तिरछे नैन निहारी को ॥१२८॥

धन धन भाग सुहाग तेरो तू पिय के मन भाई
धन जीवन तेरो री चतुर सुघर नारि जे पिय तेरी करे मुख सों बडाई
धन जनम जीतब धन तरुनाई ते रस बस कर लिए पिय सुखदाई
धन धन तानसेन प्रभु को रिझाय लीनी तुही सबन मे देत दिखाई ॥१२६॥

लाल मया के बोलाई सो तन दुख पायो
जे मेरो हितु तिनके आनन्द भयो म्रिदग बजायो मन भाए मगल गायो
पिया की मया मो पै कहि न परत है सब तियन छाड मेरे ग्रिह आयो
तानसेन के प्रभु पलकन सों मग झारो जीवन जनम सुफल करायो ॥१३०॥

बरसाने तें आए अरसाने हम जाने जू लच्छन तिहारे पहचाने
कहू कजर कहू पीक लीक अन गन स्वभाव न मोपै जात बखाने
नयनन नींद ध्यान मन हिरदय बसत तीय ताही के लगत गुन गाने
धन्य तेरो नेह तानसेन के प्रभु ऐसे नट नागर को छल कर नाच नचाने ॥१३१॥

धन भाग मेरो धन आवन धन धन पति प्रेम भयो
मन दरस देखत इन अखियन सो तन इन अग सग ते विरह गयो टर
इन आनन्दन आनन्दी बादी भइ हों इन चरनन रहन कहत गर बगर अगसर अगसर

जनम जीवन सुफल सखी भए । मोहन माधा कीनी लीनी रस बस कर
तानसेन प्रभु सुख के गो । नैनन सैनन हाव भाव कटाच्छन सौं मोह
लीनी जब मिट्यो दुख डर ॥१३२॥

यश-गान

सुभ नखत लगत बैठो राजत
छाजत है सब मूलक राजकेज निधना ।क.ए
सब छत्र धरे ते सब लागे सब सेवा करन
धन धन चक्रवर्ती नरेस अकबर
दुखहरन तानसेन ऐसो सुर पुरी नर नरेन्द्र गरन ॥१३३॥

अकबर प्राननाथ अनाथन को यह नाम ए जापे अष्टसिद्ध नवनिध पाइये
परम दाता ग्याता सब ही को मन रजन यह दुख भजन कल्पब्रिच्छ प्रतच्छ धाइये
अन्तरयामी स्वामी जग काज करवे को ए रस नाल बनाइये
जलालदीन महम्मद ऐसे दाता किए तिहुँ लोक म यश गाइये ॥१३४॥

सफरगज बख्स सेख फरीद आलमपोर नीद ऐसो पै लीजे
निवाज रहै जगमें लाज जाए तन ते रज
जेइ जेइ मागीए तेइ तेइ फल पाइये तन को करत दरिद्र भज
तानसेन कहै एते ही मागि ते तुम पे जो हो मद तन पु ज ॥१३५॥

इत भान उत साह अकबर दो दरस जो देखे सोई होत पवित्र
इन्दे रजनि मन्द सुप के वर पावे सुफल आनन्द
वे तिमिरहरन ए दुख भजन ताकि साहै फरिगत साह दिनों मकरद
वह सहस किरन प्रकास कीनो अतिबुध रोष्ट गयाधर जगनन्द
तानसेन कहै कहाँ लो अस्तुत करे कारन हार निकार दुख दन्द ॥१३६॥

नेत रतन जगत मे उते प्रगट किए प्रथमे कामधेनु सुर निधने बनाए
पुनि कीने विप वारुनी अमी औ सुधाकर चारो स्तान चिरावनी पर बाजीरथि रथ ते पाए
धनुष धन्वन्तर ठरन सुरन गज स्त्री गनि रभा छद भाव ध्रुपद गायन ले बसाए
तानसेन कहै कम्बु कठ ते हुमाउ को नन्दन कल्पब्रिच्छ अकबर पारस पाए ॥१३७॥

ग्यानपति महेस विद्यापति गनेस प्रिथवी पति नरेस बलपति हनुमान
सरिता पति सागर गिरिवर पति सुमेर राजन पति इन्द्र धर्मन पति दान

बाजन पति मिरदंग पन्नगपति पान पछिनपति गरुड़ भक्तन पति कान
साहब पति साह दिल्लीपति पातसाह तानसेन पति अकबर अर्ज्जुन पति बान ॥१३८॥

प्रथम ही आनन्द रच्यो नीकी घरी महूरत पचो सब्द बजाए
देस देस के याचक जेते आवत तेते पावत गज तुरंग नग दान मुक्ता बरसाए
अष्टो धरन मध्य नाम ज्योति अग्नि के भाखे को विधि ने बनाए
तानसेन कहै युग युग चिरजीव रहो राजा राम तेरो यस तिहू लोक छाए ॥१३९॥

जै गुनीजन गुरु पावै गावै नीकी तान गुन सो रिझावै
जब बजावै बीन अच्छी नीकी परमान सोच समझ तान
लेत ध्यान धरत जियन में जब सुर सगत पावै
दुरन मुरन सों वाको समझ आवै
सप्त तीन इकईस बाइस लाग डाट खुली मुदी दरसावै
सप्त ध्यान संगीत मत करके ता तानसेन प्रभु को रिझावै ॥१४०॥

तू असमान को दूजो रच्यो नाहन गुन समर्थ आयो है धर्मराज गरीब निवाज
तुम सम और कौन महागान गुन निधान दाता विधाता रच पच विरंच ग्यान समाज
भरन पोषन दुख दारिद्र हरन षट् दरसन निवास सकल साज
तानसेन कहै प्रभु हिंदू सुलतान भक्त उधारन भगवान ताने प्रगट कियो सकल गुन साज ॥१४१

ईद मुबारक होवै जुग जुग नित नित तुमको महरबान
सकल विद्या गुन निधान अति ही आनन्द करो देत गुनीन को आदर मान
युग युग जीवो कोटि बरष लों देवो करो नित दान
तानसेन कहै सुनो साह अकबर चहु चक्र राज करो मरदन महामरदान ॥१४२॥

सुन्दर अति प्रवीन महा चतुर अचल राज करो रवि ससि जौ लों भूमि पर
चिर चिर जी रहो जौ लों ध्रुव धरन तरन पवन पानी राजन मनि राजा रामचन्द्र रघुबर
तो सो तुही औ दूजो नाहीं मेरे जान सब जग को विस्वम्भर
तानसेन तोरी अस्तुत कहाँ लौ बखाने भक्तवत्सल तोहै ध्यावत सुर नर मुनिवर ॥१४३॥

जल थल औ जहाँ तहाँ इत उत जित तित नित नित तुहीं भर रहो सहनसाह सतार रब
तोसों और नाहीं दूजो तोसो तुही नरेस तु ही दीन तु ही गुनी तु ही धनी तेरे सरब

ना गोपें जप तप न संयम ना तीरथ ब्रत कुआो दरा
तानसेन को साहब दुखियन को दुख दूर करनहार गजन गरीबन को गरब ॥१४४॥

ए आयो मेरे मह छत्रपति अकबर मन आयो करम जगायो
पाछलो पुन्य मेरो प्रगट भयो ताते अर्थ धर्म काम मोच्छ मन मांगो चारो फल पायो
काहू की न इच्छा रही तेरे दरस देखे पाप तज पार्थराज अनल कर पठायो
तानसेन कहै यह सुनो छत्रपति अकबर जीवन जनम सुफल कर पायो ॥१४५॥

ए आयो आयो रे बलवंतशाह आयो छत्रपति अकबर
सप्त द्वीप औ अष्ट दिसा नर नरेन्द्र भर भर शर शर डर
निस दिन कर एक छिन पावै बरन न पावै लंका नगर
जहाँ तहाँ जीतत फिरत सुनीयत है जलालदीन महम्मद को लरकर
साह हुमायु को नन्दन चन्दन एक तेग जोधा तरूवर
तानसेन को निहाल कीजो दीजो कोटिन जरजरी नजर कमर ॥१४६॥

नवरंगी तेई अंग कीनी गुनी कवि साधे आराधे जो जाने पकर
कौन विद्या अत पूरी नर ऐसो कौन को पूरी सरस्वती सिद्ध ना अगी
विषभ वाहन सीस जटाकर डमरू त्रिसूल खप्पर चन्द ललाट बाघाम्बर
गंग अरधंग धरी हिये मुंड माला सोहै अष्ट लोचन तूही है हर हर
औ सुर नर मुनि गुनी गन्धर्व ते तोहि जपत है दूसर तन शेष नलनाग भंवर विस्तर
तापर हित निवाजनो बात तानसेन को देहु इच्छा भर ॥१४७॥

छत्रपति मान राजा तुम चिरजीव रहो जौं लौं ध्रुव मेरु तारो
चहूँ देश ते गुनीजन आवत तुम पे धावत पावत मन इच्छा सब ही को जग उजियारो
तुम से जो नहीं और कासे जाय कहूँ दौर वही आजज कीरत करे गावे इच्छा करनहारो
देख करोड़न गुनी जनन को अजाचक किये तानसेन प्रति पारो ॥१४८॥

कासी कास्मीर कामरु करनाटक बूंदी बुंदेलखण्ड
मालवा मुल्तान मेवाड़ खुरासान बलख बुखार गोलकुण्ड
बीजापुर बंग दव दक्षिन रूम स्याम मरत सम उण्ड
कहत तानसेन सुनो हुमायु के नन्दन जलालदीन अकबर जाके डरडरात ब्रह्माण्ड ॥१४९॥

प्रकृति

सघन बन छायो द्रुम वेली गाधो भुनन अति प्रकास वरन वरन पुष्प रग लायो
कोकला खजन कीर कपोत अति आनन्दकारी चहु ओर फर बरसायो
सप्तसुर तीन ग्राम इकेइस मूर्च्छना उक्त युक्त लाग डाट कर देसायो
तानसेन कहै सुनो साह अकबर प्रथम राग भैरव गायो ॥१५०॥

होली-गान

श्री नन्द को नन्दन खेले जी हो हो होरा
ग्वारबार सब सग सखाले ब्रज की बीथन ही डोरा
ताल पखावज आवज बाजत ढोलक औ तमोरा
बीना रबाब मुरफ मुरली डफ मधुर मधुर धुनि थोरा
कुकम केसर चन्दन वन्दन अबीर गुलाल भर झोरा
तानसेन प्रभु फाग रच्यो है खेलत किसोरी किसोरा ॥१५१॥

चलो तुम हूँ देखो कैसी मचो होरी गावत रग महल मे नारी
एक गावत एक म्रिदग बजावत एक नाचत दे दे तारी
अबीर गुलाल केसर पिचकारी तक तक मारत गावत है मब गारी
तानसेन प्रभु खेल रच्यो फगुवा लीन्हों भारी ॥१५२॥

रैन बिहाय गई भोर भयो होरी कहाँ खेले प्यारे
कौन नवल तिय पिय विलम्बाए गिनत बीते माहे सब निस तारे
कहूँ कज्जर कहूँ पीक लीक अधरन अजन माल महावर धारे
तानसेन के प्रभु तुम बहुनायक साझ के गए हो सिधारे ॥१५३॥

लगर बट पार खेले होरी
बट घाट कोऊ निकस न पावे पिचकारिन रग बोरी
मैं जु गई जमुना जल भरने गह मुख मीजी रोरी
तानसेन प्रभु नन्द को ढोरा बरज्यो न मानत गोरी ॥१५४॥

स्फुट,

आनन्द भयो आज आयो विजय कर घर घर मगल चार
अनेक गज तुरग साजु नौबत नगारे बाजे गज तुरग साजे सवार
तन बीतन घन शिखर नाना विध बाजत सुरपति के द्वार

ब्रह्मा वेद पढे नारद मुनि गावे राजा रामचन्द्रजी के द्वार
तानसेन कहे सुनो साह अकबर दसहरा सुफल भई तिथि वार ॥१५५॥

घर घर ते व्रजवनिता जो गन निकसी आज कनक थार भर भर लाल नौछावर करत लाल की
राजपुर लो गावत कठ कोकिला लाजत उमगत आति रसाल गमक तान ताल की
मदन महोत्सव साज समाज गोपीन निन्द मिल नाचत चाल मराल की
तानसेन प्रभु रस बस कर लीने तिरछी चितवन मदन गोपाल की ॥१५६॥

खरज साधे गाऊ मैं सवनन सुनहु सुनाऊ
वेद पढाऊ जोई जोई कहै सोई सोई उचराऊ
भैरव माल कोस हिंदोल दीपक श्री राग मेघ सुर ही लै आऊ
तानसेन कहै सुनो हो सुघर नर यह विद्या पर नहीं पाऊ ॥१५७॥

सब समूह करिहै तू नर नारी रहसन लै चले करन लालजे के मगन की
सहानाईए कर लिए औ टकोरन बीन रबाब गारन धी माझ झनकारन की
बाजत ए धूम धाम धावत याके अनेक दल गज दल पय दल अगर दल रागन की
तानसेन सब नगर नर नारी प्रफुलित भए गुनीजन गावत छिरकत अतर गुलाब
सुवास आवत सुगमन की ॥१५८॥

नाद समुद्र अथाह सुनीयत है ताके राहल करन को लागे गुनीयन के मन
अकार को जहाज कीनो तीन ग्राम सप्त सुर लै लै ताल मूल तो बेठी सौदागर नन
इकईस मूरछना बाईस सुर तेतेहू मिलाग भए बन ठन
ओडव खाडत सम्पूरन को ध्यान विवादी अगरेजी सन
अलाप की धमक सौं उनचास कोटि तान तुपक छूटन लागी तानसेन बजन ॥१५९॥

जै गुन विवेक कर साधे तै चतुर अति प्रवीन हैं रहत नीको
तिनमे सुध सागत अति बहोल पइयत है तार तान की गहन ही को
सप्त सुर तीन ग्राम मुरछना अति कोटि तान औडव खाड़व सपूरन ही को
वादी समवादी अनवादी विवादी अस न्यारा तानसेन रागन जी को ॥१६०॥

नाद समुद्र परखन पायो सीखत पंडित कहायो धारु ध्रुपद मार जुगन ठगायो
सप्त गुप्त सपत प्रगट नायक गोपाल लायो ब्रह्म वेद उचारायो सारग गौरागो गागन भाव
तेरी मार जगत ठगायो

जित तित रिष्टि गुनी ब्रह्म भेद रुद्र मुनि ते उपज के गायो पापान पिनलायो
कहै प्रभु तानसेन जिनही रच पच गायो तिनही रिझायो ॥१६१॥

मैं तोहि पूछू गायन नजायन कौन गुरु ग्यानी सगी कौन मूर्च्छना कौन सुर कौन ग्राम विस्तार
कौन मूल ताल कौन प्रथम उचार कौन गुरु को प्रकार
कहा राम नसत कहा रगत सगत कौन बाडी मे पवन धार
कहा तीस चीस नेम वरस उरपति रप लाग डाट आतक खातक ओडव खाडव सम्पूरन
तानसेन तत वितत धन सिकर तार ॥१६२॥

जब करता करम करे तो सब कछु पावै नाद विद्या सुद्ध/सगत आवै
जान बूझ भूलो फिरे रे क्यों न वोही नाम जा सुमरत ही सुर तान गावै
से नर मुनि गुनि पच पच हारे बिना कादर कोउ ना बतावै
तानसेन प्रभु निसि वासर अब तेरो नाम ध्यावै ॥१६३॥

नाद अगाध सम्पूरन सोध साध समझ मोच ताल विस्तार ओंकार
सुर सनार सप्त सालिल सुर सुर सों सगत नाद विस्तार
स्वराध्याय रागाध्याय तालाध्याय त्रित्याध्याय प्रकीर्न प्रबन्ध म्रिदगा
ध्याय सप्ताध्याय विचार
गुनी गन्धर्व सुर नर मुनि पच हारो केउ न पायो तानसेन अपरम्पार ॥१६४॥

भांति भाति के भरे घडे ऐसो विधना कुभार
एकन उत मनवावत एकन मध मनावत एकन नेक सुनावत एकन रासो
खाली कर मिक्दार
एकन देत रीझत एकन लेत रीझत एकन को करोरन दए एकन को हाथ
पए मागते भीख द्वार
एकन को नरक एकन को सरग देत तानसेन प्रभु रचो ससार ॥१६५॥

प्रथम नाद सुर साधे आराधे सोई गुनीयन में गावै
सप्त सुर तीन ग्राम इकईस मूरछना तिनके व्यौरे तब कछु पावै
आरोही अवरोही उलट पुलट के होत द्रुत मध विलम्बित आवे
तानसेन के प्रभु महावाक् वादिनी प्रसाद तें गान कठ करावै ॥१६६॥

साधो विद्याधर गुननिधान गुनदाता सरस्वती माता को कर अदेस
नमोनमह रिद्धि सिद्धि के स्वामी सकल विद्या प्रवेस

ज्यों इनको ध्यावे मन इच्छा फल पावे दूर होत तन के कलेश
तानसेन प्रभु तुम ही को ध्यावै ब्रह्मा विष्णु महेश ॥१६७॥

राग जुगत सों गाय सुनावे ताल मूल सुर सुर सागत गाने
दुगन तिगन चौगन सो भेद जनावे जब लाग डाट परमान देखाने
अपने गुरु ते न सुनी कहीं न ताल मूल को कोगे न पाने
तानसेन कहे होवे गुनीजन छत्रपति अकबर को रिझाने ॥१६८॥

वा दिन केवल नाहि जइए री जा दिन पीतम सों होय मिलन
तन मन धन सब वारूंगी इन चरन कमल ऊपर पांवड़े बिछाऊंगी नैन पलन
कारन मोहन अपनो ही गर डार लेहैं सरस रस ललित अभरन
कहै मिया तानसेन कब धौं मिले आय दरस परस इन राजोगन ॥१६९॥

नाद समुद्र अपरम्पार काहू न पायो पार अपार भेद
केते गुनी गन्धर्व यच्छ किन्नर रचि पचि हार रहे सुर नर मुनि गुनि चारो वेद
सप्त सुर सब्द ब्रह्म निरंजन निराकार निरभय भेष रचि पचि हार याके रीत
तानसेन जन आग्रह विनय करत धन धन नाद अलख अभेद ॥१७०॥

नाद गढ़ मन राजा राज राजत छहों राग उमराव बैठे दुरजन पर नीके रच्छा करत
नाना राग रागिनी छतीस तुपक भर भर धर सोहै इकइस मूर्च्छना
गीत माल धाव धोवा मारा पर मारा चतुरंग जम्नू राग जलवै पारसी छन्द रच्यो सत
जजाल त्रिवट रामचगी संगीत दारु तानन गजवारा ठौर भुगरागोला भरत
सप्त सुर सप्त पौर ओडव खाड़व किवाउ आरोही अवरोही खाई ननाई
कौल तिलाना कोतवाल ध्रुवपद वजीर प्रबन्ध की निसानी आय लसै को धाय विद्या की
लराई लरत
तानसेन कहे ऐसो अगम अथाह जाको पार न पायो रचपच हारे कहू न लाग लगी कान
पकर पकर भरत ॥१७१॥

नगर नाद मध चक्र मत चौहट हाट नसायो
सुरहाटी अच्छर जिनस लेत सुघर न हाथ बिकायो
सुर कोतवाल सुरत लै प्यादा गमक गस्त फिरायो
सुगत भाव सब गुनियन मिल के तानसेन निरख मगायो ॥१७२॥

पार नही पाइए गुन सुमुद्र अथाह कौन विध तरीए कहा करिए कवन भाति जानिए
मन ग्यान नेश्रन असुर लागे सुर तान ताल कैसो के घट मे आनिए
जब उठत है ध्यान अति प्रान डरो जाय चरन धरो धाय धाय कैसे कर टानिए
कहै गुरु ग्यान तानसेन सुरसुती ध्यान वर अगस्तना अचपानिए । १७३॥

यह लराइ लरो रे गुनी ग्यानी सूर समसेर मजलिस मेदान
अलाप चार्गी तुरग चढके धुरपद नगी तलवार तारसी परिकर रसना
कटारी काढत जब सुख ग्यान
छवो राग उमराव नाद गढ को परीछक छतीस भार्या तुपक भर वरान
धारु वान धोरा माटा जम्बुसर दारु तानसेन यह प्रमान ॥१७४॥

चटक चित्र मित्रहू मिल तज मल नवल चित चढल रूप रग भरत जगत मन हरत
प्रथम ही आभा मा दरत पुनि अरतन कुक करत बढी बढी वार परत
रस ढरत लटपटात थरथरात वे रुस भटूटहू वै लरत
एक मारत मरत एको दरत बसरत हैं रत रोर दारिद्र इनको दरत
वही ग्यान जी मैं धरत परसत ससार नित तार मन में याते फूल न परत
तानसेन कहत अकबर अल्ला भर के नाम गाए एत दरस नहीं सुरत निरत ॥१७५॥

एरा आलो आज शुभ दिन गावहु मगलचार
चोक पुरावो म्रिदग बजावो रिझावो बन्धावो बान्धो नन्दनवार
गुनी गुना गधर्व आमर। किन्नर वीन रबाव बजे करतार
धन घरी धन पल महूरत तानसेन प्रभु पर बलिहार ॥१७६॥

साके को विक्रम देवे को कुल करन वेद सम नाहीं ग्यान
बल को भीम पेज को परसुराम वाचा को युधिष्ठिर तेज प्रताप को भान
इन्द्रसेन राज मूरत को कामदेव मेरु समान
तानसेन कहे सुनो साह अकबर राजन मे राजा राम नन्दन विरहभान ॥१७७॥

ब्रह्मगत अपरम्पार न पाऊ
प्रिथ्वी पार पताल ढरा औ गगन लो धाऊ
जो लों न होय सुद्रिष्टि तुम्हारी मन इच्छा फल ही पाऊ
तीरथ प्रयाग सरस्वती त्रवेनी रान तीरथ होकर गुरुद्वार जाऊ
भागीरथी गौतमी औ गगा तानसेन गावै हरिद्वार चाऊ ॥१७८॥

ो जे कर पूजो धोलागढ की रानी ने
पान सोपारी ध्वजा नारियल पहले गौर मनानी ने
तेल फुलेल अरगजा अम्बर ले चढ़ावत ताके रानी ने
तानसेन यह प्रसाद मांगत दीजे अन्न और पानी ने
ब्रह्मा वेद पढ़े तेरे द्वारे सकर ध्यान समानी ने
बीरबल बस ब्राह्मन कुल तारन तानसेन परवानी ने ॥१७६॥

एरी गवार ग्वार तू कहा जाने री गोपिन को मरम
कान्धे कामरी औ हाथ लकुट लिये ताको जिय कहा होत नरम
कटि सोहै पति बसन डारो फिरत गाहौं ते जानो जात तेरे भरम
तानसेन कहे सबरी को झूठो खायो ताके जिय नहीं होत गरम ॥१८०॥

माइ री महा कठिन भई मिल बिछुरे की पीर
घडी घड़ी पल छिन जुग से बीतन लागे नैनन भर भर आवत नीर
जब ते प्यारो भयो न्यारो कल ना परत मेरी वीर
तानसेन के प्रभु वेग आनन कीनो जियरा भरत नाही धीर ॥१८१॥

ए तुम सज सज दल चढ़त जब भूप पर भार होत थरथरात देश देस के
गढपति सुन धाक धरहरात
जाके चढ़े ते सुर रेन उड़त गगन छिप जात थल बन परत सिंहहू पे
बाजत निसान जब सब्द घहरात
देव दानो औ रावन ते भाज गए सब पातल लोक मठ पीठ कलमलात
सहस सहस फुनकार कटि चूर चूर भयो थरहरात
महाराजाम्मनि राजा रामचन्द्र की असवारी होत असदल गजदल
पयदल सुन सुन थकथकात धकधकात
एसो सुरो पूरो तप तेज वोसो नाहीं दूजा नाहीं मेरे जान
तानसेन गुनी जन को अजाच कीनो वाकी सूरत मूरत पर वलबल जात ॥१८२॥

गग की रचनाएँ

रूप-सौंदर्य[1]

कुदन सी कोबरी कुमुद से कटाच्छ जाके नए करतार एक मोहिनी बनाई है
वेद तज्यो ब्रह्मा श्रोरु सिव ने समाधि तजी देखे जाके जादोनाथ टकी सी लगाई है
रतीहू न र भाहू न मेनका धिताचीहू न सारदा न सुरलोक तेऊ ढूढि आई है
कहै कवि ग ग ऐसी गोरी जो गवारि होति एसी अरुनाई तरुनाई कहाँ पाई है ॥१॥

ढूढि फिरथा भ्रिकुटी वरुनी बन हेरि पहार पयोहर हार्‌यो
गग गए ते गए न फिरे सग लोचन कान कहू चल चार्‌यो
मेलि रोमावलि बासी गरे गहि नाभि कुआग हिरे महि डार्‌यो
तेरे महा ठग रूप अली त्रिवली मे मुले मनु मार्‌यो ॥२॥

तनक हसनि तिहु लोक को है सुखसार तनक चितोनी तिहुँ भवन को भोग है
कहे कवि ग ग बिनु देखे क्यो निमेख लागे मेरे जान कान्ह जू के सेंति को वियोग है
कटक लै उर्वे कज भटके भ्रमत भ्रिग सोने सों सुग ध कहैं बावरे वे लोगु है
सेनि की तियनि की निकाई बारि फेरि डारो राधे जू तिहारी रूप न्याइ लागे जोग है ॥३॥

केलि को सो गाभौ तन कु दन सी जोति जगै कमल वदन पर मोती को सो पानी है
चकवा से कुच कच बादर से छाइ रहे तिन म दसन दामिनी सी चमकानी है
कहै कवि ग ग और बातनि भली हो सही ऐसो हठ लालन सों तू ही मनमानी है
मेरी रानी मेरे पीछे मेरो बुरो मानि लीजो जैतौ अग रूप तोमे तेतिक अयानी है ॥४॥

केलि कौल केहरी हरन हाथी हीर कीर हस हेम हिमकर काहे को बिगार्‌यो है
कहै कवि ग ग छवि कारम प्रवाल दल व्याल मलि म्रिदुल म्रिनाल मीडि मार्‌यो है
नीकी नीकी निपट निकाई नीकी नीकी लागी नीकी नीकी नाइका निकुज पाउ धारयो है
एतो कान्ह जू के नाई कान मू दि बैठ रही न्याइ ही विधाता माई रूप मेलि डार्‌यो है ॥५॥

को बरनै उपमा कवि ग ग सुनोही मैं है गुन ऊरवसी के
जा दिन ते दरसे मुसुकानि सो कान्ह भए बस तेरी हसी के
चद से आनन में तिय राजत ऐसे विराजत दाँत मसी के
फूलन की फुलवारिन मे मनो खेलत है लरका हबसी के ॥६॥

---

१ याज्ञिक-सग्रहालय तथा काकरोली के प्राचीन हस्तलिखित सग्रह ग्रथो से उद्धृत। इनमे छदोभग दूर करने के लिये कही कही पर वर्णो मे परिवर्तन कर दिया गया है।

भरे तो गुलाल माल कर न मसाल आल पहरे ही लाल लाल चुनरी चुनाई के
कुंकुम कपूर पान चन्दन नगेलो नीरा मृगमद गंग पागे पागे आइ भाइ के
कहै कवि गंग हौं न जानति किरहि गई मोह अरु मोहनहि मोहनी सी लाइ के
कमल से बदन किसोरी कोऊ गोरी गोरी दौरी ही सी अरुप अरगजा भारी भाइ के ॥७॥

चांद को कलंक दीनो मनुष को ऐन कीनो आनहु को एक मिग परछांही लिखीजिए
कीर हाटहू बिकात निबहू न कोऊ खात हीरा तो पलातल है ईख रस लीजिए
पंकज को काटै गारी कोकला तो कीनी कारी सर्पन को जिभ दुरा नागनो सुनीजिए
कहै कवि गंग और अगनि नयन छाड़ प्यारी जी के मुखहू को कौन सोभा दीजिए ॥८॥

डेल से ढरारे नैन बेल से कठिन कुच बेले के फुलेल भीजी अलबेली अलकै
सघन जघन जिमि कदली के दल छबि करन की करे पद्म कमल रलकै
कहै कवि गंग दोष भाषे जीव दामिनी के दासबो कैसे दामे दान दूनी जोति झलकै
सांवरी सलोनो स्वामि वारिये गंगा गवारि रति जोवन जमा सी आन राखे लाल ललकै ॥९॥

दीरघ ढरारे तहां कोरे रतनारे लगे कारे तहां तारे अति भारे अ सुरंग है
कहै गुनि गंग जनु दूध ही सो धोय पुनि पोछ विकसत मित अमित कुरंग है
पारद सरस चार थिर से थिरकि जात तिरगे चलत मानो कूदत कुरंग हैं
रीझे ना रहत अनुरागहू के बाग बर मानिनी के नैन कधों मैन के तुरंग हैं ॥१०

पीन पयोधर छीन खरी कटि लोचन मीन नवीन तिया के
सुकमार सिवार से बार बडे दसनावलि मानो अनार बिया के
गंग कहैं खरे नीके रूप रासि बैठि गज गहरा अगिया के
विचारि रचे विधि ने मेरे जानि मनोरथ कान्ह तिहारे हिया के ॥१२॥

बांकी भौंहैं सोहैं बांकी चितवन मन मोहै बांकी मोती बेसर अधर पर करको
कहै कवि गंग तेरे उचकि उचकि कुच गति न रहत निरखत भराभर को
आनन की उपमा ते सकल विकल भई भली सोभा लै रह्यो तिल कपोल पर को
पंकज के बीच आली अलि गो समाइ तहां मानो री बिछुरि छोना बैठ्यो मधुकर को ॥१२॥

नीचे निहारि ओ नागरी बावरी ऊँचे देखें असमान फटैगो
इंदर लोक मे होय कुलाहल सूरज चन्द को तेज घटैगो
घटैगो तेज जबै रवि को तब रागहि राम जगत जपैगो
गंग कहै मोहि यों डर लागत तेरे लिये करतार लटैगो ॥१३॥

बार बार बरने को बरन निकाई सुनि वारक बरुनी फांसि मेरी दीठि फंसी
कहै कवि गंग तोहि मोहि रहै नंदलाल तू तो महा मोहिनी है मदन की अमी सी
हांसी औ चितोनि दोऊ चित में चहकि रही चितोनीन चितोन सी हसा बोन हसी सी
तेरे प्यारे घर जात धरियो न धर जात तू तो घर बसी उरबसी उरबसी सी ॥१४॥

कंचन को लकुट की लसत कसोटी लीक मोरनि की माल किधों अंग नाग लेनी है
कहै कवि गंग किधों वारी कारी कादिंबिनी दामिनी सी कामिनी हू मिलि छवि देनी है
सुंदर सिगार सूर सुता की सी धार किधों जोबन नदी की धार के सिवार सेनी है
करा चाली काम की कि सोभा करे स्याम की कि जिय ही की बैरिनि बिराजमान बेनी है
॥१५॥

अंग तेरो केसर सो कहिहा केसरी कैसी केसर की सर कैसे कहि सके को तम
कहै कवि गंग आछे छवि सो छबीले नैन नीलेऊ नलिन ऐसे नाही देखे हो तम
अहे हे अहीरी तू धो इही कछु जानति है काके भाग औतरी है तोसी तेरे गात में
तरुनी तिलक नंदलाल त्यो तिलक ताकि तोपर हौं वारो तिल तिल के तिलोत्तमे ॥१६॥

गयंद की चुराई चाल सैदही को लंक चोर्यो मुख तेरे चंद चोर्यो नासा चोरी कीर की
मिगनि के नैन चोर्यो पिकनि के बैन चोर्यो ओंठ तेरे लाल चोर्यो दंत छवि हीर की
कहै कवि गंग बैनी नाग ते चुराइ लाई भोंह तो कमान पल अर्जुन के तीर की
जेते तुम लूटे ते पुकारत कन्हैया जू पे एतनि की चोरी कहा छपेगी अहीर की ॥१७॥

जेही देख्यो जेही सुन्यो ते ही अवरेख्यो रूप रूप रंग रीझि रीझि तेही तिन तोर्यो है
कहै कवि गंग कान्ह आजु लौं न काहू कछु मूठि ते न मेलि डार्यो गांठि ते न छोर्यो है
गोरी गाइ धोरी नोलि पियरी पिछौरी ओटि बूझै तोहि काको चित सेव चोर्यो है
आइहे ते आइ निन ही बुलाए आइ ढोटा तोरी बांसुरी समुद्र विस घोर्यो है ॥१८॥

अंग अंग आगी भीजी अंग अनुराग भीजे अधर तमोर भीजे विद्रुम से झलके
गति भाजी आलस सहज सोहै मोहै भीजी लाज भीजी चितवनि प्रेम भीजी पलकै
आवौ लाल दौरि दुरि देखै मेरी पीठ पीछे जाके देखिबे को निसि द्यौस लेत ललकै
बचन पियूष भीजे बुधि के बिलास गंग रस भीजी आपुन फुलेल भीजी अलके ॥१९॥

अधर मधूक ऐसे बदन अधिकानी छवि विधि मानो विधु कीन्हौं रूप को उदधि कै
कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि पर्यो बदन छपाइ सखि मनि लीन्हों मधि कै

ले करि कज्जलि अंगुलि लावति नैन लगावति अंजन को
महदी रुचि राजति ज्यों नख पै मनो गुंज चुगावति खंजन को ।।२७।।

सांवरी सलोनी ससि बदनी सुरंग रूप सागर सी गाहे वारे सकल सिंगार सी
लाज मुख लाम्बी लटे लागी लचकाही लाक सोल नाची लघु वैस काची कोरी डार सी
कहै कवि गंग ऐसी सुंदरी न पावे कोई जो पे ऐवै सो सौ जुग बेनी आ बनारसी
आखिन ते इत उत न कीजै जनि एको छिन राति को रतनु कीजै प्रात कीजै आरसी ।।२८।।

मोर को मुकुट मुकानि के बे अवतंस रोम रोम रूप मानो मनमथमई है
काछिनी रुचिर रुचि सोंहे पीतपट सुचि चटकीली अंग अंग पीत छवि छई है
कहै कवि गंग बनी बानिक विविध भांति आभा तीनों लोक की सु एक ठौर भई है
मनि मनमोहन के कंठ मे यों झलकति जानिये जुन्हैया जमुना में फैल गई है ।।२९।।

भ्रिगहु ते सरस विराजत विसाल द्रिग राजत न ऐसी छवि कोलहू के दल में
गंग हरि घन तन माहि लसै पीत पट्ट ठाढे द्रुम छांह देखि ह्वै गई बिकल मे
चल चित चाय परे सोभा समुद्र बीच रही न संभार दसा औरे भई पल मे
मन मेरो गरुओ गयो री बूडि मैं न पायो नैन मेरे हरुए तिरत रूप जल मे ।।३०।।

प्रेम-क्रीडा

एक समे दुरि दंपति कुंजनि पौढे हुते पलिका सुख जी के
स्यामा सुभाए ही आपनो हाथ उठाइ धर्यो उर ऊपर पी के
आछी खरी पतरी अंगुरी कवि गंग कहै बै बनी छबि नीके
काम सराफ कसौटी दे हाथ सुऐंचि कसी मनो सोने की लीके ।।३१।।

जो चितऊ तो रहै चित मे चुभि याही ते भूलि न दीठ उठाऊँ
गुपाल परोस बसै बस माई हो को लगि आचर आखि दुराऊँ
गंग कहै हरि हरि को मुख चंद विलोकत ही भरि आनन्द पाऊँ
देखि सखी बडवानल लाज ते प्रेम समुद्र न बाढन पाऊँ ।।३२।।

बहुत न्योस ते पिय मिले रहती कंठ लगाय
दंपति मन कवि गंग कहि मत सुपनो ह्वै जाय ।।३३।।

विप्रलंभ-शृङ्गार

अंजन मंजन तेल तंबोल तजे बिलखे बिनु हार हियो है
बेंदी ललाट न बेसरि नाक सिंगारिन को मनो मेट कियो है

रूप के मरोरो मारि मार के मरोरो जरि मरि मुरझाई से परी एसो जगति है
सावरेऊ मानस को गोरी नीको लगो किधौ गोरी ही के लोइनहि लूहर लगति है ॥४१॥

डसन डसत आली बासर बितीत भयो हियो हहरात अति बात न सुहाति है
विरह अगिनि अति अग अग आच बाढी आचर जो ढायो त्यो त्यो छाती जरो जाति है
कह कह कुहु कुहु कोकिला के कुहकत कहा करौ गग मेरी कछू न बसाति है
आवन गए है कहि अजहु न आए लाल पहरक राति रही सोऊ पतराति है ॥४२॥

बात सुनो ब्रजनाह विषम विरह दाह दाहन के अम्बर लौ अगनि दहति है
कहि कवि गगु अनओसर असम सर सरनि की सोठा सोठ सुदरि सहति है
चेरिनि की चेरी ताकी मोहू जा चिरेआ कै के डारे काऊ व्रिन्दावन कान्ह या कहति है
तिहारी ठगौरी वाकी नीद भूली भूख भूली आंखिनि अनोखी छवि छिदए रहति है ॥४३॥

बाप की न मैआ की न भैया की न सुजैया की कहैया न सुनैया की ए काम रसमाती हैं
कहि कवि गगु मनमोहन मगन रूपु राति दिन साचति न खेलति न खाती हैं
बारे ही ते विरहुनि बासुरी की रिझवारिईन की तताई के से हम पै सिराती हैं
भूली सी फिरति कान्ह काहूँ न तनक सुधि छाती मद पिऐ जैसे साती सुधि जाती हैं ॥४४॥

भूतल ते तलप तलपहूँ ते भूतल तलपहूँ को कीजौ सोन सीतलहि तायो है
छकी सी घूमति कछुति छकी सम बात कहै चकी सी चितौनी मनु मदन हथ्यायो है
कहि कवि गगु को न जतनु युवति जीते सोऊ गिरि द्धरिया की मूर मो ज्यायो है
तेरे हसि हेरे हरि ऐसेने ही हाल होतु हाला म हलाइ मानो हलाहल प्यायो है ॥४५॥

मोहन हमारो मन बेच्यो है तिहारे हाथ कुले परित्यागिहै वे तुमहि न त्यागिहैं
कहै कवि गगु कान्ह समयो विचारि देखो आगिली पाछिली बाते सब साची लागिहैं
कोरे लागी ननद उसीसे जागी उसी सास एहाँ वेहाँ द्योरानी जेठानी दोऊ आगिह
केहाँ बैठे मोको आनि घर ही में घर ठानि घर बसै घर जाहि गुरुजन जागिहैं ॥४६॥

कालिंदी के कूल कुजन की छाया मधि कोइल की कूकन करेजा जारियतु है
दोहिनी को नाम सुनै दूनो दुख होत दई बासुरी की सुधि आए आँसू डारियतु है
कहै कवि गग तुम दीनबधु दीनानाथ एहो गोपीनाथ जनयों विसारियतु है
गोधन की छाया मे छिपाय राखे छाती तर मेह ते बचाय अब नेह मारियतु है ॥४७॥

राजन से नेन तन तात तपनीय एन मेनसी हुलास सुख बैनन सुहात है
अलबेली अलकें सुआइ रही नैनन मे दसन दामिनि किति ज्यों ज्यों मुसकात है

नचन चकित मानो चौंके मिग छौना ताको लाल मिलबे को खरी रागी अकुलात है
नैनहु न आवै नींद भूख नहिं भावै गंग पहर पहर राति कहर सी जात है ॥४८॥

गनक गनी है गरी गरा छुटपा परी गारी मरी डरी कहा गारि तो न लाइहै
कहै कवि गंग तेरो हितू है बसंत रितु देखि तो नमाग। ह्यां सां जानहू न पाइहै
मंजरीन गुंज भौर पिक बोलें ठौर ठौर जोहै पगरार लौं तो आगे कैसे जाइहै
आग सी लगी है बन रति प्रफुलहै मन काम के त आली बनमाला फिरि आइहै ॥४९॥

जा दिन कंत बिदेस चले सखि ता दिन ते नहु लागत जीको
अंग सिंगार अंगार स लागत भामिनि के मन लागत फीको
सेज सबै कमला गइ व्याकुल सीस रह्यो लटको तरुनी को
गंग कहै सुन साह अकब्बर नैनु के नीर म भीजत टीको ॥५०॥

जा दिन तें हेरयो मनमोहन है आली सुनि ता दिन तें देहबिन दूनो है दगतु है
कहै कवि गंग नित चित्त चटपटी होति पावस नदी की न्याइ नेहु उमगतु है
रूप की मरारे मारे मार के मरुर गेरे मुरि मुसकानि पर मेनु सो जगतु है
सावरेऊ मानस निगोरे नीके लागत कि गोरी ही की आंगिनि को लूहरु लगतु है ॥५१॥

जौ लौं रह्यो रन की रज देखति औ धुजा पटपीत की फाहर,
तौ लौं रही सब ध्यान धरे जो लौं प्रान गये अंग पठ ले गाहर
गंग कुकी कुकिहू के चली परना पै परी पिय के हिय जाहर
कागद को पुतरा सी भई जल भीतर भीजि गयो ह्वै ठाहर ॥५२॥

तोरि तोरि तामरस घोरि घोरि घनसार काढी रोज नीरि नीरि कहा लौं बखानिये
कहै कवि गंग तऊ धुरी पर चंदमुखी चंद की किरनि चूर चंदन ग सानिये
नीर ते उसीर ते समीर त सिराना नाहि आहू जोण जरति जीयै हो भले जानिये
ऐसी गति कान्ह जू तपति तुम बिनु वह ताहे न सिराइ जापै हिमगिरि आनिये ॥५३॥

धीर न धरति धरी देखे बिनु जाति मरी ऐसी कछु करी दाये धाइनि मे नान है
सुधि बुधि टरी मानो खाइ ठग बरी जीभ ररी अरबरी न गहति कछू मौन है
लाज परहरी खरी अधरी न डरी काहू कहै कवि गंग समुझावै सखी सो न है
कौन टेव परी साख्यो धरी कहै हरी पूछे सहचरी आरी हरी तेरा कौन है ॥५४॥

छाड़ि देहु अड़बार सैलिक सिंगार हार कह्यो है जु कैसो राय वैसे ही लै आनिबी
कहै कवि गग कौन तुम ते सलोनी ह्वै है सोंधे सों लपेटी अरु मीधे ही सों सानिबी
रोचना सों रूरी गात पाक के से पागे आठ नैना मार केस कोल कहा लों नसानिबी
रूप ही अनूप तुम आज माने न्हाए गए भूखन बनाए नीर नीरा साए जानिबी ॥६२॥

पद्रह बरिस बीते सोरह बरिस लागे सत्रहे बरिस बेस उलटि चढ़ति है
जागति जगाति राति सुधि न पिया की जाति जसे निस चकनाहि चकई रहति है
कहै कवि गंग कछु कहिबे को बातें नाहीं छाती अति कठिन कुचनि ते कढ़ति है
सोने से सरीर स्याम विरह कि ज्वाला जरी नित नित प्रतिदिन नदी सी चढ़ति है ॥६३॥

जल ढारि सनीचर पथ बधू बिनवै कर जोरि सुपीपर सों
तद देव गोसाई बडे तुम हो यह मागति दीन ह्वै सु पी परसों
आवन के दिन तीस कहै गति ओधि की ठीक तची परसों
भूलि गए हरि दूरि बिदेस किधों अटके कहू पी पर सों ॥६४॥

मान

बैरनि बटावनी सी बैठन न जान कहै ऊग ऊगे निसनी यों ठाढ़े सूजिअतु है
साझ की मनावतहू माझ की रयनि आई उरनि बो छिनक छुदा सों छूजिअतु है
कहि कवि गग से ए सोऊ तो प्रसन्न होत पाथरहू को जु कोउ कै कै पूजिअतु है
मानस ह्वै मानस को कह्यो मानि मानु त्याजि परी गोरी प्यारो तेरी चेरी छूजिअतु है॥६५॥

वे ही काम कीजियतु बिरस बिराग नेर ऐतौ रिस गाई हाइ देखी है सुनो कहूं
तेरी अनुहारि मनुहारि कौन होई आली हारी मनावत हारी तू न टरी टेकहू
कहै कवि गग काहू लीरारे के तिनु दीजे तोही नीसो बिसे सोरि कान्ह न बिसेकहू
छाती हू लगाये लाती राती होति राति दिन तेहु है ननेया को सो नेहु नाहिन कहू ॥६६॥

काहे को सतरि होति वे दिना सभारि देखो रीरे सीरे कमल कहू ते बीन लावती
कहै कवि गग तेरी हितू तो हजार ह्वै है बिरह की पीर बेर हों ही काम आवती
अनिल के डरनि दुकूल देत दिस दिस निस प्रति घसि घसि चंदन चढ़ावती
उनसों तो मान कीजे मोसो कत मौन हूजे रुठ करै राधिका जो होंही न जिआवती ॥६७॥

चकई बिछुरि मिलि तू न मिली प्रीतम सो गग कवि कहै मै तो कियो मान ठान री
अथये नछत्र ससि अथई न तेरी रिस तू न परसन परसन भयो भान री

तू न खोली गुस खोलो कज औ गुलाब मुख चली सीरी लाय त न चली भो विहान री
राति सब घटी नाहीं करनी ना घटो तेरी दीपक मलीन ना मलीन तेरो मान री ॥६८॥

आदर अलाप छाडि आगे ते अनरीरा उटी तबे ए। बोल मोहि आकरो सो आइगो
कहै कवि गग कान्ह ताते देखो लाल रास बात द्वो बनाइ कही हियो दुख पाइगो
आपुन पधारों बलि दूसरी निचारो जिनि हिले मिले नेक नैक सेक सो सुहाइगो
अचरा की एचा खेंची अँगिया की नोचा खाँची छतिया की छुवै छुवा छटि मान जाइगो
॥६९॥

बालि हारी कोयल बुलाइ हारे प्यारे लाल मारि हारयो मदन मनाइ हारे मानई
कहि कवि गग ऐस पिय सो वियोग मोही सखी सों उदेगु सब एक ही बश्या गई
मानिनि मनायो नेक समुझि अयानी आली जो पै जी की ऐसी ही तु नीकी काहे को भई
कोऊ एक ऐसो होउ मेरो ज्यां ले लो मे देह सीर सी मिराई राति जाति है दई दई ॥७०॥

नायिका

चाल न जानत चचलता चुनरी चहूँ खूब बनी अति राती
चदन खौर सुनाव की बेंदी नवली तिगा सब राग सगाती
सेज को नाम लिए सकुचे कवि गंग कहै न कही छवि जाती
सोने से गात सलोने से नैन अनूठे से ओठ अछूती सी छाती ॥७१॥

स्री नदलालि गोपाल के कारन कीन्हों सिगार सु राधे बनाई
कुकुम आड सुकचन देह दिये मुकताहल की झलकाई
सीस ते एक छुटी लट सुन्दर आनि कै यों कुच पे लपटाई
गग कहै मानो चद के बीच है सभु को पूजनि नागिनि आई ॥७२॥

नहि नेनन चचलता प्रगटी पुनि बेन न मैन समान वरयो
कवि गग अजा पग आतुरि है चित चातुरी नाहि प्रवेस करयो
कबहूँ कबहूँ तन यों झलकै अरि जोबन सैसव माझि दुरयो
जिमि ग्राह महा गहिरे जल में उछरै दुरि जात कलोल भरयो ॥७३॥

तुम जु पयानो प्रात करत हो प्यारे लाल वाके उर प्राननि पयानो सुनि दयो है
सुनि सुनि बचननि सहज सिसक भई चलिबे को लालन जबहि नाऊ लयो है
पान की सी बेलि मुरझानी बिनु पानी किधों अम्रित को बिरवा तुसार ही को हयो है
चपे को सो फूल झहरानो तनु गग कहि कमल कली सो कुम्हलाइ मुख गयो है ॥७४॥

छिरहरे जल जैसे दुरी ह्वै कुमुद कली ऐसे उरोजनि उर दई है दिखाई सी
गग भने माभ्त गी सुहाई नेस पे सिखाई लरिकाई तरुनाई गेन लरिसयाई सी
स्यामा को सलोनो तन ताम दिन चारि मामः विरुमाइ चाहत मनगग को दुहाई सी
सीसी के सलिल ज्यों सुमन की पराग ऐसे सिसुता मे जोबन भलमलाति भाई सी ॥७५॥

तब दुरि दुरि मरि भाजि भाजि जाति एती अब काहे कान्ह के हो को नीच पटागनी
तब तो पिय के नाम कान मूदि बैठति ही अब तो निउर भई सौतिन डरानती
कहैं कवि गग तब आत दुरस पावति ही अब कछु गई काहू सकुच भटावनो
तब सतराति हो रिसाति जाहो ताही सन अब तुम दोऊ एक हय की बटानती ॥७६॥

कान्हहि देखि लजान लगी अब एकहि राग बजी भई गेतो
गग न बाल दसा समुभो अब के पछिताए कहा चित चेती
एक तो नान्हे ते नेक बडे भए लावो के के घूघुट कोन को देती
है कि नहीं पहिचानहु भी जिन के मुख तो हसि गारान लेती ॥७७॥

भक्ति

मेरो चेरो मेरो घोरो मेरा भूरो मेरो घर मेरा मेरा कहत न रसना अघाति है
कहि कवि गगु ग्रौर ओरहू जु आक बाक कहत कहत क्यों हू क्योंहूँ न रसाति है
चार्‌यो वेद चबाति पढति छओ दरसन नव रस निरुपति षट रस खाति है
देखो देखों पूरबि ले पाप को प्रताप यह राम नाम लेत जीभ ऐडी बेडी जाति है ॥७८॥

राधिका रमैया रगभूमि को नचैया सारी भग को भजैया कवि गगु उर लाइए
कस को मरैया बलबस को धरैया काली नाग को नथैया नाथ निसि दिन गाइए
अघ को हरैया सुख म दा को करैया तिहु लोक को तरैया जिनु बिनु तनु ताइए
बलि को छलेया बलभद्रजू को भैया ऐसो देवकी को छैया छाड़ि और कौन ध्याइए॥७९॥

अनजाने ठोर जात जाति जाति पे घिघात पतरात कर तु फिरतु हो ही हीनता
कहू न लगायो सुख देखे एक रुखे सब सुनीये बखानु दुख दीन वन्द दीनता
मैं तो हों न मांगनु मगावै मोहि ओरनि गग कवि कहै यहै कौन परबीनता
पूजे सब साखो छिमा करो अपराधी अब काटो किन माधो मेरे मन की मलीनता ॥८०॥

गर्भ मे कबूल्यो भक्ति बाहर सो भूल गयो कीन्ही ना भजन छन एक भगवान के
महल अटारी सुत सहोदर वित नारी निसि वास करत गुलामी बिना दाम के

बिन हरि भजे चतुराई धिग जीव नर सग नहि जाति तेरी कौड़ीहू छदाम के
कहै कवि गंग नर देख ले विचार करि मूद देहु आँख तन लाख कौन काम के ॥८१॥

जाके परताप ते अनेक दोष छीन होत कहै कवि गग तप तेज की झलक ते
जाकेही असीसे सुरा सपदा अचल होइ निकसत वचन जेसे निस्नु के हलक ते
तीन लोक जाहि माने ठाकुर त बडा जाने गहि लिये पद मनो भ्रिगु की ललक ते
केते ब्रह्म दोषी ब्रह्म दोष ही म छीन होत ब्राह्मन न मान्यो सुतो नायगो रालक ते ॥८२॥

मन्द मन्द गावे पार ब्रहन नही पावे जाय जसुधा खिलावे मेरो महा बलदाई है
बारेहि से बका कस की न माने सका गढ वार पार लका नलभद्र जी को भाई है
कहै कवि गग ब्रिज बूडत बचाय लीनो इन्द्र की घटाई जोमे फेरी ग्रास धाई है
बच्छन के पाछे पर बाँधे मोर पच्छन के जमुना के कच्छन मे नाचत कन्हाई है ॥८३॥

द्रोपदी की लाज काज द्वारका ते दौरि आए छूम छल छाइ रह्यो अचभो अथाइए
पेटहू मे पेट मिले राख्यो राजा परिछत टेर हेर हेर ही गिरद सरनाइए
कहि कवि गगु सब ससार जंजीर जेर जजारनि जरयो जनु केरो के छिडाइए
गिरि के धरन हार गैनर के रछपाल गरूर के असवार गरूर न लाइए ॥८४॥

पढ्यो गुन्यो कोर न कुलीन हुता दस कुल छुया गीध छुति हातो छाती छापे किए तो
तारूयो अजाभेल हू से परम मलीन पापी सदा को सुरापी चरनोदक न पिए तो
गगु कहे तारि केते दास न मुक्त कियो कालीनाग कहा ते तिलक मुद्रा दिए तो
दौरे हरि लोग ते इकार एक पायकयो हाथी कहा हाथ तुलसी की माला लिए तो ॥८५॥

गाढे गह्यो गहिर गुहारिओ भिखारी कियो ऐ ही दीनबधु अन दीन कहू दलि गयो
रानन परत मनक पर डीठि धायो कमला को कत अस्त्र वस्त्र छाडि प्रभु वाहन बिचलि गयो
भनि कवि गग ताके पाछे पछिराज धायो अतल वितल सुतल तलातलहू वितलि गयो
जो लौं चक्रधारी चक्र चाहत चलाइबे को तो लौं आइ ग्रीवा पे अगारू चक्र चलि गयो ॥८६॥

दीनबधु दीनानाथ द्रोपदी पुकार कहै वेदन विदित केधों विरद भुलानो है
दुखित प्रह्लाद जान सकट सहाय भये भक्त के प्रताप को न गिनो रक रानो है
छाडि मगराज गजराज लाज काज धाए कहै कवि गग कैधों पौरुष पुरानो है
देह भयो दूसरो कि नेह तज्यो दीनन सो चक्र भयो भोतरो कि वाहन खुरानो है ॥८७॥

रहैगी न राज रजधानी न फान पानी है नाके नाना जिमी आसमान जाइगो
गगन पताल सातोदीप की मसाल गई दुनिया को ख्याल चांद सूर जो बिलाइगो
जो कछू लिख्यो है सिष्ट करता ने आप ताहू सिष्ट करता जो साफ करता समाइगो
सदा सुख राम जस जानि कवि गंग कह रहिबे के नाते राम नाम ठहराइगो ॥८८॥

कामनी कमलनैनी करे न रहसि कौल कमला निरासनी निरखि गम दयो है
घर के रहत कोऊ भरि कर न पूछै बात मानहुं किकिभा नभि सिधु छोर छयो है
कहि कवि गंग तुम करुनानिधान कान्ह कोटि जो हा एकदार ओर द्वार गयो है
तुमहि किये की लाज करै ही बनेगी राज गाहक ते गयो सो गुसाईहूँ ते गयो है ॥८९॥

जो कहो मोहन जू मथुरा में तो मंदिर में मढई इक छाऊ
जो कहो तो तुलसी तन माल तमालन बीच नचौं अरु गाऊ
स्वांग अनेक करौं कवि गंग जु कैसुहु कान्ह तिहारो कहाऊ
काल गहे कर डोलत माहि कछू इक बेर खुशी कर पाऊ ॥९०॥

यमुना-महिमा

रोग न रहत नेकु जैसे आछो औषध ते पाप न रहत जैसे हरि गुन गाए ते
तमु न रहतु जैसे अरुन उद्योत गए दारिद न रहै जैसे पारस के पाए तें
पितरउ भ्रमि भ्रमि नरक न परे जैसे गगु कवि कहत सपूत कुल जाए ते
याही ते कालिंदी सूर नन्दिनी बदत लोग देखिए न जम लोक जमुना के न्हाए ते ॥९१॥

इक बार के न्हात पुजापन सो लिये जात जहा मन की गमना
सुनि के दुख दद मिटे जिय के सनकादिक नारदहू समना
अब यात यहै कृत धार वहै कवि गंग कहै सुनि रे मनना
जमुना जल नैन निहारत ही जम ना जम ना जम ना जम ना ॥९२॥

उपदेश-नीति

अकारन कलेश करै ईरषा में अंग जरै रंग देखि रीझै नहि द्रिष्टि दोष दड़ो रहै
आप को ना करै काज पर को करै अकाज लोगन की छाड़ी लाज असूया में अड़ो है
मन बानी काया कूर औ कू सतावै सूर काम क्रोध हो हजूर बिभना रयो गड़ो है
कहत है कवि गंग साहिब के साहि सूरा दुनिया में दुख एक दुर्जन को बड़ो है ॥९३॥

कहे ते समझ नाहिं समझाये समझै नहिं कवि लोग कहै काहि के अवि सारसी
काक को कपूर जैसे मरकट को भूषन जैसे ब्राह्मन मक्का जैसे मीर को बनारसी

बहिरे के आगे तान गाए को सनार जैसे हिजरे के आगे नारि लागत अगार सो
कहै कवि गग मन माहि तो विचारि देखो मूढ आगे विद्या जैसे अध आगे आरसी ॥६४॥

कुपात्र की प्रीतिहू कहा स्वादि बिन खेत जैसे प्रीति बिन मित्र वाक् चितहू न आनिये
मति बिना मर्द औ नूर बिन नारी कहा अर्थ बिना कवि वाक् पसु ज्यों प्रमानिये
तोपे बिना फौज कहा हस्ती बिन हौदा जैसे द्रव्य बिन देवे दान देव कर मानिये
कहै कवि गग सुनो शाहिन के साहि सूरा आदमी को तोल एक बोल में पिछानिये ॥६५॥

गग कहै सुनि लीजो गुनी अरे मगन बीच परो मत कोई
बीच परो तो रहो चुप ह्वै कर आखर इज्जत जात है खोई
बामन के बलि के दरम्यान मे आन भई जो भई गति ज्योई
लेत हो कोई औ देत हो कोई पै सुक्र ने आख अनाहक खोई ॥६६॥

गग तरग प्रवाह चले तह कूप को नीर पियो न पियो
ग्राह हिदे रघुनाथ बसे तब और को नाम लियो न लियो
कर्म सजोग सुपात्र मिले तो कुपात्र को दान दियो न दियो
गग कहै सुन साह अकब्बर मूरख मित्र कियो न कियो ॥६७॥

गर्जहि अर्जुन हीज भये अरु गर्जहि गोविंद धेनु चरावे
गर्जहि द्रोपदी दासि भई अरु गर्जहि भीम रसोई पकावे
गर्ज बडी सब लोगन मे अरु गर्ज बिना कोउ आवे न जावे
गग कहै सुन साह अकब्बर गर्ज से बीबी गुलाम रिझावे ॥६८॥

गुनी की रसना के बीच बसना फुलेलन को बोले औ खोले बिन कैसे कर जानिये
जुरेंगे बिरादरी महीपन की चारु जहाँ गुनी औ गवार तहाँ कैसे पहचानिये
मोती मोती एक रग मोल भाति भाति कहैं जौहरी के आए बिन कैसे कर मानिये
कहै कवि गग देखो भवर कुरेवा दोऊ एक रग डार नेठें जाति अनुमानिये ॥९९॥

गोरे गोरे गालन सो कहाँ इतराती फिरै रग तो पतिग सो कालि उड़ि जायगो
धूवा को सो धूधरो सुजडत न लागेबार नदी के किनारे रूख कौ लौ ठहरायगो
फूस की सी आग सो सुहाग घरी दोइ एक चोरीहू को माल कहा चौहरे बिकायगो
कहै कवि गग याते भूलि देख अग प्यारी जीवन के गए मास कूकरो न खायगो ॥१००॥

चंचल नारि सो प्रीति न कीजिये प्रीति किये दुख होत है भारी
काल परे कछु आन बने कछु नारि की प्रीति है प्रेम कटारी

लोह के भाव दवा ते मिटे पर चित्त का घाव न जाय बिसारी
गंग कहै सुन साह अकब्बर नारि की प्रीति अंगार ते छारी ॥१०१॥
जड़ न जानत भट्ट को भेद औ कुम्हार का जानिहै भेद जगा को
मूढ़ का जानिहै मूढ़ की बात मे भील का जानिहै पाप लगा को
प्रीति की रीति गलीत का जानिहै गेम का जानिहै रोल सगा को
गंग कहै सुन साह अकब्बर गिद्ध का जानिहै नीर गंगा को ॥१०२॥

जहा न चंदन होय तहाँ नहिं रहे भुजंगम
जहाँ न तरवर होय तहा नहिं रहै विहंगम
जहाँ न सत संतोष तहां आचार रहै किमि
जहं नायिका समूह तहाँ व्रत सील रहै किमि
परधान नहीं जिहि राज मे चोर साह नहिं अंतरौ
बसिये न तहाँ कवि गंग कहि सरि गुर जहाँ पटतरौ ॥१०३॥

ग्यान घटे कोउ मूढ़ कि संगति ध्यान घटे बिन धीरज लाए
प्रीति घटे कोइ गूंगे के आगे औ मान घटे नित ही नित जाए
सोच घटे कोइ साधु की संगति रोग घटे कछु औषध खाए
गंग कहै सुन साह अकब्बर पाप घटे हरि के गुन गाए ॥१०४॥

तारा की जोति मे चंद छुपे नहिं सूर छुपे नहिं बादर छाये
रन चढ्यो रजपूत छुपे नहिं दाता छुपे नहिं मांगन आये
चंचल नारि के नैन छुपे नहिं प्रीति छुपे नहिं पीठ दिखाये
गंग कहै सुन साह अकब्बर कर्म छुपे नहिं भभूत रमाये ॥१०५॥

नीति चले तो महीपति जानिये धीर ते जानिये सील तिया को
काम परे तब चाकर जानिये ठाकुर जानिये चूक किया को
पात्र तो बासन माहिं पिछानिये नैन मे जानिये नेह तिया को
गंग कहै सुन साह अकब्बर हाथ मे जानिये हेत हिया को ॥१०६॥

फूटि गए हीरा की बिकानी कनी हाट हाट काहू घाट मोल काहू बाढ मोल को लयो
टूट गई लंका फूट मिल्यो जो बिभीषन है रावन समेत बंस आसमान को गयो
कहै कवि गंग दुरजोधन से छत्रधारी तनक मैं फूटे ते गुमान वाको नै गयो
फूटे ते नरद उठि जात बाजी चौसर की आपसु के फूटे कहु कौन को भलो भयो ।१०७।

बाल से ख्याल बड़े से विरोध निरानिहू नारि से ना हसिये
अन्न से लाज अगन से जोर अजानेहू नीर मे ना धसिये
बैल को नाथ घोड़े को लगाम सहस्तिक अंकुस से कसिये
गंग कहै सुन शाह अकबर कूर से दूर सदा बसिये ॥१०८॥

बुरो प्रीति को पथ बुरो जंगल को वासो
बुरो नारि को नेह बुरो मूरख सो हासो
बुरो सूम की सेव बुरो भगनी घर भाई
बुरी नारि कुलच्छ सास घर बुरो जमाई
बुरो पेट पचाल है बुरो सूर को भागनो
गंग कहै अकबर सुनो सब से बुरो है मागनो ॥१०९॥

राजा राउ उमराउ कोऊ जो रिसाय आप लाहू सो नराय गहि पाय मनराइए
और अंग वेदन को वेद बोलि लीजै गंगु देव भूल लाग्यो होइ दीया दिराराइए
रूप की ठगोरी गेली डोरी यों जरत तनु ठोरी लागी गोह ने मोहनि जीभ नाइए
ते तो ले परायो मनु सरग पतार मेल्यो तरुनीन तेरो नेकु तारा मन पाइए ॥११०॥

पावक कूँ जल बिंदु निवारक सूरज ताप कूँ छत्र लियो है
व्याधि कूँ बैद तुरंग कूँ चाबुक चौपग कूँ वृख दंड दियो है
हस्ति महा मद कूँ किय अंकुस भूत पिसाच कें मंत्र कियो है
ओखद है सब को सुखकारि स्वभाव को ओखद नाहिं कियो है ॥१११॥

लहसुन गांठ कपूर के नीर मे बार पचासक धोइ मगाई
केसर के पुट देदे के फेरि सु चन्दन बिच्छ की छांह सुखाई
गंग जू गोरे माहिं लपेट धरी पर वास सुवास जु आपन आई
ऐसो हि नीच कू ऊँच की संगत कोटि उपाय कुटेव न जाई ॥११२॥

रजो गुन कहत हैं दीनन कूँ जाने नहीं ताते बोले बोल ताते तेल मे नहायेंगे
लाव लाव कहै कछु न्याय की न बूझे बात बिगरसु न्याव सो बड़ीये मार खायेंगे
कहै कवि गंग सोते जीन दुखदायी सब मीड मीड हाथ के वे फेर पछतायेंगे
कहा भयो दिन चार गद्दी के मुसद्दी भये बद्दी के करैया सब रद्दी होय जायेंगे ॥११३॥

करन के सलकढा दधीचि के हडबेचा नलि के छलेगा नीर मागने कहा गए हैं
कहि कवि गग जाके द्वार जेए मागन के सुधौ कहै रामु गेरे द्वार कहा आए हैं
जगत विदित जगदेव ही की बातें सुनि कुयस किवार कुल्लि कयिरनि लाए हैं
कुरम कुलीन कुल उदाश्रोत रामदास कौन गुन गुनी भा तिहारे मन भाए हैं ॥११४॥

अकबर साहजू के महाबली दान साह काहू पर तेग बाधी तेज भौंह तक्कवै
सिघल के दीप वहू दीप न लगतु गग दहै रिपु घर ही प्रताप ही के अक्कवै
सोने सो सदन छाडि लौने से बदन गोरी रावन की मदोदरी बन बन बक्कवै
दक्खिन की ओर तेरी चादर की चाह सुनी चाहि माजी चादनीबी चौकि भाजे
चक्कवै ॥११५॥

अकबर साह जू के महाबली दानसाहि पूरब के पच्छिम पयाने कीजियतु है
कहै कवि गग दमागे की दीह धाकि सुनि अरिन के उर मानो आरा दीजियतु है
घोरा हाथी अरानेहू भार भूप ताल पढे पन्नग कुवल छितभार छीजियतु है
एते मान गरद गे सगद समोय गयो फलगू को तोप ज्यो रारोह लीजियतु है ॥११६॥

अलकापुरी को पति लच्छ लच्छ जच्छ जाके हजार हुकुम नव निधि जाके घर हैं
अजर अमर सुर तैतीसहू कोटि जाके हाथ जोरि ठाढे पूरो इन्द्र लोक पर हैं
कोटि कोटि जमदूत विकराल रूप जाके हलकारे हेरे जारो बचे कौन नर है
कहै कवि गग तू चकत्ता के तखत तेरो साह पे हुमक लोकपाल बरावर है ॥११७॥

आवत हुतो सिव सेल ते गिरीस जाचे गिल्यो हुतो मोहि जहाँ सागर सगर को
कविन की रसना की पालकी मैं बैठी देख्यो साथ सोहै रावरो प्रताप तेज वर को
गग हम पूछी तुम को हो कित जैहो तब हम सो सदेसो उते कह्यो बडे घर को
जस मेरो नाम मोहि दसो दिस काम मेरो कहियो प्रनाम हौ गुलाम वीरवर को ॥११८॥

कहै कवि गग दानसाहि फौजें फरहरे थरहरे दिग्ग भूप थरहर थारी सी
धु घरी धरनि निधि सधि ओक मरनि उठी हैं धु धरति दिसिदहै है विचारी सी
कलमल्यौ कमठ औ दलमली दत पति चलै दिगपाल पेलि पीयूष पनारी सी
सटपट सेष के कटक मे फटत फन मनिन की चट उचटति चिनगारी सी ॥११६॥

कीरत सिह कुमार के नास मवास भजे तजि के रजधानी
हडुमुखी अरनिद रो पाइनी कटक पाहरू माह परानी

वैरी कि नारि बिलक्कति गग यौं सूखि गयो मुख जीभ लुठानी
काढिये म्यान ते ओफ करौं पिय ते जु कह्यौ तरवारि मे पानी ॥१२०॥

कुलि आलम दिल्ली के बालम दानि चले दर कूच दुनी दररी सी
गग छिपी रवि की छवि छार पहार भये चकचूर चरी सी
सोचति सोवत सेज सची अमरावति ते जनि जाति जरी सी
टूटि गये छतना से फना सन सेस रह्यो छुटि सेस छरी सी ॥१२१॥

छाड्यो गिरा को गुमान गजानन जानि पर्यो जग जानन होऊ
कै जु रहै गुरु गूगे को गग सुरग्गुर औ असुरग्गुर दोऊ
कहै जात न बीर बली त्रिप के गुन सौ मुख यो किन से मुख होऊ
ज्यों चतुरानन औ षडानन ज्यों सहसानन त्यो सब कोऊ ॥१२२॥

तान हद्द मिया तानसेन बुद्धि हद्द बलवीर
साह को साह अकब्बरा टोडरमल वजीर ॥१२३॥

दरीभ्रित दरि गए दरिया उतरि गए दौरे दानिसाहजू के दरे दरखत हैं
कहैं कवि गग हय हीसत प्रचड रुद्र उद्धत सदेसे देखे रोम रोम हरखत हैं
पौढे हुते कोरी कोरा छोडे। पिय जोरी चोरी गोरनि के नैना घोर धार बरसत हैं
गरभ के गिरि गए गोदी के गिराय दए पलना के परे ते पहार परसत हैं ॥१२४॥

दान कृपान सुजानपनो तू जगत को जीतब जीतन आयौ
गग कहै सब साहिबी के अग ते ही मनो पुरहूत पठायौ
बीरबली त्रिप तेरी बराबरि और विरचि न दूजो बनायौ
साहू के सोच सिवाहू के सूल सचीहू के साध सपूत न जायो ॥१२५॥

दान दिलीपति के फुरगावत आवत भूप बधे सुतरी हैं
जे सिहरी दिहरी नहि नाघति ते गहरी नदिया उतरी हैं
गग किसोरनि कोरनि छाडि सुनी जिनकी बतिया तुतरी हैं
नेननि नीर पयोधर छीन चली मनु पाहन की पुतरी है ॥१२६॥

दुसह विरह पीर तीर सी लगे समीर ऐसो न भरोसे कीजे काम कहा करेगी
जोवन की जोति जा ही जीति की जगति कला औ कहा आइ परा बाधि कौन लरेगी
मानिनी के पाइ परो फेरि मनुहारि परो याके हसि हेरे हियो आनन्द सो भरेगी
दूलह दरानखान गग दे मनैए मान मान कहा अमर हू देखि तुम्हे डरेगी ॥१२७॥

देख देश खान सुलतान कई वाह वाह नेक ही की नजीर रोहाल पेखियत है
कहै कवि गग तुज दीननि के दरबार ऐडी बडी गतिनि गयद गेरियत है
एकनि को मुहरे जराऊ जरवाव देत एकनि की विदा कर जोरि टेरियत है
देवे को नडाई कुल ऊदावत रामदास तेरे दिये माल को प्रमाण हेरियत है ॥१२८॥

दोरे तेरे दानयार दलहि न नार पार परारे पगग वर नन्मक जे नारि के
हिमगिरि हेम गिरि गिरत गिरीस गिरि और गिरि गिरत गिरा गज भारि के
करवाकी कहा गग तरवान तीतें होहि सरनान बूडे स्वाह नदी नारि के
टूटी नीची बीच बीच बलल बलल करे बेला छूटें वारिभ बलूला उठे नारि के ॥१२९॥

नाउ लिये घर ते निकस्यो कवि गग कहै सहजान तिहारो
आइ के देख्यो है कल्पतरु अरु कामदुधा मनि चिन्तति भारो
आज हमारी भई परिपूरन आस सबै कबहूँ नहि नारो
लाभ गयो सिगरो चित ते अन ये भगो दारिद छेरन नारो ॥१३०॥

प्राची प्रतीची अवाची दिशाकि दसो दिस होत ही [illegible] कुनेनी
गग कहै उमडे घन ज्यों हय हथ्यिय पैदल सारथ सेनी
बूलह दान चढे रन को रिपु भूमि हका गई रग रेनी
सत्रुन के गढ टूटि भए पान फटि गये हैं फनिन्द के फनी ॥१३१॥

बाने फहराने घहराने घटा गजन के नाही ठहराने रावराने देस देस के
नग भहराने अरु नगर पटाने सुनि बाजत निसाने दान साह [illegible] नरेस के
कुकुम के कुंजर कसमसाने गग भने भौन के भगाने अलि छूटे लट केस के
दल के दरारेहू ते कमठ करारे फूटे केरा कैसे पात बिहराने गिर [illegible] के ॥१३२॥

बैठे दरीखाने बीच साह के समूह दल दोनों दीन बीच आन दई एक राखी है
रोस कर वचन कहे हैं मुखपालन ते सावन को बन्धन अभे न राख्ग भाखी है
भनै कवि गग भइ सोर महिमडल में हाडा वर वीर ने किपान खोल राखी है
ठोकि भुजदड पे प्रचड सो जुझार सिंह बूदी पति राखी सो तुम्हार हाथ राखी है॥१३३॥

मदनु बिहद्द नद्द विंध्य से उलद्दत है कहैं कवि गग ऐसे रोके रथ भान के
जोरावर जेतवार जग मन रजन हैं अजन से कारे भारे गजन गुमान के
तुडनि पसारि के पियुष कुंड पान करै सुन्डनि सो पेलत महल मघवान के
देउत अमद अति मन्दर से मंद गति ऐसे गजराज रामचन्द्र जू के दान के ॥१३४॥

गार मची रनभुमि रची उमडे दल साहि अकब्बर के
अदलो बदलो भई बारहिबार परे तरवारिन के झरके
कवि गग तहाँ जुग टूटि परे फिरे रुड भुसुड बिना सिर के
गुमनो रगरेज के रावर माह महावर के मथना ढरके ॥१३५॥

एक ननो सुर राज हथीय सुनावल बाडन और न होनो
आर सने बकसे बलवीर बचे रवि के रथ के हय दोना
गग कहै कर उन्नत देखि सुम गन मौज गुनी तजि मोनो
लक सुमेरु लुटाइ दई है रहयो मुख सालिगराम के सोनो ॥१३६॥

साहि अकबर के पनली बली दानि कियो वर पुब्ब पयानो
गग चले बनिवारन त्रिन्द दरी उदरे दरीया दहलानो
आगि को सकु दे पानी का पोत बजी बर बम्ब जग्यो अकुलानो
खाइ प्रताप अचे अरि पानिप धौस धुकार डकारत मानो ॥१३७॥

सिद्धि सिरो मानसिह जी को कल कीरति विसद भई राज रहो जो लौं तिरबेनी है
रावरी कुसल हम सिसुन समेत चाहैं घरी घरी पल पल यहाँहू सुचैनी है
हुडाएक तुम पे करो है हजार की सो कविन को राखो मान साह जोग देनी है
पुहुमी प्रमान भान वरा मे सपूत मान रोक गिनि देने जस लेखे लिख देनी है ॥१३८॥

मालती शकुन्तला सी कोई कामकदला सी हाजिर हजार चार नटी नोल नागरे
ऐल फैल फिरत खवास खास आस पास चोनन की चहल गुलाबन की गागरे
ऐसी मजलिस तेरी देखा राजा नीरवर गग कहै गूगी ह्वै के रही गिरा भागरे
महि रह्यो मारवाड़ मीर रह्यो ग्वालियर गोरा रह्यो गोरना अगर रह्यो आगरे ॥१३९॥

नाधिबे को अजलि बिलोकिबे को काल ढिग राखिबै को पास जिय मारिबे को रोस है
जारिबे का तन मन मारिबे को हियो आस धारिबे को पग पग गनिबे को कोस है
खाइबे को सोई भाई चढिबे उतारिबे को सुनिबे को प्रानघात किए अपसोस है
बैरम के खानखाना तेरे डर बैरी बधू लीबे को उसास मुख दीबे ही को दोस है ॥१४०॥

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास भागे देसपति धुनि सुनत निसान की
गग कहै तिनहू की रानी रजधानी छाड़ि फिरै बिललानी सुधि भूली खानपान की

तेऊ मिली करिन हरिन म्रिग बानरनि तितहु की भली गई रच्छा तहां गान की
सची जानी करिन भवानी जानी केहरनि म्रिगन कलानिधि कपिन जानी जानकी ॥१४१॥

हहर हवेली सुनि सरबु समरकन्दी धीर ना धरत धुनि सुनत निसाना की
पच्छिम को ठाठ ठब्यो प्रलय सों पलख्यो गंग खुरासान अस्पहान लगे एक आना की
जीवन उबीठ बीठे मीठे गीठे महबूब हिए भर न हेरियत अबट बहाना की
तौसखाने पीलखाने खजाने हरमखाने खाने खाने खबर नवाब खानखाना की ॥१४२॥

नवल नवाब खानखाना जु रिसाने रस कीने अरि जेर समसेर सर सरजे
मास के पहाड सम खानु करु राखे सत्रु कीने घमसान भूमि आसमान लरजे
सोनित की धार सों छूटत चन्द्रमा सो धार भारी भयों भेद रुद्रन गन के हाहा गरजे
न्यारो बोल बोलत कपाल मुण्डमाल न्यारी न्यारो गजराज न्यारो म्रिगराज गरजे ॥१४३॥

प्रबल प्रचण्ड बली बैरम के खानखाना तेरी धाक दीपक दिसान दह दहकी
कहै कवि गंग तहाँ भारी सूर बीरिन के उमगि अखण्ड दल प्रलै पौन लहकी
मच्यो घमसान तहां तोप तीर बान जले गाजि बलवान किरिवान कोप गहकी
तुन्ड काटि मुन्ड काटि जोसन जिरह काटि नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी ॥१४४॥

चकित भ्रमर रहि गयो गमन नहिं करत कमल बन
अहिफनि मनि नहि लेत तेज नहि बहत पवन घन
हंस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति
बहु सुन्दर पद्मिनी पुरुष न चहैं न करै रति
खलभलित सेस कवि गंग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो
खानखान बैरम सुवन जिदिन कोप करि तंग कस्यो ॥१४५॥

कस्यप के तरनि तरनि के करन जैसे उदधि के इंदु जैसे भए यो जिजाना के
दसरथ के राम औ स्याम के समर जैसे ईस के गनेस औ कमलपत्र आना के
सिंधु के ज्यों सुरतरु पौन के ज्यों हनुमान चंद के ज्यों बुध अनिरुद्ध सिंह बाना के
तैसहि सपूत खान बैरम के खानखाना वैसेई दाराबखां सपूत खानखाना के ॥१४६॥

नवल नवाब खानखाना जू तिहारे डर परी है खलक खेंग भेंग जहूँ तहूँ जू
राजन की रजधानी डोलीं फिरे बन बन बेठन की बैठे बैठे भरे बैठी बहू जू
चहूँ गिरि राहें परी समुद्र अथाह अब कहै कवि गंग चक्रवती और चाहू जू,
भूमि चली सेष धरि सेष चल्यो कच्छ धरि कच्छ चल्यो कोल धरि कोल,चल्यो काहू जू॥१४७॥

राजे भाजे राज छोडि रन छोडि राजपूत राउति छाडि राउत रनाई छोडि राना जू
कहै कवि गग इत समुद्र नै चहूँ कुल कियो न करै नबून तिय खसमाना जू
पच्छिम पुरतगाल कासमीर अवताल खखर को देस बाढ्यो भक्खर भगाना जू
रूम साम लोभ सोम बलक बदाऊ सान चीन फेन खुरासान बीके खानखाना जू ॥१४८॥

ककुभ कुभि सकुलहि गहरि हिम गिरि हिय फट्टय
दर दरेर कुब्बेर वेर जिमि मेरु पलट्टय
सरस कमल सपुट्टय सूर आथवति पट्टय
गिरि गगन्नि निय गम्भ कठ कामिनिय उच्चिट्टय
भनि गग अद्दिवय दब्ब दिय दक्खिय कर दक्खि गयौ
खानानखान बैरम सुवन जिदिन दखल दक्खिनन दयौ ॥१४९॥

गग गौछ मोछे जमुन अभरन सरसुती राग
प्रकट खानखाना भयौ कामद बदन प्रयाग ॥१५०॥

जस्य न जीव जग लिय चो लहै न अद्ध छन
न गनि जात नागि नय नाग नायक उरिंद गन
इक्क सरनि सरवदनि तीर तरबरनि पत पर
हाइ हाइ हाहू धिहूलि लग्गहि तिलग नर
खानानखान वैरम्म सुव जदिन कुप्पि कर खग्ग लिय
कलमलित सकल दक्खिन मुलक पट्टन पट्टन पट्ट किय ॥१५१॥

धमक निसान सुनि धमक तुरान चित चमक किरान मुलतान थहराना जू
मारु गरदान कामरु के करवान आदि गेनार के रान दिवान आनमाना जू
पूरब भगान पछगाध पलटान उतराध गुजरात देस अरु दच्छन दबाना जू
ओरवान हयसान हेहलान समसाम रेलमेल खुरासान चढे खानखाना जू ॥१५२॥

सप्त सिधु सप्त दीप थहर थहर करै जाके डर टूटत अनूठे गढ राना के
मेरु मरजाद छाँडि काँपत कुबेरहू से सुनि के निसान डका सका लका थाना के
धरनी धमक कनमनक कसक गई सूके बसुरा के खड खड खुरासाना के
सेस फनि फूटे टूटि चकचूर भये चले पेस खाना जू नवाब खानखाना के ॥१५३॥

हमरे ता प्राननाथ साथ है नवाब जू के दक्खिन के ओर छोर जीति छिति लीनी है
बकसत सुनियत मोती माल माते गज हयनि की हेले दोनी निदाये न दीनी है

यहे सोधो पाइ सुख सुपु के ग वानो दिन रेनिन कनति रतिपति र ग भीनी है
चकई के बेन सुनि व्याकुल ते बूझे नाम तेरे हू पिया को रानिसाने गगा कीनी है ॥१५४॥

कमठ पीठ पर कोल व्याल पर फन फन द फन
फनपति फन पर पोहम पोहम पर सत दीप गन
सप्त दीप मधि दीप इकह जबू जग जग्विलप
• • • •• • •• • ••
खानखान बरहगग सुत तिहि पर तुव भुज कल्पतर
जगमगइ जगत पर रागग नर खग्ग अग्ग स्वामी तवर ॥१५५॥

आमेर अवनिपाल भानुसुव जगन्नाथ कुरम रूहेलनि को भीर तरे पनि की
कीनो कोप करा करि होत तहाँ सरासरि भरा भरि बीती जहाँ पहिले गयानि की
जीरनि पराइ जेर गिरिन गिराइ ग ग करिन चढाई तन कारिख तपनि की
बरछी के वर अकबर के हुकुम वर तर तोरी जर सब ईसफ जपनि की ॥१५६॥

फुरत क्रिपान मयदान ज्यो उदोत भान एकन ते एक मनो सुरामा जरद की
कहै कवि ग ग तेरे बल की बयार लगे फूटो गजघटा घन घटा ज्यों सरद की
एते मान सोनित की नदियाँ उमगि चलीं रही ना निसानी कहू मदि मे गरद की
गौरी गह्यो गनपति गनपति गह्यो गोरि गौरीपति गह्यो पू छि लपकि वरद की ।१५७।

गु जर वै गम्भीर नीर निझ्झर निरझ्झरियो
अति अथाह दाउदसाह बुन्दल उब्बरियो
धाम धुद्धि छिद राग जाम जोहत हरि लीन्हो
हिन्दू तुरक तडाग सबे कदव बिन कीन्हो
भनि गग अकबर अकक सम छिप क्रिपानि छ्गि कर करे
राना प्रताप रअना अरहि छिन डुब्बै छिन उच्छरै ॥१५८॥

हाथी चाहै सालबन साप चाहै माथे भनि पानी को प्रवाह जेसे चाहै बेली पान की
सजोगिनी रैन चाहै जोगी जसे जोग चाहै आतुर नायक जेसे चाहै मित मान की
चदहि चकोर चाहै पिक घनघोर चाहै चकइहू चकवा ज्यों चाहैं भेट भान की
हस चाहैं मानसर मोर चाहैं मेघझर गग चाहै नजर सलेम सुलतान की ॥१५९॥

आत्मचारित्रिक

कई बार इहि छिति छोटनि मे छोट भयो कई बार छिति मे कुलीन पायो नाऊ मे
कई बार दैव लोक देवन में देव भयो देखि देखि वेद तुव कुंदन उराऊ म

कहै कवि गंग काहू और के सरन गए सरयो न कछू तो तुम्ह सरन समाऊ मे
नाथ की सपथ तोहि निपट पावनी गंगा सुपन लगाऊ तेरो कुपथ न जाऊ मे ।।१६०।।

बांमन को जनमु जनेऊ माल जानि बूझि जीभ ही निवारिवे को याच्यो जन जन मे
कहि कवि गंग काहा कीजे जोन जाने जातु नाउ ग्यान देखो जु बुढाई ध्यान धन मे
काम कोध लोभ मोह तिनही के बस पर्यो तिहु पुर नायक बिसार्यो तिहु पन में
कालिमा के चलत कलापती ज्यों नेत होति केस आए सेतु तऊ न केसो आए मन मे ।।१६१।।

एक दिन ऐसो जामें शिविका गज बाजि रहै एक दिन ऐसा जामें सोयबे को सहसो है
एक दिन ऐसो जामें गिलम गलीचा लागे एक दिन ऐसो जामें तागे को न पयसो है
एक दिन ऐसो जामें राजन सो प्रीति होत एक दिन ऐसी जामें दुस्मन को धहसो है
कहै कवि गंग नर मन मे विचार देख आज दिन ऐसो जात काल दिन कयसो है ।।१६२

नास के संग तो नाक दई आंख दई जग देखन कू
हाथ दिये कछु करन कू कछु दान करन पाव दए प्रिथी फेरन कू
कान दिये सुनने कू पुरान औ मुख जीभ दियो भज मोहन कू
हे प्रभु जी सब आछो दियो पर पेट दियो पत खोवन कू ।।१६३।।

हंस तो चाहत मान सरोवर मानसरोवर है रंग राता
नीर की बुंद पपीहरा चाहत चंद चकोर के नेह का नाता
प्रीतम प्रीत लगाय चले कवि गंग कहै जग जीवन दाता
मेरे तो चित्त मे मित्त बसै अरु मित्त के चित्त की जान विधाता ।।१६४।।

कन्यादान लेत सब छत्रपती छत्रधारी हयदान गज दान भूमि दान भारी है
राजा मागे रावन पै राव मागे खानन पै खान सुलतानन पै भिछु छाक डारी है
भिच्छा ही के काजे कवि गंग कहै ठाडे द्वार बलि से त्रिपति तहां बावन भिहारी है
संपदा के काजे कहो कौने नहीं ओड़्यो हाथ जहां जैसो दान तहां तैसोई भिखारी है ।।१६५।।

नटवा लों नटै न टरै पुनि मोदी मुडाडिन में बहु भाव भरै
सजि गाजे बजाज अवाज म्रिदंग लों बांकिये तान गिमौरी लरै
पट धोबी भरे अरु नाई नरै सुतमोलिन बोलिन बोल धरै
कवि गंग के आगन मंगन हार दिना दस तें नित न्रित्य करै ।।१६६।।

कहै कवि गंग चौथे पहर सतावै आनि निपट निगोरो मोहि जान के यतीम है
बाढी सीत सका कांपे कर ह्वै गात का लघुसका के लागें ते होत लका की मुहीम है ॥१७३॥

एक समै घर ते निकसी सखियान के संग सु सांवल सूरत
बामज नाज नमूं गनम बेताब शुदम अफजूद कदूरत
मुसकाय कै मोतन ताकि दियो तिरछी आखयाँ चितवन को मरूरत
होशम रफ्ता न मुन्दबदरत शुदी दिल मस्त जिदीदने सूरत ॥१७४॥

जा दिन ते जदुनाथ चले तजि गोकुल को मथुरा गिरधारी
ता दिन ते ब्रज नायिका सुन्दर रपति झपति कपति प्यारी
नैनन तें उनके सरिता भई अंजन आसु चल्यो बहिवारी
गंग कहै सुन साह अकबर ता दिन ते जमुना भइ कारी ॥१७५॥

दाख बडो फल है सुखदायक काग भखै तो महा दुख पावै
मिस्री अमोल बहोत मिठास में जो खर खावै तो प्रान नसावै
सीत बिना फल खाय छुहारे तो ताते तुरग को तेज नसावै
गंग कहै सुनि साह अकबर सीख कुमानुष को नहिं भावै ॥१७६॥

लीलैहि लेत निसाचर से मुख प्राची दिसा कि पिशाच कि दारा
पीय पयान कि प्रान पयान पिकी पिक रोर क्रिपान कि धारा
गंग बरातकि अन्तक सीत समीर कि तीर तरन्य कि तारा
जोन्ह कि ज्वाल म्रिनाल की व्याल सखी घनसार कि सार कि आरा ॥१७७॥

गुंजत कुंज मधुव्रत पुंज सरोज के सौरभ की सरसाई
गंग सु प्रानपती को पयान भरों केहि भाँति वियोग दसाई
कोकिल बोलत बागही बाग बसंत के बासर सों न बसाई
चैत की चादनी के चितये तन कैसे के छाडिगो काम कसाई ॥१७८॥

मैं सब उत्तर दीनों हुतो जब दूती दु तीन बुलावन आई
गंग सु तो मनमोहन आन अचानक बैठि रह्यो ढिग बाँई
मैं कहूं सोचि निहार्यो उते उनमैं छवि काम की कोटिक पाई
मान को स्वांग न नैक रह्यो सब आग गयो ढरि राग की नाई ॥१७९॥

भनि गग प्रगल भिर चलत दल जहांगीर तुव भार तल
फु फु फरिद फुन-फुकरत सहस भाल उगिलत गरल ॥१८६॥

साह सो सलाम करि मारूगो है सलाबत खान नेक न सम्हारयो बोल राख्यो ठोर ठाकरो
केते केते मीर मारे केते केते कपू ठाडे खेलत सिकार जैसे म्रिगन में बाघरो
कहै कवि गग गजसिंह के अमरसिंह राखी रजपूती ते नवल नर नागरो
पाव सेर लोह ते हिलाई सारी बादसाही हो तो समसेर ता छिनाय लेतो आगरो ॥१८७॥

एक समय प्रभु भावन बावन सत सुपावन देह धरी
बलि को छल के प्रभु राज लियो तिहुँ लोक कि तीनहि पैडकरी
तिनके कर दड हुतो सो बढ्यो भुवदान दियो लियो माग हरी
कवि गग कहै ये अचभ लखो बिन पल्लव पेड बढी लकरी ॥१८८॥

सूरदास मदनमोहन के पद[1]

जसोदा मैया लाल को झुलावे
आछे बारे कान्ह को हुलरावे
कनिया कनिया अइया अइया यों कहि लाल लडावे
हुलुलुलु हुलुलुलु हां हा हां हा कहि के गोद लीये खेलावे
दोउ कर पकर जसोदारानी ठुमकी पाय धरावे
घननन घननन घुघरू बाजे झांझरीयां झमकावे
सूरजदास मदनमोहन को येही भात रीझावे
म म म म पपु पपु पप चचू तत्त ता थेई गह ब्रिधि लाड
लडावे ॥१॥

छबीली नागरी अहो रूप को आगरी मेरो मन मोहि लीयो
दधि को दान लेहों प्यारी तब तुमही जान देहों
और सखिन को जान दे तु सुनि न्यारी है बात
रहरह होगा नद के कित एतो इतरात

उपर्युक्त छन्द-सख्या १७६-१८८ तक पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा सपादित महाकवि श्री गग के कवित्त नामक पुस्तक से उद्धृत किये गये है।

१ कीर्तन सग्रह, वर्षोत्सव के कीर्तन से उद्धृत।

वरजि सखा आपने ये करत अति अति अनीत
दधि भाजन पटकत हे झटकत हैं नई रीत
घेरो किन ठाड़ी करी अतरत ही धाट
दान के मिस लूटत हो नित अबलन की बाट
दान काल्हि ले आवही दमदान निबेर काल्ह
बूझो जाय नंद बाबा सों कहते हैं यह ख्याल
दधि माखन सबहीन के सबै डार तुम देहो
एको बूंद न देहौं तब जब नाम दान को लेहो
मिसहीं मिस झगरत हो दिन गयो बन मांझ
अदल बदल मन लियो ही उलटि चरी घर सांझ
परी प्रीति गांठि हिदै छोड़ी नहीं अब जाय
सूस रिस मन आनंद इत उत परत न पाय
दधि लीयो सब नन्दलाल दई सुख की रास
मन हरि को सब हर लियो परी प्रेम की पास
ब्रजबधू मानो ठाढ़ी बसन रही तन फहेरात
सूरदास मदनमोहन पिय पाछें चले जात ॥२॥

सखियन संग राधिका कुंवरि बीनति कुसुम कलियां
एक ही बानिक एक वेस क्रम स्यामभाल के हाथन रंगोली डलियां
एक अनूप माल बनावत एक परस्पर वेनी गूंथत सोभित कुन्द कलियां
सूरदास मदनमोहन आय अचानक ठाड़े भये मानी है रंगरलियां ॥३॥

आइ हु अकेली आज सांझी के कुसुम लेन भलो मिल गयो तू गोपे जात घर गायले
बरखत घनघोर मेह तामें कछु नहि सूझत सुन्दरी चटक रंग नीरते बचाय ले
चपला चमक अचक चौंधी ते करत हो अरे बीर मोह अंग संग क्यों न लगाय ले
सूरदास मदनमोहन तुम कहावत सुजान छोड़ मान लज सयान कामरी उढ़ाय ले ॥४॥

अरूझी कुंडल लट बेसरिसों पीत पट बनमाला बीच आन अरूझेहैं दोउ जन
नयन सों नयना प्रानन सों प्रान अरूझि रहे चटकीली छबि देख लटपटात स्याम घन
होडा होड़ी नृत्य करें रीझ रीझ अंकोंभरे ततथेई ततथेई रटत मगन मन
सूरदास मदनमोहन रास मण्डल में प्यारी को अंचल लेले पोछत है स्रम कन ॥५॥

चलिये जू नेकु कौतुक देखन रच्यो है रासमण्डल राधे हों आई तुहो लेन
म्रिग मद घसि अग लगाये मुकुट काछनी बनाये मुरली पीतांबर बिराजत यह छबि मोपे
कही न परे बेन
सब सखी मिल नाचे गावे ताल म्रिदग मिल बजावें न्रित्य करे मध्य मूरति मेन
सूरदास मदनमोहन हसत कहाहो जु पाऊ धारिये जोपे सुख दीयो चाहो नेन ॥६॥

मोहन लाल के सग ललना सोहे जैसे तरु तमाल की ढिग फुलसो न जरद को
वदनकाति अनुप भाति नहि समात निलांबर गगन में जैसे प्रगट्यो ससि पूरन सरद को
मुक्ता आभूषन दुति थिन्नित अग अग चूने मिले रग दूनो होत जैसे हरद को
सूरदास मदनमोहन गोहन की छबि बाढी मेटत दुख निरखी नेन मेन दरद को ॥७॥

प्यारी तु मोहनलाल रिझावत मधुरि मधुरि तानन गावत सुरा समुह बढावत
तेरे गुन रूप की सम नाहि कोउ आवे री उपमा को तुहि अत न पावत
प्यारी जब तू भ्रिकुटि भग कोटिक काम लजावत
कोक कला सगीत निपुन उघटत अवट गति ततथै ततथै थै थै म्रिदग बजावत
सूरदास मदनमोहन रिझि दीयो है अपने यों बन व्रन्दा की रानी कहावत ॥८॥

नदनदन सुधर राय मोहन बसी बजाइ सारीगम पधनी सप्त सुरन मिलि गावे
अति अनाधाति सगीत सरस सुर नीके आधर तान मिलावे
सुराध्याय तालाध्यायं न्रित्याध्याय निपुन लघु गुरु तजि जति पुलक भेद म्रिदग बजावे
सूरदास मदनमोहन सकल कलागुन प्रवीन आपुन रिझ रिझावे ॥९॥

आज अति आनद व्रजराय
धन्य दिवस वन चलत प्रथम दोन कान्ह चरावन गाय
नव पीतांबर लकुट मुरलिका ओर अखड बनायो प्रीत सहित
अवलोक ग्रहत हरि मात पिता के पाय
गोरोचन दूध दही रोरी माथे अच्छत लाये
निरखत सुख पावत गोपीजन जननी लेत बलाये
ग्वाल बिमल भये मिलत परस्पर घर घर ते सब धाये
सूरदास मदनमोहन सुन मुदित जसोदा माये ॥१०॥

गानन मोर रोमावली सुफल फलो कचुकी बसत ढांपि ले चली बसत पूजन
नरन बरन कुसुम प्रफुलित अब मोर ठौर ठौर लागे री कोकिला कूजन

मोहन लाल वियारू कीजे
व्यजन मीठे खाटे खारे रुचि यों माग जननी पे लीजे
मधु मेवा पकवान मिठाई ता ऊपर तातो पय पीजे
सखा सहित मिली जे मो रुचि सो जठन आसकरन को दीजे ॥३॥

पोढीये पिय कुवर कन्हाई
युक्ति नवल विविध कुसुमावलि मे अपने कर सेज बनाई
नाहिन सखी समय काहू को आलसवती सब गोराइ
आसकरन प्रभु मोहन नागर राधा को ललिता ले आई ॥४॥

तुम पोढो हौं सेज बनाऊँ
चापू चरनरहु पायन तर मधुरे स्वर केदारो गाऊ
सहचरि चतुर सबे जुरि आई दपति सुख नयनन दरसाउ
आसकरन प्रभु मोहन नागर यह सुख स्याम सदा हौ पाउ ॥५॥

पोढ रहो घनस्याम बलैया लेहु
स्रमित भये हो गाज गा चारत धाप परत है घाम
सीरी वियार झरोखन के मग आवत अति सीतल सुख धाम
आसकरन प्रभुमोहन नागर अग अग अभिराम ॥६॥

मोहन देखि सिराने नैना
रजनी मुख आवत गायन सग मधुर बजावत बैना
ग्वाल मडली मध्य विराजत सु दरता को ऐना
आसकरन प्रभु मोहन नागर वारों कोटिक मैना ॥७॥

प्रात समय पर घर घर ते देखन को आई गोकुल की नारी
अपनो किसन जगाय जसोदा आनन्द मगल कारी
सब गोकुल के प्रान जीवनधन या सुत की बलिहारी
आसकरन प्रभु मोहन नागर गिरि गोवर्धन धारी ॥८॥

उठो मेरे लाड लाडिले रजनी बीती तिमिर गयो भयो भोर
घर घर दधि मथनिया घूमे अरु द्विज करत वेद की घोर
करि कलेउ दधि ओदन मिस्री बाटि परोसो ओर
आसकरन प्रभु मोहन नागर वारो तुम पर प्रान अकोर ॥९॥

मोहै दधि मथन दे बलि गई
जाउ बल बल मदन ऊपर छाँड मथनी रई
लाल देउ गी नवनीत लौंदा आर तम कित ठई
सुत हित जान बिलोक जसोमति प्रम पुलकित गई
लै उछग लगाय उरसो प्रान जीवन जई
बाल केलि गुपाल जू की आसकरन नित नई ॥१०॥

यह नित्य नेम जसोदाजू मेरे तिहारोई लाल लड़ावन कु
प्रात समय उठ पलना झुलाउं सकट भजन जस गावन कु
नाचत क्रिस्न नचावत गोपी करकटताल बजावन कु
आसकरन प्रभुमोहन नागर निरख वदन सचु पावन कुं ॥११॥

नद किसोर यह मोहनी करन न पाई
गोरस के मिस रसहि ढढोरत मोहन मीठी तानन गाई
गोरस मेरे घरहि बिकैहै क्यों ब्रिन्दावन जाय
आसकरन प्रभुमोहन नागर जसोमति जाय सुनाय ॥१२॥

राजा टोडरमल के छंद[1]

हुडी

ऊपर लिखे निवास सब रक्खे मुद्दत होय
चलन निशां अन्दाज धन हुडी कहिये सोय
हुडी खोये पैठ लिख पैठ गये पर पैठ
सनद एक के दाम दे रोकड़ खाता बेठ
जो हुडी सिकरे नहीं जिकरी लिखै बनाय
हुडी कोरी पीठ लो तब धन देय चुकाय ॥

सराफ और व्यापारी के लक्षण

हुडी लिखै न हाथ से जमा न रक्खे भूल
लेय व्याज देवे नहीं सोई सराफी भूल
जग सराफ ताको कहै जमा समय पर देग
व्यापारी सो जानिये समय पै मूद लेय ॥

---

१ कवि विनोद नामक प्रकाशित ग्रथ से उद्धृत ।

चौधरी के लक्षण

पारा बान्छे बांट हाकिम रैयत मानही
सो चौधरि का ठाग ताके सकल अधीन हों ॥

आढ़तिया के लक्षण

साफ हिसाब किताब हो रोब सिताबी काम
कर्म धर्म अरु मर्म हो सचित धन औ धाम ॥

साहूकार के लक्षण

आधा ऊपर आधा तरे आधा देय साह के गरे
आधे मे आधा निस्तार जुग टर जाय साह नहि टरै ॥

सराफा

प्रथम बनारस आगरा दिल्ली औ गुजरात
अगगर औ अजमेर से सिखे सराफी बात ॥

बहीखाता

नाम जमा दच्छिन खरच सिर पेटा पर पेट
ऊपर नाम धनी लिखे हस्ते पुन रौ डेट ॥

बहीखाता शोघ्रता से लिखा जा सके इसलिये कहा जाता है कि देवनागरी लिपि के साकेतिक रूप मडिया का प्रचार सभवतः इन्होंने ही किया था :—

देवनागरी अति कठिन स्वर व्यजन व्योहार
ताते जग के हित सुगम मुडा कियो प्रचार ॥

सहायक-ग्रंथ-सूची

प्रकाशित

हिन्दी —

१ अकबरी-दरबार, भाग १, २, ३, आजाद, अनु० रामचन्द्र वर्मा, संवत् १९८१, १९[illegible] १९९३ क्रमशः

२ अश्वगी-चरित्र, लालजी, सन् १९[illegible]

३ अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय, भाग १, डा० दीनदयालु गुप्त, संवत् २००४

४ कविप्रिया, केशवदास, सन् १९२८

५ कवि-विनोद, विश्वम्भरनाथ खत्री, संवत् १९८३

६ कविता कौमुदी, भाग १, रामनरेश त्रिपाठी, सन् १९३९

७ काव्य-कल्पद्रुम, भाग १, २, कन्हैयालाल पोद्दार, संवत् १९९३, १९९८ क्रमशः

८ काव्य-निर्णय, भिखारीदास, टीका० महावीरप्रसाद मालवीय, सन् १९३७

९ खानखानानामा, भाग १, २, मुंशी देवीप्रसाद, सन् १९[illegible]

१० खेटकौतुकं जातकम्, नवाब खानखाना, टीका० पं० नारायणप्रसाद सीताराम शर्मा, संवत् १९९६

११ खोज-रिपोर्ट, सन् १९०१, १९०३, १९०६-१९०८, १९३२-१९३४ वार्षिक

१२ चौरासी वैष्णवन की वार्ता, गोकुलनाथ, संवत् १९८५

१३ डिंगल में वीर रस, प० मोतीलाल मेनारिया, संवत् १९९७

१४ तुलसीदास, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, सन् १९४८

१५ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता

१६ बरवै-नायिका-भेद, श्री प्रभुदयाल मीतल

१७ बिहारी बोधिनी, बिहारी, टीका० लाला भगवानदीन, सन् १९४६

१८ भक्तमाल, नाभादास, टीका० प्रियादास, सन् १९३७

१९ मआसिरुल उमरा, अनु० श्री व्रजरत्नदास, भाग १, २ संवत् १९८८, १९९५ क्रमशः,

२० मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, श्री अल्लामा अब्दुल्लाह यूसुफ अली, सन् १९२९

२१ महाकवि गंग के कवित्त, संपादक पुरोहित हरिनारायण शर्मा

२२ मिश्रबंधु-विनोद, भाग १, २, मिश्रबंधु, संवत् १९९४

२३ मुगल-बादशाहों की हिन्दी, प० चन्द्रबली पांडे, संवत् १९९७

२४ मूल-गुसाईं-चरित्र, बाबा वेणीमाधवदास, संवत् १९९३

२५ रस-कलश, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध',

२६ रहीम-रत्नावली, पं० मयाशंकर याज्ञिक, संवत १९८५

२७ रहिमनविलास, ब्रजरत्नदास

२८ राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पं० मोतीलाल मेनारिया

२९ राजा [illegible], वल्लभ भट्ट, संवत् १९८८

३० राजा बीरबल, मुंशी देवीप्रसाद, संवत् १९५८

३१ वाग्विलास, कवि सेवकराम, सं० पं० श्रीकृष्ण शर्मा

३२ वैराग्यशतक-पचीसी, ध्रुव, सन १९१६

३३ शिवराज भूषण, भूषण, सन् १९२१

३४ शिवसिंह-सरोज, श्री शिवसिंह सेंगर, सन् १९२३

३५ संगीत-राग-कल्पद्रुम, भाग १, २, कृष्णानंद व्यास, संवत १९७३

३६ हस्तलिखित हिन्दी-पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, संवत् १९८०

३७ हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा सन् १९३८

३८ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पं० रामचन्द्र शुक्ल, संवत् १९९७

अंग्रेजी —

१ अकबर दि ग्रेट मुगल, श्री विंसेन्ट स्मिथ, सन् १९१९

२ अकबरनामा, भाग १, २, ३, अबुलफजल, अनु० बेवरिज, सन् १९०७, १९१२

३ आइन-अकबरी, भाग १, २, अबुलफजल, अनु० ब्लाकमन, सन् १८७३ग्लेडविन १८००

४ इंडियन पेंटिंग्स अंडर दि मुगल्स्, भाग १, परसी ब्राऊन, सन् १९२४

५ ए शार्ट हिस्ट्री आव् इंडिया, डा० ईश्वरीप्रसाद, सन् १९३६

६ कॉइन्स एन्ड दि ग्रेट मुगल, सन् १९३२

७. तबकाते-अकबरी, निजामुद्दीन, अनु० [illegible], सन १९३६

८ तुजुक-जहाँगीरी, जहाँगीर, भाग १, २, अनु० अलेक्जेंडर रोजर्स, सन् १९०९, १९१४ [illegible]

९ दि एम्परर अकबर, अगस्टस फर्बुरिक, सन् १९४१

१० दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंडिया, सन् १९३८

११ दि लाइफ एंड वर्क्स आव् अमीर खुसरो, डॉ० मोहम्मद वहीद मिर्जा, सन् १९३५ बेप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता

१२ दीने-इलाही, श्री माखनलाल रायचौधरी, सन् १९४१

१३ नेशनल फ्लेग एंड अदर एसेज, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, सन् १९४४

१४ प्रोमोशन आव् लर्निंग इन इण्डिया ड्यूरिंग मुहम्मडेन पीरियड, श्री एन० एन० लॉ, सन् १९१६

१५ मिडिवल इंडिया, डा० ईश्वरीप्रसाद, सन् १९४२

१६ मेडिवियल इंडिया, श्री लेनपूल, सन् १९२५

१७ मुतखबुतवारीख, अनु० लो, सन् १९२४

१८ राजस्थान, टॉड, सन् १८७९

१९ रेलीजस पालिसी आव् मुगल इम्परर्स, प० श्रीराम शर्मा

२० हिन्दी लिटरचर, श्री एफ० इ० के

२१ हुमायूंनामा, गलबदन बेगम, सन् १९०८

संस्कृत —

१ अभिज्ञान शाकुन्तलम्—कालिदास

२ काव्यादर्श-आचार्य दंडी

३ रघुवंश, कालिदास

४ साहित्य-दर्पण, टीका० शालिग्राम शास्त्री, संवत् १९९१

गुजराती —

१ ब्रह्म-भट्ट-दर्पण, नरसिंगदास, संवत् १९८०

फारसी —

१ मआसिर-रहीमी, अब्दुल-बाकी, भाग १, २, ३, सन १९२५, १९८७ क्रमशः

उर्दू —

१ दरबार-अकबरी, मौलाना शम्सुलउल्मा आजाद, सन १९२७

पत्र-पत्रिकाएँ —

१ विश्ववाणी, अकबर अंक, नवम्बर १९४०, इलाहाबाद

२ विशाल-भारत, कलकत्ता

३ संगीत-कला, विलावल अंक, संगीत कला भवन, लश्कर, ग्वालियर

४. संगीत मासिक, ध्रुपदांक, हाथरस, सन् १९३९

५ सरस्वती, बनारस

६ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका, प्रयाग

७ हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

हस्तलिखित—

१ अभिनय-नृत्यार्णव, प० राजाराम द्विवेदी 'सुरंग'

२ नरहरि के छप्पय और कवित्त, प० सियादीन भट्ट (बाराबंकी)

३ रुक्मिणी-मंगल, नरहरि, राज-दरबार पुस्तकालय, काशी

४ संगीत-सार, तानसेन, राज-दरबार पुस्तकालय, रीवा

५ हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ, कांकरोली

६ हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ, नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी,

७ हस्तलिखित संग्रह-ग्रंथ, याज्ञिक-संग्रहालय

शुद्धि अशुद्धि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१	गलकुडा	गोल्कुडा
३	२३	व्यावहारिक	व्यावहारिक
१०	१९	दोन	दोनों
११	१७	निर्दश	निर्देश
१३	फु०	अकबरी दरबार	
	१	पहला भाग पृ० २१४-२१५	×
१५	४	नश्वास	विश्वास
१५	८	अकबर	अकबर
१५	पृ०		
	१	विभागक	विधागक
१७	२०	सम्बध	सम्बन्ध
२१	२५	कवियो	कवियों
२५	२	अबुदुलफज्ल	अबुलफज्ल
२५	११	व्यापकता	की व्यापकता
२५	२५	का	की
२६	५	है	ह
२६	९	हो	हों
३१	फु० १,		
पंक्ति	७	पर	पट
३२	२५	कोध	क्रोध
३३	६	नेवि	कवि
३३	१४	है	हैं
३५	१५	की	×
३५	१५	जिसका	जिसकी
४७	१६	उ	उपलब्ध
४८	२	शब्दावल	शब्दावली म
४८	७	द्वारा	द्वार
५२	फु० २	४०३	४५२-५३
५३	७	विन	बिन
५५	फु० ४	सात	सूत्र
६४	,,	सन् १५८	सन् १५६
६७	१७	इर्मिहिडोल	इमि हिंडोल
६७	२१	दम	हम
६८	४	मुअपति	मुअपति
६८	२३	सोरन	रोरन
७०	२	ही	×
६८	५	लोग	लोभ
६८	८	की	का
७२	८	को	की
७४	१६	अकरन	असरन
७४	२३	कोइ	केहि
७५	१	सकेत	उल्लेख
७५	२-३	प्रमाणिकता	प्रामाणिकता
७५	२७	जहागिरवा	जहांगिरवा
७६	८	काता	जाता
७६	२२	यथार्थ	यथार्थ
७७	६	जाति,	जाति
७७	६	जन्म-अस्थान	जन्म-स्थान
७८	८	निरख	निरखे
७८	९	फटके	फरके
७९	१३	प्रमाणिक	प्रामाणिक
८१	१०	अप्रमाणिक	अप्रामाणिक
८७	१६	दिया	दिया है
८७	१६	दिय	दिया
८७	फु० २		
पंक्ति	१	ओर	ओर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४८	५	है	हैं
१४८	१७	साहब	साहेब
१४९	१०	प्रमाणिकता	प्रामाणिकता
१५०	४	प्रमाणिकता	प्रामाणिकता
१५०	११	प्रमाणिकता	प्रामाणिकता
१५०	१५	सूख का बादु,	सग का बादु
१५१	३	प्रमाणिक	प्रामाणिक
१५१	१४	वाणित	वर्णित
१५२	८	साय	गाय
१५२	११	कवि	कवि
१५२	१७	क्रण	करण
१५३	८	थी	थीं
१५४	२०	इनका	उनका
१५४	२६	इन्हान	उन्होंने
१५४	२८	यथेष्ठ	यथेष्ट
१५५	१५	हठागित हे	हठागिर है
१५५	१०		
	१	प्रमाणिक	प्रामाणिक
१५६	१६	ओर	आर
१५७	४	इनकी	उनकी
१५७	७	उनको	उनकी
१५८	१४	श्रुत-मधुर	श्रुतिमधुर
१६०	७	प्रमाणिक	प्रामाणिक
१६३	५	म	म
१६३	१५	महात्मय	माहात्मय
१६३	२०	पूवर्वर्ती	पूर्ववर्ती
१६५	२०	प्रमाणिक	प्रामाणिक
१६६	२८	सम्बन्धी	तत्सबधी
१६६	२७	जीवन मे	जीवन के
१६७	१	क	की
१६७	८	प्रमाणिकता	प्रामाणिकता
१६८	१०	दिय गये	दिये गये दोहे
१६९	९	प्रमाणिक	प्रामाणिक
१७०	७	मिश्रनन्द	मिश्रबन्धु विनोद
१७०	१०	भालमाल	भालमाल-प्रभा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७१	१७	यथेष्ठ	यथेष्ट
१७२	७	को	के
१७४	१०	चमत्कार	चमत्कार
१७५	२४	इन्हान	उन्होंने
१७६	१४	बोध	बाध
१७७	१०	जहाई	जम्हाई
१७९	५	राख	राख
१७८	६	वीरमाव	वीर-भाव
१७८	६	मी	भी
१८६	२३	उदित	उदय
१८७	१६	दानक	दमानक
१८९	४	श्रृगार	शृंगार
१९४	३	आर	,,
१९८	१९	समोठ	समोर
१९८	२०	मान 'दृगी'	मानदृगी
१९९	११	कहू	कबहूं
२०२	१	ओर न	औरन
२०५	२३	डि	छाडि
२०५	२८	तखनकल	तक वक्कल
२०९	१४	जोर	जोर
२११	१	म	ताम
२११	२	कविगण	कवि
२११	२०	सामन्या	सामान्या
२१५	१	कि	कि वह
२१५	१२	यथेष्ठ	यथेष्ट
२१५	२१	होते है	होती है
२१९	७	भाग	×
२१९	२०	यथेष्ठ	यथेष्ट
२२१	५	गभस्तीभान	गभस्तीमान
२२१	१२	तही	तुही
२२३	१	ही	हो
२२५	५	उनकी रचनाओ मे	×
२२६	१४	भारि	मारि
२२८	११	खानखाना	खानखाना
२२८	२३	जोऊ	जोऊँ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४३	१४	बार	चार	३८६	२१	मदन	मदनमोहन
३५०	१५	महा	यहे	३९९	३	नरजि	मरजि
३५०	१६	करी	करो	३९८	१२	ओछन	ओछव
३५१	१२	वेह	वह	४००	९	मरो	मरी
३५१	२५	हरन	हारन	४००	१०	कमुल	कमल
३५१	५	पठ्य	पठै	४०१	२१	मरोरी	भरो री
३५५	१	जानयु हे	जानयु है	४०५	१७	कुठम	कुछम
३६१	२१	ह्दय	हृदय	४०४	२५	दाचरी	दा र रा
३६२	११	जोरि	जारि	४०४	२८	१०७	१००
३६२	३	अमुल	अगुल	४०५	२८	जगनी	अगनो
३६२	१५	मयिक	गयिक	४०७	१६	रान	रात
३६४	४	लाइ	लाय	४०८	१	मरे	मरे
३६६	४	मूण्य	मूण्य	४०८	६	रयन	रयन
३६६	२७	को	को	४११	१	वाजन	वाजन
३७१	२	मगा	गया	४१२	१४	।स।	अस
३७१	८	राग	राग	४१३	२	वेली	बली
३७४	१८	गरत	गरत	४१३	१५	है	ह
३७६	२०	कहया	कह्यो	४१४	१०	पर	पार
३७९	५	द्व	द्वै	४१६	२५	विकायो	बिकायो
३८१	२६	बिज्जय	बिजय	४१८	९	पति	पीत
३८३	१९	छि	छे	४१९	२०	कारण	कारन
३८७	७	राजनरायण	राजनारायण	४२०	१	चुनाई	चुनाइ
३९०	४	पाडित	पडित	४२०	२	आइ	आई
३९०	११	कठ	कंठ	४२१	५	कचन	कंचन
३९१	२	लीलकठ	नीलकठ	४२१	२	अग	जग
३९१	५	बाबाम्बर	बाघाम्बर	४२२	१	अधिक	अधिके
३९३	२७	जातत	जानत	४२२	५	विकाहुग	बिकाहुगे
३९४	११	नववी	नबी	४२२	१८	बीच	बीच
३९४	१४	बाकर	नाकर	४२२	१८	मनोभव	मनो मन
३९४	२६	केरा	वेरा	४२२	१८	मेरी	मेरो
३९५	९	नन	मन	४२२	१७	मनीज	मनोज
३९७	५	राव	रान	४२२	२४	होन	हास
३९७	५	बिदार	दोदार	४२३	२	सजन	खजन
३९८	१	निरवारी	निरवारो	४२३	५	कोई	कोई
३९८	२०	भरम	धरन	४२४	१०	छवै	छवै